UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186713

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. Accession No.

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

नागरिक शास्त्र के सिद्धान्त

तथा

प्रारम्भिक राजनैतिक विज्ञान

(प्रथम भाग)

[पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान तथा दिल्ली बोर्डों द्वारा
इंटरमीडिएट कक्षाओं के लिए स्वीकृत पाठ्यक्रमानुसार]

लेखक

आर० आर० सेठी एम० ए०, पी० एच० डी०
अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
पंजाब यूनिवर्सिटी (कैम्प) कालेज, नई दिल्ली।

आर० एल० भाटिया एम० ए०
अध्यक्ष, राजनीति विभाग,
डी० ए० वी० कालेज, जालन्धर।

आर० सी० अग्रवाल
एम० ए०, एल० एल० बी०
अध्यक्ष, राजनीति विभाग
द्रोणाचार्य सनातनधर्म कालेज, गुड़गाँव।

Second Edition

Thoroughly revised and brought upto-date

[illegible]
कोठी, [illegible], हैदराबाद ८.

१९५७

एस० चन्द एण्ड कम्पनी

दिल्ली : जालन्धर : लखनऊ

By the Same Authors :

भारतीय संविधान तथा प्रशासन भाग २

एस. चन्द एण्ड कम्पनी
नई दिल्ली : आसफअली रोड
दिल्ली : फव्वारा
लखनऊ : लाल बाग
जालन्धर : माईहीरां गेट

मूल्य ४।।।) मात्र

गौरीशंकर शर्मा, एस० चन्द एण्ड कम्पनी, फव्वारा, दिल्ली, द्वारा प्रकाशित
एवं राकेश प्रेस, अजीज़गंज, दिल्ली में मुद्रित ।

द्वितीय संस्करण की भूमिका

इस पुस्तक को गत वर्ष मई में छपवाया गया था और अब इसका नया संस्करण प्रकाशित हो रहा है। एक वर्ष के भीतर ही २००० प्रतियों का बिक जाना इस पुस्तक की लोकप्रियता का सब से बड़ा प्रमाण है। पाठकों ने हमारी इस तुच्छ कृति का हार्दिक स्वागत किया है, इसके लिए हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

द्वितीय संस्करण को हमने पाठकों के लिए अधिक से अधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है। भाषा अत्यन्त सरल और रोचक रखी गयी है क्योंकि बहुत से राज्यों में अभी हिन्दी का प्रारम्भिक रूप ही है। कठिन विषय को सुगम बनाने का यत्न किया गया है। विद्यार्थियों की परीक्षा-सम्बन्धी आवश्यकताओं को ध्यान में रखा गया है। उद्धरण (Quotations), पारिभाषिक शब्द (Technical words) तथा शीर्षक और उप-शीर्षक (Headings and Sub-headings) हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों में दिये गए हैं ताकि पाठकों को सुविधा रहे। पहले संस्करण में बहुत प्रयत्न करने पर भी कुछ छपाई की अशुद्धियाँ रह गयी थीं, इस संस्करण में उनको दूर करने का महान् प्रयास किया गया है। राज्य पुनर्गठन अधिनियम (States Reorganisation Act) के पास होने से भारत में नये राज्यों की स्थापना के विषय में कुछ लिखा गया है। भारत में दलीय पद्धति (Party System) पर भी कुछ नया प्रकाश डाला गया है और दूसरे आम चुनाव (2nd general elections) के अनुसार लोक सभा और विधान सभाओं में दलीय स्थिति दिखाई गयी है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना (2nd five year plan) और बीमा कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण (Nationalisation of Insurance Companies) तथा अनेक प्रोजेक्टों के बारे में भी कुछ उल्लेख किया गया है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि उन सारे दोषों को दूर करने का यत्न किया गया है जो हमारी दृष्टि में लाए गए। पुस्तक को अधिक से अधिक लाभदायक बनाने का यत्न किया गया है। आशा है कि पाठकों के लिए यह पुस्तक पहले की अपेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध होगी। यदि पाठकों के लिए यह उपयोगी सिद्ध होगी तो हम अपनी इस तुच्छ सेवा को सफल समझेंगे। यदि पाठक इस पुस्तक की किसी त्रुटि की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करेंगे, तो हम उनके अत्यन्त आभारी होंगे और उनको यह विश्वास दिलाते हैं कि उसको अगले संस्करण में दूर करने का यत्न किया जायगा।

१५ अप्रैल, १९५७. —लेखक

प्रथम संस्करण की भूमिका

भारत माता के स्वतन्त्रता-रूपी सिंहासन पर आरूढ़ होने के पश्चात् संविधान का निर्माण हुआ और उसमें लोकतन्त्रात्मक प्रणाली अपनाई गयी। लोकतन्त्र का आधार-स्तम्भ आदर्श नागरिकता है। आज के विद्यार्थी कल के नागरिक होंगे, अतः उनमें सच्ची देश-भक्ति, अनुशासन, भ्रातृभाव तथा विश्व-नागरिकता की भावना उत्पन्न करने के लिए नागरिक शास्त्र का अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पश्चात् हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद से विभूषित किया गया, तब लेखकों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ कि हिन्दी में पुस्तकें लिखी जाएँ। यद्यपि नागरिक शास्त्र की अनेक पुस्तकें हिन्दी में उपलब्ध हैं, तथापि अधिकतर केवल अंग्रेजी पुस्तकों के अनुवाद ही हैं, उनमें पारिभाषिक शब्दों का अशुद्ध रूप से प्रयोग किया गया है और हिन्दी में उत्तर लिखने वाले विद्यार्थियों की वास्तविक आवश्यकताओं का ध्यान नहीं रखा गया। अतः विद्यार्थियों की अनेक कठिनाइयों को दूर करने के लिए हमने हिन्दी में यह पुस्तक लिखी है। यह पुस्तक पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान तथा काश्मीर विश्वविद्यालयों द्वारा इण्टरमीडियेट कक्षा के लिए निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार लिखी गयी है, अतः यह पुस्तक समान रूप से इन विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं में बैठने वाले विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। इस पुस्तक में नागरिक शास्त्र के गहन विषय को सुन्दर और सरल भाषा में समझाने का भरसक प्रयत्न किया गया है। परीक्षार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर सविस्तार दिये गए हैं। उद्धरण (Quotations), उपशीर्षक (Sub-headings) और महत्त्वपूर्ण प्रश्न हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं में दिये गए हैं ताकि मौलिकता (Originality) नष्ट न हो और विद्यार्थी तथा प्राध्यापकों को प्रत्येक विषय की जानकारी में सुगमता रहे। लेखन-पद्धति (Style) अत्यन्त सरल रखी गयी है, प्रत्येक अध्याय के पीछे सारांश दिया गया है तथा पारिभाषिक शब्द (Technical Words) हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रत्येक स्थान पर दिये गए हैं और उनकी एक सूची भी पुस्तक में दी गयी है। पुस्तक के अन्त में भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गए प्रश्नों की सूची दी गयी है। यद्यपि इस पुस्तक में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि छपाई में भाषा-सम्बन्धी अशुद्धियाँ न रहें, तथापि सम्भव है कि पूरे प्रयत्न करने पर भी पहला संस्करण होने के कारण कुछ अशुद्धियाँ रह जाएँ, अतः इसके लिए पाठकों से हम क्षमा चाहते हैं और उनको विश्वास दिलाते हैं कि अगले संस्करण में उनको दूर कर दिया जायेगा। यदि कोई पाठक इस पुस्तक की किसी त्रुटि की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करेंगे, तो हम उनके बहुत कृतज्ञ होंगे। इस पुस्तक के लिखने में हमने अनेक अंग्रेजी तथा हिन्दी की पुस्तकों, विशेषतया लास्की, मनरो, गार्नर, गेटेल और गिलक्राइस्ट इत्यादि की कृतियों से सहायता ली है, हम उनके विशेष आभारी हैं। यदि विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लाभदायक सिद्ध होगी, तो हम अपने प्रयत्न को सफल समझेंगे।

४ जून, १९५६ —लेखक

विषय-सूची (Contents)

अध्याय	विषय	पृष्ठ
पहला अध्याय—नागरिक शास्त्र का अन्य विषयों से सम्बन्ध (Relation of Civics with other Social Sciences)		१-१९
१.	नागरिक शास्त्र का अर्थ, क्षेत्र, तथा उपयोगिता (Definition, Scope and Utility of Civics) ...	१-६
२.	नागरिक शास्त्र विज्ञान है अथवा कला ? (Civics an Art or Science ?) ...	७-८
३.	नागरिक शास्त्र की अध्ययन पद्धतियाँ (The Methods of Civics) ...	९-१०
४.	नागरिक शास्त्र का अन्य शास्त्रों से सम्बन्ध (Relation of Civics to other Social Sciences) ...	१०-१८
दूसरा अध्याय—व्यक्ति तथा समाज (Individual and Society)		२०-३२
१.	समाज का अर्थ (Meaning of Society) ...	२०
२.	मनुष्य स्वभाव और आवश्यकता से एक सामाजिक प्राणी है (Man is by Nature and Necessity a Social animal) ...	२१-२४
३.	समाज का प्रयोजन और समाज में सहयोग का मूल्य (Purpose of Society and Value of Co-operation in Society) ...	२४-२५
४.	समाज और व्यक्ति में सम्बन्ध (Relation between the Individual and the Society) ...	२५-२७
५.	समाज का जन्म और विकास (Origin and Evolution of Society) ...	२७-३१
तीसरा अध्याय—व्यक्ति और समुदाय (Individual and Association) ...		३३-५७
१.	समाज तथा समुदाय में अन्तर (Difference between Society and Association) ...	३३-३४
२.	समुदायों की आवश्यकता एवं उपयोगिता (Necessity and Advantages of Associations) ...	३४-३५
३.	समुदायों का वर्गीकरण (Classificaion of Associations)	३५-४०
४.	भिन्न-भिन्न संघों के प्रति नागरिकों के कर्त्तव्य (Duties of the Citizens to Various Associations) ...	४१-०

अध्याय	विषय	पृष्ठ
	५. परिवार (Family)	... ४१-४८
	६. गाँव, नगर, प्रदेश और देश (Village, Town, Province and Country)	... ४८-५६
चौथा अध्याय—राज्य (State)		... ५८-८२
	१. राज्य की परिभाषा और आवश्यक तत्त्व (Definition and Constituent Elements of State)	... ५८-६२
	२. राज्य तथा सरकार (State and Government)	... ६२-६३
	३. राज्य और समुदाय या संघ में अन्तर (Difference between State and Other Associations)	... ६३-६५
	४. राज्य और समाज में अन्तर (Difference between State and Society)	... ६५
	५. राज्य और राष्ट्र में अन्तर (Difference between State and Nation)	... ६५-६६
	६. राज्य और देश में अन्तर (Difference between Country and State)	... ६६
	७. दैवी सिद्धान्त (Divine Origin Theory)	... ६६-६८
	८. शक्ति का सिद्धान्त (Force Theory)	... ६८-६९
	९. सामाजिक समझौते का सिद्धान्त (Contract Theory)	... ६९-७५
	१०. पैतृक तथा मातृक सिद्धान्त (Patriarchal and Matriarchal Theory)	... ७५-७६
	११. ऐतिहासिक या विकासवादी सिद्धान्त (Historical or Evolutionary Theory)	... ७६-७९
	१२. सावयव सिद्धान्त (Organic Theory)	७९-८१
पाँचवाँ अध्याय—संप्रभुता अथवा सार्वभौमिकता (Sovereignty)		... ८३-९३
	१. सार्वभौमिकता के गुण (Merits of Sovereignty)	... ८४-८५
	२. आस्टिन की परिभाषा (Austin's Theory of Sovereignty)	... ८५-८६
	३. आस्टिन के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Austin's Theory)	... ८६-८८
	४. अन्तर्राष्ट्रीय मत और नैतिकता (International Opinion and Morality)	... ८८
	५. नाम-मात्र की राजसत्ता और यथार्थ राजसत्ता (Nominal and Real Sovereignty)	... ८८-८९
	६. लौकिक प्रभुत्व (Popular Sovereignty)	... ९०
	७. तथ्यतः बनाम विधानतः राजसत्ता (De Facto *VS.* De Jure Sovereignty)	... ९०-९१
	८. बहुत्ववाद (Pluralism)	... ९१-९२

अध्याय	विषय		पृष्ठ
छठा अध्याय—नागरिकता (Citizenship)		...	९४-११०
१.	विदेशी (Aliens) और नागरिक (Citizens)	...	९५-९७
२.	नागरिकता का निर्णय (Acquisition of Citizenship)	...	९७-१०१
३.	भारतीय नागरिकता (Indian Citizenship)	...	१०१-१०३
४.	आदर्श नागरिकता (Good Citizenship)	...	१०३-१०४
५.	एक आदर्श नागरिक के गुण (Qualities of a Good Citizen)	...	१०४-१०८
सातवाँ अध्याय—अधिकार और कर्त्तव्य (Rights and Duties)			१११-१३४
१.	अधिकार की परिभाषा (Definition of Right)	...	१११-११२
२.	अधिकार के आवश्यक तत्त्व (Contents of Rights)	...	११२-११३
३.	अधिकार सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्त (Theories or Doctrines of Rights)	...	११३-११६
४.	अधिकार तथा कर्त्तव्य (Rights imply Duties)	...	११६-११८
५.	अधिकारों के भेद या वर्गीकरण (Classification of Rights)	...	११८-१२१
६.	राजनैतिक अधिकार (Political Rights)	...	१२१-१२२
७.	सामाजिक अधिकार (Social Rights)	...	१२३-१२९
८.	कर्त्तव्य (Duties)	...	१२९-१३०
९.	कर्त्तव्यों का क्षेत्र	...	१३०-१३३
आठवाँ अध्याय—स्वतन्त्रता और समानता (Liberty and Equality)		...	१३५-१४७
१.	स्वतन्त्रता के विभिन्न प्रकार (Different Kinds of Independence)	...	१३६-१३९
२.	कानून तथा स्वतन्त्रता में सम्बन्ध (Relation batween Law and Liberty)	...	१३९-१४१
३.	सार्वभौमिकता तथा स्वतन्त्रता (Sovereignty and Liberty)	...	१४१-१४२
४.	समानता (Equality)	...	१४२
५.	समानता का वर्गीकरण (Kinds of Equality)	...	१४२-१४४
६.	स्वतन्त्रता तथा समानता में सम्बन्ध (Relation between Liberty and Equality)	...	१४४-१४६
नौवाँ अध्याय—कानून, अपराध तथा दण्ड (Law, Crime and Punishment)		...	१४८-१६६
१.	कानूनों का वर्गीकरण (Classification of Laws)	...	१४९-१५१
२.	कानूनों के स्रोत (Sources of Law)	...	१५१-१५२

अध्याय	विषय	पृष्ठ
३.	कानून और आचार-शास्त्र का सम्बन्ध (Relation between Law and Morality) ...	१५२-१५४
४.	प्राकृत और राज्यकृत कानूनों में अन्तर (Difference between Natural and State Laws) ...	१५४-१५५
५.	अच्छे और बुरे कानून की पहचान (Distinction between Good and Bad Laws) ...	१५५-१५६
६.	क्या नागरिक कानूनों की अवहेलना कर सकता है ? (Can the Citizen Disobey the Laws) ...	१५६
७.	अपराध तथा दण्ड (Crime and Punishment) ...	१५७
८.	अपराध और पाप में अन्तर (Difference between Crime and Sin) ...	१५७-१५८
९.	अपराध के कारण (Causes of the Crime) ...	१५८-१५९
१०.	दण्ड के मुख्य सिद्धान्त (Theories of Punishment)	१५९-१६३
११.	राज्य के द्वारा दण्ड का औचित्य और अनेक प्रकार के दण्ड	१६४-१६५
दसवाँ अध्याय—शिक्षा का अर्थ और उद्देश्य (Meaning and Aim of Education) ...		१६७-१७९
१.	महत्त्व (Importance of Education) ...	१६७
२.	प्रारम्भिक शिक्षा (Primary Education) ...	१६८-१६९
३.	माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education) ...	१६९
४.	उच्च शिक्षा (University Education) ...	१६९-१७०
५.	उच्च शिक्षा में दोष तथा सुधार के उपाय (Defects in the University Education and how to remove them) ...	१७१-१७२
६.	वर्धा योजना (Wardha Scheme of Education or Basic Education) ...	१७३-१७४
७.	व्यावसायिक तथा प्रौद्योगिक शिक्षा (Vocational and Technical Education) ...	१७४
८.	शिक्षा पर राज्य के नियन्त्रण की समस्या (How far the State should Control Education)	१७४-१७६
९.	भारत की शिक्षा-प्रणाली में दोष (Defects in the Present Educational System)	१७६-१७७
१०.	शिक्षा सुधार के उपाय (How to remove the Defects in the Educational System) ...	१७७-१७९
ग्यारहवाँ अध्याय—जाति, सम्पत्ति और धर्म (Caste, Property and Religion) ...		१८०-१९४
१.	जातपात की उत्पत्ति ...	१८०-१८२

अध्याय	विषय		पृष्ठ
	२. वर्ण-व्यवस्था के लाभ	...	१८२-१८३
	३. वर्ण-व्यवस्था से हानियाँ	...	१८३-१८५
	४. सम्पत्ति (Property)	...	१८५-१८९
	५. धर्म (Religion)	...	१८९-१९२
	६. मज़हब और राज्य (State and Religion)	...	१९२-१९३
बारहवाँ अध्याय—अवकाश तथा आमोद-प्रमोद	(Leisure and Recreation)	...	१९५-२०२
	१. अवकाश का अर्थ और महत्त्व (Meaning and Importance of Leisure)	...	१९५-१९६
	२. अवकाश का महत्त्व तथा उपयोगिता	...	१९६-१९७
	३. अवकाश-यापन की विधियाँ (How should Leisure be Used)	...	१९७-१९९
	४. खेल कूद का महत्त्व (The Importance of Games and Sports in the life of Citizen)	...	१९९-२००
	५. आमोद-प्रमोद अथवा मनोरञ्जन (Recreation)	...	२००-२०१
तेरहवाँ अध्याय—राज्य का उद्देश्य और कार्य	((Purpose and Functions of State)	...	२०३-२२६
	१. राज्य का उद्देश्य (End or Purpose of the State)	...	२०३-२०४
	२. व्यक्तिवाद (Individualism)	...	२०५-२०७
	३. समाजवाद (Socialism)	...	२०७-२१०
	४. गाँधीवाद (Gandhism)	...	२१०-२१२
	५. कल्याण-राज्य का सिद्धान्त (The Modern Theory of Welfare State)	...	२१२-२१३
	६. आधुनिक राज्यों के कर्त्तव्यों का वर्गीकरण (Classification of Functions of Modern State)	...	२१३-२१७
	७. राज्य द्वारा जो काम नहीं होने चाहिएँ (Functions which should not be performed by State)	...	२१७
	८. सामाजिक सेवाएं (Social Services)	...	२१७-२२२
	९. राज्य और उद्योग-धन्धे (State and Industries)	...	२२२-२२४
	१०. राज्य और व्यापार-वाणिज्य (State and Trade-Commerce)	...	२२४
	११. राज्य तथा कृषि (State and Agriculture)	...	२२४-२२५
चौदहवाँ अध्याय—सरकार और उसके अंग	(The Government and its Organs)	...	२२७-२६३
	१. व्यवस्थापिका या विधान-मण्डल के कार्य (Functions of Legislature)	...	२२७-२२९

अध्याय	विषय	पृष्ठ
२.	व्यवस्थापिका की बनावट (Organization of Legislature) ...	२३०
३.	दो सदनों के पक्ष में तर्क (Arguments in Favour of Second Chamber) ...	२३०-२३४
४.	कार्यकारिणी अथवा कार्यपालिका (Executive) ...	२३५
५.	कार्यकारिणी के रूप (Types of the Executive) ...	२३५-२३६
६.	कार्यकारिणी के कार्य (Functions of the Executive)	२३६-२३८
७.	न्यायपालिका (Judiciary) ...	२३८
८.	न्यायपालिका के कार्य (Functions of Judiciary)	२३९-२४०
९.	न्यायपालिका की स्वतन्त्रता (How the Judiciary can be made Independent)	२४०-२४३
१०.	शक्तियों के पृथक्करण या विभाजन का सिद्धान्त (Theory of Separation of Powers) ...	२४३-२४६
११.	आलोचना (Criticism of the Theory of Separation) ...	२४६-२४९
पन्द्रहवाँ अध्याय—सरकार तथा उसके विविध रूप		
	(Forms of Government) ...	२५०-२८७
१.	राजतन्त्र (Monarchy) ...	२५३-२५४
२.	लाभ (Advantages) ...	२५४-२५५
३.	हानियाँ (Disadvantages) ...	२५५
४.	कुलीनतन्त्र (Aristocracy) ...	२५५-२५६
५.	कुलीनतन्त्र के गुण (Merits of Aristocracy) ...	२५६
६.	कुलीनतन्त्र के दोष (Demerits of Aristocracy) ...	२५६
७.	लोकतन्त्र (Democracy) ...	२५७
८.	प्रजातन्त्र शासन और स्वतन्त्रता एवं समानता का सिद्धान्त (Economic and Social Democracy) ...	२५७-२५८
९.	लोकतन्त्र के गुण (Merits of Democracy) ...	२५९-२६१
१०.	लोकतन्त्र के दोष (Demerits of Democracy) ...	२६१-२६५
११.	लोकतन्त्र को सफल बनाने के लिए आवश्यक बातें (Conditions Necessary for the Success of Democracy) ...	२६५-२६६
१२.	भारत और लोकतन्त्र (India and Democracy) ...	२६६
१३.	तानाशाही या अधिनायकतन्त्र (Dictatorship) ...	२६७-२६९
१४.	तानाशाही के गुण और दोष (Merits and Demerits of Dictatorship) ...	२६९
१५.	आधुनिक सरकारों के स्वरूप : एकात्मक तथा संघात्मक (Unitary and Federal Government) ...	२६९-२७०

अध्याय	विषय		पृष्ठ
१६.	एकात्मक शासन के गुण (Merits of Unitary Government)	...	२७०-२७१
१७.	एकात्मक शासन के दोष (Demerits of Unitary System of Government)	...	२७१-२७२
१८.	संघात्मक सरकार (Federal Government)	...	२७२-२७३
१९.	संघात्मक सरकार के गुण (Merits of Federal Government)	...	२७४-२७५
२०.	संघात्मक शासन के दोष (Demerits of Federal Form of Government)	...	२७५-२७७
२१.	सांसद तथा अध्यक्षात्मक शासन-पद्धतियाँ (Parliamentary and Presidential Governments)	...	२७७
२२.	सांसद सरकार के मुख्य लक्षण (Main Features of Parliamentary Government)	...	२७७-२७८
२३.	संसदात्मक पद्धति के गुण (Merits of Parliamentary Government)	...	२७९-२८०
२४.	संसदात्मक पद्धति के दोष (Demerits of Parliamentary Government)	...	२८०
२५.	अध्यक्षात्मक पद्धति (Presidential System of Government)	...	२८०-२८१
२६.	इस प्रणाली के गुण (Merits of Presidential System of Government)	...	२८१-२८२
२७.	अध्यक्षात्मक शासन के दोष (Demerits of Presidential System of Government)	...	२८२-२८६
सोलहवाँ अध्याय—राज्य का संविधान (Constitution of the State)			२८८-२९७
१.	संविधान का वर्गीकरण (Classification of the Constitution)	...	२८९-२९३
२.	कठोर और लचीले सविधान (Rigid and Flexible Constitutions)	...	२९३-२९४
३.	कठोर संविधान के गुण और दोष (Merits and Demerits of Rigid Constitutions)	...	२९४
४.	लचीले संविधान के गुण-दोष (Merits and Demerits of Flexible Constitutions)	...	२९४-२९६
सत्रहवाँ अध्याय—जनमत (Public Opinion)		...	२९८-३०९
१.	जनमत के निर्माण में रुकावटें (Hindrances to the Creation of Sound Public Opinion)	...	३००-३०१
२.	सही जनमत के लिए आवश्यक शर्तें (Conditions for the Expression and Formulation of Sound Public Opinion)	...	३०१-३०२

अध्याय	विषय	पृष्ठ
	३. जनमत बनाने और व्यक्त करने के साधन (Agencies for the Formulation and Expression of Public Opinion) ...	३०२-३०५
	४. पत्रकारिता का महत्त्व (Importance of the Press) ...	३०५-३०७
	५. रेडियो का महत्त्व (Importance of Radio and Broadcasting) ...	३०७
	६. प्रचार और अफवाह (Propaganda and Rumour) ...	३०७-३०८
अठारहवाँ अध्याय—राजनैतिक दल (Political Parties) ...		३१०-३२६
	१. राजनैतिक दलों का महत्त्व (Importance of Political Parties) ...	३१०-३१२
	२. राजनैतिक दलों के निर्माण के आधार (Bases for the Formation of Political Parties) ...	३१२-३१३
	३. राजनैतिक दलों के लाभ (Advantages of Party System) ...	३१३-३१६
	४. द्विदलीय पद्धति के गुण (Merits of Bi-Party or Two-Party System) ...	३१६-३१८
	५. द्विदलीय पद्धति में दोष (Defects in Two-Party System) ...	३१८
	६. बहुदलीय पद्धति के गुण (Merits of Multiple Party-System) ...	३१८-३१९
	७. बहुदलीय पद्धति में दोष (Defects in the Multiple Party-System) ...	३१९-३२०
	८. एक-दलीय पद्धति (Single Party System) ...	३२०-३२३
	९. दूसरे आम चुनावों में विभिन्न दलों की स्थिति ...	३२३-३२५
उन्नीसवाँ अध्याय—निर्वाचक मण्डल (The Electorate) ...		३२७-३४१
	१. मताधिकार और निर्वाचन-प्रणाली (Franchise and Election) ...	३२७
	२. सर्वमताधिकार (Universal Franchise) ...	३२७-३२८
	३. वयस्क मताधिकार के पक्ष में तर्क (Arguments in Favour of Adult Franchise) ...	३२८-३२९
	४. वयस्क मताधिकार की हानियाँ (Disadvantages of Adult Franchise) ...	३२९
	५. सम्पत्ति की योग्यता पर निर्धारित मताधिकार (Franchise Based on Property Qualifications) ...	३२९-३३०

पहला अध्याय

नागरिक शास्त्र का अन्य विषयों से सम्बन्ध

"मनुष्य स्वभाव और आवश्यकता से एक सामाजिक प्राणी है।"

—अरस्तू

I. नागरिक शास्त्र का अर्थ, क्षेत्र तथा उपयोगिता

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में ही सदा से रहता आया है। समाज में ही वह जन्म लेता है, समाज में ही उसका पालन-पोषण होता है और समाज में ही उसकी उन्नति होती है। उसकी अनेक प्रकार की आवश्यकताएँ समाज से अलग रह कर पूरी नही हो सकतीं। जैसे मछली तालाब से अलग रह कर अपने जीवन को सुरक्षित नहीं रख सकती वैसे ही मनुष्य समाज से अलग रह कर न ही तो अपने आप को प्रसन्न रख सकता है और न ही अपनी किसी क्षेत्र में किसी प्रकार की ठीक रूप से उन्नति कर सकता है। घर, गाँव, स्कूल, कारखाने तथा कालेज में वह एक दूसरे से मिलकर रहता है। मनुष्य तथा समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनुष्य अपनी भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनेक प्रकार के गुट बनाता है। अनेक प्रकार से वह अपने आपको संगठित करता है। मनुष्य घर, गाँव, राज्य तथा विश्व का सदस्य है। नागरिक शास्त्र हमें समाज में अपने कर्तव्यों और अधिकारों का ज्ञान कराता है तथा आपस के कलह और झगड़ों को दूर करके एक दूसरे से प्रेम करना सिखाता है।

नागरिक शास्त्र की परिभाषा (Definition of Civics)

सिविक्स शब्द की उत्पत्ति—नागरिक शास्त्र को अंग्रेज़ी में "Civics" कहते हैं। यह अंग्रेज़ी भाषा का अपना शब्द नहीं है। इसकी उत्पत्ति लैटिन भाषा के दो शब्दों सिविस (civis) तथा सिविटास (civitas) से हुई। लैटिन भाषा में सिविस का अर्थ है नागरिक और सिविटास का अर्थ है नगर-राज्य (City States)। प्राचीन काल में सभ्यता यूरोप के सारे देशों में नहीं फैली हुई थी, अपितु वह यूनान तथा इटली के कुछ भागों तक ही सीमित थी। इटली में रोम एक नगर-राज्य था तथा यूनान में भी छोटे-छोटे नगर-राज्य थे। नगर-राज्यों में आस-पास के गाँव भी सम्मिलित थे। उन नगर-राज्यों की आबादी आजकल के बड़े-बड़े नगरों से प्रायः कम थी। उस समय के नगर-राज्य स्वतन्त्र तो थे ही, साथ ही साथ वे सामाजिक और राजनैतिक जीवन के केन्द्र भी थे। नगर-राज्यों के राजनैतिक और सामाजिक जीवन से सम्बन्धित होने के कारण ही इस विषय का नाम सिविक्स पड़ा। उस समय के राज्य तथा समाज के प्रति मनुष्य के अधिकारों तथा कर्तव्यों का ज्ञान भी इस शब्द से

होता है। इस भाँति उस युग में नागरिक शास्त्र का क्षेत्र नगर-राज्य तक ही सीमित था।

नागरिक का शाब्दिक अर्थ नगर का निवासी है परन्तु यहाँ पर यह शब्द इस अर्थ में प्रतुक्त नहीं हुआ है। इसका अर्थ यहाँ पर राज्य की सदस्यता से है। समाज की सदस्यता का अर्थ कर्तव्य तथा अधिकारों से है। हमारे देश में प्रत्येक नर-नारी को जिसे सामाजिक तथा राजनैतिक अधिकार प्राप्त हैं और जिसकी आयु २१ वर्ष की है, नागरिक कहते हैं।

कुछ लेखकों एवं विचारकों की परिभाषाएँ नीचे दी जाती हैं—

(१) एफ० जी० गोल्ड (F. G. Gould) के अनुसार "नागरिक शास्त्र उन संस्थाओं, आदतों, कार्यों और व्यक्तियों का अध्ययन है जिनके द्वारा कोई मनुष्य या स्त्री अपने कर्तव्यों की पूर्ति कर सके और राजनैतिक सम्प्रदाय के सदस्य होने के लाभ प्राप्त कर सके।"[१]

(२) डाक्टर ई० एम० ह्वाइट (Dr. E. M. White) के अनुसार "नागरिक शास्त्र मानव-ज्ञान की वह शाखा है जो नागरिकों से सम्बन्धित समस्त विषयों (सामाजिक, बौद्धिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक) का विचार करती है। इसके साथ ही साथ वह नागरिकता के अतीत, भविष्य और वर्तमान, स्थानीय, राष्ट्रीय एवं विश्व-व्यापी पहलुओं का भी विश्लेषण करती है।"[२]

(३) प्रसिद्ध भारतीय लेखक पुन्ताम्बेकर का कथन है कि नागरिक शास्त्र नागरिकता का विज्ञान और दर्शन है।"[३]

(४) एक अन्य लेखक का यह विचार है कि "नागरिक शास्त्र वह विज्ञान है जो श्रेष्ठतम सामाजिक जीवन की दशाओं का अध्ययन करता है।"[४]

(५) पेट्रिक गेडस और मावेल हिल के कथनानुसार "नागरिक शास्त्र वह विज्ञान है जो नगर के जीवन और उसकी समस्याओं का अध्ययन करता है। इस अध्ययन के अन्तर्गत नगर के केन्द्र और प्रान्त के साथ के सम्बन्ध भी सम्मिलित हैं।"[५]

(६) एक अन्य लेखक ने नागरिक शास्त्र की व्याख्या इस भाँति की है—"नागरिक शास्त्र वह विद्या है जो हमें अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान कराती है।"[६]

---

1. "Civics is the study of institutions, habits, activities and spirit by means of which a man or a woman may fulfil the duties and receive the benefits of membership of a political community"—*F. G. Gould.*

2. "Civics is that more or less useful branch of human knowledge which deals with every thing (social, intellectual economic, political and even religious aspects) relating to a citizen; past, present and future, local, national and human."
—*E. M. White.*

3. "Civics is the science and philosophy of citizenship."—*Puntambekar.*

4. Civics is the science which studies the conditions of best possible social life.

5. Civics is the science of rights and duties of man.

(c) नागरिक शास्त्र का क्षेत्र (Scope of Civics)

1. Civics not only studies the village and country but also the world.

(१) नागरिक शास्त्र न केवल गाँव तथा देश बल्कि विश्व का अध्ययन करता है—जब तक मनुष्य जंगली था, उसे किसी राजनैतिक संगठन की आवश्यकता न थी। उसे नागरिक शास्त्र का मूल्य ज्ञात न था। जंगली अवस्था के पश्चात् सामाजिक जीवन का आरम्भ हुआ। उसे सामाजिक नियम बनाने पड़े। यहीं से नागरिक शास्त्र का आरम्भ हुआ। पहले-पहल थोड़े से सामाजिक नियम बने। इसकी जानकारी को समाज-विद्या कहा जाने लगा। जब इस विद्या का भण्डार कुछ फैल गया, तो यही नागरिक शास्त्र कहलाने लगा। इस शास्त्र का विस्तार सामाजिक व नागरिक जीवन की उन्नति पर निर्भर है। प्राचीन काल में नागरिक शास्त्र का क्षेत्र केवल मनुष्य के नागरिक जीवन की समस्याओं के अध्ययन तक ही सीमित था किन्तु आजकल नागरिक शास्त्र के अन्दर घर, गाँव, नगर, देश और सम्पूर्ण विश्व के सामाजिक जीवन का अध्ययन सम्मिलित है। यातायात की सुविधाओं और विज्ञान के आविष्कारों ने संसार को एक कर दिया है।

2. Civics studies the past, present and future problems of the citizen.

नागरिक शास्त्र नागरिक की भूत, वर्तमान और भविष्य की समस्याओं का अध्ययन करता है—ह्वाइट का कथन है कि नागरिक शास्त्र नागरिकता से सम्बन्ध रखने वाली भूतकालिक, वर्तमान तथा भविष्यकालिक और स्थानीय, राष्ट्रीय तथा समस्त संसार-सम्बन्धी सब वस्तुओं का विमर्श करता है। नागरिक शास्त्र आजकल मनुष्य के केवल नागरिक जीवन का ही अध्ययन नहीं करता, बल्कि उसके वर्तमान सामाजिक जीवन का भी अध्ययन करता है। उदाहरणार्थ, नागरिक शास्त्र विवाह-पद्धति, शिक्षा, सम्पत्ति, दण्ड, कानून, शासन-संगठन इत्यादि सारी संस्थाओं का अध्ययन करता है। आधुनिक रीति-रिवाजों, संस्थाओं और शासन तथा विधान को जानने के लिए भूतकाल में इनके प्रारम्भ का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि हम यह जानना चाहते हैं कि इंग्लैंड में प्रजातन्त्र की प्रगति कैसे हुई तो इसके लिए वहाँ के भूतकाल पर दृष्टिपात करना पड़ेगा। आजकल का सामाजिक जीवन हमको भूतकाल की देन है। नागरिक शास्त्र हमारे सम्मुख कुछ आदर्श रखता है जिनके अनुसार भविष्य में सामाजिक जीवन ढाला जा सकता है। नागरिक शास्त्र समाज का वह निरीक्षण है जो समाज-सेवा में लगाया जाता है।[2] दूसरे शब्दों में इसका क्षेत्र सभ्यता और नागरिकता के समान विस्तृत और उनका सहगामी है।[3]

3. Civics gives us knowledge about the rights and duties.

नागरिक शास्त्र से अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान होता है—कर्तव्यों की कोई सीमा नहीं. अतः नागरिक शास्त्र का क्षेत्र अनन्त है—प्रजातन्त्र को सुरक्षित

2. "Civics is a social survey applied to social service."—*Ward.*
3. "Civics is co-extensive with civilization and citizenship."—*F. J. Gould.*

रखने के लिए नागरिकों को अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों के बारे में सचेत रहना अत्यन्त आवश्यक है। जो मनुष्य अपने अधिकारों की चिन्ता नहीं करते, सरकार उनके हितों की ओर शीघ्र ही उदासीन हो जाती है। जब मनुष्य के कर्तव्यों की कोई सीमा नहीं तो नागरिक शास्त्र का क्षेत्र भी अपार और अनन्त समझना चाहिए।

(४) नागरिक शास्त्र व्यक्ति, समाज, राज्य और सरकार का अध्ययन करता है—नागरिक शास्त्र व्यक्ति, समाज, राज्य, सरकार और सब समुदायों का अध्ययन करता है। मनुष्य अपनी भलाई के लिए अनेक प्रकार के समुदायों का निर्माण करता है। इसके अतिरिक्त नागरिक शास्त्र नगर-सम्बन्धी, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय नागरिकता का विज्ञान है, जिसमें स्थानीयता का विशेष महत्त्व है। इसमें तमाम प्रभाव, परिस्थितियाँ, विचारधाराएँ, प्राचीन तथा अर्वाचीन, जिनका प्रभाव सामाजिक जीवन पर पड़ता है, सम्मिलित हैं। इसके क्षेत्र में प्राचीन काल में सभ्यता की उन्नति, संस्थाओं की बढ़ोतरी, समुदायों तथा गुटों की समृद्धि, उनके काम करने का तरीका, उनके दोष तथा भविष्य में उनके उन्नत होने की सम्भावना निहित है।[1]

(d) उपयोगिता (Advantages of Utility)

(*i*) Duties and Rights.

अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान—नागरिक शास्त्र हमको समाज के प्रति अपने अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान कराता है। जब तक नागरिकों को अपने कर्तव्यों का ज्ञान न हो तब तक वे कर्तव्य-परायण नहीं बन सकते। नागरिक शास्त्र देश-भक्ति तथा निःस्वार्थता का पाठ पढ़ाता है। नागरिक शास्त्र भिन्न-भिन्न समुदायों के प्रति हमारे कर्तव्य बतलाता है। प्रजातन्त्र की नींव जनता की कर्तव्यपरायणता पर निर्भर है। प्रजातन्त्र जनता का ही शासन है। जहाँ जनता अपनी ज़िम्मेवारी नहीं निभाती, वहाँ पर प्रजातन्त्र सफल नहीं हो सकता। अतः नागरिक शास्त्र का विशेष महत्त्व है। नागरिक शास्त्र हमें अपने अधिकारों का भी ठीक रूप से ज्ञान कराता है। जहाँ पर जनता अपने कर्तव्यों के बारे में सचेत नहीं रहती, वहाँ सरकार उनके हितों की ओर उदासीन हो जाती है। अतः नागरिक शास्त्र नागरिक को अपने गाँव, देश, तथा संसार की ओर कर्तव्यपरायणता का पाठ देता है। यह नागरिक को शिक्षा देता है कि उसे सारे कर (taxes) सरकार को देने चाहिएँ।

(*ii*) It teaches the ideal of world citizenship and patriotism.

सद्गुणों का विकास करके यह आदर्श नागरिकता का पाठ पढ़ाता है जिस पर विश्व नागरिकता अवलम्बित है। यह सच्ची देश-भक्ति की शिक्षा भी देता है—

1. "Civics is a science of municipal, national and international citizenship, with particular reference to the neighbourhood. It covers all influences, conditions and currents, past and present, which affect social life. It must include within its scope the march of civilization in the past, the growth of various institutions, associations and organisations, the manner of their functioning, their defects and their possibilities for the future."—*Bhandari*, 'Fundamentals of Civics'.

नागरिक शास्त्र मनुष्य को यह समझाने का यत्न करता है कि वह न केवल अपने कुटुम्ब, जाति तथा राष्ट्र का सदस्य है वरन् अखिल संसार का नागरिक है। यह विज्ञान मनुष्य में प्रेम, सद्भावना, सहानुभूति, सेवा, त्याग, सहयोग, सत्य, अहिंसा तथा बन्धुत्व की भावना उत्पन्न करता है। वास्तव में यह शास्त्र उन गुणों का ज्ञान कराता है जिन पर आदर्श नागरिकता का आधार है। यह शास्त्र जाति, प्रान्त तथा छुआछूत की विषमता को दूर करके हमको अनन्त देश-भक्ति का अमर पाठ देता है तथा 'जियो तथा जीने दो' (Live and let Live) के दिव्य सिद्धान्त का मीठा स्वर हमारे कान में डालता है। हमारा सब से बड़ा कर्तव्य संसार की ओर है और हमें सारे जगत् को एक कुटुम्ब (family) के समान समझना चाहिए तथा किसी देश पर सर्वप्रथम आक्रमण नहीं करना चाहिए बल्कि केवल दूसरे देश के आक्रमण होने पर आत्म-रक्षा करनी चाहिए ऐसा अमर संदेश हमको केवल नागरिक शास्त्र द्वारा ही प्राप्त होता है। नागरिक शास्त्र का ज्ञान, कुछ हद तक राष्ट्रों के आपस की कलह तथा झगड़ों को दूर करने में भी सहायक सिद्ध होता है। नागरिक शास्त्र हमें बतलाता है कि यथार्थ में प्रत्येक मनुष्य का हित एक ही है। प्रसिद्ध अंग्रेज़ दार्शनिक टी० एच० ग्रीन का कथन है कि सामाजिक हित ही प्रत्येक व्यक्ति का यथार्थ हित (real good) है। यह हमको अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों का दिग्दर्शन कराके आदर्श नागरिकता का पाठ देता है।

(iii) It gives him knowledge about various associations.

विभिन्न समुदायों का ज्ञान कराता है—समाज में अनेक प्रकार के आर्थिक, धार्मिक तथा राजनैतिक समुदाय (associations) विद्यमान हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व (individuality) का पूर्णरूप से विकास नहीं हो सकता है यदि उन से वह किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध न रखे। उदाहरणार्थ, कुटुम्ब तथा राज्य मनुष्य के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं क्योंकि इनके बिना मनुष्य का गुज़ारा नहीं चल सकता। नागरिक शास्त्र हमारा इन समुदायों के प्रति कर्तव्य तथा अधिकार निर्धारित करता है।

(iv) It teaches us the aim and organisation of Govt. and also gives knowledge about the origin of the State.

राज्य की उत्पत्ति, देश तथा सरकार के संगठन, उद्देश्य और कार्य-प्रणाली का ज्ञान—नागरिक शास्त्र हमको राज्य की उत्पत्ति (origin) के विषय में तथा आधुनिक राष्ट्रों की सरकारों के संगठन तथा उद्देश्यों का विशेष रूप से ज्ञान कराता है। उन देशों के संविधानों का ज्ञान भी नागरिक शास्त्र द्वारा ही होता है। इसके अतिरिक्त नागरिक शास्त्र से हमें सरकार के विभिन्न अंगों, उनके आपस के सम्बन्धों तथा कार्यों का विशेष पता चलता है तथा हमको अपने कर्तव्यों का उनके प्रति ज्ञान होता है।

(v) For Democracy.

जनतन्त्रात्मक शासन को सफल बनाने के लिए भी आवश्यक—लोकतन्त्र (democracy) को अधिक सफल बनाने के लिए जनता को नागरिक शास्त्र का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। लोकतन्त्र का पौधा तब तक फल नहीं देगा जब तक जनता

अपने कर्तव्यों का भली प्रकार पालन न करे। लोकतन्त्र (democracy) में सारी शक्ति लोगों के हाथ में रहती है। उन्हीं पर अच्छे प्रतिनिधि (representatives) चुनने की जिम्मेवारी है। यदि योग्य व्यक्तियों के हाथ में राज्य की शक्ति न होगी तो उसका दुरुपयोग होगा और जनता की भलाई न हो सकेगी। ब्राइस का कथन है कि प्रजातन्त्र-शासन तभी सफल हो सकता है जब कि साधारण मनुष्य भी सरकार के कामों को समझे तथा उसकी आलोचना करने की योग्यता रखे।

(vi) Importance of Civics for Indians in general as it provides a training in citizenship.

भारतीयों के लिए इसका विशेष महत्त्व है क्योंकि यह आदर्श नागरिकता का पाठ देता है तथा स्वास्थ्य के नियमों का पालन भी सिखाता है—भारतीयों के लिए इस शास्त्र का विशेष महत्त्व है क्योंकि लगभग एक हजार वर्ष की दासता की शृंखलाओं को तोड़ कर हमारी मातृभूमि पुनः स्वतन्त्रता के सिंहासन पर विराजमान हुई है। भारत में सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न गणराज्य (Sovereign Democratic Republic) की स्थापना हो गई है। संविधान (constitution) में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक समता प्रदान कर दी गई है परन्तु वास्तविकता में अभी बहुत सी बातें नहीं आई हैं। आज भी हमारे समाज में छुआछूत का रिवाज, बाल-विवाह की प्रथा, स्त्रियों की पिछड़ी हुई अवस्था, साम्प्रदायिकता, वर्ण-व्यवस्था आदि देखने में आती है। प्रान्तीय भावनाओं (provincialism) का जोर है। स्वार्थ का नग्न नृत्य है, न्याय तथा सदाचार का गला घोटा जा रहा है। गरीबी तथा बीमारी का बोलबाला है। अतः हमारा देश उच्चता को तब तक नहीं प्राप्त हो सकता जब तक हम इन शत्रुओं का नाश न कर दें और आदर्श नागरिकता का कवच न धारण कर लें। लोकतन्त्र की सफलता जनता की राजनैतिक जाग्रति, देश-भक्ति तथा कर्तव्य-परायणता पर ही निर्भर है। इसके अतिरिक्त यह सफाई तथा स्वास्थ्य के नियमों की भी शिक्षा देता है।

(vii) Importance for Students.

विद्यार्थियों के लिए इसका विशेष महत्त्व है क्योंकि उनमें लोक-भावना उत्पन्न करता है—विद्यार्थियों के लिए इसका विशेष महत्त्व है क्योंकि वे भारत के भावी नाविक हैं। उनके कन्धों पर देश के नेतृत्व का बोझ पड़ने वाला है। नागरिक शास्त्र का सब से अधिक महत्त्व इसलिए है कि यह उनमें लोक-भावना (public-spiritedness) उत्पन्न करता है और उनके विचार बड़े तथा उदार बना देता है (Civics broadens and liberalizes their minds), अतः प्रोफैसर गैडीस ने ठीक ही कहा है कि सामाजिक पर्यवेक्षण के परिणामों को लोक-सेवा में लगाना ही नागरिक शास्त्र का अध्ययन है (Civics is the application of social survey to social service)। आने वाले समय में विद्यार्थी म्युनिसिपल बोर्ड, मन्त्रिमण्डल, विधान सभा इत्यादि संस्थाओं के चालक होंगे अतः उनको शासन की पेचीदगियों से भली प्रकार परिचित होना चाहिए और देश-भक्ति तथा भ्रातृ-प्रेम का अमर पाठ हृदय में धारण कर लेना चाहिए।

II. नागरिक शास्त्र विज्ञान है अथवा कला ?

नागरिक शास्त्र विज्ञान है ।

इस विषय पर कि नागरिक शास्त्र विज्ञान है अथवा कला, मतभेद है । कुछ विद्वानों का कहना है कि नागरिक शास्त्र एक विज्ञान नहीं है । उनके कथनानुसार नागरिक शास्त्र में भौतिक शास्त्र (Physics) या रसायन शास्त्र (Chemistry) की तरह निश्चित तथा स्थिर सिद्धान्त नहीं पाये जाते । उदाहरणार्थ, भौतिक और रसायन शास्त्र के ये सिद्धान्त अटल हैं कि दो भाग हाइड्रोजन के और एक भाग ऑक्सीजन का मिलाने से पानी बन जाता है । यह नियम प्रत्येक समय तथा स्थान पर एक जैसा लागू होगा । इसी प्रकार से यह नियम अटल है कि ठोस चीजें गरमी से फैलती हैं और सरदी से सिकुड़ती हैं । दूसरा इसी प्रकार का भौतिक तथा रसायन शास्त्र (Physics and Chemistry) का अटल सिद्धान्त यह है कि कोई भी ठोस पदार्थ यदि ऊपर की ओर उछाला जाए तो वह सहसा पृथ्वी पर आ गिरेगा । इस आकर्षण के सिद्धान्त को विज्ञान-वेत्ता न्यूटन (Newton) ने ढूँढ़ा था ।

किसी शास्त्र का वैज्ञानिक होना इस पर निर्भर नहीं है कि उसके सिद्धान्त प्रत्येक स्थान तथा समय पर अटल हैं या नहीं । गार्नर के मतानुसार "विज्ञान वह क्रमबद्ध ज्ञान है जो उचित प्रकार के निरीक्षण, प्रयोग, अध्ययन तथा वर्गीकरण द्वारा प्राप्त हुआ हो ।"[1]

नागरिक शास्त्र में यद्यपि भौतिक और रसायन शास्त्रों जैसे अटल नियम नहीं मिल सकते, तथापि यह विज्ञान है क्योंकि यह क्रमबद्ध ज्ञान है जो उचित प्रकार के निरीक्षण, प्रयोग, अध्ययन तथा वर्गीकरण द्वारा प्राप्त हुआ है ।—नागरिक शास्त्र इस दृष्टि से विज्ञान है कि उसकी एक निश्चित शास्त्रीय अध्ययन-पद्धति है और उसमें ऐसे सिद्धान्तों की खोज की जाती है जिन पर चल कर मनुष्य एक आदर्श नागरिक जीवन व्यतीत कर सके, तथा समाज में चिरकालीन शान्ति और आनन्द-मंगल का वातावरण उत्पन्न कर सके । यह सत्य है कि नागरिक शास्त्र के नियम सर्वथा अटल नहीं हैं तथापि भौतिक शास्त्रों में भी ऐसे विज्ञान हैं जिनके नियम निश्चित नहीं हैं और फिर भी उनकी वैज्ञानिकता के विषय में किसी प्रकार का कोई भी सन्देह नहीं किया जा सकता । उदाहरणार्थ, ऋतुशास्त्र (Meteorology) निस्सन्देह एक विज्ञान है तथापि कई बार ऋतुओं के सम्बन्ध में इसकी भविष्य-वाणी ठीक नहीं निकलती । प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान् लार्ड ब्राइस ने राजनीति शास्त्र के विषय में कहा था कि यह उसी प्रकार का शास्त्र है जैसा कि ऋतु शास्त्र ।[2]

---

1. "Science is a knowledge relating to a particular subject acquired by a systematic observation, experience or study which have been co-ordinated, systematized and classified."—*Garner.*

2. According to Bryce "Politics is a science in the sense that there is a constancy and uniformity in the tendencies of human nature which enables us to regard the acts of men at one time as due to the same causes which have governed their acts at previous times. Acts can be grouped and connected, can be arranged and studied as being the results of the same generally operative tendencies."

यदि ऋतु शास्त्र का अनुमान कई बार ठीक न निकलने पर भी विज्ञान शास्त्र है तो कोई कारण नहीं कि नागरिक शास्त्र जिसका विषय ऋतु शास्त्र से भी जटिल है विज्ञान न माना जाय।

मनुष्य का स्वभाव भिन्न-भिन्न कालों और स्थानों तथा वातावरणों में अलग-अलग रहता है। इसी कारण से सामाजिक शास्त्र के नियम और सिद्धान्त साधारणतया अटल नहीं हो सकते। उदाहरण के रूप में यह सर्वमान्य है कि प्रजातन्त्रवाद में जनता का ही शासन होता है तथापि कितने ही जनतन्त्रात्मक (democratic) देश ऐसे हैं जिनमें जनता अत्यन्त दुःखी है। यह कहा जाता है कि असमता (inequality) के कारण ही क्रान्तियाँ होती हैं।[1]

लेकिन किसी देश में राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक असमता होते हुए भी वहाँ पर क्रान्ति होगी या नहीं, और उसका क्या रूप होगा, निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। इसलिए कुछ विद्वान इसको वैज्ञानिक शास्त्रों की पंक्ति में रखने के लिए तैयार नहीं परन्तु यह उनकी भूल है। गिलक्राइस्ट के[2] मतानुसार यद्यपि सामाजिक विज्ञानों में प्राकृतिक विज्ञानो जैसी यथार्थता (exactness) प्राप्त करना कठिन है तथापि सामाजिक समस्याएँ उसी वैज्ञानिक ढंग से विचारी जा सकती हैं जैसा कि रसायन या भौतिक शास्त्र में। नागरिक शास्त्र विज्ञान है परन्तु यह गार्नर के अनुसार पूर्ण विज्ञान नहीं।[3]

नागरिक शास्त्र कला भी है। यह कला भी है क्योंकि यह ज्ञान को व्यावहारिक जगत् में प्रयोग करने की शिक्षा देता है।[4] किसी वस्तु के ज्ञान का व्यावहारिक जगत् में प्रयोग का नाम ही कला है।

मनुष्य एक अच्छा नागरिक ज्ञान को रोजाना के जीवन में अपनाने से बन सकता है। यह केवल हमें अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों का ही ज्ञान नहीं कराता अपितु उन अधिकारों तथा कर्तव्यों का साक्षात् जीवन में पूर्ण रूप से पालन करने की भी शिक्षा देता है। तभी मनुष्य एक आदर्श नागरिक बन सकता है। केवल ज्ञान प्राप्त कर लेना पर्याप्त न होगा। नागरिक शास्त्र हमें यह ज्ञान अर्पित करता है कि किस प्रकार से हमें अपने कुटुम्ब, गाँव, प्रान्त, देश तथा संसार की सेवा करनी चाहिए। सद्भावना तथा प्रेम से ही समाज में चिरस्थायी शान्ति रह सकती है। प्लेटो के अनुसार आदर्श जीवन आदर्श समाज में ही सम्भव है। नागरिक शास्त्र हमें अच्छे और बुरे कामों में भेद बतला कर हमें सन्मार्ग की ओर अग्रसर करता है। अतः नागरिक शास्त्र हमें सत्य, प्रेम, अहिंसा तथा त्याग की ओर ले जाता है। इन्हीं गुणों के पालन से एक आदर्श समाज की स्थापना हो सकती है।

---

1. "Inequality is the mother of revolutions."—*Aristotle.*

2. "While we may agree that the exactness of the natural sciences is impossible of attainment in the social sciences, nevertheless social problems can be treated with the same scientific methods as Chemistry or Physics."—*Gilchrist.*

3. "As a science it falls short, of course, of the degree of perfection attained by the Physical sciences, for the reason that the facts with which it deals are more complex and the causes which influence social and practical phenomena are more difficult of control and are permanently undergoing change"—*Garner.*

4. Art is the application of knowledge to real life.

III. नागरिक शास्त्र की अध्ययन पद्धतियाँ (The Methods of Civics)

(a) प्रयोगात्मक पद्धति (Experimental Method)

भौतिक विज्ञानों के अध्ययन में साधारणतया इस पद्धति (method) का ही प्रयोग किया जाता है। जिस वस्तु की सत्यता जाँचनी होती है, उस पर भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रयोग (experiments) प्रयोगशाला (laboratory) में कर लिये जाते हैं। रसायन तथा भौतिक शास्त्रों (Chemistry and Physics) में परिणाम सदा सत्य होते हैं। नागरिक शास्त्र में यह सत्य है कि रसायन तथा भौतिक शास्त्रों की भांति प्रयोग सम्भव नहीं हैं और भौतिक शास्त्रों की भांति परिणाम सदैव सत्य नहीं होते तथापि नागरिक शास्त्र के द्वारा सिद्धान्तों का निर्माण अवश्य होता है जो कि बहुधा एक ही प्रकार की परिस्थितियों में सत्य होते हैं। उदाहरणार्थ, यदि सरकार कोई कानून बनाती है और जनता उसे हृदय से अपना लेती है, तो ऐसा समझा जाता है कि अनुभव सफल हो गया है और यदि जनता उसका घोर विरोध करती है तो वह अनुभव असफल रहा। प्रत्येक नया कानून, प्रत्येक नई संस्था, प्रत्येक नया राजनैतिक दल एक प्रकार का प्रयोग है।

(b) ऐतिहासिक पद्धति (Historical Method)

इसमें सन्देह नहीं कि इतिहास नागरिक शास्त्र का विशेष सहायक होता है। राज्य का आरम्भ कब और कैसे हुआ, अधिकारों का जन्म क्यों हुआ, इन सब बातों को जानने के लिए हमको इतिहास का आश्रय लेना पड़ता है। हमें राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाओं (institutions) का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनके इतिहास का अध्ययन करना पड़ता है। यदि हम वर्ण-व्यवस्था के बारे में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहें तो हमें आर्यों के आदि-काल का इतिहास देखना पड़ेगा। इसी प्रकार से इंगलैंड की भूतपूर्व घटनाओं तथा शासन-पद्धतियों से हम उस देश के लिए अनेक सिद्धान्त बना सकते हैं जो कि आजकल के समय में भी लाभदायक सिद्ध हों। अतः हम ऐतिहासिक घटनाओं को एकत्रित करते हैं और उनसे कुछ सिद्धान्त निर्माण करते हैं।

(c) तुलनात्मक पद्धति (Comparative Method)

तुलनात्मक पद्धति में अनेक देशों की सामाजिक परिस्थितियों और घटनाओं की तुलना की जाती है। तुलना करके सादृश्य स्थापित किया जाता है। इस पद्धति को अपनाने के लिए हमें कुछ बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। एक तो यह कि हम किसी परिणाम पर केवल एक ही समाज अथवा संस्था को देखकर न पहुँचें। दूसरे, जिन देशों की तुलना की जाय, उनकी सभ्यता और संस्कृति, (civilization and culture) आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थिति एक जैसी हो। एक अवनत देश का एक उन्नत देश से मुकाबला नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि भिन्न घटनाओं तथा समान घटनाओं की तुलना की जाय।

अरस्तू ने २५० संविधानों को संग्रहीत कर, उनका विश्लेषण किया और उनकी तुलना की। वह इस परिणाम पर पहुँचा कि असमता क्रान्ति की जननी है। आधुनिक युग में मॉण्टेस्क्यू तथा ब्राइस आदि विद्वानों ने इसका प्रयोग किया है।

(d) दार्शनिक विधि (Philosophical Method)

इस विधि में सब से पहले मनुष्य की मूल प्रकृति तथा सामाजिक संगठन का उद्देश्य निश्चित कर लिया जाता है और उसके पश्चात् इस बात को विचारा जाता है कि किस प्रकार का समाज-संगठन, रीति-रिवाज तथा शासन-पद्धति (administrative system) उत्पन्न की जाय। इस पद्धति का आधार विशेषतया कल्पना पर होता है। कुछ अटल सत्यों को लेकर जैसे प्रत्येक मनुष्य अपना भला स्वयं जानता है, प्रत्येक मनुष्य समाज में रहना चाहता है और स्वतन्त्रता-प्रेमी है, तत्त्ववेत्ता (philosopher) कल्पना के एक विशाल भवन का निर्माण करता है। उपयोगितावाद का सिद्धान्त इसी विधि पर आश्रित है। इस विधि का प्रयोग प्लेटो, रूसो तथा मिल (Mill) आदि लेखकों ने अधिक किया है। अच्छे और बुरे की पहचान भी इसी मार्ग का अनुकरण करने से हो सकती है। अतः यह दार्शनिक आधार पर प्रतिष्ठित मान्यताओं को स्वीकार कर उनके अनुरूप संस्थाओं का निर्माण करती है।

(e) पर्यवेक्षण प्रणाली (Method of Observation)

पर्यवेक्षण पद्धति के अन्तर्गत अध्ययनकर्त्ता स्वयं समाज के संगठन, रीति-रिवाज, शासन-व्यवस्था को जाकर देखता है और देखने के पश्चात् कुछ निष्कर्षों पर पहुँचता है और उनके अनुसार नियमों का निर्माण करता है। नागरिक शास्त्र का इस प्रकार का अध्ययनकर्ता समाज के प्रत्येक अंग के कार्य का स्वयं निरीक्षण करता है और फिर कुछ सिद्धान्तों पर पहुँचता है। पर्यवेक्षण करते समय उसका दृष्टिकोण सर्वांगीण होना चाहिए वरना गलती की सम्भावना रहती है। लार्ड ब्राइस ने अपनी पुस्तक 'माडर्न डेमोक्रेसीज़ और अमेरिकन कामनवेल्थ' (Modern Democracies and American Commonwealth) में इस पद्धति को अपनाया है। वह स्वयं अनेक देशों में गया और वहाँ के राजनीतिज्ञों से वार्तालाप किया। उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस, आस्ट्रेलिया, स्विट्ज़रलैंड, कनाडा और न्यूज़ीलैंड के शासनों का वर्णन केवल अपने निरीक्षण के आधार पर ही किया है।

नागरिक शास्त्र का विषय इतना व्यापक है कि उसमें एक पद्धति के अपनाने से काम नहीं चल सकता। सब को थोड़ा-बहुत अपनाने की आवश्यकता है। एक लेखक ने सत्य ही कहा है कि सच्चे इतिहासवेत्ता को दर्शनशास्त्र का मूल्य स्वीकार करना चाहिए। और सच्चे दार्शनिक को इतिहास से मन्त्रणा लेनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, विद्यार्थी को स्वतन्त्र विचारधारा को अपनाना चाहिए और उसमें निष्पक्षता, कल्पना-शक्ति तथा सहानुभूति का होना आवश्यक है।

IV. नागरिक शास्त्र का अन्य शास्त्रों से सम्बन्ध
(Relation of Civics to Other Social Sciences)

इस जगत् में प्रत्येक वस्तु का दूसरे से कम या ज्यादा सम्बन्ध रहता है।

नागरिक शास्त्र मानव-ज्ञान की एक शाखा है। इसी प्रकार राजनीति शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, इतिहास तथा अन्य सामाजिक शास्त्र एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। प्रत्येक सामाजिक शास्त्र का विषय मनुष्य ही है। नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, समाज शास्त्र तथा नीति शास्त्र मनुष्य के आचार-व्यवहार का भिन्न-भिन्न पहलुओं से अध्ययन करते हैं। किसी एक शास्त्र का अध्ययन दूसरे के बिना नहीं हो सकता।

नागरिक शास्त्र तथा समाज शास्त्र (Civics and Sociology)

समाज शास्त्र सामाजिक जीवन का शास्त्र है। यह अन्य सामाजिक शास्त्रों जैसे इतिहास, नागरिक शास्त्र और अर्थशास्त्र की जननी है—समाज शास्त्र मनुष्य के सामाजिक जीवन का शास्त्र है। यह सामाजिक जीवन की उत्पत्ति, उसका विकास, उसका संगठन और उसके ध्येय का अध्ययन करता है। यह रीति-रिवाज, विश्वास, संस्कृति तथा सभ्यता के विकास का उल्लेख करता है। एक प्रकार से तो समाज शास्त्र को सब सामाजिक शास्त्रों की जननी कहा जा सकता है।[1] गैटल के अनुसार समाज शास्त्र तो एक सामान्य सामाजिक शास्त्र है। यह सामाजिक समुदायों पर विचार करता है और सम्पूर्ण सामाजिक जीवन सम्बन्धी नियमों एवं तथ्यों की खोज करने की कोशिश करता है।[2] गार्नर के अनुसार हम समाज-विज्ञान या समाज-शास्त्र में व्यक्ति का केवल एक प्राणी अथवा चेतन सत्ता की तरह वरन् एक पड़ोसी, एक नागरिक, एक सहकर्मी, संक्षेप में, एक सामाजिक जीव के रूप में अध्ययन करते हैं। गिलक्राइस्ट के मत में यह शास्त्र समाज की आधारभूत घटनाओं का अध्ययन करता है।[3] आधुनिक सामाजिक संगठन का विश्लेषण करके भविष्य के आदर्श सामाजिक जीवन की कल्पना भी इसके अन्तर्गत की जाती है।

नागरिक शास्त्र केवल राज्य-निर्माण के पश्चात् अपना अध्ययन आरम्भ करता है परन्तु समाज शास्त्र राज्य के बनने से पहले और बाद के युगों का अध्ययन करता है—नागरिक शास्त्र को समाज शास्त्र से सामाजिक विकास के कानूनों का ज्ञान प्राप्त होता है। अतः समाज शास्त्र नागरिक शास्त्र की एक महत्त्वपूर्ण नींव है। इसकी सहायता के बिना नागरिक शास्त्र अपना कार्य पूरा नहीं कर सकता। परन्तु नागरिक शास्त्र को समाज शास्त्र की एक शाखा मानना भूल होगी। समाज शास्त्र संगठित (organised) तथा असंगठित सामाजिक (social) जीवन का अध्ययन करता है। नागरिक शास्त्र के द्वारा केवल विकसित या संगठित समाज का ही ज्ञान होता है। नागरिक शास्त्र का क्षेत्र समाज शास्त्र (Sociology) से संकीर्णतर (narrower) है।

समाज शास्त्र केवल घटनाओं का वर्णन करता है परन्तु नागरिक शास्त्र वर्णन के साथ-साथ शिक्षा भी देता है—समाज शास्त्र केवल वर्णनात्मक (positive) है।

---

1. Sociology is the mother of all social sciences.
2. "Sociology is a general social science, it deals with the social aggregate and attempts to discover the facts and laws of social life as a whole."—*Gettle.*
3. "Sociology is the general social science. It deals with the fundamental facts of social life."—*Gilchrist.*

समाज शास्त्र यह बताता है कि समाज की उत्पत्ति कैसे हुई, कब हुई और किन दशाओं में इसकी प्रगति (progress) हुई। इस प्रकार यह सब घटनाओं का वर्णन करता है परन्तु यह शास्त्र यह नहीं बतलाता कि वे अच्छी थीं या बुरी। यह प्रत्येक घटना का, चाहे वह किसी प्रकार की हो, समान दृष्टि से वर्णन करता है। परन्तु नागरिक शास्त्र वर्णनात्मक न होकर आदर्शवादी (normative) है। यह या तो बुरी घटनाओं का वर्णन नहीं करता और करता है तो केवल नागरिक को बुरी बातों से बचाने के लिए। यह सदाचार पर जोर देता है और सफल तथा आदर्श नागरिक बनने की शिक्षा प्रदान करता है। समाज शास्त्र सामाजिक सगठन तथा विकास के नियमों का ज्ञान प्राप्त कराता है, नागरिक शास्त्र मनुष्य को कर्तव्यों तथा अधिकारों से परिचित कराता है।

नागरिक शास्त्र तथा राजनीति शास्त्र (Civics and Politics)

नागरिक शास्त्र और राजनीति शास्त्र की उत्पत्ति समान अर्थों वाले शब्दों से हुई—राजनीति शास्त्र राज्य (State) का विज्ञान है। यह हमें राज्य की उत्पत्ति, विकास, स्वभाव, ध्येय, संगठन आदि के विषय का ज्ञान देता है। नागरिक शास्त्र एक नागरिक को उसके अधिकार तथा कर्तव्य का ज्ञान कराता है। नागरिक शास्त्र तथा राजनीतिक शास्त्र की उत्पत्ति क्रमशः लैटिन शब्द 'सिविटास' तथा ग्रीक शब्द 'पोलिस' (Polis) से हुई है, दोनों शब्दों का अर्थ 'नगर' से है। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में नागरिक शास्त्र की परिभाषा राज्य-विज्ञान (Political Science) के उस भाग से की गई है जिसका सम्बन्ध नागरिकता के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों से है।

नागरिक शास्त्र का लक्ष्य आदर्श नागरिकता का निर्माण है—आदर्श नागरिक केवल राज्य में ही सम्भव है। राज्य का विकास क्यों हुआ इसका उत्तर देते हुए अरस्तू ने कहा कि राज्य की उत्पत्ति जीवन-निर्वाह के लिए हुई तथा यह कुशल-जीवन के लिए स्थित है। इस से अरस्तू का अभिप्राय यह था कि व्यक्ति के विकास तथा आदर्श जीवन के लिए राज्य आवश्यक है। मनुष्य एक आदर्श नागरिक केवल राज्य के अन्दर रह कर ही बन सकता है। जब तक किसी देश में शान्ति न होगी और शिक्षा की सुविधाएँ न होंगी, तब तक वहाँ मनुष्य अपनी सर्वांगीण उन्नति नहीं कर सकता। शान्ति तथा व्यवस्था केवल राज्य के द्वारा ही स्थापित हो सकती है। शिक्षा की सुविधाएँ केवल राज्य के द्वारा भली प्रकार से प्राप्त हो सकती हैं। ग्रीन का कथन है कि राज्य अधिकारों की प्राप्ति के लिए सब कंटकों को हटाता है। इस प्रकार राज्य व्यक्ति के विकास के लिए उचित परिस्थितियों को उत्पन्न करता है। राज्य यह देखता है कि मनुष्य अपने कर्तव्य भली प्रकार से निभा रहे हैं या नहीं। यदि मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन न करें तो राज्य कायम रह ही नहीं सकता। अधिकार और कर्तव्य केवल राज्य में ही सम्भव हैं। नागरिक शास्त्र के ज्ञान के बिना नागरिक राज्य को सुचारु रूप से नहीं चला सकते।

नागरिक शास्त्र में अड़ोस-पड़ोस की समस्याओं पर अधिक जोर दिया जाता है और राजनीति शास्त्र में अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर। राजनीति शास्त्र में मनुष्य का

राज्य का सदस्य होने के नाते अध्ययन किया जाता है परन्तु नागरिक शास्त्र में मनुष्य के दूसरी संस्थाओं की ओर कर्तव्य तथा अधिकार निर्धारित किये जाते हैं जिन का अध्ययन साधारणतया राजनीति-शास्त्र में नहीं किया जाता। अतः नागरिक शास्त्र के अध्ययन का क्षेत्र है समाज के सारे अंग। इसके विरुद्ध राजनीति शास्त्र केवल राज्य के संगठन की ओर ही विशेष ध्यान देता है। दूसरे, नागरिक शास्त्र का क्षेत्र कई विद्वानों के अनुसार इतना विस्तृत नहीं है जितना कि राजनीति शास्त्र का क्योंकि नागरिक शास्त्र में अधिकतर अड़ोस-पड़ोस की समस्याओं पर जोर दिया जाता है और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर थोड़ा। राजनीति शास्त्र में राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ विस्तृत रूप में पढ़ी जाती हैं। तीसरे, यह भी भेद है कि नागरिक शास्त्र सामाजिक जीवन की अच्छाई की अवस्थाओं का अध्ययन है किन्तु राजनीति शास्त्र सामाजिक जीवन की अच्छाई के मुख्य साधन—राज्य का अध्ययन करता है।

नागरिक शास्त्र और इतिहास (Civics and History)

इतिहास, मानव-जीवन की बीती हुई घटनाओं का भण्डार है—इतिहास मानव-जीवन के उत्थान-पतन की कहानी है। इसमें मनुष्य के सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक, कला-सम्बन्धी विचारों, रीति-रिवाजों के विकास का वर्णन रहता है। संस्कृति तथा सभ्यता के उदय की कहानी हमें केवल इतिहास से उपलब्ध है। प्राचीन काल में अनेक राज्यों की शासन-प्रणाली, उनका ह्रास तथा अभ्युदय, नाना प्रकार के मतमतान्तरों की उन्नति तथा अवनति और नये-नये देशों का ढूँढा जाना, अनेक प्रकार के वैज्ञानिक यन्त्रों का आविष्कार, राज्यों का आरम्भ, तानाशाही का नाश तथा लोकतन्त्र की स्थापना इत्यादि अनेक प्रकार की बातों का ज्ञान केवल इतिहास द्वारा होता है। राज्यों के आर्थिक विकास का भी पता हमें इतिहास द्वारा होता है। अतः इतिहास का नागरिक शास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि आधुनिक संस्थाओं का ज्ञान, जब तक इतिहास में उनकी प्रारम्भ से लेकर अब तक की प्रगति न देखी जाय, तब तक नहीं हो सकता।

इतिहास से राजनैतिक संस्थाओं के उदय और विकास पर काफी प्रकाश पड़ता है—इतिहास और नागरिक शास्त्र का सम्बन्ध सीले के कथन से बहुत स्पष्ट हो जाता है। उसके कथनानुसार राजनीति शास्त्र इतिहास का फल है और इतिहास राजनीति शास्त्र की जड़ है।[1] इतिहास द्वारा उदात्त (liberalised) हुए बिना राज्य-विज्ञान अशिष्ट (vulgar) है और इतिहास उस समय केवल साहित्य रह जाता है जब कि राज्य-विज्ञान से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता।[2] बर्गेस के अनुसार यदि राज्य-विज्ञान और इतिहास को एक दूसरे से पृथक् कर दिया जाए तो उनमें से एक मृत नहीं तो पंगु हो जाएगा और दूसरा केवल आकाश-पुष्प। अन्त में गैटेल का कहना सत्य प्रतीत होता है कि राजनीति शास्त्र को इतिहास से ही सारी सामग्रियाँ उपलब्ध

1. "History without Political science has no fruit,
Political science without History has no root."—*Seeley.*

2. Politics is vulgar when not liberalised by History and History fades into mere literature when it loses sight of its relation to Politics.

नहीं होतीं। राज्य के अध्ययन का मनोवैज्ञानिक, नैतिक और दार्शनिक आधार भी है। केवल संस्थाओं को स्पष्ट रूप से जानने के लिए इतिहास के अध्ययन की आवश्यकता है। अतः साहित्य, नाटक, गाना तथा युद्ध के इतिहास से नागरिक शास्त्र का कोई सम्बन्ध नहीं।

नागरिक शास्त्र और अर्थशास्त्र (Civics and Economics)

अर्थशास्त्र से मनुष्य की धन सम्बन्धी कार्यवाहियों का ज्ञान होता है। सरकार का उत्पादन, वितरण, उपभोग तथा विनिमय पर थोड़ा या अधिक नियन्त्रण अवश्य रहता है। समाजवाद जैसे आर्थिक सिद्धान्तों का भी राजनीति पर विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अर्थशास्त्र सम्पत्ति के उत्पादन, वितरण, उपभोग, विनिमय (production, distribution, consumption and exchange) आदि सभी विषयों पर विचार करता है। प्रत्येक राज्य वाणिज्य (commerce) तथा अर्थ (finance) पर नियन्त्रण रखने की कोशिश करता है। राजनीति का व्यवसाय, कर-पद्धति, सिक्के (currency) आदि विषयों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस मनुष्य को पेट भर कर रोटी नहीं मिलती, वह एक अच्छा नागरिक नहीं बन सकता। आर्थिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के बिना सदा क्रान्ति का भय रहता है। फ्रांस की राज्य-क्रान्ति (1789) तथा रूसी क्रान्ति (1917) मुख्यतः आर्थिक विषमता के कारण हुई। अरस्तू के अनुसार आर्थिक विषमता क्रान्ति का मुख्य कारण है। राज्य श्रमिकों के लाभ के लिए कानून बनाता है तथा पूँजीपतियों पर अनेक प्रकार के नियन्त्रण लागू करता है। पूँजीवादी देशों में मनुष्य चाहे जितना धन एकत्रित कर सकता है परन्तु समाजवादी देशों में ऐसा नहीं कर सकता। राज्य ही तार घर, रेल और माल लादने की सुविधाएँ व्यापारियों को प्रदान करता है तथा बाहरी देशों से आने वाली वस्तुओं पर अनेक प्रकार के कर लगाता है। सरकार अपने उद्योग-धन्धों की रक्षा करती है और विदेशों से आने वाली वस्तुओं पर कस्टम ड्यूटी (customs) लगाती है। सरकार कृषि को अनेक प्रकार से उन्नत करती है। चीजों की मँहगाई को रोकने में भी राज्य का विशेष हाथ रहता है। दोनों शास्त्रों के विषय भिन्न हैं। राज्य की उत्पत्ति तथा विकास का अर्थशास्त्र में विशेष वृत्तान्त नहीं मिलता।

नागरिक शास्त्र और नीतिशास्त्र या आचारशास्त्र (Civics and Ethics)

नीतिशास्त्र सत्य और असत्य जाँचने की एक अनुपम कसौटी है। यह हमको सदाचार की शिक्षा देता है। राज्य का लक्ष्य मनुष्य की नैतिकता का विकास है। नीति या आचारशास्त्र (Ethics) वह विद्या है जो मनुष्य को अच्छे और बुरे कामों की पहचान कराती है। यह शास्त्र मनुष्य के सद्व्यवहार या सदाचार को जाँचता है और उसके जीवन के लिए एक आदर्श (ideal) निश्चित करता है। यह मनुष्य को उत्तम आचरण (ideal conduct or good conduct) की ओर झुकाता है और उसे दूसरों से सहानुभूति (sympathy) तथा प्रेम करना सिखाता है। यह शास्त्र हमें सिखाता है कि हम समाज के लाभ के लिए जिएँ और उसके हित के लिए

सदा त्याग तथा बलिदान करते रहें। नागरिक शास्त्र का लक्ष्य भी आदर्श नागरिकता की स्थापना है। अतः नागरिक शास्त्र का नीतिशास्त्र से जो कि समाज के सामने एक आदर्श रखता है घनिष्ठ सम्बन्ध है। आदर्श सामाजिक जीवन (ideal social life) तभी सम्भव हो सकता है जब कि नागरिक आदर्श नागरिकता का अमर पाठ ग्रहण करें और दूसरी ओर यह भी सत्य है कि आदर्श जीवन आदर्श समाज में ही सम्भव हो सकता है। अतः दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। अरस्तू तथा प्लेटो राज्य-विज्ञान (Pol. science) के लिए नीतिशास्त्र का अध्ययन परम आवश्यक समझते थे। प्लेटो तथा अरस्तू का यह साधारण विचार था कि श्रेष्ठ नागरिक श्रेष्ठ राज्य में ही उत्पन्न हो सकते हैं और निकृष्ट (inferior) राज्य में निकृष्ट नागरिक होते हैं। कानून तथा सदाचार में घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्लेटो और अरस्तू ने दोनों शास्त्रों को पृथक् या अलग नहीं किया। परन्तु इतना होते हुए भी यह निश्चित है कि दोनों शास्त्रों का विषय एक दूसरे से पृथक् है क्योंकि नागरिक शास्त्र में आचार शास्त्र के नैतिक सिद्धान्त (moral ideals) तो अपना लिये जाते हैं परन्तु उन पर कोई वाद-विवाद नहीं होता, परन्तु आचार शास्त्र में ऐसा अवश्य होता है। दूसरे, नागरिक शास्त्र में मनुष्य के बाहरी कामों (external acts) की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है और आचार शास्त्र में मनुष्य के आन्तरिक भावों (inner motives) पर। आचार शास्त्र में व्यक्ति को समझने पर विशेष ध्यान दिया जाता है परन्तु नागरिक शास्त्र में समाज को।

नागरिक शास्त्र और मनोविज्ञान (Civics and Psychology)

मनोविज्ञान शास्त्र के द्वारा हम में मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियों का ज्ञान होता है। प्रत्येक कानून का पालन मनुष्यों के स्वभाव पर निर्भर है। मनोविज्ञान मनुष्य के मन के व्यवहार की जाँच-पड़ताल करता है। यह मनुष्य की भावनाओं, स्वाभाविक वृत्तियों और आन्तरिक वेदनाओं आदि का अध्ययन करता है। यह बात तो स्वयं प्रत्यक्ष है कि मनुष्य का सामाजिक जीवन मनुष्य के इन्हीं व्यवहारों पर निर्भर है। जब तक हमें मनुष्य के विचारों की समझ नहीं आयगी तब तक हम उसके सामाजिक व्यवहारों और कार्यों को नहीं समझ सकते। मनोविज्ञान से हमें ज्ञात होता है कि श्रमिकों (labourers) के साथ कैसा व्यवहार करने से वे समाज के लिए अधिक से अधिक कार्य कर सकते हैं। बच्चों के साथ कैसा व्यवहार किया जाय ताकि वे सफल नागरिक बन कर समाज का कल्याण करें। बार्कर (Barker) कहते हैं "मानवीय क्रियाओं की पहेलियों को सुलझाने के लिए मनोवैज्ञानिक कुञ्जी का प्रयोग आजकल एक रिवाज बन गया है।" प्लेटो का विचार था कि राज्य और उसकी संस्थाओं का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के लिए मनोविज्ञान एक सर्वोत्तम कुञ्जी है।

नागरिक शास्त्र और भूगोल (Civics and Geography)

भूगोल किसी देश की जलवायु, पर्वत, नदी, खनिज पदार्थ तथा उस देश में उत्पन्न होने वाली कृषि या फसलों से विशेषतया सम्बन्धित है। यह प्रत्येक मनुष्य मानता है कि एक देश की भौगोलिक परिस्थितियों (geographical conditions)

का उस देश की सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक संस्थाओं (social, political and religious institutions) पर विशेष प्रभाव पड़ता है। प्राचीन काल में यूनान में जो नगर-राज्य स्थापित हुए, उसका विशेष कारण वहाँ का भौगोलिक परिस्थिति ही थी। रूसो[1] का यह विचार था कि गर्म जल वायु स्वेच्छाचारी शासन के, शीतल जल-वायु बर्बरता के और मृदुल जलवायु श्रेष्ठ शासन-प्रणाली के अनुकूल होती है।

मॉण्टेस्क्यू ने भी भौतिक वातावरणों के प्रभाव (influence of physical environments) को शासन-पद्धतियों (forms of Govt.) और लोगों की स्वतन्त्रता पर दिखाने की कोशिश की।

नागरिक शास्त्र और कानून (Civics and Jurisprudence)

नागरिक शास्त्र का कानून से विशेष सम्बन्ध है। नागरिक शास्त्र मनुष्य को उसके अधिकारों का ज्ञान कराता है परन्तु जब तक कानून उन अधिकारों की रक्षा, ऐसे मनुष्यों से जो कि अधिकारों को पैरों से कुचलना या पद-दलित करना चाहें, न करे, तब तक अधिकारों का कोई लाभ नहीं। इसके अतिरिक्त कानून मनुष्य की स्वतन्त्रता स्थापित करता है। संविधान (constitution) के द्वारा मनुष्य को मूल अधिकार (fundamental rights) प्राप्त होते हैं।

नागरिक शास्त्र और जीवविज्ञान (Civics and Biology)

मनुष्य स्वयं एक जीवित प्राणी है और वह जीव-विज्ञान के नियमों के सर्वथा अधीन है। जीव-विज्ञान मनुष्य की उत्पत्ति तथा विकास के बारे में प्रकाश डालता है। हर्बर्ट स्पैन्सर (Herbert Spencer) का कथन था कि राज्य एक प्राणी की तरह बढ़ता है। जिस प्रकार मनुष्य के अंग एक दूसरे पर आश्रित हैं, इसी प्रकार राज्य के भी अंग एक दूसरे पर आश्रित हैं। अतः उसका विश्वास था कि राज्य एक जीवधारी है (State is a biological organism) और जीव-विज्ञान के द्वारा बताए हुए सिद्धान्तों से राज्य की उत्पत्ति तथा विकास की खोज करनी चाहिए।

नागरिक शास्त्र तथा धर्मशास्त्र (Civics and Dharma or Religion)

धर्म हमें कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग की ओर ले जाता है। यह हमें भ्रातृ-प्रेम, त्याग, बलिदान, सत्य, अहिंसा का पाठ पढ़ाता है। धर्म हमें सिखाता है कि बड़ों का आदर करना चाहिए और माता-पिता तथा अध्यापक की आज्ञा का पालन करना चाहिए। यह हमें आत्म-संयम या जितेन्द्रियता का पाठ पढ़ाता है तथा समाज की सेवा के लिए प्रेरित करता है। अतः यही गुण एक आदर्श नागरिक में होने चाहिएँ। अतः दोनों का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है हालाँकि उनके विषय भिन्न हैं।

सारांश

अर्थ—नागरिक शास्त्र हमें अपने कर्तव्यों और अधिकारों का ज्ञान कराता है—यह नागरिकता का विज्ञान है (नागरिक हमारे देश में उसे कहते हैं जिसकी आयु २१

1. Rousseau argued that warm climates were conducive to despotism, cold climates to barbarism and moderate climates to a good polity.

वर्ष की हो और जिसे सामाजिक तथा राजनैतिक अधिकार प्राप्त हों)। श्री गोल्ड के अनुसार नागरिक शास्त्र उन संस्थाओं, आदतों, कार्यों और व्यक्तियों का अध्ययन है जिनके द्वारा कोई मनुष्य या स्त्री अपने कर्तव्यों की पूर्ति कर सके और राजनैतिक सदस्य होने के लाभ प्राप्त कर सके।

क्षेत्र (Scope)—नागरिक शास्त्र न केवल गाँव तथा देश बल्कि विश्व का अध्ययन करता है। व्हाइट (White) का कथन है कि नागरिक शास्त्र नागरिकता से सम्बन्ध रखने वाली भूतकालिक, वर्तमान तथा भविष्यकालिक और स्थानीय, राष्ट्रीय तथा समस्त संसार सम्बन्धी सब वस्तुओं पर विचार करता है। नागरिक शास्त्र नागरिक के अधिकारों तथा कर्तव्यों का अध्ययन करता है। यह व्यक्ति, समाज, राज्य, सरकार और सब समुदायों का अध्ययन करता है।

उपयोगिता (Utility)—नागरिक शास्त्र का ज्ञान प्रजातन्त्र के लिए विशेष उपयोगी है क्योंकि यह अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान कराता है। सद्गुणों का विकास करके यह आदर्श नागरिकता के पाठ पढ़ाता है जिस पर विश्व नागरिकता (world citizenship) अवलम्बित है। यह हमारे में सहानुभूति, सेवा-भाव तथा देश-भक्ति उत्पन्न करता है। इसी के द्वारा समुदायों (associations), राज्य की उत्पत्ति तथा विकास और सरकार के संगठन के बारे में पता चलता है। भारतीयों के लिए इसकी विशेष आवश्यकता है क्योंकि यह उनको देश और संसार की ओर कर्तव्य-पालन सिखाता है। विद्यार्थियों को यह अनुशासन, भ्रातृ-भाव और परोपकार का पाठ पढ़ाता है।

नागरिक शास्त्र कला है अथवा विज्ञान—नागरिक शास्त्र कला और विज्ञान दोनों है। यह विज्ञान इसलिए है कि यह क्रमबद्ध ज्ञान (systematic knowledge) है जो कि निरीक्षण, प्रयोग, अध्ययन तथा वर्गीकरण द्वारा प्राप्त हुआ है। यह कला है क्योंकि इसका ज्ञान व्यावहारिक जगत् में प्रयुक्त होता है।

नागरिक शास्त्र और समाज शास्त्र (Civics and Sociology)—समाज शास्त्र सामाजिक जीवन का शास्त्र है। यह सामाजिक जीवन की उत्पत्ति, विकास, ध्येय और संगठन का अध्ययन करता है। यह सामाजिक शास्त्रों की जननी है। समाज शास्त्र मानव-जाति के संगठित तथा असंगठित जीवन का अध्ययन करता है परन्तु नागरिक शास्त्र केवल संगठित जीवन का। राज्य के निर्माण अथवा उत्पत्ति से पूर्व का काल असंगठित युग कहलाता है और राज्य के जन्म के पश्चात् संगठित युग आरम्भ होता है। समाज शास्त्र केवल घटनाओं का वर्णन करता है परन्तु नागरिक शास्त्र शिक्षा भी देता है।

नागरिक शास्त्र तथा राजनीति शास्त्र (Civics and Politics)—नागरिक शास्त्र तथा राजनीति शास्त्र की उत्पत्ति सिविटास (civitas) तथा पोलिस (polis) से हुई जिनका अर्थ है नगर। राज्य में ही एक मनुष्य अच्छा नागरिक बन सकता है और राज्य में ही उसे अधिकार प्राप्त होते हैं तथा कर्तव्य-पालन सीखता है। भेद इन दोनों में यह है कि नागरिक शास्त्र स्थानीय समस्याओं को अधिक महत्त्व देता है और राजनीति शास्त्र अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को।

नागरिक शास्त्र तथा इतिहास—इतिहास में मनुष्य के सांस्कृतिक, धार्मिक तथा राजनैतिक विकास का वर्णन रहता है। राजनीति इतिहास का फल है और इतिहास राजनीति की जड़ है। प्राचीन काल की संस्थाओं को समझने के लिए इतिहास का ज्ञान आवश्यक है परन्तु दोनों शास्त्रों के विषय भिन्न हैं।

नागरिक शास्त्र तथा अर्थशास्त्र—अर्थशास्त्र में धन की उत्पत्ति, वितरण (distribution), उपभोग और विनिमय (exchange) का वृत्तान्त है। मनुष्य अच्छा नागरिक नहीं बन सकता यदि वह सदैव भूख से तड़पता रहे। आर्थिक विषमता राजनैतिक क्रान्ति का मुख्य कारण, राज्य के द्वारा कृषि, दस्तकारी और तिजारत पर नियंत्रण तथा सहायता, समाजवाद का राजनीति पर प्रभाव।

आचार शास्त्र के बिना आदर्श राज्य तथा नागरिक का निर्माण असम्भव है। आदर्श राज्य का निर्माण नैतिकता के बिना नहीं हो सकता। जो चीज नैतिक दृष्टि से गलत है, वह राजनैतिक दृष्टि से भी ठीक नहीं हो सकती।

Questions

1. Define Civics and briefly discuss its scope and methods. (*U.P.B. 1949*)

2. What are the advantages of the study of Civics? (*P.U.1948*)

3. What is the justification for teaching Civics at colleges? (*U.P.B. 1929*)

4. Define Civics. Explain clearly how Civics is related to Sociology, Ethics and History. (*U.P.B. 1941*)

5. Explain the difference and the relation between Civics and Politics, Economics and Psychology.

6. Define Civics and indicate its place in the social sciences. (*P.U. 1950*)

योग्यता प्रश्न (Other questions in Hindi from U.P.B.)

१. नागरिक शास्त्र के विषय की व्याख्या कीजिए और इसका क्षेत्र बताइये। (यू० पी० बोर्ड 1920, 1946, 1948, 1951)

२. कालिजों में नागरिक शास्त्र के पढ़ाने की क्या आवश्यकता है? (यू० पी० 1931, 1933)

३. नागरिक शास्त्र अथवा राजनीति शास्त्र का अध्ययन ठीक भौतिक शास्त्र और रसायन शास्त्र की शैलियों के अनुसार होना चाहिए, इस कथन की व्याख्या कीजिए। (यू० पी० 1928)

४. आधुनिक सामाजिक जीवन में नागरिक शास्त्र के अध्ययन का क्या महत्त्व है? नागरिक शास्त्र, राजनीति शास्त्र, इतिहास और अर्थशास्त्र के पारस्परिक सम्बन्ध और भेद की व्याख्या कीजिए। (यू० पी० 1934, 1936, 1939)

५. नागरिक शास्त्र की परिभाषा क्या है? नागरिक शास्त्र का समाज शास्त्र, नीति शास्त्र और इतिहास से क्या सम्बन्ध है, स्पष्ट व्याख्या कीजिए। (यू० पी० 1941)

६. नागरिक शास्त्र से आप क्या समझते हैं? इसका इतिहास, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र से क्या सम्बन्ध है? (यू० पी० 1938, 1944, 1953)।

७. राजनीति शास्त्र और धर्मशास्त्र के क्षेत्रों से नागरिक शास्त्र के क्षेत्र की भिन्नता स्पष्ट कीजिए। (यू० पी० 1941)

८. क्या नागरिक शास्त्र एक विज्ञान है अथवा कला ? अथवा दोनों है ?

९. नागरिक शास्त्र के नियमों का स्वरूप क्या है ? भौतिक विज्ञानों के नियमों से उनमें क्या भिन्नता है ?

१०. नागरिक शास्त्र के अध्ययन का क्या महत्त्व है। यह शास्त्र इतिहास और अर्थशास्त्र से किस प्रकार सम्बन्धित है ? (यू० पी० 1947, 1949)

११. सामाजिक निरीक्षण का सामाजिक सेवा में लगाना ही नागरिक शास्त्र है, इस कथन की विवेचना कीजिए। (यू० पी० 1950)

१२. नागरिक शास्त्र से आप क्या समझते हैं ? यह बताइये कि नागरिक शास्त्र के अध्ययन से अच्छे नागरिक बनने में क्या सहायता मिलती है ?

दूसरा अध्याय

व्यक्ति तथा समाज

(Individual and Society)

"Nature, as we often say, makes nothing in vain and man is the only animal whom she has endowed the gift of speech."—*Aristotle* : Politics.

समाज का अर्थ

समाज समान उद्देश्य रखने वाले मनुष्यों का एक समूह है—मनुष्य का स्वभाव ऐसा है कि वह अकेला रहना नहीं चाहता। वह दूसरों के साथ खेलना-कूदना तथा घूमना-फिरना चाहता है। वह एकान्त जीवन की अपेक्षा सहवास या इकट्ठा मिल-जुलकर बैठना अधिक पसन्द करता है। मनुष्य की आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं। प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकताएँ इतनी अधिक हैं कि वह अकेला समाज से अलग रह कर उनको पूरा नहीं कर सकता। "मनुष्य वास्तव में एक सामाजिक प्राणी है जो अपनी प्रकृति और आवश्यकताओं से मजबूर रह कर समाज में रहता है।" वह समाज के बिना नहीं रह सकता। समाज में रहकर ही वह अपने सब अंगों की उन्नति करता है। और यह भी सत्य है कि मनुष्य समाज का अंग है और समाज भी मनुष्यों के बिना नहीं बन सकता। परन्तु समाज (society) और भीड़ (crowd) में बहुत अन्तर है। समाज में जो मनुष्य रहते हों उनका एक उद्देश्य अवश्य होना चाहिए। उनमें प्रेम, सहानुभूति तथा भ्रातृ-भाव होना चाहिए ताकि समाज चिरस्थायी हो सके। स्टेशनों पर जब मनुष्य गाड़ी से उतरते हैं तो उनकी भीड़ हो जाती है, उसको समाज नहीं कहते। समाज बनाने के लिए व्यक्ति एक सामान्य उद्देश्य को लेकर संगठित होते हैं। अतः समाज को बनाने के लिए उसमें तीन बातें होनी चाहिएँ। पहले, उसमें एक विशाल जन-समूह होना चाहिए। दूसरे, समाज बनाने के लिए व्यक्तियों में आपस के क्लेश को मिटाकर सहयोग तथा शान्तिपूर्वक रहने की विकट इच्छा। तीसरे, इस प्रकार का जीवन बिताने के लिए एक निश्चित सामाजिक योजना तथा प्रबन्ध। डाक्टर जेन्क्स[1] के शब्दों में समाज मनुष्य की मैत्रीपूर्ण अथवा शान्तिमय जीवन की दशा का नाम है। मैकइवर[2] ने समाज की परिभाषा करते हुए लिखा है कि मनुष्य का एक दूसरे के साथ ऐच्छिक सम्बन्ध ही समाज है। "मनुष्य के सब प्रकार के सम्बन्धों और उसकी सब प्रकार की संस्थाओं के समूह का नाम समाज है, जिन्हें मनुष्यों ने अपने समान उद्देश्य की प्राप्ति, रक्षा की भावना तथा व्यक्तित्व के विकास के उद्देश्य से बनाया है।"

---

1. "The term Society means harmonious or at least peaceful relationship." —*Jenks.*
2. "Society includes every willed relationship of man to man."—*MacIver.*

मनुष्य स्वभाव और आवश्यकता से एक सामाजिक प्राणी है
(Man is by nature and necessity a social animal)

(a) **मनुष्य स्वभाव से समाज में रहना चाहता है** (Society is natural to him)—ऐरिस्टॉटल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'राजनीति' में कहा कि "मनुष्य स्वभाव से ही सामाजिक प्राणी है। और वह जो अकस्मात् ही नहीं परन्तु स्वभाव से बिना समाज के है, या तो मनुष्यता के ऊपर है या इसके नीचे।"[1] ऐरिस्टॉटल का यह कथन बिल्कुल सत्य है क्योंकि सदा से मनुष्य समाज में रहता आया है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य समाज में रहता है। यदि वह परिवार में रहता है अथवा पाठशाला में जाता है या अन्य क्षेत्रों में विचरता है तो मनुष्य अनेक प्रकार के मित्र बना लेता है। समाज के बिना मनुष्य को जीवन बिल्कुल रूखा मालूम देता है। मनुष्यों में साधारणतया ऋषि-मुनि समाज से पृथक् रहते हैं परन्तु वे भी समाज से बिल्कुल अलग नहीं रहते। उनके भी शिष्य होते हैं और कई बार साधु इकट्ठे मिलकर रहते हैं। और इतना ही नहीं बल्कि वे प्रायः समाज में आते रहते हैं और जनता के अज्ञान को अपनी मनोहर वाणी से दूर करते रहते हैं। राबिनसन क्रूसो (Robinson Crusoe) की तरह का, जो कि समाज से पृथक् रहकर खुश या प्रसन्न रह सकता था, साधारणतया उदाहरण सभ्य समाजों (civilised societies) में उपलब्ध नहीं है। मनुष्य में कुछ मूल प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जो कि उसे समाज में रहने के लिए बाध्य करती हैं। उदाहरणार्थ, एक दूसरे से प्रेम करने की प्रवृत्ति, अपने विचार दूसरे तक पहुँचाने की प्रवृत्ति, आत्म-रक्षा की प्रवृत्ति तथा क्षुधा शान्त करने की इच्छा और एक दूसरे के साथ बातचीत करने और खेलने-कूदने की आदत इत्यादि। यदि किसी मनुष्य को उत्पत्ति से ही समाज से अलग रखा जाय और जानवरों में छोड़ दिया जाय, तो वह जानवरों की तरह चलने और बोलने लगेगा।

समाज में रहने से ही भाषा की उत्पत्ति हुई। मैकेन्जी अपनी पुस्तक "समाज-दर्शन" में कहता है कि भाषा यह सिद्ध करती है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अरस्तू लिखते हैं कि प्रकृति कोई वस्तु व्यर्थ नहीं बनाती और मनुष्य ही केवल एक ऐसा पशु है जिसको उस द्वारा बोलने का उपहार प्रदान हुआ है।[2] मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास तथा उसके अनेक गुणों की वृद्धि केवल समाज में ही रह कर हो सकती है। श्री मैकइवर[3] (MacIver) लिखते हैं कि मनुष्य अपनी विविध आवश्यकताओं की सन्तुष्टि विविध संस्थाओं तथा समुदायों से करता है।

1. "Man is by nature a social Animal, and he who by nature and not by mere accident is without a state, is either above humanity or below it."
—*Aristotle*: Politics, 1,2 (Jowett's translation)

2. "Nature, as we often say, makes nothing in vain, and man is the only animal whom she has endowed the gift of speech."—*Aristotle*: Politics.

3. "Social beings express their nature by creating and recreating an organisation which guides and controls their behaviour in myriad ways."
—*MacIver*: 'Society'.

(b) **भौतिक जीवन के लिए समाज की आवश्यकता** (Man needs society for bare existence)—प्रत्येक मनुष्य को रोटी और कपड़े की आवश्यकता है। समाज से अकेला रह कर वह अपनी अनेक प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। वह स्वयं अकेला ही अपने लिए खाद्य-वस्तुएँ (गेहूँ, नमक, चीनी) तथा पहनने के लिए जूते और नाना प्रकार के कपड़े तथा रहने के लिए सुन्दर भवन तैयार नहीं कर सकता। इसके लिए उसे समाज की आवश्यकता है। फिर इसके अतिरिक्त बुढ़ापा और बीमारी तथा बाल्यावस्था में उसको दूसरों की सहायता प्राप्त करनी पड़ती है।

रोटी खाकर मनुष्य जीवित रह सकता है परन्तु वह अपने आपको भयावह पशुओं से अकेला बचा नहीं सकता क्योंकि प्रकृति ने मनुष्य को सिंह जैसे तेज नाखून या दाँत नहीं दिये। वह मनुष्य को मारने वाले पशुओं से केवल समाज के द्वारा बनाई हुई बन्दूक से अपनी रक्षा कर सकता है। बहुत से मनुष्य मिलकर ही शेर इत्यादि हिंस्र पशुओं का सामना करते हैं। अतः मनुष्य को मारने वाले पशुओं के विरुद्ध रक्षा केवल समाज के द्वारा ही होती है। मनुष्य ही सब मिल-जुलकर नाना प्रकार के शस्त्र बनाते हैं जिसके कारण मनुष्य ने डरावने जानवरों पर विजय प्राप्त कर ली है।

मनुष्य को इन सब बातों के अतिरिक्त किसी ऐसे स्थान की आवश्यकता पड़ती है जहाँ वह बरफ या तेज धूप अथवा वर्षा और तूफान से अपनी रक्षा कर सके। इतना ही नहीं बल्कि वह चाहता है कि चोर-डाकुओं तथा हिंस्र पशुओं से उसकी रक्षा हो। अतः उसको एक अच्छे मकान की आवश्यकता रहती है। मकान केवल दूसरों की सहायता से बन सकता है। मनुष्य अकेला ही सीमेंट, ईंट, चूना, लकड़ी इत्यादि अनेक प्रकार की वस्तुओं को नहीं बना सकता। अतः मनुष्य का कार्य सहयोग के बिना नहीं चल सकता। सहयोग ही समाज की नींव है। मनुष्य की नाना प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति केवल समाज में ही रह कर हो सकती है। अतः श्री बेनीप्रसाद[1] लिखते हैं कि मानव-जाति के लिए समाज का होना अनिवार्य है। यदि मनुष्य इकट्ठे नहीं रहते तो बहुत शीघ्र समाप्त हो जाते।

(c) **समाज भलाई के लिए आवश्यक है** (also essential for good life)—सामाजिक, राजनैतिक तथा वैज्ञानिक (social, political and scientific) आदि क्षेत्रों की सामूहिक उन्नति का अर्थ ही सभ्यता है। सभ्यता का अर्थ है कि अपने आस-पास के प्राकृतिक वातावरण (natural environments) तथा चीजों पर मनुष्य का आधिपत्य या नियन्त्रण (control)। मनुष्य ने अनेक प्रकार के वैज्ञानिक यन्त्र (scientific instruments) बना लिये हैं। रेल, तार, डाक, टेलीफोन, रेडियो और अनेक प्रकार की कलें (machines) मनुष्य ने समाज की ही सहायता से बनाई

1. Dr. Beni Prasad says, "Society is indispensable for the human race. If men did not live together, they would soon cease to be."

हैं। मनुष्य अकेला तो शेर तथा भालुओं से अपनी भी रक्षा नहीं कर सकता।

यदि मनुष्य अकेला रहता, तो कुछ ज्ञान प्राप्त न कर पाता। वह अकेला रह कर एक अच्छा गणितज्ञ (mathematician), राजनीतिज्ञ (politician), इतिहासज्ञ (historian) तथा ज्योतिष, नक्षत्रविद्या (astronomy) और भौतिक विज्ञान का ज्ञाता नहीं बन सकता था। परन्तु मनुष्य समाज में रहा और ज्ञान का भण्डार इकट्ठा किया। उसने श्रम (labour) को बाँटा और किसी ने कुछ कार्य किया और किसी ने कुछ। उसका फल आज यह है कि मानव-समाज के पास अनन्त ज्ञान का भण्डार है जिस से मनुष्य अपनी उन्नति कर सकता है।

ज्ञान और विज्ञान की रक्षा केवल सामाजिक जीवन में ही सम्भव है। यदि मनुष्य अकेला रहता तो तमाम ज्ञान उसकी मृत्यु के पश्चात् ही नष्ट हो जाता परन्तु समाज ज्ञान को सुरक्षित रखता है। एक मनुष्य की खोज या आविष्कार (invention) से दूसरा लाभ उठाता है और इस प्रकार से यह ज्ञान का ताँता चलता रहता है। अनेक प्रकार की कलें अलग-अलग मनुष्य ने जारी कीं परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् ये सब समाज ने अपना लीं और उनको समाप्त नहीं होने दिया।

यदि मनुष्य समाज से बिल्कुल अलग-थलग रहता तो उसका सारा समय केवल अपनी रक्षा करने के तरीकों को सोचने में लग जाता और वह किसी क्षेत्र में भी किसी प्रकार की उन्नति न कर पाता परन्तु मनुष्य समाज में रहा और एक दूसरे के सम्बन्ध में आया। विचारों का आदान-प्रदान हुआ। श्रम का विभाजन हुआ। कोई मनुष्य खेती करने लगा, कोई उद्योग-धन्धे तथा किसी ने अपने ऊपर रक्षा का भार लिया। अतः प्रत्येक मनुष्य को यह सुविधाएँ प्राप्त हुईं (केवल समाज द्वारा) कि वह किसी क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त कर सके।

समाज का वर्तमान आर्थिक ढाँचा केवल सामाजिक जीवन के द्वारा ही प्राप्त हुआ है। श्रम के विभाजन (division of labour) और एक साथ कार्य करने से देश की उत्पादन-शक्ति बढ़ती है। अकेले मनुष्य को अकाल का सदा भय रहे। खेती की उन्नति के लिए लोगों ने आपस में मिल-जुलकर अनेक कलों का आविष्कार (invention) कर लिया है। सामाजिक जीवन का ही यह फल है कि लाखों लोगों के सहयोग (co-operation) से कपड़ा, चीनी और अनेक प्रकार की अन्य वस्तुएँ कारखानों में बनती हैं।

जब मनुष्य एक दूसरे के सम्बन्ध में आया तो पहले-पहल इशारों से उसने काम लिया। फिर आपस में बोलचाल हुई क्योंकि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपने विचार प्रकट करना चाहता था। इस प्रकार से भाषा का जन्म हुआ। यदि मनुष्य अकेला रहता तो भाषा का जन्म कभी भी नहीं हो सकता था। शनैः शनैः समाज में भाषा के द्वारा ही साहित्य, नृत्य तथा कला का जन्म हुआ। मनुष्य ने किसी क्षेत्र में जो उन्नति की, उसने उसको भाषा में प्रकट किया। वेदों तथा उपनिषदों के ज्ञान को सामाजिक जीवन द्वारा ही फैलाया गया। सामाजिक जीवन से ही संस्कृति की उन्नति होती है।

राज्य के प्रारम्भ से पूर्व सामाजिक जीवन का आरम्भ हो चुका था। सामाजिक

जीवन से ही हम एक दूसरे से सहानुभूति तथा प्रेम करना सीखते हैं। सामाजिक जीवन से ही शान्ति प्राप्त होती है। राज्य समाज का केवल एक अंग है। राज्य की स्थापना केवल समाज में ही हो सकती है। समाज मनुष्य जीवन के विकास का आधार है। समाज मनुष्य के रीति-रिवाजों सथा विश्वासों की रक्षा करता है। मनुष्य को समाज के द्वारा ही पूर्व ज्ञान की प्राप्ति होती है जिससे वह पहाड़ों पर सड़कें बना सकता है तथा समुद्रों में ज्योति-स्तम्भ (light-houses) स्थापित कर सकता है।

समाज का प्रयोजन और समाज में सहयोग का मूल्य
(Purpose of Society and Value of Co-operation in Society)

समाज का जन्म इसलिए हुआ कि इसकी मनुष्य के शारीरिक अस्तित्व (physical existence) के लिए ही केवल आवश्यकता नहीं बल्कि उसके मानसिक और नैतिक (mental and moral) उन्नति के लिए भी। दूसरे शब्दों में यूं कहिए कि समाज का जन्म इसलिए हुआ कि मनुष्य में एक स्वाभाविक प्रवृत्ति (natural tendency) है कि वह समाज में रहे, अन्य मित्रों तथा सम्बन्धियों से मिले-जुले और खेले-कूदे। समाज में ही रह कर मनुष्य का हर एक प्रकार से विकास हो सकता है। समाज में ही रह कर मनुष्य जंगली जानवरों तथा खराब मौसम से अपनी रक्षा कर सकता है। मनुष्य समाज में ही रह कर अपने व्यक्तित्व (individuality) का विकास कर सकता है। समाज में कोई मनुष्य कुछ कार्य करता है और कोई कुछ। इससे लाभ यह है कि एक मनुष्य अपना ध्यान एक काम की तरफ लगा सकता है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे हर एक उद्योग-धन्धे को अपनाने की आवश्यकता नहीं। समाज इस प्रकार का वातावरण (atmosphere) उत्पन्न करता है कि मनुष्य की सर्वांगीण (all-sided) उन्नति हो सके। लेकिन एक मनुष्य की उन्नति तभी हो सकती है जब कि वह समाज की ओर अपने कर्तव्यों का पालन करे, अपने अधिकारों की सुरक्षा करे और दूसरे मनुष्यों के अधिकारों को न छीने अथवा पद-दलित न करे। मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह दूसरे के अधिकारों का भी विशेषतया मान करे। समाज मनुष्य में इस प्रकार की भावना उत्पन्न करता है कि व्यक्ति न केवल अपने गाँव, जिले, प्रान्त तथा देश से प्रेम करे बल्कि संसार से प्रेम करे। उसके सामने केवल गाँव की भलाई ही उद्देश्य नहीं होना चाहिए बल्कि मानव-जाति का हित उसको सब से अधिक प्यारा होना चाहिए।

समाज को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक है कि सब नर-नारी सहयोग (co-operation) का मूल्य समझें। समाज में मिल-जुलकर काम करने को ही सहयोग कहते हैं। समाज किसी व्यक्ति (individual) को दूसरे नागरिक की सहायता करने के लिए विवश नहीं कर सकता केवल प्रार्थना कर सकता है। इसी प्रकार से सार्वजनिक कार्य (public works), जैसे कि गाँव के लिए कोई सड़क बनानी है, तो उसमें तमाम गाँव वालों की आवश्यकता पड़ेगी और उनका सहयोग होना ही चाहिए। घर, विद्यालय तथा खेल के मैदानों में सहयोग होना चाहिए। राज्य-प्रबन्ध करने के लिए सरकार को जनता की सहायता चाहिए। जनतन्त्र या लोकतन्त्र (democracy) को

चलाने के लिए तो यह नितान्त आवश्यक है। भारत सरकार की पंचवर्षीय योजना (five-year plan) तथा सामुदायिक योजनाएँ (community projects) का आधार सहयोग (public co-operation) ही है।

समाज और व्यक्ति में सम्बन्ध
(Relation between the Individual and the Society)

व्यक्ति और समाज में घनिष्ठ सम्बन्ध है। व्यक्ति समाज का एक अंग मात्र है। जैसे वृक्षों के समूह के बिना वन (forest) नहीं बन सकता, उसी प्रकार व्यक्तियों के बिना समाज नहीं बन सकता। जब कभी मनुष्य आपस में मिल-जुलकर सार्वजनिक हित के लिए काम करते और रहते थे तो यह समाज कहलाया। समाज बनाने के लिए मनुष्यों का एक उद्देश्य होना चाहिए। यद्यपि व्यक्ति और समाज के हितों (interests) में कोई भेद नहीं है तथापि कोई-कोई विचारक ऐसा मानते हैं कि व्यक्ति तथा समाज के हितों में विरोध है। आदर्शवादी (Idealists) और आंगिक सिद्धान्त (Organismic views) को मानने वाले लेखक समाज को लक्ष्य या उद्देश्य (end) मानते हैं और व्यक्ति को केवल निमित्त (means) और इसके विरुद्ध व्यक्तिवादी (Individualists) व्यक्ति को लक्ष्य (end) और समाज को निमित्त मानते हैं।

समझौता तथा व्यक्तिवादी सिद्धान्त—सामाजिक समझौते के अनुसार समाज प्राकृतिक नहीं बल्कि अप्राकृतिक है। समाज को मनुष्यों ने इसलिए बनाया कि इसके बिना जीवन की रक्षा सम्भव न थी। समाज को व्यक्ति की भलाई हेतु लोगों ने आपस में मिल-जुलकर समझौते से पैदा किया। अतः उनके विचार में व्यक्ति साध्य (end) और समाज साधन (means) है। प्राचीन काल में प्लेटो और एरिस्टॉटल से पूर्व कुछ लेखकों, जैसे थरेसीमेकस का विचार था कि समाज की रचना शक्तिशालियों के हितार्थ हुई (Justice is the interest of the stronger)। हॉब्स तथा लॉक (Hobbes and Locke) के अनुसार मनुष्य ने समाज की रचना की क्योंकि समाज बनने से पहले मनुष्यों का जीवन कष्टमय था। अतः हॉब्स के मतानुसार समाज समझौते से बनाया गया। लॉक के अनुसार सरकार को व्यक्ति की भलाई में सदा लीन रहना चाहिए। जो सरकार जनता की भलाई न कर सके, लोगों को यह अधिकार है कि उसको बदल सकें।

इसी मत को व्यक्तिवादियों ने उन्नीसवीं शताब्दी में अपनाया। उनका विचार था कि समाज व्यक्तियों के हित के लिए है न कि व्यक्ति समाज के हित के लिए। उन का विचार था कि मनुष्य को यह अधिकार है कि वह राज्य या समाज के हस्तक्षेप के बिना अपनी उन्नति किसी प्रकार से भी कर सकता है। समाज को मनुष्य के लक्ष्य की अधिक पूर्ति करनी चाहिए। मनुष्य ने अपनी सुविधा (facility) के लिए ही सामाजिक संगठन बनाया, अतः समाज का कर्त्तव्य मनुष्य को लाभ पहुँचाना है और यदि समाज मनुष्य के इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता तो व्यक्ति को यह अधिकार है कि समाज को विध्वंस कर सके। जैसे मनुष्य ने हित के लिए बिजलीघर बनाया, उसी प्रकार से उसने समाज का निर्माण किया। परन्तु ये विचार ठीक नहीं हैं क्योंकि

मनुष्य को यह अधिकार नहीं कि जब चाहे वह समाज को भंग कर दे। व्यक्तिवादी (Individualists) इस धारणा में विश्वास रखते हैं कि समाज के विरुद्ध मनुष्य को अपने स्वार्थ सिद्ध करने का सर्वदा अधिकार है जो कि न्याय-संगत नहीं है। व्यक्ति को अत्यधिक स्वार्थी नहीं होना चाहिए। परार्थ या सामाजिक हित उसको प्रिय होना चाहिए।

आंगिक (Organismic) **और आदर्शवादी सिद्धान्त** (Idealists)—आंगिक सिद्धान्त को मानने वाले समाज को व्यक्ति से एक स्वतन्त्र चीज गिनते हैं। वे कहते हैं कि जैसे शरीर का कोई भाग भी शरीर के बिना जीवित नहीं रह सकता, उसी प्रकार मनुष्य समाज से अलग रह कर न भली प्रकार जी सकता है और न अपने व्यक्तित्व का साधारणतया विकास ही कर सकता है। आंगिक (Organism) उसे कहते हैं जिसमें जीवन हो और उत्पन्न हो कर शनैः शनैः बढ़े, विकास को प्राप्त हो और अन्त में मृत्यु को प्राप्त हो जाय। पौधे, मनुष्य का शरीर अथवा पशु का शरीर सब आंगिक कहे जाएँगे। आंगिक सिद्धान्त में विश्वास रखने वालों में प्लेटो (Plato), सिसरो (Cicero), मार्सिगलियो (Marsiglio), हॉब्स (Hobbes), और ब्लंटशली (Bluntschilli) के नाम मुख्य हैं। जिस प्रकार मनुष्य के शरीर के छोटे-बड़े भाग होते हैं और वे आपस में एक दूसरे के बिना कोई काम नहीं कर सकते, उसी प्रकार समाज में भी अनेक श्रेणियाँ और वर्ग होते हैं और उनका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। जिस प्रकार आरम्भ में मनुष्य केवल एक जीव से बढ़कर इतना बड़ा हो जाता है, उसी प्रकार समाज केवल परिवार इत्यादि से बढ़कर इतना जटिल हो गया। शुरू में मनुष्य जंगली था। कुछ समय के पश्चात् समाज में अनेक समुदाय (associations) पैदा हुए और समाज इतना जटिल रूप धारण कर गया। हीगेल जैसे आदर्शवादी समाज को परमात्मा की देन मानते हैं (State is a march of God on earth)। आंगिक मत भ्रमात्मक है। उनका यह विचार कि समाज तथा शरीर एक ही है, ठीक नहीं। यह विचारने योग्य चीज है कि समाज का व्यक्तियों से सम्बन्ध वैसा नहीं है जैसा कि कोशों (cells) का शरीर से। आदर्शवादियों का यह विचार कि व्यक्ति समाज के लिए केवल साधन मात्र है, ठीक नहीं है।

समाज तथा व्यक्ति में सच्चा सम्बन्ध—समाज और व्यक्ति का जो सच्चा सम्बन्ध है उसको न तो व्यक्तिवादी (Individualists) और न ही आंगिक सिद्धान्त को मानने वाले प्रकाशित कर पाये हैं। इसी प्रकार से आदर्शवादियों का सिद्धान्त भी भ्रमात्मक है। यह वास्तव में ठीक प्रतीत नहीं होता कि व्यक्ति को समाज के लूटने तथा समाज का अहित करके अपने आपको लाभ पहुँचाने का अधिकार प्रदान कर दिया जाए। इसके विरुद्ध समाज की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, समाज केवल व्यक्तियों से मिलकर ही बनता है। व्यक्तियों के आपसी मेल-मिलाप तथा सम्बन्ध को ही समाज कहते हैं। यदि व्यक्ति न होंगे तो समाज कैसे बन सकता है। स्पेन्सर जो कि आंगिक मत को मानता था, कहता था कि समाज में मनुष्य शरीर की तरह चेतना का एक केन्द्र (common sensorium) नहीं होता है। हम एक दूसरे के सुखों में हिस्सा लेते हैं

परन्तु जिस प्रकार शरीर के भाग शरीर के सुख-दुःखों का अनुभव करते हैं उसी तरह हम एक दूसरे के सुख-दुःखों का अनुभव नहीं करते हैं। यह कहना कि समाज का अपना एक मन है जो कि इन सदस्यों के मनों से भिन्न है, सर्वथा अनुचित है। समाज में प्रत्येक मनुष्य चेतना का एक स्वतन्त्र केन्द्र है।

सामाजिक समझौते का सिद्धान्त ठीक नहीं है क्योंकि यह समाज को एक कृत्रिम (artificial) वस्तु गिनता है। यह भूल जाता है कि मनुष्य स्वभाव और आवश्यकता से एक सामाजिक प्राणी है। इसी प्रकार समाज को विराट और अनन्त तथा सर्वशक्तिमान मान कर व्यक्ति को केवल उसका एक निमित्त मात्र मानना भूल होगी। समाज मनुष्य की प्रकृति और मनुष्य की आवश्यकताओं पर अवलम्बित है। हम समाज में रहते हैं क्योंकि समाज के बिना हम न तो अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर सकते हैं और न ही सभ्यतापूर्ण जीवन बिता सकते हैं। इस प्रकार हमारे सामाजिक सम्बन्ध आंशिक रूप में स्वाभाविक और आंशिक रूप में कृत्रिम हैं।

समाज उद्देश्य और साधन दोनों है। मनुष्यों का आपस में एक दूसरे के साथ मिल-जुलकर रहने का नाम ही समाज है। समाज की नींव मनुष्यों के सहयोग पर है। मनुष्य का कर्तव्य है कि वह समाज की सेवा में सदा लीन रहे। समाज और व्यक्ति एक दूसरे पर निर्भर हैं। जिस प्रकार हाथ, पैर और अनेक अंगों के बिना शरीर कोई वस्तु नहीं, उसी प्रकार व्यक्तियों से भिन्न समाज कोई ईश्वरीय वस्तु नहीं है। समाज की सेवा का अर्थ केवल यही है कि समाज में जो दीन-दुखिया मनुष्य हैं उनकी सेवा की जाय। व्यक्ति समाज के लिए है, इसका केवल यही सच्चा अर्थ लेना चाहिए कि मनुष्य को अपनी खुदगर्जी, स्वार्थ (selfishness) छोड़ कर दूसरे व्यक्तियों की भलाई के लिए सारा जीवन बलिदान कर देना चाहिए। और समाज का उद्देश्य व्यक्ति की भलाई होना चाहिए। समाज की उन्नति में ही मनुष्य की उन्नति निहित है और मनुष्य की उन्नति से ही समाज ऐश्वर्यपूर्ण बनता है। अतः दोनों में आपस में कोई विरोध-भाव नहीं है। दोनों एक दूसरे पर निर्भर हैं। समाज व्यक्ति के लिए और व्यक्ति समाज के लिए है। डाक्टर बेनी प्रसाद लिखते हैं, "क्योंकि समाज व्यक्तियों से ही बनता है, इसलिए दोनों के हितों में आपस में कोई विरोध नहीं हो सकता। समाज व्यक्तियों से अलग, या उसके ऊपर कोई चीज नहीं। व्यक्तियों का दिलोदिमाग़ ही समाज का दिलोदिमाग है। व्यक्ति जीवित है तो समाज जीवित है, व्यक्ति जीवित नहीं तो समाज भी जीवित नहीं रह सकता। इसी तरह समाज के जीवित रहने पर ही व्यक्ति भी जीवित रह सकते हैं, अन्यथा नहीं।"

समाज का जन्म और विकास (Origin and Evolution of Society)

समाज की उत्पत्ति कब और कैसे हुई; इसका इतिहास जो कि बिल्कुल ठीक हो कहीं नहीं मिलता। इस कारण इस सम्बन्ध में विचारकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार के सिद्धान्त[1] बनाये हैं; उनमें निम्नलिखित सिद्धान्त अधिक प्रसिद्ध हैं :

---

1. नोट : इनकी विस्तारपूर्वक व्याख्या 'राज्य की उत्पत्ति' अध्याय में की जायगी।

१. समाज की उत्पत्ति का दैवी सिद्धान्त (Divine Theory);

२. सामाजिक समझौते का सिद्धान्त (Contract Theory);

३. पैतृक और मातृक सिद्धान्त (Patriarchal and Matriarchal Theories); और

४. विकासवादी या ऐतिहासिक सिद्धान्त (Historical or Evolutionary Theory)।

समाज की उत्पत्ति का दैवी सिद्धान्त (Divine Theory)—इस मत को मानने वाले कहते हैं कि समाज को ईश्वर ने बनाया। ईश्वर मनुष्य के सारे कार्यों पर नियन्त्रण रखता है। ईश्वर ने तमाम समुदाय और संस्थाएँ बनाई हैं। ईश्वरीय शक्ति ने ही मनुष्य, समाज तथा उसके विभिन्न रूपों की रचना की है। समाज को उत्पन्न करने या उसकी उन्नति में मनुष्य का कुछ हाथ नहीं, बल्कि ईश्वर की शक्ति ही प्रधान है। प्राचीन काल में इस मत का बहुत बोलबाला था। समाज में किसी प्रकार का दखल पुजारी-पण्डे मनुष्य को नहीं देने देते थे। यहाँ तक कि पुजारी-पण्डे मनुष्यों को समाज की कुरीतियाँ ठीक करने का भी अधिकार नहीं देते थे। यह सिद्धान्त समाज में सुधार के बिल्कुल विरुद्ध रहा। यह सिद्धान्त विश्वास रखता था कि राजा ईश्वर का अवतार है। राजा अपने सामाजिक कार्यों के लिए समाज के प्रति उत्तरदायी न होकर ईश्वर के प्रति उत्तरदायी है। यह सिद्धान्त मनुष्य को निष्क्रिय बना देता है अतः अब यह सिद्धान्त मृतप्राय हो चुका है।

सामाजिक समझौते का सिद्धान्त (Contract Theory)—इस सिद्धान्त के निर्माता हॉब्स (Hobbes), लॉक (Locke) तथा रूसो (Rousseau) थे। हॉब्स का विचार था कि आदिम युग में मनुष्य 'प्राकृतिक अवस्था' (State of Nature) में थे। मनुष्य की प्राकृतिक अवस्था में बहुत दुर्दशा थी। सदा कलह और युद्ध रहता था। प्राकृतिक अवस्था में शान्ति बिल्कुल न थी और जीवन-रक्षा का कोई उपाय न था। अतः मनुष्यों ने दुःखी होकर समाज का निर्माण किया। लॉक का विचार था कि प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य की इतनी अधिक दुर्दशा न थी जैसी कि हॉब्स ने चित्रित की है। उनका विचार था कि समाज बनने से पूर्व प्राकृतिक कानून (natural law) मनुष्यों के जीवन को नियम में रखता था परन्तु प्राकृतिक कानून को मनवाने वाला कोई शासक या सरकार न थी। अतः झगड़े बढ़ते गए। आखिरकार मनुष्यों ने इस हालत से तंग होकर समाज का निर्माण किया और आपस के झगड़ों का निपटारा करने के लिए एक वैधानिक सरकार (constitutional Govt.) को जन्म दिया। हॉब्स ने समाज से उत्पन्न होने वाली सरकार को सब अधिकार दे दिये परन्तु लॉक ने कहा कि यदि सरकार लोगों के लाभ के लिए कार्य नहीं करती तो जनता को उसे बदलने का अधिकार है। अतः हॉब्स और लॉक में इस विषय में मतभेद है। रूसो का विचार था कि प्राकृतिक अवस्था (State of Nature) में मनुष्यों का जीवन आदर्श सुख का था। धीरे-धीरे आबादी बढ़ने के कारण मनुष्यों में स्वार्थ उत्पन्न हुआ और मनुष्य का जीवन दुखित हो गया, अतः उसने समाज की उत्पत्ति की। ये विचार

भ्रामक हैं क्योंकि ये राज्य को कृत्रिम (artificial) मानते हैं। समाज मशीन की भाँति नहीं पैदा किया जा सकता।

पैतृक या मातृक सिद्धान्त (Patriarchal and Matriarchal Theories)—सर हेनरी मेन का विचार था कि मनुष्यों का संगठन सब से पहले ऐसे परिवारों में हुआ जिसमें पुरुष कर्त्ता गिने जाते थे। परिवार का मुखिया (Head) उस कुटुम्ब के सब से बड़े पुरुष (eldest male member) को गिना जाता था। मातृक सिद्धान्त को मानने वाले ऐसा कहते हैं कि मनुष्य का संगठन उन कुटुम्बों में हुआ जिन में स्त्री प्रमुख मानी जाती थी। कुटुम्बों की धीरे-धीरे वृद्धि से गोत्रात्मक समूह (clan) और बड़ा जनसमूह (tribe) बना। इन सिद्धान्तों में पूर्ण सत्यता नहीं है। क्योंकि इनको मानव-समाज की उत्पत्ति का सिद्धान्त नहीं माना जा सकता। समाज का विकास इस प्रकार से हुआ, कुछ हद तक ऐसा माना जा सकता है।

विकासवादी या ऐतिहासिक सिद्धान्त (Historical or Evolutionary Theory)—समाज की उत्पत्ति के सिद्धान्तों में सब से अधिक संतोषजनक (satisfactory) यह ही सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त मानता है कि समाज की उत्पत्ति न तो ईश्वर ने किसी खास दिन की और न ही समझौते के फलस्वरूप समाज बना। इस सिद्धान्त के अनुसार समाज का जन्म किसी खास तारीख या विशेष तिथि को नहीं हुआ बल्कि धीरे-धीरे अपने आप हो गया। मनुष्य तो सदा से ही समाज में रहता आया है। मनुष्य अपने स्वभाव और आवश्यकता से समाज में रहता है। आरम्भ काल में मनुष्य का जीवन बहुत सादा था। आहिस्ता-आहिस्ता वह जटिल (complicated) होता गया। यह सिद्धान्त उत्पत्ति की अपेक्षा विकास के सम्बन्ध में अधिक बतलाता है। विकास में लम्बे इतिहास को मोटे तौर पर चार युगों में बाँट सकते हैं—(१) आखेट युग (Hunting Stage); (२) चरवाहों का युग (Pastoral Stage); (३) कृषि युग (Agricultural Stage); और (४) औद्योगिक युग (Industrial Stage)।

आखेट युग (Hunting Stage)—इस युग में मनुष्यों की जीविका (livelihood) आखेट पर निर्भर थी। इस अवस्था में मनुष्य का विशेष सामाजिक संगठन न था। जीविका प्राप्त करनी अत्यन्त कठिन थी, कभी-कभी भूखा भी रहना पड़ता था। पारिवारिक व्यवस्था भी कोई विशेष न थी। न कोई राजा था और न कोई प्रजा। मनुष्य का सामाजिक संगठन केवल गिरोहों तक सम्बन्धित था और एक गिरोह के सब पुरुष दूसरे गिरोहों की स्त्रियों से अपना पति-पत्नी का सम्बन्ध रखा करते थे। उन लोगों को सभ्यता संस्कृति का तनिक भी ज्ञान नहीं था। आपस में लोग एक दूसरे से लड़ा करते थे।

चरवाह-अवस्था (Pastoral Stage)—चरवाह-अवस्था का आरम्भ उस काल से माना जाता है जबकि मनुष्यों ने पशुओं को मारने की बजाय उनका पालन करना सीख लिया। पालतू पशुओं से मनुष्यों को बहुत लाभ हुआ। रोजी कमाना अब इतना कठिन न रह गया। अतः मनुष्यों ने समाज-सुधार की ओर ध्यान दिया, विशेषतया गृहस्थ-जीवन में परिवर्तन हुए। विवाह की प्रथा जारी हुई और मनुष्य

इच्छानुसार विवाह कर सकते थे। कोई-कोई तो कई विवाह कर लेते थे। विवाह की प्रथा का एक विशेष लाभ हुआ कि संगठित पारिवारिक जीवन का आरम्भ हो गया। पिता को परिवार में सबसे ज्यादा अधिकार प्राप्त थे। कुछ परिवारों के संगठन से गोत्र बना। गोत्र के सभी सदस्यों में खून का सम्बन्ध था। लोग साधारणतया चरागाह की तलाश में घूमते-फिरते थे। आपस में कई बार एक परिवार का अन्य परिवार से चरागाह पर अधिकार के प्रश्न पर झगड़ा भी हो जाता था। उस समय प्रत्येक परिवार का एक नेता बन जाता था। जायदाद की प्रथा इस काल में ही आरम्भ हुई।

कृषि-युग (Agricultural Stage)—कृषि के समाज में आरम्भ होने से तीसरी अवस्था आरम्भ हुई। जब कृषि आरम्भ हो गई तो कृषक ने भेड़-बकरी चराने वाले की तरह घूमने-फिरने की अपेक्षा एक स्थान पर रहना आरम्भ कर दिया। अतः गाँव की बुनियाद पड़ी। चूंकि कृषक हर समय लड़ने के लिए नहीं जा सकता था, अतः योद्धाओं के नये वर्ग का निर्माण हुआ। अतः समाज में श्रम-विभाजन तथा जात-पाँत की तमीज या वर्ण-व्यवस्था का बीजारोपण हुआ। राजा और प्रजा का सम्बन्ध भी इसी युग में स्थापित हुआ। कृषि की उन्नति से उद्योग-धन्धों की उन्नति हुई और व्यापार आरम्भ हुआ; लुहार, खाती, चमार, धोबी, तेली, कुम्हार तथा अन्य पेशे निकल आये। ग्रामों की सीमाएँ बढ़ाने के लिए युद्ध होने लगे। बड़े-बड़े राज्यों का आखिरकार निर्माण हो गया।

औद्योगिक युग (Industrial Stage)—कृषक अवस्था के पश्चात् इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) हुई। अनेक प्रकार के वैज्ञानिक यन्त्रों (scientific instruments) का आविष्कार हुआ। सामन्तशाही (feudalism) की अपेक्षा पूंजीवाद (capitalism) का अधिक जोर आया। एक देश का व्यापार दूसरे दूर के देशों से होने लगा। यातायात (communication system) की सुविधाएँ अधिक प्राप्त होने लगीं। मजदूर वर्ग की बुनियाद पड़ी। देशों में महायुद्ध होने लगे।

सारांश

समाज का अर्थ और आवश्यकता—समाज समान उद्देश्य रखने वाले मनुष्यों का एक समूह है। समाज और भीड़ में अन्तर है, समाज में सामान्य उद्देश्य (general aims) होता है। परन्तु भीड़ में ऐसा नहीं होता। श्री मैकइवर के अनुसार मनुष्य का एक दूसरे के साथ ऐच्छिक सम्बन्ध ही समाज है। अरस्तू ने लिखा कि मनुष्य स्वभाव से ही सामाजिक प्राणी है और वह जो अकस्मात् ही नहीं परन्तु स्वभाव से बिना समाज के है, या मनुष्यता के ऊपर है या इसके नीचे। मनुष्य के अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास केवल समाज में ही हो सकता है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि भिन्न-भिन्न समुदायों से करता है, अतः मनुष्य स्वभाव तथा आवश्यकता से एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य की रोटी, मकान तथा कपड़े की आवश्यकता बिना समाज के पूरी नहीं हो सकती। रोटी खाकर मनुष्य जीवित रह सकता है परन्तु जंगली जानवरों से उसकी रक्षा असम्भव है क्योंकि प्रकृति ने उसको सिंह जैसी शक्ति नहीं दी है। समाज सभ्यता की उन्नति करता है। इससे ही ज्ञान की प्राप्ति होती

है। सामाजिक जीवन ज्ञान प्राप्त करने और सत्य का पता लगाने के लिए समय और सुविधाएँ प्रदान करता है। यह मनुष्य की आर्थिक उन्नति करता है तथा संस्कृति और भाषा का विकास करता है। इससे व्यवस्था में भी सहायता मिलती है। अतः समाज का जन्म इसलिए हुआ कि इसकी मनुष्य के शारीरिक अस्तित्व के लिए ही केवल आवश्यकता नहीं बल्कि उसके मानसिक और नैतिक उन्नति के लिए भी प्रजातन्त्र में जनता का सहयोग आवश्यक है।

समाज और व्यक्ति में सम्बन्ध—व्यक्ति और समाज में घनिष्ठ सम्बन्ध है। आदर्शवादी (idealists) और आंगिक सिद्धान्त (organismic views) को मानने वाले लोग समाज को लक्ष्य या उद्देश्य मानते हैं और व्यक्ति को केवल निमित्त। व्यक्तिवादी (individualists) व्यक्ति को लक्ष्य और समाज को निमित्त मानते हैं। समझौते के अनुसार समाज प्राकृतिक नहीं बल्कि अप्राकृतिक है। समाज को मनुष्यों ने इसलिए बनाया कि इसके बिना जीवन की रक्षा सम्भव न थी—व्यक्ति की भलाई के लिए लोगों ने समाज को समझौते द्वारा उत्पन्न किया, अतः उनके विचार में व्यक्ति साध्य और समाज साधन है। व्यक्तिवादियों ने कहा कि समाज व्यक्तियों के हित के लिए है न कि व्यक्ति समाज के लिए। मनुष्य को यह अधिकार है कि वह राज्य या समाज के दखल के बिना अपनी उन्नति किसी प्रकार से भी कर सकता है। व्यक्तिवादियों का मत था कि व्यक्ति को समाज के विरुद्ध अपने स्वार्थ सिद्ध करने का सर्वदा अधिकार है परन्तु इस विचार की कड़ी आलोचना की गई है। आंगिक सिद्धान्त को मानने वाले समाज को व्यक्ति से एक स्वतन्त्र चीज गिनते हैं—जैसे शरीर का कोई भाग शरीर से अलग रह कर जीवित नहीं रह सकता, उसी प्रकार मनुष्य समाज से अलग रह कर न भली प्रकार जीवित रह सकता है और न अपने व्यक्तित्व का पूर्ण रूप से विकास कर सकता है। पौधे की भाँति समाज भी शनैः शनैः बढ़ा। हीगेल जैसे आदर्शवादी समाज को परमात्मा की देन मानते थे। ये सारे सिद्धान्त भ्रमात्मक हैं। सच्चा सिद्धान्त यह है कि समाज और व्यक्ति एक दूसरे पर निर्भर हैं और समाज उद्देश्य और साधन दोनों है—समाज व्यक्ति के लिए और व्यक्ति समाज के लिए है।

Questions

1. Explain the proposition that man is a social animal. *(U. P. 1948)*

2. "Man is by nature and necessity a social animal." Explain clearly giving illustrations. *(U. P. 1949)*

3. What do you understand by the term "Society" ? Describe the different theories of the origin of society and criticise them.

4. Explain the relation between society and the individual. Is there a conflict between them ?

5. Explain the proposition of Prof. MacTeggart that not society but the individual is the end of social life. *(U. P. 1929)*

अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. "सहयोग जीवन का मुख्य आधार है" आलोचना कीजिए। (यू० पी० १९२८)

२. "व्यक्ति सामाजिक जीवन का अन्तिम उद्देश्य है, समाज नहीं" प्रोफेसर मक्टेगर्ट के इस कथन की व्याख्या कीजिए। (यू० पी० १९२९)

३. समाज की उत्पत्ति के विषय में विविध सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए और उनकी आलोचना कीजिए। (यू० पी० १९३२)

४. "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है," इस कथन की व्याख्या कीजिए। (यू० पी० १९३६)

५. स्वभाव और आवश्यकता से मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, उदाहरण देते हुए इस कथन की स्पष्ट व्याख्या कीजिए। (यू० पी० १९४०)

६. क्या समाज एक उद्देश्य है अथवा एक साधन ? इस कथन पर विचार कीजिए।

तीसरा अध्याय

व्यक्ति और समुदाय

(Individual and Associations)

पहले यह बताया जा चुका है कि मनुष्य स्वभाव तथा आवश्यकता से एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में इसलिए रहता है कि अकेला रह कर वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। अपने जीवन के आरम्भ से लेकर वह समाज में ही रहता आया है। ज्यों-ज्यों सभ्यता (civilisation) की उन्नति होती गयी, त्यों-त्यों मनुष्यों में सहयोग की मात्रा बढ़ती गयी। मनुष्य को अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है। स्वयं ही वह कपड़ा, खाना, मकान तथा अन्य वस्तुएँ नहीं बना सकता। राज्य (state) उसकी सब आवश्यकताएँ पूरी करने में असमर्थ है, अतः अनेक समुदायों का समाज में जन्म होता है।

समुदाय क्या है—प्रोफेसर अम्बादत्त पन्त के अनुसार "संघ से अर्थ मनुष्यों के उस समूह से है जो किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कार्य करता है तथा कुछ नियमों के अधीन है। इन नियमों का अगर कोई पालन न करे तो उसका साधारणतया संघ से बहिष्कार कर दिया जाता है।" "समुदाय मनुष्यों का एक संगठन है जो किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के हेतु स्थापित किया जाता है। अतएव प्रत्येक समुदाय के लिए सदस्यों, एक विशिष्ट उद्देश्य तथा उसे प्राप्त करने के हेतु एक निश्चित विधि का होना आवश्यक है। इन में से किसी एक तत्त्व की अनुपस्थिति में कोई भी संगठन समुदाय नहीं कहा जा सकता। इसलिए यदि रेल के एक डिब्बे में बैठे हुए यात्रियों को समुदाय की संज्ञा दी जाय तो वह सर्वथा अनुचित होगी, कारण उनमें उद्देश्य के ऐक्य का अभाव है।"

समाज तथा समुदाय में अन्तर (Difference between Society and Association)

यद्यपि दोनों का आरम्भ एक ही प्रकार की शक्तियों द्वारा हुआ, तथापि उन में बहुत भेद है। पहला भेद यह है कि समाज समुदायों से बहुत प्राचीन है। जब समाज बन गया और सभ्यता के अंकुर फूटे, तो साथ-साथ समुदाय (associations) भी बने। बिना समाज के समुदायों के बनने का विचार भी नहीं किया जा सकता। दूसरे, समाज का क्षेत्र समुदाय से कहीं ज्यादा विस्तृत है। समाज का कोई विशेष ध्येय (aim) नहीं रहता जिस प्रकार कि समुदायों का होता है। समाज का प्रयोजन तो केवल इतना ही है कि सब की भलाई हो और इसलिए समाज में शान्ति रहे, अतः समाज का ध्येय सामान्य (common) है और समुदायों का विशिष्ट (particular) होता है। समाज का यही सामान्य उद्देश्य है कि उसमें रहने वाले सभी सदस्यों की

उन्नति हो। विभिन्न (different) समुदाय अपने सदस्यों की आर्थिक, राजनैतिक (political) या सांस्कृतिक (cultural) उन्नति करना अपना धर्म समझते हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि समाज एक वृक्ष के समान है और समुदाय (associations) उसके फूल और बेलों की तरह हैं। तीसरे, समाज की सदस्यता (membership) अनिवार्य (compulsory) है परन्तु समुदायों (associations) की सदस्यता मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है। मनुष्य चाहे जब किसी समुदाय को छोड़ सकता है। चौथे, समुदाय अस्थायी (non-permanent) होते हैं। समुदाय नित्य बिगड़ते और बनते रहते हैं परन्तु समाज सर्वदा रहने वाली चीज है। जब तक मनुष्य पृथ्वी पर रहेंगे, तब तक समाज रहेगा।

समुदायों की आवश्यकता एवं उपयोगिता

(१) **दैहिक एवं मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति**—यह पहले बताया जा चुका है कि मनुष्य की नाना प्रकार की आवश्यकता केवल राज्य द्वारा नहीं पूरी की जा सकतीं। अतः उसे समाज में राज्य के अतिरिक्त अन्य समुदाय बनाने की आवश्यकता है। राज्य तो समाज में केवल शान्ति स्थापित रखने में सहायक होता है। मनुष्य को अपने धार्मिक उत्थान या आर्थिक और राजनैतिक अभ्युदय (prosperity) के लिए या यों कहिए कि मनोरञ्जन के लिए अनेक प्रकार के समुदाय चाहिएँ। राज्य मनुष्य की सर्वाङ्गीण उन्नति करने में असमर्थ है। हमें अपनी मानसिक उन्नति के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की संस्थाएँ चाहिएँ। हमारा जीवन दूसरे पर निर्भर है। उदाहरणार्थ, यदि हम बीमार हो जाएँ तो हमको वैद्य की आवश्यकता पड़ेगी। इसी प्रकार घर में कोई विशेष विपत्ति आने पर पड़ोसियों की सहायता की आवश्यकता पड़ती है।

(२) **समुदायों द्वारा व्यक्तित्व का विकास होता है**—मनुष्य का कर्तव्य है कि वह समाज-सेवा के हेतु अपनी मानसिक (mental) तथा शारीरिक (physical) उन्नति करे, तभी वह समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। मनुष्य की उन्नति के लिए समाज में विविध प्रकार की संस्थाएँ और समुदाय बने रहते हैं। समुदायों से मनुष्य में सहयोग (co-operation), सहानुभूति (sympathy), वात्सल्य तथा भ्रातृ-भाव (affection and brotherhood) उत्पन्न होता है। सब समुदाय मिलकर मनुष्य की सर्वाङ्गीण उन्नति करते हैं। क्लब (club) मनुष्य को मनोरंजन देता है, आर्य समाज तथा सनातन धर्म जैसे समुदाय उसकी धार्मिक उन्नति करते हैं। इसी प्रकार से कृषक तथा मजदूर संघ आर्थिक उन्नति करने के इच्छुक (desirous) रहते हैं।

(३) **समुदायों द्वारा जीवन में अधिकाधिक सहायता तथा सफलता प्राप्त होती है**—एक ही विचार के मनुष्य यदि अलग-अलग रह कर काम करें तो उनको एक उद्देश्य (aim) की प्राप्ति में सफलता कम मिलेगी परन्तु यदि वही कार्य एकत्रित होकर किया जाय तो अधिक सफलता की आशा है। कारण यह है कि समुदायों (associations) में श्रम-विभाजन (division of labour) है। कोई मनुष्य किसी

कार्य को करता है और कोई मनुष्य किसी को। उदाहरण के रूप में लीजिए कि एक फैक्टरी (factory) में जूते बनते हैं तो वहाँ कोई भाग किसी के द्वारा बनाया जाता है और कोई किसी से। इसका परिणाम यह होता है कि काम शीघ्र हो जाता है और अच्छा भी। समुदायों द्वारा संगठन पैदा होता है। भारत के नर-नारी काँग्रेस के प्लेटफार्म पर संगठित हो गए और इस संगठन का ही यह फल था कि अंग्रेज भारत को 1947 ईस्वी में छोड़ गए। मजदूर समुदायों में संगठित हो कर ही अपनी माँग सरकार तथा पूंजीपतियों से मनवा सकते हैं।

(४) **समुदायों द्वारा अधिकार तथा कर्त्तव्य-पालन की शिक्षा प्राप्त होती है**—समुदायों से मनुष्यों को अनेक प्रकार की सुविधाएँ (facilities) प्राप्त होती हैं। समुदायों द्वारा उसको अनेक प्रकार के अधिकार मिलते हैं। इसी प्रकार से कुछ उसके कर्त्तव्य होते हैं। उदाहरण के रूप में प्रान्तीय काँग्रेस-समितियाँ (provincial congress committees) काँग्रेस के सदस्यों द्वारा ही चुनी जाती हैं। अतः प्रत्येक काँग्रेसी को वोट का अधिकार होता है। उसे यह शिक्षा प्राप्त होती है कि इस अधिकार को वह किस प्रकार प्रयोग करे। इसी प्रकार वह समाज की सेवा करता है। इस तरह हर एक मनुष्य जो कि समुदायों का सदस्य होता है, एक प्रकार की ट्रेनिंग (training) हासिल कर लेता है जो कि देश के लिए लाभदायक सिद्ध होती है।

(५) **प्रमुख सामाजिक तथा राजनैतिक विषयों पर समुदायों द्वारा लोकमत का संग्रह होना**—अब भारत में प्रत्येक २१ वर्ष की आयु के नर-नारी को मत (vote) देने का अधिकार प्राप्त हो गया है। अतः प्रत्येक राजनैतिक समुदाय (political association) निर्वाचन (election) के समय मत-दाताओं (voters) के पास जाकर उनको अपना प्रोग्राम या कार्यक्रम समझाता है और बतलाता है कि किस प्रकार देश की बड़ी-बड़ी सामाजिक और राजनैतिक (social and political) समस्याएँ (problems) हल की जा सकती हैं। इस से जनता की रुचि देश की समस्याओं की ओर लग जाती है। विरोधी दल (opposition party) यदि कोई बात गवर्नमेण्ट से मनवाना चाहे, तो उसे भी लोकमत-संग्रह करना पड़ेगा।

(६) **समुदाय मनुष्य के हितों तथा अधिकारों की रक्षा करते हैं और उनमें पारस्परिक सम्बन्ध बढ़ाते हैं**—समुदाय अपने सदस्यों के अधिकारों एवं हितों (interests) की रक्षा करते हैं। यदि किसी मजदूर पर आपत्ति आ जाय, तो मजदूर संघ पूंजीपति के विरुद्ध उसकी रक्षा करेगा। मजदूर पूंजीपतियों (capitalists) से अपनी माँगें समुदायों में इकट्ठे हो कर ही मनवा सकते हैं। समुदाय के सदस्यों में आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध बन जाता है।

समुदायों का वर्गीकरण (Classification of Associations)

समुदायों का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से है :

(क) अवधि की दृष्टि से, (ख) सदस्यता की दृष्टि से, (ग) अधिकार की दृष्टि से, और (घ) उद्देश्य की दृष्टि से।

(क) अवधि की दृष्टि से (Duration Basis)

अस्थायी संघ या समुदाय (Temporary Associations)—अवधि के आधार पर समुदाय (associations) स्थायी या अस्थायी कहे जा सकते हैं। अस्थायी (non-permanent) समुदाय वे हैं जो किसी खास मतलब को लेकर किसी विशेष परिस्थिति (particular situation) में बनाए जाते हैं और उस प्रयोजन को पूरा करने के बाद वे समाप्त हो जाते हैं। जैसे भूचाल (earthquake) के बाद कोई रिलीफ कमेटी (relief committee) बनायी जाय, तो लोगों की सेवा करने के पश्चात् वह समाप्त हो जायगी। इसी प्रकार से अकाल से पीड़ितों की रक्षा के लिए या कोई स्वागत समिति (reception committee) बनायी जाय, तो अपना प्रयोजन पूरा करने के पश्चात् वह समाप्त हो जाएगी।

स्थायी समुदाय (Permanent Associations)—स्थायी (permanent) समुदाय ऐसे हैं जिनकी उपयोगिता (utility) सदा बनी रहती है। राज्य और परिवार स्थायी समुदाय गिने जाते हैं क्योंकि जब से मनुष्य ने होश सँभाली, तब से ही वे समाज में चले आए हैं। राज्य और परिवार के बिना मनुष्य का काम नहीं चल सकता।

(ख) सदस्यता की दृष्टि से

अनिवार्य समुदाय (Natural or Compulsory Associations)—अनिवार्य समुदाय (Compulsory Associations) ऐसे समुदाय हैं जिनकी सदस्यता मनुष्य की इच्छा पर निर्भर नहीं। जब मनुष्य जन्म लेता है तब से ही वह अपने आप उसका सदस्य बन जाता है। इस प्रकार के समुदायों में राज्य, परिवार या कुटुम्ब (family), जाति (community) इत्यादि हैं। प्रत्येक मनुष्य को इनकी सदस्यता अपनानी पड़ती है।

ऐच्छिक समुदाय

ऐच्छिक समुदाय (Optional or Voluntary Associations)—ऐच्छिक समुदाय वे समुदाय हैं जिनकी सदस्यता मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है। अनेक प्रकार के राजनैतिक (political), आर्थिक (economic), सांस्कृतिक (cultural), शैक्षणिक (educational), मनोरञ्जक (recreational) समुदाय इस कोटि में आते हैं। मनुष्य की इच्छा पर यह निर्भर है कि वह क्लब (club) का सदस्य बने या न बने। सदस्यता छोड़नी भी उसके हाथ में है। किसी पोलिटीकल पार्टी में मनुष्य जाय या न जाय, यह उसकी इच्छा पर निर्भर है।

(ग) अधिकारों या सत्ता की दृष्टि से

सार्वभौमिक अथवा संप्रभु समुदाय (Sovereign Bodies)—इस श्रेणी में वह समुदाय सम्मिलित है जिसका अपने सदस्यों (members) पर पूर्ण अधिकार है और बाहरी देशों का जिस पर कोई नियन्त्रण नहीं है। केवल राज्य ही इस पंक्ति में रखा जा सकता है।

अर्ध-सार्वभौमिक अथवा सीमित संप्रभु समुदाय (Semi-sovereign Bodies)—अर्ध-सार्वभौमिक (autonomous or limited sovereign bodies) में वे समुदाय शामिल हैं जिनको कुछ क्षेत्रों (fields) में सरकार ने विशेष अधिकार दिए हुए हैं। म्यूनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, पंचायत इत्यादि को गवर्नमेण्ट कुछ प्रशासन सम्बन्धी अधिकार देती है। ये समुदाय निश्चित क्षेत्र में कानून बना सकते हैं और टैक्स लगा सकते हैं और न मानने वाले को उचित दण्ड भी दे सकते हैं। इंग्लैण्ड और अमरीका में स्थानीय सरकारों (Local Govts.) को स्वायत्तता (autonomy) प्राप्त है। सरकार का स्थानीय सरकारों के कामों में बहुत थोड़ा दखल है।

असार्वभौमिक अथवा असंप्रभु (Non-Sovereign Bodies)—इस पंक्ति में ऐसे समुदाय आते हैं जिनका सार्वभौमिकता से कोई सम्बन्ध नहीं। इस श्रेणी में ऐच्छिक समुदाय (voluntary associations) रखे जा सकते हैं। मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है कि ऐसे समुदायों का सदस्य बने या न बने। चाहे जब मनुष्य ऐच्छिक समुदायों की सदस्यता छोड़ सकता है। आर्य समाज, सनातन धर्म, काँग्रेस, मुस्लिम लीग, जनसंघ इत्यादि ऐच्छिक समुदायों के उदाहरण हैं। जब तक मनुष्य इन समुदायों का सदस्य है, उसको इनके नियम पालन करने पड़ते हैं। यदि कोई सदस्य किसी समुदाय के नियमों का पालन न करे, तो उसका उस समुदाय से बहिष्कार किया जा सकता है परन्तु दण्ड नहीं दिया जा सकता।

(घ) उद्देश्य की दृष्टि से

चूँकि मनुष्य की नाना प्रकार की इच्छाएँ होती हैं तो उनकी पूर्ति हेतु वह अनेक प्रकार के समुदाय बनाता है। मनुष्य अपने हितों (interests) की रक्षा और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अनेक समुदायों को जन्म देता है। इसलिए समुदायों की गिनती करना कठिन है तथापि सुविधा के लिए समुदायों को निम्नलिखित भागों में बाँट सकते हैं।

(१) रक्त सम्बन्धी संघ (Biological);
(२) आर्थिक संघ अथवा समुदाय (Economical);
(३) सांस्कृतिक (Cultural);
(४) परोपकारी (Philanthropical);
(५) राजनैतिक (Political);
(६) धार्मिक (Religious);
(७) सुधारवादी (Reformatory); और
(८) मनोरञ्जन विषयक (Recreational)।

(१) **रक्त सम्बन्धी समुदाय**—इसमें सब से पहला स्थान कुटुम्ब या परिवार को दिया जाता है। कुटुम्ब सामाजिक जीवन का सब से पहला संगठित रूप है। इसके अतिरिक्त दूसरी संस्थाएँ जिनका आधार रक्त सम्बन्ध पर है वे कुल, गोत्र, जन, जाति और कबीला है। एक ही पिता के पुत्र जब भिन्न-भिन्न स्थानों पर रहना आरम्भ कर देते हैं, तो उनका अपना अलग-अलग कुटुम्ब फैल जाता है। सब को

मिलाकर एक गोत्र या कुल का जन्म होता है। बहुत से कुलों के समूह को कबीला बोलते हैं। कालान्तर में एक कुल के लोग दूसरे कुल के साथ शादी-विवाह कर लेते हैं तथा कई बार एक ही पेशा (profession) धारण कर लेते हैं। इस प्रकार से रक्त सम्बन्ध पर आधारित अनेक जातियों तथा उपजातियों (castes and sub-castes) का जन्म होता है। ऐसे लोगों के रीति-रिवाज, रस्में, खान पान, पहरावा लगभग एक जैसा ही रहता है। कुछ समय के पश्चात् यही लोग ग्रामों में बस जाते हैं, ग्रामों के मिलने से राज्य का विकास होता है। कई बार जातियों के बड़े रूप को नस्ल के नाम से पुकारा जाता है। ये सब लोग भी एक ही पूर्वज से अपना विकास हुआ मानते हैं। प्राचीन काल में एक जाति दूसरे से इतनी मिल-जुल गयी कि किसी एक को पूर्णरूप से विशुद्ध मानना भूल होगी। आजकल परिवार के अतिरिक्त दूसरी अन्य रक्त सम्बन्धी संस्थाओं या समुदायों का महत्त्व कम होता जा रहा है क्योंकि आज-कल मनुष्य की सहायता के लिए अन्य अनेक समुदाय उत्पन्न हो गए हैं। उदाहरणार्थ, राज्य मनुष्य की चोर-डाकुओं से रक्षा करता है। यातायात प्रणाली (communication system) में अब बहुत सुधार आ गए हैं। दूर-दूर रिश्ते-नाते होने लगे हैं। अंग्रेजी शिक्षा ने जाति-पाति के भेद-भाव को काफी कम कर दिया है। इतना होते हुए भी आजकल जब आत्मीयता से सम्बन्धित प्रश्नों को सुलझाना पड़ता है तो इन्हीं की शरण लेनी पड़ेगी।

(२) **आर्थिक संघ अथवा समुदाय** (Economic Associations)—ऐसी संस्थाओं को आर्थिक समुदाय कहा जाता है जो कि अपने सदस्यों के आर्थिक हितों की रक्षा करें। उदाहरण के रूप में यदि पूंजीपति मजदूरों के हितों को पैरों तले कुचलना चाहें, तो मजदूर संघ मजदूरों के हितों को बचाने के लिए पूंजीपतियों से लड़ेगा। मिल मालिक भी अपना संघ बनाते हैं ताकि वे सरकार और मजदूर दोनों से अपने हितों की रक्षा कर सकें। उनकी इस संस्था को मिल ओनर्ज़ एसोसियेशन (Mill Owners Association) कहते हैं। इसके अतिरिक्त व्यापार सम्बन्धी मामलों के लिए चेम्बर ऑफ कॉमर्स (Chamber of Commerce) है। इसके अतिरिक्त आर्थिक समुदाय किसान सभा, सहकारी समितियाँ (Co-operative Societies), मजदूरों की ट्रेड यूनियन और वकील, शिक्षक, डाक्टर, टाँगे और ठेलेवालों की यूनियनें हैं। ये यूनियनें अपने सदस्यों की सामाजिक और आर्थिक उन्नति भी करती हैं। यदि ये यूनियनें अच्छे व्यक्तियों के नेतृत्व में हों तो देश के लिए बहुत लाभदायक प्रतीत होती हैं और यदि ये स्वार्थी मनुष्यों के हाथों में चली जायें तो देश की उत्पादन-शक्ति (production) को विशेष हानि पहुँचती है क्योंकि वे अपने सदस्यों को प्रतिदिन हड़ताल के लिए उकसाती रहती हैं। अतः आर्थिक संस्थाओं पर सरकार का कुछ-न-कुछ नियन्त्रण अवश्य होना चाहिए, ताकि अयोग्य व्यक्ति उनको हाथ में लेकर देश की उत्पादन शक्ति तथा आर्थिक जीवन को किसी प्रकार की हानि पहुँचाने में असमर्थ रहें।

आर्थिक संस्थाएँ स्थानीय, राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय हो सकती हैं। धोबी, नाई तथा हलवाई इत्यादि लोगों की संस्थाएँ प्रायः स्थानीय होती हैं। पढ़े-लिखे और

कुछ उच्च श्रेणी के व्यक्तियों की संस्थाएँ राष्ट्रीय होती हैं, जैसे ऑल इन्डिया पोस्टल एम्प्लाईज एसोसिएशन (All-India Postal Employees' Association), ऑल इण्डिया टीचर्ज एसोसिएशन (All-India Teachers' Association), बैंक एम्प्लाईज एसोसिएशन इत्यादि। इसके अतिरिक्त बहुत सी संस्थाएँ अन्तर्राष्ट्रीय (international) भी हो सकती हैं जैसे वर्ल्ड फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन (World Federation of Trade Union) और इण्टरनैशनल लेबर आर्गनाइज़ेशन (International Labour Organization) इत्यादि।

इसके अतिरिक्त समाज में व्यावसायिक संघ (vocational associations) भी होते हैं। उनमें और आर्थिक समुदाय में केवल इतना भेद है कि आर्थिक समुदायों की अपेक्षा उनका क्षेत्र अधिक संकुचित (narrower) है। एक ही पेशे या धन्धे के मनुष्य अपनी उन्नति करने के लिए एक अलग समुदाय बनाते हैं, जैसे टाँगे वालों का समुदाय, वकीलों का संघ, डाक्टरों का संघ, नाइयों और धोबियों का संघ। उदाहरणार्थ, मजदूर संघ के सभी मजदूर सदस्य बन सकते हैं, चाहे वे रिक्शावाले हों, या टाँगेवाले हों और चाहे किसी फैक्टरी में काम करते हों, परन्तु मोटर ड्राइवर जैसी व्यावसायिक संस्थाओं के केवल मोटर ड्राइवर ही सदस्य बन सकते हैं।

(३) **सांस्कृतिक समुदाय** (Cultural Associations)—जो अपने सदस्यों की अथवा समाज की शैक्षणिक (educational), कलात्मक (artistic) और वैज्ञानिक (scientific) उन्नति करते हैं उनको हम सांस्कृतिक समुदाय (cultural organisations) कहते हैं। तमाम स्कूल और कालेज इसमें शामिल हैं। प्रत्येक स्कूल और कालेज में ऐतिहासिक परिषद् (historical society), वैज्ञानिक परिषद् (scientific society) तथा ड्रामा परिषद् (dramatic club) इत्यादि होती हैं। वे सब विद्यार्थियों की सर्वांगीण उन्नति करती हैं। इसके अतिरिक्त समाज में साहित्यिक और अनुसंधान सम्बन्धी संस्थाएँ (literary and research societies), सार्वजनिक पुस्तकालय (public libraries), अजायबघर (museums), साहित्यिक सम्मेलन तथा कला-केन्द्र होते हैं, जिनका प्रयोजन भी वही होता है जो कि स्कूल तथा कालेजों का।

(४) **परोपकारी संघ**—गरीबों, लँगड़े, लूलों तथा अनाथों और अपाहिजों के लिए परोपकारी संघ बनाये जाते हैं। यतीमखाने, विधवा आश्रम, कोढ़ियों के शरण-स्थान (leper asylums), रामकृष्ण मिशन (Rama Krishna Mission) इत्यादि इसके अनेक ज्वलन्त उदाहरण हैं।

(५) **राजनैतिक संघ** (Political Associations)—राजनैतिक संघों को दो भागों में बाँटा जा सकता है, एक संप्रभु राजनैतिक समुदाय (Sovereign Political Association) और दूसरे असंप्रभु राजनैतिक समुदाय (Non-Sovereign Political Association)। पहली श्रेणी में राज्य को रखा जा सकता है। दूसरी श्रेणी में समाज के अन्य अनेक राजनैतिक दलों की गणना हो सकती है। राज्य और अन्य राजनैतिक दलों में महान् अन्तर है। राज्य के पास प्रभुता (sovereignty) है और दूसरी राजनैतिक पार्टियों के पास प्रभुता नहीं है। यदि कोई मनुष्य राज्यों के आदर्श

का उल्लंघन करे, तो उसको उचित दण्ड मिल सकता है परन्तु यदि कोई मनुष्य किसी अन्य दल की आज्ञा न माने, तो केवल उसका बहिष्कार ही हो सकता है। राज्य समाज में सुख-शान्ति बनाये रखता है। राज्य का उद्देश्य सब की भलाई करना है। राज्य के अस्तित्व (existence) से ही दूसरे समुदायों का अस्तित्व कायम रह सकता है। दूसरे राजनैतिक दलों का उद्देश्य भी केवल सरकार पर किसी न किसी प्रकार से अधिकार प्राप्त करना ही है। चुनाव के समय इन राजनैतिक दलों से मतदाताओं में राजनैतिक जाग्रति उत्पन्न होती है।

(६) **धार्मिक समुदाय** (Religious Associations)—हमारे देश में अनेक धार्मिक समुदाय हैं। प्रत्येक धार्मिक समुदाय का लक्ष्य अपने धर्म की उन्नति करना है और इसके साथ-साथ अपने सदस्यों में धार्मिक भावना दृढ़ करना है। धर्म मनुष्य को प्रेम, आदर, सहानुभूति, तप तथा सदाचार और संयम की शिक्षा देता है। प्राचीन काल में धर्म ने बिखरी हुई जातियों को एकता के सूत्र में बाँधकर उनको उन्नति के मार्ग की ओर अग्रसर किया। उदाहरण के रूप में इस्लाम ने अरब में एकता उत्पन्न की तथा ईसाई धर्म ने यूरोप की बिखरी जातियों को एकता के सूत्र में पिरोया। आजकल धर्म का उतना प्रभाव नहीं रहा जितना कि मध्य काल या प्राचीन काल में था, परन्तु फिर भी बिल्कुल नष्ट नहीं हुआ है। धर्म की आड़ में घृणा फैलाना बिल्कुल अनुचित है। धर्म के नाम पर अत्याचार नहीं होने चाहिएँ और न ही सुधार का विरोध होना चाहिए।

(७) **सुधारवादी संघ या समुदाय**—ये समुदाय समाज में अनेक कुरीतियों को दूर करने में लगे रहते हैं। हमारे समाज में बाल-विवाह, दहेज-प्रथा तथा छुआछूत का विचार जैसी अनेक कुरीतियाँ हैं। यदि हम समाज की उन्नति चाहते हैं तो हमें इन सब कुरीतियों को दूर करना पड़ेगा। अतः समाज में सुधारक इन समुदायों को जन्म देते हैं। सुधारवादी समुदाय जनता को समाज की कुरीतियों से जानकारी कराते हैं तथा उनको दूर करने के लिए लोगों की सहायता चाहते हैं। यदि सरकार इन कुरीतियों को दूर करने के लिए कानून भी बना दे, तो भी जब तक जनता पूरी तरह शिक्षित नहीं होगी, तब तक कानून सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। शारदा एक्ट के अनुसार लड़के तथा लड़कियों की विवाह-आयु निश्चित कर दी गयी थी परन्तु जनता उस कानून के बारे में पूरी तरह शिक्षित न थी, अतः कानून को सफलता नहीं मिली। सुधारवादी समुदाय जनता को इन चीजों के बारे में ज्ञान करवाते हैं।

(८) **मनोरंजन विषयक समुदाय**—जब मनुष्य थक जाता है तो उसके लिए मनोरञ्जन आवश्यक है। मनोरञ्जन के बिना स्वास्थ्य शीघ्र बिगड़ जाता है। अतः मनोरञ्जनार्थ (for recreation) समाज में अनेक समुदाय होते हैं, जैसे सिनेमा, नाटकघर, क्लब, खेल-कूद या तमाशे के लिए बनायी हुई सोसाइटियाँ और व्यायाम-शालाएँ। शराब और जुआघर समाज को पतन की ओर ले जाते हैं। गाँव में काम से निश्चित होकर चौपालों में लोग जब कहानी-किस्से और गपशप मारते हैं और हँसी-मज़ाक करते हैं तो उससे भी मनोविनोद प्राप्त होता है।

भिन्न-भिन्न संघों के प्रति नागरिकों के कर्त्तव्य

समाज में समुदायों का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति करते हैं। जब तक समाज में अनेक लाभदायक समुदाय न होंगे, व्यक्तियों के व्यक्तित्व का पूर्णरूप से विकास कदापि नहीं हो सकता। अतः सदस्यों का कर्तव्य है कि वे समुदायों की तन, मन, धन से सेवा करें। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि किसी समुदाय को यह अधिकार प्राप्त हो जाय कि वह अपने सदस्यों से चाहे जो करवा सकता है। ऐसा अधिकार तो केवल कुछ मात्रा में राज्य को ही प्राप्त है। भिन्न-भिन्न समुदाय तो मनुष्य की एक अंग की उन्नति करते हैं अतः उनको यह अधिकार प्राप्त नहीं कि चाहे जो चीज अपने सदस्यों से मनवा सकें।

हमें बड़े हित के लिए छोटे हित का त्याग कर देना चाहिए। यदि परिवार और गाँव के हितों में कोई विरोध हो तो गाँव की भलाई की ओर हमारा मुख्य ध्यान होना चाहिए। इसी प्रकार से गाँव और प्रान्त की अपेक्षा देश की भलाई अधिक आवश्यक है और यदि अपना देश दूसरे देश पर आक्रमण करे जिससे विश्व-शान्ति भंग हो जाय तो उस समय हमें विश्व-शान्ति को ही देश की अपेक्षा अधिक महत्त्व देना चाहिए। अतः अंग्रेज लेखक विलियम बॉयड ने सत्य ही कहा है कि "Citizenship consists in the right ordering of loyalties" इसका अर्थ यह है कि सच्ची नागरिकता अपने अनेक कर्तव्यों का सामंजस्य करने में ही है। वास्तव में भिन्न-भिन्न संस्थाओं का साधारणतया एक ही उद्देश्य है और वह है व्यक्ति तथा समाज की भलाई। अतः उनके लक्ष्यों में आम तौर पर कोई विरोध भाव नहीं होता, केवल अज्ञान के कारण ऐसा दिखाई पड़ता है। समुदायों को भी देश, समाज और मानव-जाति का हित अपने ध्यान में रखना चाहिए।

परिवार

परिवार का स्वरूप (Types of the Family)—इसमें सन्देह नहीं कि परिवार सामाजिक संगठनों में सर्वप्रथम स्वाभाविक तथा महत्त्वपूर्ण संगठन है। परिवार मनुष्य की प्रेम-भावना पर निर्भर है। जब मनुष्य ने सभ्यता सीखी, तो उसी समय परिवार का अंकुर फूटा और जब तक मनुष्य में प्रेम और सभ्यता का भाव बना रहेगा, उसी समय तक यह समुदाय भी अमर रहेगा।

कुटुम्ब का जन्म स्त्री-पुरुष के प्रेम और मेल-मिलाप से होता है। एक कुटुम्ब के अन्दर हिन्दुओं में माता-पिता, चाचा-चाची, भाई-बहन, पौत्र-पौत्री आदि सम्मिलित हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि परिवार समाज में सब से पुराना समुदाय है। यह बात सत्य हो सकती है परन्तु यह निर्विवाद सिद्ध है कि परिवार का स्वरूप सदा एक जैसा नहीं रहा। प्राचीन काल में परिवार बहुत बड़ा होता था। उसमें दादा-दादी, भाई-भाभी, ताऊ-ताई, चाचा-चाची, मां-बाप और उनके बच्चे सम्मिलित होते थे। हिन्दू सम्मिलित परिवारों (joint families) में अब भी प्रायः ऐसा देखा जाता है परन्तु यूरोप में साधारणतया बच्चे विवाह करने के बाद अलग परिवार कायम कर

लेते हैं और माता-पिता के साथ नहीं रहते। उनको सरल परिवार (single family) कहा जायेगा।

कुछ देशों में परिवार का आरम्भ माता से हुआ, और कुछ देशों में पिता से। शुरू-शुरू में बहुविवाह प्रथा प्रचलित थी। प्रत्येक मनुष्य एक से अधिक स्त्रियाँ (polygamy) रख सकता था। इसी प्रकार कुछ देशों में एक स्त्री कई पति (polyandry) रख सकती थी। दूसरे अधिकतर परिवार पैतृक (patriarch) होते थे। उनमें पिता परिवार या कुटुम्ब का मुखिया माना जाता था। उसको परिवार के शेष सदस्यों को दण्ड देने का पूर्ण अधिकार था। सम्पत्ति पिता की मृत्यु के पश्चात् लड़कों को मिलती थी। पिता को सभ्यता के आरम्भ काल में इतने अधिकार थे कि वह अपने बच्चों को मृत्यु-दण्ड तक भी दे सकता था। धीरे-धीरे सभ्यता का विकास हुआ और पिता के अधिकार कुछ कम होने लगे और लड़कों को पूर्व की अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त होने लगे। इसके अतिरिक्त कुछ देशों में मातृक परिवार (matriarchal families) भी थे जिनमें माता घर की स्वामिनी समझी जाती थी। आजकल स्विट्ज़रलैंड इत्यादि कुछ देशों को छोड़ कर नर-नारियों के प्रायः समान अधिकार सब देशों में पाये जाते हैं। भारत में भी नये संविधान के अनुसार समान अधिकार दिये गए हैं।

परिवार के कार्य (Functions of the Family)

परिवार का सामाजिक जीवन में विशेष महत्त्व है। परिवार सामाजिक संगठन का मूल है। परिवार समाज का आधार है। परिवार के कार्यों का वर्गीकरण (classification) इस प्रकार किया जा सकता है—

(१) प्राणीशास्त्र सम्बन्धी (Biological), (२) आर्थिक (Economic), (३) सांस्कृतिक (Cultural), (४) नागरिक (Concerning Citizenship or civic functions), (५) मनोरंजन सम्बन्धी (Recreational), और (६) धार्मिक (Religious)।

(१) **प्राणीशास्त्र सम्बन्धी**—स्त्री-पुरुष में स्वाभाविक प्रेम होता है। दोनों की इच्छा सन्तान उत्पत्ति की ओर होती है। परिवार का सब से पहला कार्य सृष्टि को चलाना है। परिवार में ही बच्चों का ठीक ढंग से लालन-पालन हो सकता है परिवार में ही मनुष्य की सर्वांगीण (all-sided) उन्नति होती है। यह सत्य है कि परिवार के अतिरिक्त कोई और संस्था बच्चों का इतनी अच्छी प्रकार से लालन-पालन नहीं कर सकती। माता-पिता का अपने बच्चों से अटूट सम्बन्ध तथा घनिष्ठ प्रेम होता है। वे अपने बच्चों के लिए भारी से भारी कष्ट सहने को सदा तैयार रहते हैं। दूसरे आदमी बच्चों के पालन-पोषण को भार समझते हैं क्योंकि यह कार्य अत्यन्त कठिन है परन्तु माता-पिता इसी कार्य में अद्भुत आनन्द का अनुभव करते हैं। अतः परिवार बच्चों की रक्षा के लिए सब से अच्छा प्रबन्ध है।

(२) **आर्थिक** (Economic)—यूरोप में लड़का विवाह कराने के पश्चात् अलग परिवार बना लेता है परन्तु भारतवर्ष में सम्मिलित (joint) परिवार की ही

प्रथा है। बाप केवल कमाता है और परिवार के बाकी सदस्य उस आमदनी से अपना गुजारा चलाते हैं। यूरोप में स्त्री-पुरुष दोनों कमाते हैं परन्तु भारतवर्ष में प्रायः पुरुष कमाते हैं और स्त्री का कार्य घर की देखभाल ही समझा जाता है। हिन्दू सम्मिलित परिवार (joint family system) एक प्रकार से इन्शोरेन्स सोसायटी (mutual insurance society) की तरह काम करता है क्योंकि परिवार में जब माता-पिता युवावस्था में होते हैं तो वे अपने बच्चों के हित के लिए सब कुछ करते हैं और जब वे बूढ़े हो जाते हैं और धन कमाने के योग्य नहीं रहते, तो बच्चे अपने धन से उनका पालन-पोषण करते हैं। इसी प्रकार से परिवार में जो और सदस्य बूढ़े, गरीब तथा दुःखी होते हैं, उनकी जीविका (living) का प्रबन्ध कुटुम्ब द्वारा ही होता है। यह बात भारत जैसे देश में अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ राज्य ने यूरोप के देशों की तरह अपने जिम्मे बूढ़ों, लँगड़े-लूलों तथा निर्धनों की रक्षा का कार्य नहीं लिया है। इसके अतिरिक्त हिन्दू सम्मिलित परिवार इस समाजवादी सिद्धान्त पर आधारित है कि "प्रत्येक मनुष्य अधिक से अधिक अपनी योग्यता के अनुसार उत्पन्न करे और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार मिले", (from each according to one's ability, to each according to one's needs)। हिन्दू सम्मिलित परिवार (joint Hindu family system) उत्पादन की इकाई (unit of production) भी समझा जाता है, जैसे कि घरेलू उद्योग-धन्धे (cottage industries) एक कुटुम्ब या परिवार की सहायता से ठीक प्रकार से चलाये जा सकते हैं। परिवार में साधारण बाप का जो कार्य होता है, कई बार लड़का भी वही कार्य कर लेता है, अतः कई बार एक विद्या कई पीढ़ियों तक चलती है। सुनार, लुहार तथा वैद्यों (physicians) में इस प्रकार पाया जाता है।

(३) **सांस्कृतिक** (Cultural)—परिवार का एक और भी महत्त्वपूर्ण कार्य है कि वह अपने सदस्यों की सांस्कृतिक उन्नति करता है। बच्चे अपने माता-पिता से, जो कि प्रेम और सहानुभूति (sympathy) का मानो जीता-जागता चित्र हों, बहुत शिक्षा ग्रहण करते हैं। बच्चों को परिवार से ही आरम्भिक शिक्षा प्राप्त होती है। बच्चे अपने माँ-बाप से सहनशक्ति तथा सदाचार की शिक्षा प्राप्त करते हैं। परिवार में ही पहले-पहल शिक्षा का आरम्भ होता है। बच्चे अपने माँ-बाप का अनुकरण करते हैं और उनसे मीठा बोलने तथा अच्छा व्यवहार करने की उत्तम शिक्षा ग्रहण करते हैं।

(४) **नागरिक** (Civic)—परिवार सामाजिक जीवन का स्थायी स्कूल है—"family is the eternal school of social life" इसका यही अर्थ है कि परिवार नागरिक जीवन का सदा जारी रहने वाला स्रोत है। मनुष्य परिवार से अनेक सामाजिक गुण जैसे स्नेह, सेवा, सहयोग, अनुशासन तथा सहिष्णुता सीखता है।

प्रेम—परिवार से बच्चा प्रेम करना सीखता है। जब से बच्चा परिवार में पैदा होता है, तब से ही माँ-बाप उसे प्रेम करते हैं। घर का प्रत्येक व्यक्ति बच्चे से अटूट स्नेह रखता है। बच्चा भी अपने माँ-बाप से स्नेह करना सीख जाता है। माता का प्रेम अपने बच्चे के लिए आदर्श होता है। माँ-बाप अपने बच्चे से अगाध स्नेह के कारण अपना जीवन तक न्यौछावर करने को तैयार रहते हैं। बच्चा भी अपने माँ-

बाप के लिए सब कुछ करने के लिए उद्यत रहता है क्योंकि वह माँ-बाप का ऋणी है। इसी प्रकार का स्नेह समाज चलाने के लिए आवश्यक रहता है और बच्चा स्नेह का प्रथम पाठ परिवार में ही सीखता है। महात्मा गांधी, क्राइस्ट तथा महात्मा बुद्ध ने जो समाज में प्रेम की धारा बहाई थी, उसका स्रोत पारिवारिक स्नेह ही कहा जा सकता है।

सेवा—बच्चा परिवार से सेवा-भाव भी सीखता है। प्रेम और सेवा ये आदर्श नागरिकता के स्तम्भ हैं। माँ-बाप अपने बच्चों की बहुत सेवा करते हैं। बच्चा भी बड़ा होकर इन्हीं गुणों को ग्रहण करता है। ये गुण समाज के उत्कर्ष के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। इसी गुण के कारण मनुष्य रोगी, अपाहिज, भूखे, नंगे और बूढ़ों की सहायता करता है। बच्चे के बीमार होने पर माँ-बाप रात-दिन एक कर देते हैं और अपने कष्टों की तनिक भी परवाह नहीं करते। सब प्रकार की मुसीबतों को झेल कर वे अपने बच्चों को सुख देते हैं। इसी प्रकार से परिवार का कोई अन्य सदस्य बहुत ज्यादा बीमार हो जाय तो शेष सदस्य उसकी सेवा में आकाश-पाताल एक कर देते हैं। सामाजिक जीवन में सेवा की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि हमारे किसी पड़ोसी पर मुसीबत आ जाय तो हमें उसकी सहायता करनी चाहिए। यदि एक नागरिक दूसरे नागरिक की सेवा न करे, तो समाज चल ही नहीं सकता और देश की बिल्कुल उन्नति नहीं हो सकती।

सहयोग—सामाजिक जीवन में सहयोग का भी होना आवश्यक है। सहयोग सामाजिक जीवन की नींव है। प्रत्येक समुदाय का कार्य सहयोग से ही चलता है। यदि नागरिकों में सहयोग न हो तो राज्य और समाज का चलना असम्भव हो जाय। परिवार में भी एक दूसरे के सहयोग से ही काम चलता है। बाप कुछ व्यापार चलाता है तो तमाम बच्चे उसकी सहायता करते हैं। इसी प्रकार से सब से बड़ा लड़का जब नौकरी लग जाती है तो प्रायः वह अपने पिता की सहायता करता है और आपस के सहयोग से वे शेष कुटुम्ब के सदस्यों का पालन-पोषण और पढ़ाई-लिखाई चलाते हैं।

सहिष्णुता—हम पारिवारिक जीवन से सहिष्णुता सीखते हैं। परिवार में सब मिल-जुल कर काम करते हैं और प्रत्येक सदस्य अपनी इच्छाओं को न बढ़ाकर कुटुम्ब के लाभ के लिए ही कार्य करता है। एक सदस्य दूसरे को किसी प्रकार की मानसिक चोट पहुँचाना पसंद नहीं करता। यदि माँ-बाप बच्चों को धमका भी देते हैं तो वे सहन करने का प्रयत्न करते हैं। इसी प्रकार स्त्री पति के क्रोध को सहन करती है। अतः परिवार में एक सहन-शक्ति उत्पन्न होती है जो कि आगे जाकर समाज चलाने के लिए आवश्यक है। यदि समाज में अनेक जातियों तथा धर्मों में सहिष्णुता न हो तो वह चल नहीं सकता। समाज में अनेक मत-मतान्तरों को मानने वाले व्यक्ति होते हैं अतः उनमें सहिष्णुता नहीं हो तो आपस में मिल-जुल कर नहीं रह सकते। भारत में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई तथा बौद्ध और जैन रहते हैं, उनके धार्मिक विश्वास अलग-अलग हैं, अतः सहिष्णुता का होना अत्यन्त आवश्यक है, वरना सदा लड़ाई-झगड़े होंगे।

शिक्षा—परिवार शिक्षा का बड़ा भारी केन्द्र है। बच्चा परिवार से अनेक

प्रकार की शिक्षा ग्रहण करता है। यदि घर के पुरुष एक दूसरे से सलीके से बोलते हैं तो बच्चा उसी प्रकार की शिक्षा ग्रहण कर लेता है क्योंकि बच्चे का हृदय अत्यन्त कोमल होता है और उसको नकल की आदत होती है। महापुरुषों की जीवनी देखने से पता चलता है कि किस प्रकार उनके जीवन पर माता-पिता की शिक्षा का प्रभाव पड़ा। अभिमन्यु ने प्रसव-काल में ही अनेक प्रकार की शिक्षा ग्रहण कर ली थी। उसी शिक्षा का फल था कि वह चक्रव्यूह युद्ध में इतनी वीरता दिखा सका। अतः अच्छे और सदाचारी गृहस्थी के बच्चे ही आगे चलकर समाज के उपयोगी और सभ्य नागरिक बन सकते हैं।

आज्ञा-पालन और अनुशासन—अनुशासन से यह अर्थ लिया जाता है कि सदस्य उन नियमों का पालन करें जो कि कुटुम्ब के सुख के लिए आवश्यक हों। माता-पिता की आज्ञा का पालन बच्चों को सिखाया जाता है, इसी तरह अन्य व्यक्तियों का छोटे बच्चे घर में कहना मानते हैं। यह कहना बच्चे इस वास्ते मानते हैं क्योंकि वे समझते हैं कि बड़े आदमी सब कुछ उनकी भलाई के लिए ही कहते हैं। समाज में भी आज्ञा-पालन का विशेष महत्त्व है। विद्यार्थी अपने अध्यापकों की आज्ञा का पालन करते हैं। इसी प्रकार से राज-कर्मचारी अपने अफसरों का कहना मानना अपना कर्तव्य समझते हैं। इसी प्रकार सेना और पुलिस विभाग में आज्ञा-पालन पर विशेष जोर दिया जाता है।

यह सत्य है कि मनुष्य नागरिकता का पहला पाठ कुटुम्ब में पढ़ता है (Family is the first school of citizenship or family is the cradle of civic virtues)। मनुष्य आत्म-संयम और आज्ञा-पालन कुटुम्ब से ही सीखता है। कुटुम्ब में बच्चों को बड़ों की आज्ञा-पालन सिखाया जाता है, अतः वे बच्चे भविष्य के आदर्श नागरिक बनते हैं क्योंकि उनमें कानून मानने की आदत हो जाती है। कुटुम्ब से ही मनुष्य को दूसरे की भलाई करने और अपने स्वार्थ को छोड़ने की शिक्षा मिलती है। मनुष्य परिवार से सहन-शक्ति, सहयोग, त्याग, सेवा तथा सत्य बोलना सीखता है। ये ही गुण आदर्श नागरिकता के स्तम्भ हैं। अतः यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि सामाजिक जीवन के लिए जिन गुणों की आवश्यकता है वे सब कुटुम्ब में ही सीखे जाते हैं।[1] श्री बेनी-प्रसाद लिखते हैं कि कुटुम्ब व्यक्ति को अपने स्वार्थ से हटाकर स्वामि-भक्ति, सहयोग तथा परोपकार की ओर लगाता है।[2] श्री बेविरिज (Beveridge) के मतानुसार बच्चा कुटुम्ब में सहयोग, आत्म-संयम, स्वामि-भक्ति, सहानुभूति तथा परोपकार का अर्थ समझता है।[3] मेजिनी ने कहा है कि बच्चा नागरिकता का सब से अच्छा सबक अपनी माता के चुम्बन और पिता के दुलार से सीखता है।[4]

1. Family is the eternal school of civic virtues.
2. "The family", writes Dr. Beni Prasad, "takes the individual, so to say, out of himself into a life of loyalty, co-operation and altruism."
3. "It is within the family that the child learns the meaning of co-operation and self-control, of loyalty, sympathy and altruism."—*W.H. Beveridge.*
4. "The best lesson of citizenship is learnt by the child between the mother's kiss and father's caress."—*Mazzini,*

(५) **मनोरंजन सम्बन्धी**—परिवार मनोरंजन का भी केन्द्र होता है क्योंकि बाप थका हुआ जब घर में आता है तो बच्चों को देखकर उसका दिल खुश हो जाता है। बच्चों के साथ खेल-कूद कर उसका जीवन विनोदमय हो जाता है। बच्चों को देखकर वह अपने सारे दिन की थकावट भूल जाता है। बच्चे भी आपस में खेल-कूद अपना जीवन आनन्दपूर्वक बिताते हैं। एक अच्छा कुटुम्ब आनन्द-प्रमोद का केन्द्र होता है।

धार्मिक—अन्त में परिवार अपने सदस्यों में धार्मिक भावना भी उत्पन्न करता है। शुरू से ही बच्चे अपने माता-पिता को हवन, यज्ञ, तप और उपासना करते हुए देखते हैं। इससे उनके मन में धार्मिक भावना का आविर्भाव होता है। घर में अनेक प्रकार की धार्मिक कथाएँ होती हैं और अनेक प्रकार के संस्कार तथा व्याख्यान आदि होते हैं। इन से बच्चों में दया, प्रेम और त्याग के भाव जाग्रत होते हैं। घर में त्यौहार और जो उत्सव मनाये जाते हैं या रात्रि को बाप जब अपने बच्चों को रामायण और महाभारत की कहानियाँ सुनाता है तो उसका बच्चों पर विशेष रूप से अच्छा प्रभाव पड़ता है। परिवार एक ऐसे गुणों का आधार-स्तम्भ बन जाता है जो कि आदर्श नागरिकता के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं।

घरेलू जिन्दगी को सुखी रखने के लिए जरूरी बातें

गृहस्थ जीवन बहुत कठिन जीवन है। उसको सुखी बनाने के लिए सर्वप्रथम मनुष्य के पास अच्छी आय (income) होनी चाहिए। गृहस्थी का अच्छी आमदनी के बिना गुजारा चलना मुश्किल है। चार दिन में गृहस्थी दुःखी हो जाता है जब उसकी आमदनी का कोई स्रोत न रहे। गृहस्थी की भिन्न-भिन्न आवश्यकताएँ केवल पर्याप्त (sufficient) धन के द्वारा ही पूरी हो सकती हैं। दूसरे, उसके पास एक अच्छा मकान होना चाहिए। यदि खराब मकान होगा तो अनेक प्रकार के रोग कुटुम्ब में सदा रहेंगे। अतः मकान ऐसा होना चाहिए जिसमें धूप आती हो और शुद्ध वायु का दौरा या चक्र (circulation) बँधा रहता हो तथा जिसमें सील (dampness) न रहती हो। ये दो बाहरी अवस्थाएँ हैं, कुछ आन्तरिक अवस्थाएँ भी हैं। उदाहरण के रूप में माता-पिता स्वस्थ होने चाहिएँ ताकि उनके बलिष्ठ सन्तान उत्पन्न हो। दूसरे, घर का प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित होना चाहिए वरना उसके बिना परिवार के सदस्य एक दूसरे की आवश्यकताओं को ठीक तरह न समझ कर अपने स्वार्थ में ही प्रायः लिप्त रहेंगे। गृहस्थ को चलाने के लिए आवश्यक है कि अपनी आवश्यकताओं को विशेष महत्त्व न देकर दूसरे की आवश्यकताओं की ही पूर्ति करे। तीसरे, घर में आपस में प्रेम-प्यार होना चाहिए। पति-पत्नी तथा भाई-बहन में स्नेह तथा प्रेम का रहना अत्यन्त आवश्यक है। वैर-भाव गृहस्थ-जीवन के लिए विष है। चौथे, सदस्यों की संख्या थोड़ी होनी चाहिए ताकि थोड़ी आमदनी से हर कुटुम्ब का ठीक तौर पर गुजारा चल सके। पाँचवें, बचत की आदत होनी चाहिए। आमदनी से अधिक खर्चा करना मूर्खता है। गृहस्थी को कभी भी ऋण में नहीं दबना चाहिए बल्कि अचानक मौके (emergency) के लिए कुछ द्रव्य हमेशा पास में रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त

घर में किसी को निकम्मा नहीं बैठना चाहिए। प्रत्येक को कुछ न कुछ काम करते रहना चाहिए।

परिवार का जन्म, विकास तथा भविष्य
(Origin, Evolution and Future of the Family)

समाज वैज्ञानिकों का मत है कि परिवार या कुटुम्ब सब से पुरानी सामाजिक संस्था है। यह बात सत्य है कि किसी न किसी रूप में यह सब से पुराना समुदाय है। यह कहना अत्यन्त कठिन है कि कुटुम्ब या परिवार की उत्पत्ति कब और कैसे हुई। अरस्तू का विचार था कि परिवार की बुनियाद इसलिए पड़ी क्योंकि मनुष्य अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं ही नहीं कर सकता था। अपनी आवश्यकताओं के लिए उसे दूसरों पर निर्भर होना पड़ता था। सन्तानोत्पत्ति की भावना ने भी परिवार के जन्म तथा विकास में अमूल्य काम किया। परिवार के द्वारा सृष्टि (creation) चलती रहती है।

यह याद रखने की बात है कि घर और कुटुम्ब में विशेष भेद है। घर कुटुम्ब के निवास-स्थान को ही बोलते हैं और कुटुम्ब व्यक्तियों से मिलकर बनता है। परिवार के विकास का एक लम्बा इतिहास है। ऐसा माना जाता है कि पहले-पहल केवल अधिकतर पैतृक (patriarchal) कुटुम्ब ही थे, परन्तु कहीं-कहीं पर मातृक (matriarchal) कुटुम्ब भी थे। पिता का पूर्ण अधिकार अपने कुटुम्ब में होता था। कुटुम्ब से जन, गोत्र तथा कबीले उत्पन्न हुए और कबीलों से गाँव, नगर तथा राज्य बने।

कई विद्वानों का यह विश्वास है कि आने वाले समय में परिवार का भविष्य उज्ज्वल नहीं है क्योंकि धर्म और परम्पराओं का प्रभाव अब घटता जा रहा है। धर्म और परम्पराओं ने परिवार को अब तक दीर्घायु किया था परन्तु जब इनका प्रभाव नहीं रहेगा तो कुटुम्ब भी शनैः शनैः समाप्त हो जायगा। ऐल्डस हक्सले (Aldous Huxley) जैसे लेखकों ने तो यहाँ तक कह दिया था कि परिवार की प्रथा आगे आने वाले काल में कभी न कभी बिल्कुल समाप्त हो जायगी परन्तु अधिकतर विद्वानों का अभी तक यही विश्वास बना हुआ है कि परिवार जैसी सामाजिक इकाई (social unit) का समाप्त होना सम्भव नहीं। दूसरे, जो व्यक्ति परिवार का उज्ज्वल भविष्य नहीं देखते, उनका कहना है कि परिवार अब धन पैदा करने का साधन नहीं रहा। अब प्रायः बेटा कुछ काम करता है और बाप कुछ और काम। तीसरे, पहले जिन कामों को साधारणतया परिवार किया करता था, आजकल वे राज्य द्वारा किये जाते हैं। पहले बच्चों का लालन-पालन, शिक्षा, दीन-दुःखियों की सेवा तथा बुढ़ापे में सब प्रकार की सेवा और सहायता केवल परिवार द्वारा होती थी, परन्तु आजकल इन में से बहुत से कार्य राज्य द्वारा होते हैं। रूस में राज्य ने इन में से बहुत से कार्य अपने जिम्मे ले लिये हैं। इसके अतिरिक्त पहले स्त्रियाँ तथा बच्चे घर में सबसे बड़े पुरुष (eldest male member) का कहना मानना अपना धार्मिक कर्तव्य समझते थे, वह भावना अब लुप्त होती जा रही है। अब अधिकतर कचहरी में सिर्फ हस्ताक्षर करके विवाह (civil marriage) की प्रथा जारी हो जायगी और विवाह-विच्छेद

(divorce) प्रायः हुआ करेंगे, अतः परिवार की प्रथा समाप्त हो जायगी। इस प्रकार का विचार कुछ पाश्चात्य विद्वानों का है।

इतना होते हुए भी कोई विशेष आशा नहीं है कि परिवार अवश्य समाप्त हो जायगा क्योंकि परिवार में रहने की मनुष्य में स्वाभाविक इच्छा है तथा उसकी जीव-सम्बन्धी आवश्यकताएँ (biological necessities) केवल कुटुम्ब में रह कर ही पूरी हो सकती हैं। सामाजिक जीवन का महत्त्वपूर्ण भाग है 'खुशी से भरा हुआ घर।' अतः साम्यवादी (communist) या समाजवादी (socialist) शासन भी इसको मिटाकर खुश नहीं रह सकता।

संयुक्त परिवार के गुण और अवगुण
(Merits and Demerits of Joint Family)

गुण—जब परिवार के लोग आपस में मिल-जुलकर कार्य करते थे तो परिवार की बड़ी उपयोगिता थी। प्राचीन काल में खेती का, या लुहार, बढ़ई, जुलाहे का कार्य सारा परिवार ही मिल कर करता था। अतः परिवार का उस समय विशेष महत्त्व था। दूसरे, आजकल सहायता करने के लिए बहुत सी संस्थाएँ खुल गयी हैं, जैसे अनाथालय (orphanages), विधवाश्रम (widow homes), बीमा कम्पनी इत्यादि, परन्तु प्राचीन काल में व्यक्ति की आपत्ति को दूर करने के लिए परिवार के अतिरिक्त दूसरी कोई और संस्था नहीं थी। आजकल रूस आदि देशों में परिवार के बहुत से कार्य सरकार द्वारा पूरे किये जाते हैं तथापि आज भी परिवार की उपयोगिता (utility) समाप्त नहीं हो पाई है। हमारे देश में आपत्ति के समय परिवार ही सहायता करता है। तीसरे, संयुक्त परिवार (joint family) में खर्च कम होता है क्योंकि प्रत्येक चीज की व्यवस्था नहीं करनी पड़ती। चौथे, मनुष्य जितने नागरिकता के गुण संयुक्त परिवार (joint family) में रह कर सीख सकता है उतने वह सरल परिवार (single family) में रह कर नहीं सीख सकता क्योंकि संयुक्त परिवार में मनुष्य को अपने अवगुण छोड़कर सारे परिवार-हित कार्य करना पड़ता है। सरल परिवार में मनुष्य केवल अपना या अपने बच्चों का ही लाभ देखता है। पाँचवें, भारत जैसे कृषि-प्रधान देश के लिए तो संयुक्त परिवार अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि खेती में बहुत से मनुष्य मिलकर काम करें तभी सफलता प्राप्त हो सकती है।

अवगुण—संयुक्त परिवार में बहुत से मनुष्य अपनी जिम्मेवारी महसूस नहीं करते। घर में एक आदमी कमाता है और बीस खाने वाले होते हैं। हर एक आदमी समझता है कि रोटी तो उसको मिल ही जायगी। दूसरे, संयुक्त परिवार में प्रत्येक मनुष्य की उन्नति नहीं हो पाती क्योंकि घर में एक आदमी ही बड़ा समझा जाता है और उसी की आज्ञा का पालन अवश्य किया जाता है। यदि उस से कोई घर में और बुद्धिमान् हो भी, तो भी घर के मुखिया के सामने उसका महत्त्व नहीं के बराबर होता है। तीसरे, यदि मकान छोटा हो और परिवार बड़ा हो तो कष्ट होता है, ऐसा प्रायः देखा जाता है। कई बार संयुक्त परिवार में नव-विवाहित दम्पति (newly married couple) को एकान्त स्थान न मिलने के कारण कुछ कठिनाई अनुभव होती है और

इकट्ठे रहने में उनको कम आजादी मिल पाती है (चौथे, संयुक्त परिवार में आपस में कलह रहती है।)

संयुक्त परिवार प्रथा के कम होने के कारण

पाश्चात्य शिक्षा में दीक्षित युवक तथा युवतियाँ संयुक्त परिवार को जेल समझती हैं और अलग घर बसाना चाहती हैं जहाँ उन्हें अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो। दूसरे, खेती पर गुजारा करने वालों के लिए संयुक्त परिवार प्रथा अत्यन्त आवश्यक थी परन्तु अब लोग शहरों में आ रहे हैं और गाँव कम आबाद होते जा रहे हैं। तीसरे, परिवार के कई काम जैसे दीन-दुःखियों की रक्षा, नौकरी न मिलने पर एक सदस्य का गुजारा चलाना और बुढ़ापे में रक्षा करना इत्यादि अब राज्य करने लग पड़ा है। चौथे, संयुक्त परिवार में कलह रहता है। पाँचवें, पाश्चात्य सभ्यता के विशेष प्रभाव से सरल परिवारों (single families) की ओर अधिक प्रवृत्ति होती जा रही है।

गाँव, नगर, प्रदेश और देश
(Village, Town, Province and Country)

गांव, इसका अर्थ, गाँव का जीवन—परिवार सबसे पुराना सामाजिक संगठन है। परिवार के बाद गाँव का नाम आता है। गाँव का अर्थ साधारणतया यह लिया जाता है कि कुछ परिवार एक स्थान पर रह कर प्रायः खेती करते हों। गाँव में आम लोगों का एक जैसा धन्धा होता है। गाँव और नगर में यह भेद है कि नगर में आबादी बहुत अधिक होती है। गाँव की आबादी प्रायः चार-पाँच सौ से लेकर दो-ढाई हजार तक होती है। परन्तु, शहरों में मनुष्यों की संख्या एक-दो लाख से लेकर सत्तर-अस्सी लाख तक देखी जाती है। नगरों में लोगों का धन्धा गाँव की तरह खेती न हो कर प्रायः व्यापार या नौकरी ही होता है।

औद्योगिक क्रान्ति (industrial revolution) से पहले साधारणतया मनुष्य नगरों की अपेक्षा गांव में रहना पसन्द करते थे परन्तु अब लोग शहरों में ज्यादा रहना चाहते हैं क्योंकि शहरों में जो आराम और कारोबार मिल सकता है, वह प्रायः गाँव में उपलब्ध नहीं। अतः गाँव प्रतिदिन खाली होते जा रहे हैं और शहरों में मनुष्यों की संख्या बहुत अधिक बढ़ती जा रही है। गाँव में आम तौर पर अच्छे अस्पताल, स्कूल, डाक-घर, बैंक और सरकारी दफ्तर नहीं होते। अतः गाँव में शहरों की सुविधाएँ अप्राप्य हैं।

अब सरकार पंचवर्षीय योजना के अनुसार ग्राम-सुधार की ओर विशेष ध्यान दे रही है। गाँव में अब स्कूल, अस्पताल तथा डाकखाने खोले जा रहे हैं। स्थान-स्थान पर सड़कें बनाई जा रही हैं। इसके अतिरिक्त खेती करने के वैज्ञानिक तरीके अपनाये जा रहे हैं परन्तु इस सब को सफल बनाने के लिए लोगों के सहयोग की अत्यन्त आवश्यकता है। मेजर जे० विलट[1] (Major J. Willet) ने लिखा है कि "गाँव की

1. "Village life can be improved, but only by villagers themselves and then only by all the villagers working together for common end, in co-operation of one with the other, Co-operation is the secret."—*Major J. Willet*,

अवस्था को गाँव के लोग ही अच्छी तरह बना सकते हैं और इस उद्देश्य को पूरा करने का गुर है, सबकी इकट्ठी भलाई के लिए मिलकर काम करना अर्थात् सहयोग (co-operation)।" यह बात याद रखने योग्य है कि प्राचीन काल में गाँव एक ऐसी इकाई (unit) समझा जाता था जिसमें प्रत्येक आवश्यकता उसकी पूरी हो जाय परन्तु आज-कल गाँव को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नगरों पर निर्भर रहना पड़ता है।

गाँव का राष्ट्रीय जीवन में विशेष हिस्सा है। गाँव देश की रक्षा के लिए जवान देता है। गांव देश में अनेक प्रकार के अनुचित उथल-पुथल नहीं होने देता। ग्राम-जीवन-सहयोग का द्योतक है। पंचायतों में शिक्षित ग्राम देश के लिए हितकर साबित होते हैं। ग्राम देश भर के लिए खाद्य-सामग्री उत्पन्न करते हैं।

कस्बा और शहर (Town and City)

जैसे खेती के कारण गाँव की नींव पड़ी, वैसे ही व्यापार और दस्तकारी की वृद्धि से कस्बों का जन्म हुआ। जब किसी गाँव में कारखाने लग गए तो उसकी आबादी बढ़ने लगी। इस तरह से कस्बों की बुनियाद पड़ी। शहरों की आबादी प्रायः कस्बों की आबादी से ज्यादा होती है। नागरिक शास्त्र के विद्यार्थी के लिए कस्बों और शहरों का ज्ञान विशेष रूप से शिक्षाप्रद है। ई० एम० ह्वाइट (E. M. White) ने कहा है कि "नागरिक शास्त्र की पढ़ाई का केन्द्र शहर का जीवन है।" प्रो० गैड्स (Geddes) ने इसी बात को विस्तारपूर्वक इस तरह से लिखा है कि नागरिक शास्त्र समाज शास्त्र की वह शाखा है जिसमें यह विचार किया जाता है कि नगरों का जन्म कैसे हुआ, वे कैसे बढ़े, वे देश में कहाँ-कहाँ फैले हुए हैं, उनकी बनावट कैसी है, उनके निवासी क्या-क्या काम-धन्धे करते हैं और उनका दूसरे गाँव, नगरों और देशों के साथ क्या सम्बन्ध है। प्रायोगिक (experimental) प्रयत्नों द्वारा नागरिक शास्त्र को ऐसी कला बनाना चाहिए कि इसके द्वारा नगरों के विकास (evolution) में और नगर-निवासियों के जीवन को अच्छा बनाने में सहायता मिल सके।

गाँव, कस्बे और शहर के जीवन की जरूरी बातें—कस्बे और शहर की कुछ खास बातें ये हैं—(i) गाँव में आबादी आम तौर पर दो हजार से अधिक नहीं होती परन्तु शहर की आबादी कई लाख तक हो सकती है। (ii) गाँव की नींव खेती-बाड़ी पर है परन्तु शहर की नींव व्यापार और दस्तकारी पर। शहर के मनुष्य अधिक प्रगतिशील होते हैं और गाँव के मनुष्यों का आभूषण है सादगी। (iii) नगर सदा बढ़ता रहता है। उसकी आबादी बड़ी तेजी से बढ़ती है। ई० एम० ह्वाइट[1] ने कहा है कि "नगर को एक प्राणी समझना चाहिए जो सदा बढ़ता रहता है।" गाँव का जीवन अत्यन्त सादा और स्वाभाविक होता है परन्तु नगरों में ताज़ी हवा, रोशनी नहीं मिलती, नगरों का जीवन प्रायः कृत्रिम (artificial) होता है। गाँव के मनुष्य शहर के आदमियों की अपेक्षा हृष्ट-पुष्ट होते हैं। शहरों में सुख की जरूरी चीजें सारी मिल जाती हैं। शहरों में अस्पताल, स्कूल, कालेज तथा पुस्तकालय मिल जाते हैं परन्तु गाँव में

1. "A town or city is an organism and therefore it grows. It is a drama in time as well as a play in space."—*White.*

अभी ये सुविधाएँ प्राप्त नहीं हैं। प्राचीन काल में जहाँ पर तीर्थ थे, व्यापारों के रास्ते थे, या राजधानियाँ और छावनियाँ थीं, वहाँ पर नगर बन गए। रेलवे जंक्शनों पर भी नगर बन गए। एक आदर्श नगर में अच्छी योजना (plan) होनी चाहिए अर्थात् अच्छी नालियाँ, रास्ते, कमरे और सड़कें होनी चाहिएँ। इसके अतिरिक्त बाग, अजायबघर, पुस्तकालय तथा अच्छे स्कूल और कालेज होने चाहिएँ। राष्ट्रीय जीवन में नगरों का विशेष महत्त्व है क्योंकि नगरों में लोगों को नागरिकता की शिक्षा प्राप्त होती है। नगर राजनैतिक आन्दोलनों का केन्द्र होता है। नगर संस्कृति और सभ्यता तथा कला के आदर्श नमूने होते हैं। नगर शहरों की समृद्धि को बढ़ाते हैं। नगरों में दिल-बहलाव और मनोविनोद की विशेष सामग्री रहती है।

देश तथा प्रान्त (Province and Country)

भूगोल के विद्वान् भूमि को कई प्राकृतिक (natural) खण्डों में बाँटते हैं। नदी, पर्वत, समुद्र इत्यादि प्राकृतिक रुकावटें इनको एक दूसरे से पृथक् करती हैं। देश बहुत बड़ा भी हो सकता है और छोटा भी। एक ही देश में रहने से लोगों में आपस में प्रेम उत्पन्न हो जाता है। देश स्वतन्त्र भी हो सकता है और परतन्त्र भी। १५ अगस्त १९४७ से पूर्व भारत परतन्त्र था परन्तु अब स्वाधीन हो गया है। प्रत्येक देश राष्ट्र बनना चाहता है। कई देश दूसरों को गुलाम बनाना चाहते हैं जो कि बुरी बात है। देश को शासन के सुभीते के लिए प्रान्तों में बांटा जाता है। कभी-कभी भाषा, संस्कृति, धर्म तथा ऐतिहासिक कारणों से भी प्रान्त बन जाते हैं।

भारत में भाषा के आधार पर प्रान्तों की माँग और राज्य पुनर्गठन (Demand for the Formation of Unilingual Provinces and States Reorganisation)—संसार के इतिहास में भारतीय राज्यों का पुनर्गठन एक अद्भुत घटना है क्योंकि अन्य किसी देश ने ऐसे महान् कार्य को इतनी सुगमता से नहीं किया है। संसार के कई देशों में जहाँ संघ अथवा संधान (federations) स्थापित हो गये हैं, वहाँ पर उनकी इकाइयाँ (units) अखण्ड रखी गयी हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि बहुत से संघों में उनकी इकाइयों या राज्यों की सीमाओं में उनकी इच्छा के विरुद्ध परिवर्तन नहीं किया जा सकता और संविधान के द्वारा अनेक प्रतिबन्ध केन्द्रीय विधान-मण्डलों (Central Legislatures) की शक्तियों पर लगे हुए होते हैं परन्तु भारत में संविधान द्वारा संसद् को राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन करने का अधिकार दिया गया है।

हमारे देश में स्वतन्त्रता-प्राप्ति से लगभग ५० वर्ष पूर्व से भाषायी आधार (linguistic basis) पर प्रान्त बनाने की माँग चली आ रही थी क्योंकि अंग्रेज़ों ने प्रशासनीय दृष्टि (administrative point of view) से प्रान्त बना दिये थे। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस (Indian National Congress) पहले इस माँग का अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन करती रही परन्तु १९२० के अधिवेशन में जो कि नागपुर में हुआ, उसने प्रत्यक्ष रूप से इसका समर्थन किया। इसके पश्चात् यह इस माँग की १९४८ तक दृढ़तापूर्वक पुष्टि करती रही। इसके पश्चात् इस प्रश्न पर विचार करने

के लिए संविधान सभा (Constituent Assembly) ने 'दर आयोग' (Dar Commission) नियुक्त किया। 'दर आयोग' ने अपनी रिपोर्ट में इस बात पर बल दिया कि राज्य पुनर्गठन करते समय प्रशासनीय आवश्यकताओं की ओर अधिक ध्यान दिया जाय। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने जयपुर अधिवेशन में इस प्रश्न पर पुनः विचार करने के लिए एक उप-समिति नियुक्त की जिसको जे० वी० पी० कमेटी कहते हैं क्योंकि उसके सदस्य श्री जवाहरलाल, वल्लभभाई पटेल और पट्टाभि सीता रामैया थे। इस उप-समिति ने भाषायी आधार पर प्रान्त बनाने के विरुद्ध चेतावनी दी। उसके पश्चात् देश में बहुत से विचारशील व्यक्तियों का यह विश्वास हो गया कि केवल भाषायी आधार पर प्रान्त बनाना हानिकारक होगा और नये प्रान्त बनाते समय देश की सुरक्षा, आर्थिक आयोजन (economic planning), प्रशासनीय सुविधा, सांस्कृतिक तथा भाषायी सम्बन्ध इत्यादि का ध्यान रखना आवश्यक है।

इतना सब कुछ होते हुए भी भाषायी आधार पर नये प्रान्त बनाने की माँग जोर पकड़ती गयी। जाब में अकाली दल ने पंजाबी सूबे की माँग जोरों से शुरू की। बिहार में झारखण्ड, राजस्थान में मरु-प्रदेश, उत्तर प्रदेश में आगरा प्रान्त और मद्रास तथा हैदराबाद में आन्ध्र प्रान्त की माँगों के लिए घोर आन्दोलन हुए। आन्ध्र की माँग को पूरा करवाने के लिए श्री रोमुलु ने मरण-व्रत धारण कर लिया और अन्त में उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के पश्चात् हैदराबाद में बहुत दंगे हुए और भारत सरकार को विवश होकर पहली अक्तूबर, १९५३ को नया आन्ध्र प्रान्त बनाना पड़ा। इसके बाद यह माँग और प्रान्तों में बहुत जोर पकड़ती गयी। भारत सरकार ने इस प्रश्न का निर्णय करने के लिए २९ दिसम्बर, १९५३ को एक राज्य पुनर्गठन आयोग (States Reorganisation Commission) नियुक्त किया। इसके अध्यक्ष मिस्टर फज़ल अली और सदस्य श्री हृदयनाथ कुञ्जरू तथा पणिक्कर थे। इस आयोग ने भारत के अनेक स्थानों का दौरा किया और बहुत से व्यक्तियों तथा दलों के प्रतिनिधियों से भेंट की। १० अक्तूबर, १९५५ को आयोग की सिफारिशों को प्रकाशित किया गया। इस आयोग ने राजप्रमुखों के पद को खत्म करने और भारत में क, ख, ग, घ राज्यों के भेद-भाव को नष्ट करने के लिए अपने सुझाव दिये। **राज्य पुनर्गठन आयोग** (States Reorganisation Commission) **ने निम्नलिखित सोलह राज्यों और तीन केन्द्र-प्रशासित इलाकों की सिफारिश की—**

	राज्य (States)	क्षेत्रफल (sq. miles)	जनसंख्या (Millions)
१.	मद्रास	५०,१७०	३०·०
२.	केरल	१४,९८०	१३·६
३.	कर्नाटक	७२,७३०	१९·०
४.	हैदराबाद	४५,३००	११·३
५.	आन्ध्र	६४,९५०	२०·९
६.	बम्बई	१,५१,३६०	४०·२
७.	विदर्भ	३६,८८०	७·६

	राज्य	क्षेत्रफल	जनसंख्या
८.	मध्य प्रदेश	१,७१,२००	२६·१
९.	राजस्थान	१,३२,३००	१६·०
१०.	पंजाब	५८,१४०	१७·२
११.	उत्तर प्रदेश	१,१३,४१०	६३·२
१२.	बिहार	६६,५२०	३८·५
१३.	पश्चिमी बंगाल	३४,५९०	२६·५
१४.	आसाम	८९,०४०	९·७
१५.	उड़ीसा	६०,१४०	१४·६
१६.	जम्मू तथा काश्मीर	९२,७८०	४·४

	केन्द्र-प्रशासित इलाके (Union Territories)	क्षेत्रफल (वर्गमील)	आबादी (Actual No.)
१.	दिल्ली	५७८	१४,७४,०७२
२.	मणिपुर	८,६२८	५,७७,६३५
३.	अण्डमान तथा निकोबर	३,२१५	३०,९७१

नोट—श्री फज़ल अली ने हिमाचल प्रदेश को पंजाब से अलग रखने की सिफारिश की थी। श्री पणिक्कर ने उत्तर प्रदेश, मध्य भारत और विन्ध्य प्रदेश के कुछ भागों को मिलाकर नये आगरा प्रान्त बनाने की सिफारिश की।

राज्य पुनर्गठन आयोग की इन सिफारिशों के प्रकाशित होने के पश्चात् भारत के अनेक नगरों में बहुत दंगे हुए क्योंकि इन सिफारिशों में झारखण्ड, पंजाबी सूबे, महाराष्ट्र, महागुजरात, विशाल आन्ध्र की माँगों को ठुकरा दिया गया था। भारत सरकार के प्रमुख प्रतिनिधियों ने राज्यों के प्रतिनिधियों से इस विषय में बहुत दिनों तक बातचीत की और इसके पश्चात् सरकार ने यह निर्णय किया कि महाराष्ट्र और महागुजरात की स्थापना की जाय परन्तु महाराष्ट्र में बम्बई नगर शामिल न किया जाय और विदर्भ को महाराष्ट्र में मिला दिया जाय। भारत सरकार ने यह भी निश्चय किया कि हैदराबाद को आन्ध्र में शामिल कर दिया जाय और उत्तर प्रदेश का विभाजन न किया जाय। पंजाब के सम्बन्ध में भारत सरकार ने निर्णय किया कि इसको दो क्षेत्रों में बाँटा जाय, पंजाबी भाषी क्षेत्र और हिन्दी भाषी क्षेत्र। पंजाबी भाषी क्षेत्र में अधिकतर जालन्धर विभाग तथा पेप्सू का पंजाबी बोलने वाला क्षेत्र रखा गया। इन दोनों विभागों के प्रशासन के लिए अलग प्रादेशिक समितियाँ (regional committees) होंगी परन्तु मुख्य मन्त्री इन दोनों के ऊपर एक ही होगा। सारे पंजाब के लिए एक हाई कोर्ट, एक गवर्नर, एक पब्लिक सर्विस कमीशन होगा। सरकार के इन पंजाब और महाराष्ट्र सम्बन्धी निश्चयों से महापंजाब और महाराष्ट्र के समर्थकों में बहुत असंतोष फैला। भारत के वित्त मन्त्री श्री देशमुख ने इस बात पर अपना त्याग-पत्र दे दिया कि बम्बई को महाराष्ट्र से अलग रखा गया। बम्बई में बहुत दंगे हुए और पुलिस को कई बार गोली चलानी पड़ी। होशियारपुर

में भी जब महापंजाब के समर्थक प्रादेशिक सूत्र (Regional Formula) के विरुद्ध जलूस निकाल रहे थे, पुलिस को गोली चलानी पड़ी, जिससे जालन्धर विभाग के हिन्दुओं में बहुत रोष फैला।

जुलाई, १९५६ में राज्य पुनर्गठन विधेयक (States Reorganisation Bill) पण्डित गोविन्द वल्लभ पन्त, गृह मन्त्री द्वारा संसद् में रखा गया। संसद् ने इस पर बहुत गम्भीरतापूर्वक विचार किया। लोक सभा ने ५५॥ घंटे और राज्य सभा ने ४९ घण्टे इस पर बहस की। २४४ सदस्यों ने इस बहस में भाग लिया। बम्बई के प्रश्न पर बहस करते हुए श्री अशोक मेहता तथा पुरुषोत्तमदास टण्डन इत्यादि ने सरकार को द्विभाषी बम्बई राज्य (Bilingual Bombay State) की स्थापना करने के लिए सुझाव दिया। संसद् के अधिकतर सदस्यों ने इस सुझाव का जोरदार समर्थन किया क्योंकि गुजरातियों और मराठों के वैमनस्य को दूर करने के लिए यह सब से अच्छा सुझाव था। भारत सरकार ने इस सुझाव को स्वीकार कर लिया और अन्त में हैदराबाद के कुछ भागों (मराठवाड़ा), महाराष्ट्र (बम्बई समेत), गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ और विदर्भ को मिलाकर बम्बई राज्य बनाया गया जो कि क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का सब से बड़ा राज्य है। पेप्सू को पंजाब में मिला दिया गया परन्तु हिमाचल प्रदेश को अलग रखा गया। भोपाल, पुराने मध्य प्रदेश (C.P.) के हिन्दी भाषी क्षेत्रों, विन्ध्य प्रदेश और मध्य भारत को मिलाकर नया मध्य प्रदेश बनाया गया जो कि क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का दूसरा बड़ा राज्य है। अजमेर को राजस्थान में शामिल कर दिया गया। राजस्थान भारत का तीसरा बड़ा राज्य है। उत्तर प्रदेश का विभाजन नहीं किया गया और यह भारत का चौथा बड़ा राज्य क्षेत्रफल की दृष्टि से है परन्तु जनसंख्या की दृष्टि से सर्वप्रथम है। बिहार के कुछ भागों को निकाल कर बंगाल में मिलाया गया। ट्रावनकोर-कोचीन और मद्रास के कुछ भागों को मिलाकर केरल बनाया गया। हैदराबाद राज्य को समाप्त कर दिया गया, इसके कुछ भागों को बम्बई में, कुछ को आन्ध्र में और कुछ को मैसूर में शामिल कर दिया गया। पार्लियामेंट ने इस विधेयक को अगस्त १९५६ में पारित कर दिया और राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होने के पश्चात् यह अधिनियम (Act) बन गया। इस अधिनियम को पहली नवम्बर, १९५६ से लागू किया गया। **पहली नवम्बर, १९५६ से भारत में इस अधिनियम के अनुसार निम्नलिखित राज्य बनाए गए :**

	राज्य (States)	क्षेत्रफल (वर्ग मील) (Area in Sq. Miles)	जनसंख्या (Population according) to 1951 census)
१.	बम्बई	१,९०,९१९	४,८२,६५,१२०
२.	मध्य प्रदेश	१,७१,२०१	२,६०,९५,६८०
३.	राजस्थान	१,३२,०७८	१,५९,४६,७३१
४.	उत्तर प्रदेश	१,१३,४०९	६,३२,१५,७४२
५.	आन्ध्र प्रदेश	१,०५,९६२	३,१२,५९,८१५

	राज्य	क्षेत्रफल (वर्गमील)	जनसंख्या
६.	जम्मू तथा काश्मीर	६२,७८०	४४,००,०००
७.	असम (Assam)	८५,०१२	९०,४३,७०७
८.	मैसूर	७४,३४७	१,९४,०१,६१२
९.	बिहार	६७,३००	३,८८,२७,५१७
१०.	उड़ीसा	६०,१३६	१,४६,४५,९४६
११.	मद्रास	५०,११०	२,९९,७४,९३६
१२.	पंजाब	४७,४५६	१,६१,३४,८९०
१३.	पश्चिमी बंगाल	३३,८०९	२,६२,५८,६४७
१४.	केरल	१५,०३५	१,३५,४९,११८
	योग	१२,३९,५४	३५,७०,१९,४६१

	केन्द्र-प्रशासित इलाके (Union Territories)	क्षेत्रफल (वर्गमील) (Area in Sq. Miles)	जनसंख्या (Population)
१.	हिमाचल प्रदेश	१०,९०४	११,०९,४६६
२.	मणिपुर	८,६२८	५,७७,६३५
३.	त्रिपुरा	४,०३२	६,३९,०२९
४.	अण्डमान तथा निकोबर द्वीप	३,२१५	३०,९७१
५.	दिल्ली	५७८	१७,४४,०७२
६.	लकादिव, मिनीकोय और अमीनदिव द्वीप	१०	२१,०३५
	योग	२७,३६७	४१,२२,२०८

सारांश

जब मनुष्य स्वभाव और आवश्यकता से एक सामाजिक प्राणी है तो वह अकेला नहीं रह सकता, वह समुदाय बनाता है। समुदाय व्यक्तियों के उस समूह को कहते हैं जो किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कार्य करता है तथा कुछ नियमों के अधीन है। समुदायों और समाज में अन्तर है—समाज का ध्येय सामान्य है और समुदायों का ध्येय विशिष्ट (particular) होता है। समाज चिरस्थायी है और समुदाय अस्थायी।

समुदायों की उपयोगिता—समुदायों द्वारा मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इसके द्वारा व्यक्तित्व का विकास होता है। इससे जीवन में अधिक से अधिक सफलता प्राप्त होती है। समुदायों द्वारा अधिकार तथा कर्त्तव्य-पालन की शिक्षा मिलती है। प्रमुख सामाजिक, राजनैतिक विषयों पर समुदायों द्वारा लोकमत का संग्रह होता है। समुदाय मनुष्य के हितों तथा अधिकारों की रक्षा करते हैं और उन में पारस्परिक सम्बन्ध बढ़ाते हैं।

H2848

रक्त-सम्बन्धी समुदाय, आर्थिक समुदाय, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा मनोरञ्जक समुदायों की मुख्य किस्में हैं। कुटुम्ब रक्त-सम्बन्धी समुदाय है, मज़दूरों के संघ तथा मिल मालिकों की संस्थाएँ आर्थिक समुदाय हैं। स्कूल और कालेज तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ सांस्कृतिक समुदाय हैं। मुस्लिम लीग, जनसंघ, काँग्रेस तथा प्रजा परिषद् पार्टी राजनैतिक समुदाय हैं। सनातन धर्म तथा आर्यसमाज धार्मिक समुदाय हैं, टेनिस क्लब मनोरञ्जक समुदाय है।

कुटुम्ब—कुटुम्ब का जन्म स्त्री-पुरुष के प्रेम और मेल-मिलाप से होता है। सम्मिलित कुटुम्ब में माता-पिता, भाई-बहन, चाचा-चाची, ताऊ-ताई, दादा-दादी आदि रहती हैं। सरल परिवार (single family) में बच्चे विवाह के पश्चात् माता-पिता के साथ नहीं रहते। परिवार मातृक (matriarchal) तथा पैतृक (patriarchal) भी होते हैं। बहुत से देशों में एक पुरुष को कई स्त्रियाँ रखने की आज्ञा होती है और कुछ देशों में एक स्त्री कई मर्द (husbands) रख सकती है। बहुत से देशों में एक स्त्री के साथ केवल एक मर्द को विवाह की आज्ञा दी जाती है।

कुटुम्ब के कार्य—परिवार जीवन को जन्म देता है और उसकी रक्षा करता है। हिन्दू सम्मिलित परिवार एक प्रकार से इन्शोरेन्स सोसाइटी की तरह काम करता है। बूढ़े और दुःखियों का प्रबन्ध, व्यावसायिक विद्या पीढ़ी दर पीढ़ी चलती है। घरेलू उद्योग-धन्धों को चलाने में विशेष सहायता। बच्चे अपने माता-पिता से प्रेम, सेवा तथा अन्य सद्गुण सीखते हैं। कुटुम्ब से ही अनुशासन, सहयोग, सहानुभूति, त्याग तथा परोपकार की शिक्षा प्राप्त होती है। कुटुम्ब मनोविनोद का भी एक कारण है। बच्चा नागरिकता का पहला पाठ कुटुम्ब में सीखता है।

Questions

1. What is an association ? Why do men move in associations ? How would you classify them ?

2. Give a careful account of the various types of associations. (*U. P. 1942, 1946*)

3. What is family ? What is the basis of the organisation ?

4. What do you think about the most important functions of the family ? Do you agree with the statement that family is the cradle of social virtues ?

5. "The home is the primary school of civic virtues". Discuss.

6. Elucidate the statement that civic life begins at home. (*Punjab University 1950*)

7. What is a village ? What important functions does it perform in the larger life of a national community ?

8. How do village and towns arise ? Compare a village with a town.

9. What part do towns and villages play in the national life of a country ? (*U. P. 1937*)

परीक्षा प्रश्न

१. परिवार सामाजिक जीवन का स्थायी स्कूल है। इस कथन की व्याख्या और विवेचना कीजिए कि पारिवारिक जीवन में सामाजिक गुणों का सर्वप्रथम विकास कैसे हो सकता है ?
(यू० पी० १९३१)

२. "शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओं में परिवार सबसे बड़ी संस्था है" इस कथन की विवेचना कीजिए। (यू० पी० १९२६)

३. 'परिवार सब संघों से अधिक महत्त्वपूर्ण है', इस उक्ति की विवेचना कीजिए।
(यू० पी० १९४०)

४. 'परिवार सब सामाजिक गुणों का शिक्षणालय है', इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिए। (यू० पी० १९४२,१९५१)

५. संयुक्त परिवार प्रणाली पर संक्षिप्त नोट लिखो। (यू० पी० १९५३)

चौथा अध्याय

राज्य (State)

"Will and not Force is the basis of State."—*T. H. Green*

सामाजिक जीवन में राज्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मानवीय सभ्यता के विकास के लिए राज्य का विशेष भाग है। राज्य के बिना देश में शान्ति स्थापित करना सम्भव नहीं है। यदि राज्य न हो तो तमाम देश में अराजकता फैल जाये। राज्य सब समुदायों से आवश्यक समुदाय है। किसी और समुदाय के बिना गुजारा चल सकता है परन्तु राज्य के बिना नहीं। व्यापार, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य क्षेत्रों में राज्य का विशेष हाथ रहता है। उन्नीसवीं शताब्दी तक राज्य का इतना महत्त्व नहीं था परन्तु अब समाजवाद की प्रगति के कारण राज्य मानव-समाज का सब से अधिक शक्तिशाली तथा महत्त्वपूर्ण संगठन बन गया है।

परिभाषा—एरिस्टॉटल[1] के अनुसार राज्य आत्म-निर्भर तथा समृद्ध जीवन के हेतु संगठित कुटुम्बों तथा ग्रामों का समूह है। आत्म-निर्भरता से उसका तात्पर्य पूर्ण, सुखी तथा आदरणीय जीवन था। उन्नीसवीं शताब्दी में स्विस लेखक ब्लन्टश्ली[2] ने राज्य की परिभाषा देते हुए लिखा कि "किसी निश्चित भूभाग पर बसी हुई जनता का राजनैतिक संगठन राज्य है।" गेटेल के अनुसार, "राज्य व्यक्तियों का एक समूह है जो कि एक निश्चित भू-भाग में बसा हो, बाहरी शक्तियों के नियन्त्रण से स्वतन्त्र हो, तथा जिसकी एक संगठित सरकार हो जो कि कानून बनाती हो तथा उसको राज्य के अन्तर्गत समस्त व्यक्तियों तथा संस्थाओं से मनवाती हो।" अंग्रेज विधानवेत्ता हालैण्ड ने राज्य की परिभाषा इस प्रकार की है, "राज्य बहुत से ऐसे मनुष्यों का समुदाय है जो कि निश्चित भू-भाग पर अधिकार रखता हो तथा जिसमें एक बहुसंख्यक दल या एक निश्चित वर्ग का मत उन व्यक्तियों द्वारा भी माना जाये जो उसका विरोध करते हों।" वुडरो विल्सन (Woodrow Wilson) ने राज्य की परिभाषा करते हुए लिखा है: "किसी निश्चित भू-भाग में शान्तिमय जीवन के लिए संगठित जनता को राज्य कहा जाता है।"[3] इस परिभाषा में राज्य की संप्रभुता का उल्लेख नहीं। हालैण्ड की परिभाषा में भी राज्य की सार्वभौमिकता का उल्लेख नहीं है। इसलिए उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। अरस्तू की परिभाषा में केवल तत्कालीन

1. Aristotle defined the state as a 'Union of families and villages having for its end a perfect and self-sufficing life by which we mean a happy and honourable life.'

2. Bluntschli defines it as "the politically organised national person of a definite country."

3. Woodrow Wilson said, "A state is a people organised for law within a definite territory."

स्थिति का वर्णन है जब राज्य का विस्तार संकुचित था और उसमें केवल कुछ गाँव ही सम्मिलित होते थे। राज्य की सब से सुन्दर भाषा गार्नर[1] की मानी जाती है। उसके मतानुसार "राज्य मनुष्यों के उस थोड़े या बहु-संख्यक समुदाय (या संगठन) का नाम है जो कि स्थायी रूप में एक निश्चित भू-भाग में रहता हो और बाहरी नियन्त्रण से पूर्ण स्वतन्त्र या लगभग स्वतन्त्र हो, तथा जिसकी एक संगठित सरकार हो और उसकी आज्ञा का पालन अधिकांश जनता स्वभाव से करती हो।"

गार्नर की यह परिभाषा सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है क्योंकि यह राज्य के चार आवश्यक तत्त्व (१) जनसमूह, (२) भूमि, (३) शासन, तथा (४) संप्रभुता को मानती है। आधुनिक काल में राज्यों की संज्ञा उन्हीं देशों को दी जाती है जिनमें यह चारों ही तत्त्व विद्यमान हों। इनमें से एक तत्त्व के अभाव में भी राज्य का अस्तित्व स्थिर नहीं रह सकता।

राज्य के आवश्यक तत्त्व (Constituent Elements of State)

राज्य की अनेक परिभाषाओं (definitions) के पढ़ने से पता चलता है कि प्रत्येक राज्य में चार निम्नलिखित तत्त्व होने चाहिएँ।

(१) जनसंख्या (population)
(२) भूमि (territory)
(३) शासन (government)
(४) सार्वभौमिकता (sovereignty)

(१) **जनसंख्या**—राज्य का प्रथम आवश्यक अंग जनता है। बहुत से जंगली पशु या पक्षियों के संगठन से राज्य की स्थापना नहीं हो सकती। सिर्फ दो-चार सौ मनुष्य भी राज्य का निर्माण नहीं कर सकते। यह संख्या कितनी होनी चाहिए, इस विषय पर लेखकों के भिन्न-भिन्न विचार हैं। प्लेटो (Plato) के मतानुसार आदर्श राज्य की जनसंख्या ५,०४० होनी चाहिए। अरस्तू ने राज्य के लिए कोई निश्चित संख्या निर्धारित तो नहीं की है किन्तु उसकी सम्मति में राज्य की जनसंख्या कम ही रहनी चाहिए। अरस्तू का विचार था कि न तो दस मनुष्य और न ही एक लाख मनुष्य एक उत्तम राज्य को बना सकते हैं। उसका मत था कि जनसंख्या न तो बहुत थोड़ी और न बहुत ज्यादा होनी चाहिए। उसके मतानुसार जनसंख्या इतनी अधिक हो कि वह स्वपर्याप्त (self-sufficing) हो तथा इतनी कम हो कि ठीक प्रकार से शासन हो सके। रूसो के विचार के अनुसार जनसंख्या १०,००० होनी चाहिए। राज्य की जनसंख्या ड्यूगी (Duguit) के अनुसार इतनी होनी चाहिए कि उससे शासक तथा शासित के दो भाग बन जायँ। इसके अतिरिक्त साधारणतया राज्य में जनता उतनी होनी चाहिए जितनी कि वहाँ की भूमि और पैदावार से ठीक प्रकार पल सके।

---

1. The state is a community of persons, more or less numerous, permanently occupying a definite portion of territory, independent or nearly so of external control and possessing an organised Government to which the great body of inhabitants render habitual obedience."—*Garner.*

आधुनिक युग में राजनीतिज्ञ जनसंख्या का थोड़ा या परिमित होना आवश्यक नहीं समझते। यातायात (communication) के साधनों में उन्नति के कारण बड़ी-से-बड़ी संख्या पर भी आसानी से शासन किया जा सकता है। आजकल के युग में अधिक संख्या पर जोर दिया जा रहा है। हिटलर (Hitler) और मुसोलिनी (Mussolini) की सरकारें अधिक बच्चे उत्पन्न करने वाली नारियों को पुरस्कार देती थीं। जिनके बिलकुल बच्चे नहीं थे या अविवाहित होते थे, उन पर विशेष टैक्स लगाया जाता था।

अतः स्पष्ट है कि राज्य बनने के लिए कोई संख्या निश्चित नहीं की जा सकती। चीन की आबादी ५० करोड़ के लगभग है। भारत की आबादी ३५ करोड़ से अधिक है। रूस की आबादी लगभग १७ या १८ करोड़ है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका की आबादी १५ करोड़ से अधिक है। स्विट्ज़रलैण्ड की आबादी लगभग ४० लाख है। इससे भी छोटे राज्य हैं जैसे लक्समबर्ग। इसकी आबादी १० लाख से कम है।

(२) **निश्चित भू-भाग** (Definite Territory)—राज्य का दूसरा आवश्यक तत्त्व भूमि है। जनता किसी निश्चित भू-भाग में बसी होनी चाहिए। बिना भूमि के राज्य बन ही नहीं सकता। स्विस लेखक ब्लन्टश्ली (Bluntschli) कहता है कि 'राज्य का वैयक्तिक आधार जनसंख्या है, इसका भौतिक आधार भूमि है।' जनता तब तक राज्य नहीं बना सकती जब तक इसके पास निश्चित भूमि न हो। जब तक मनुष्य एक स्थान पर बस नहीं जाते, तब तक वे राज्य की बुनियाद नहीं डाल सकते। खानाबदोश लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं। ऐसे लोग राज्य नहीं बना सकते। सन् १९४८ से पूर्व यहूदी सारे संसार में फैले हुए थे परन्तु उनके पास कोई मातृभूमि नहीं थी, अतः वे राज्य का निर्माण नहीं कर सके। परन्तु अब इनके पास इजराईल (Palestine) नामक भूमि है अतः अब इनका अपना राज्य-निर्माण हो गया है।

जनसंख्या की ही भाँति यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि आदर्श राज्य के लिए कितना क्षेत्रफल (area) आवश्यक है। कुछ समय पहले लेखकों का मत था कि पर्याप्त खाद्य-सामग्री उत्पन्न करने वाली भूमि होनी चाहिए जिससे नागरिकों को दूसरे देशों पर निर्भर न रहना पड़े परन्तु आजकल यह बात नहीं रह गयी है। इंगलैंड में केवल इतनी खाद्य-सामग्री पैदा होती है कि उससे केवल छः महीने तक गुजारा चल सकता है परन्तु वहाँ के लोग उद्योग-धन्धों से इतना पैसा पैदा कर लेते हैं कि वे खाद्य-वस्तुएँ दूसरे देशों से आसानी से खरीद सकें। यदि किसी राज्य के पास अधिक भूमि है तो वह उसके लिए शक्ति-प्रदायक सिद्ध होती है। अतः राज्य के लिए क्षेत्रफल निश्चित नहीं किया जा सकता।

आधुनिक युग में राज्य का भूमि में जो पहाड़, तालाब, दरिया और नदियाँ होती हैं, वे उसी राज्य में शामिल होती हैं। भूमि के ऊपर का वायुमण्डल भी उसी राज्य का भाग गिना जाता है और राज्य की भूमि से लगा हुआ १२ मील तक समुद्र भी उसी राज्य की भूमि का ही भाग समझा जाता है।

भूमि की सीमा के अन्तर्गत जितने मनुष्य रहते हैं अथवा जन्म लेते हैं, राज्य

का उन पर पूर्णरूप से अधिकार रहता है। उनको राज्य की आज्ञा मानना पड़ती है और राज्य को टैक्स इत्यादि देने पड़ते हैं। जलवायु का जनता के चरित्र पर और राजनैतिक संस्थाओं पर विशेष प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के रूप में इंग्लैंड द्वीप होने के कारण एक महान् नौ-सैनिक सत्ता (naval power) रहा है। प्राचीन काल में नगर-राज्यों का उदय भी वहाँ की प्राकृतिक अवस्था से सम्बन्धित था।

(३) **सरकार** (Government)—यद्यपि जनता और भूमि राज्य के अत्यन्त आवश्यक अंग माने जाते हैं, तथापि बिना सरकार और प्रभुता के राज्य-निर्माण नहीं हो सकता। सरकार के बिना देश में शान्ति स्थापित नहीं हो सकती और अराजकता फैल जायेगी। सरकार वह मशीन है जिसके द्वारा व्यवहार में राज्य की इच्छा प्रकट की जाती है। बिना सरकार के सामाजिक ढाँचा भी कायम नहीं रह सकता। समान भाषा, धर्म, जाति तथा संस्कृति से राजनैतिक संगठन में अवश्य सहायता मिलती है।

सरकार वास्तव में कुछ ऐसे सामूहिक कार्य करती है जो कि लोग अलग-अलग रह कर नहीं कर सकते। सरकार सारे देश में एक व्यवस्था कायम करती है और नियम बनाती है। प्रत्येक मनुष्य को उन नियमों का पालन करना पड़ता है। जो मनुष्य उन नियमों का पालन नहीं करते, सरकार उनको दण्ड देती है। यदि किसी भू-भाग में जनता में एक सरकार की बजाय दो सरकारें हो जायें, तो वहाँ एक की बजाय दो राज्य कायम हो जायँगे।

सरकार राज्य की आत्मा है। सरकार के बिना राज्य का अस्तित्व कायम नहीं रह सकता। राज्य में सरकार किस प्रकार की हो, इसके लिए कोई नियम निश्चित नहीं है। सरकार प्रजातन्त्रात्मक भी हो सकती है और एकतन्त्रात्मक भी। आवश्यकता केवल इस बात की है कि सरकार देश में शान्ति स्थापित कर सके तथा अपने कानून प्रत्येक व्यक्ति तथा समुदाय (association) से मनवा सके।

(४) **सार्वभौमिकता अथवा राजसत्ता** (Sovereignty)—सार्वभौमिकता अर्थात् प्रभुत्व-शक्ति राज्य का प्राण है। सार्वभौमिकता के बिना राज्य नहीं बन सकता। सार्वभौमिकता दो प्रकार की होती है, एक बाह्य (external) और दूसरी आन्तरिक (internal)। सार्वभौमिकता का अर्थ है राज्य की सर्वोच्च शक्ति। राज्य की बाह्य सार्वभौमिकता का अर्थ है कि देश किसी बाहरी शक्ति के अधीन न हो। हमारा देश १९४७ ईस्वी से पूर्व इंग्लैंड के अधीन था, अतः अन्य सब तत्त्वों के होते हुए भी हमारा देश राज्य नहीं कहला सकता था। सार्वभौमिक राज्य के मामलों में दूसरा देश बिल्कुल हस्तक्षेप नहीं कर सकता। उसे यह अधिकार होता है कि अन्य राज्य से युद्ध, सन्धि आदि विषयों में इच्छानुसार व्यवहार करे। सार्वभौमिक राज्य अन्तर्राष्ट्रीय संघ के अधीन नहीं होता। संयुक्तराष्ट्र संघ (U. N. O.) उसे कोई कार्य करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। संयुक्तराष्ट्र संघ के निर्णयों को अपनाना सार्वभौमिक राज्य की इच्छा पर निर्भर है।

आन्तरिक सार्वभौमिकता का अर्थ है कि राज्य तमाम समुदायों और व्यक्तियों पर सर्वोपरि है। तमाम समुदायों और व्यक्तियों को राज्य की आज्ञा का पालन करना

पड़ता है। किसी व्यक्ति अथवा समुदाय में इतना अधिकार या शक्ति नहीं होती कि वह राज्य के कानूनों का बिना किसी दण्ड के उल्लंघन कर सके। यदि कोई व्यक्ति या समुदाय राज्य के नियमों का उचित पालन न करे तो उसको दण्ड देने की राज्य में शक्ति होनी चाहिए। जब राज्य में ऐसी शक्ति नहीं रहती, तब आन्तरिक क्रान्ति हो जाती है और तमाम शक्ति क्रान्तिकारी पार्टी के हाथ में आ जाती है। अतः राज्य की सार्वभौम शक्ति पूर्ण, अपरिमित तथा अविभाज्य और अभेद्य है।

उपर्युक्त चार तत्त्वों के अतिरिक्त प्रोफेसर विलोबी के मतानुसार राज्य के लिए एक आवश्यक तत्त्व प्रजा की आज्ञा-पालन की भावना है। ऊपर लिखे हुए चार तत्त्वों के होते हुए भी यदि राज्य के लोगों में आज्ञा-पालन का भाव नहीं है तो वह राज्य अधिक समय तक नहीं टिक सकता। परन्तु बहुत से लेखक इसको अलग अङ्ग नहीं मानते।

राजसत्ता राज्य का सर्वोच्च गुण है। यह राज्य की परम शक्ति है। बोदाँ (Bodin) लिखता है कि यह नागरिकों तथा प्रजा के ऊपर परम शक्ति है, जो कि कानूनों से नियन्त्रित नहीं है। ऑस्टिन कहता है कि राजसत्ता ही राज्य है परन्तु सारे लेखक इसको मानने को तैयार नहीं हैं। उदाहरणार्थ, लास्की (Laski) के मतानुसार राज्य की संप्रभु-शक्ति से तात्पर्य केवल सरकार की ही शक्ति से हो सकता है।

गेटेल कहता है कि "राजसत्ता ही राज्य का असली तत्त्व है। राज्य के अन्दर इसका अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति तथा संस्था जो कि राज्य में है, कानूनन इसके अधिकार में है, राज्य के बाहर इसका अर्थ है कि राज्य किसी अन्य राज्य के अधीन नहीं है। प्रो० बर्गेस के अनुसार राज्य की विशेषता स्थायित्व है। सरकार तो बदलती रहती है किन्तु राज्य साधारणतया स्थायी रहता है। राज्य भी कभी-कभी नष्ट हो जाता है जब कि एक देश परतन्त्र हो जाय। भारत १९४७ के बाद राज्य बन गया है। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान, आस्ट्रेलिया, लंका, कैनेडा (Canada), न्यूज़ीलैंड तथा दक्षिणी अफ्रीका भी राज्य हैं। संयुक्तराष्ट्र संघ (U. N. O.) राज्य नहीं है क्योंकि राजसत्ता (sovereignty) इसके सदस्यों के ही पास है। इसका कोई निश्चित भू-भाग भी नहीं है तथा इसके पास अपनी कोई आबादी भी नहीं है। सत्य तो यह है कि संयुक्तराष्ट्र संघ एक संधान (federation) न होकर एक प्रसंधान (confederation) है।

राज्य तथा सरकार
(State and Government)

सरकार केवल राज्य का अंग है—साधारणतया राज्य और सरकार शब्द का प्रयोग लोग एक ही अर्थ में कर लेते हैं परन्तु राज्य और सरकार में काफी भेद है। दोनों में निम्नलिखित भेद हैं।

(१) **राज्य एक व्यापक शब्द है**— राज्य में हकूमत करने वाली सरकार तथा जनता दोनों ही शामिल हैं परन्तु सरकार में हकूमत करने वाले लोग ही शामिल हैं। अतः सरकार केवल राज्य का एक अंग मात्र है।

(२) **राज्य स्वामी और सरकार नौकर है**—राज्य मालिक (master) है

और सरकार उसकी नौकर। सरकार वास्तव में राज्य की एक मशीन ही है जो कि राज्य की इच्छा को कार्यरूप में परिणत करती है।

(३) **राज्य अमूर्त्त तथा सरकार मूर्त्त है**—राज्य एक अमूर्त (abstract) समुदाय (association) है परन्तु सरकार राज्य का एक मूर्त (concrete) अंग है। राज्य अप्रत्यक्ष है सरकार प्रत्यक्ष। राज्य के बारे में हम विचार ही कर सकते हैं, वह दिखाई नहीं देता।

(४) **राज्य स्थायी होता है और सरकार अस्थायी**—राज्य साधारणतया स्थायी (permanent) माना जाता है। जब तक लोग अपनी स्वतन्त्रता न खो बैठें, तब तक वह राज्य ही रहता है। सरकार आम तौर पर बदलती रहती है। कभी इंग्लैंड में लेबर पार्टी का राज्य रहता है तो कभी कंज़र्वेटिव पार्टी का। एक सरकार के बदलने से राज्य के स्थायित्व में कुछ अन्तर नहीं आता परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि राज्य अमर है। जब इटली ने एबीसीनिया पर विजय प्राप्त कर ली तो एबीसीनिया राज्य का विनाश हो गया। इसी प्रकार जब दूसरे महायुद्ध में पोलैंड, आस्ट्रिया और केन्द्रीय यूरोप के दूसरे देश जर्मनी से पददलित हो गए थे, तो वे ठीक रूप में राज्य नहीं कहे जा सकते थे।

(५) **जनता सरकार का विरोध कर सकती है लेकिन राज्य का नहीं**—जनता सरकार का विरोध कर सकती है राज्य का नहीं। राज्य में जनता होती है, अतः राज्य का विरोध जनता का अपना विरोध है। जनता को सरकार का विरोध करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है।

(६) **राज्य प्रभु और सरकार अप्रभु होती है**—राज्य के पास प्रभुता (sovereignty) रहती है परन्तु सरकार के पास नहीं। अतः राज्य के सब अधिकार मौलिक रहते हैं। परन्तु सरकार के पास सब अधिकार राज्य से दिये हुए ही रहते हैं। राज्य जब चाहे तब इन अधिकारों को वापिस ले सकता है।

(७) **राज्य एक ही प्रकार के हो सकते हैं परन्तु सरकार के नाना प्रकार के भेद होते हैं**—सब राज्य एक ही प्रकार के होते हैं। प्रत्येक राज्य में चार तत्त्व होते हैं अर्थात् जनता, सीमा, सरकार और सत्ता। परन्तु सरकारें प्रत्येक राज्य में भिन्न-भिन्न होती हैं। कहीं पर तानाशाही (dictatorship) होती है तो कहीं पर प्रजातन्त्र (democracy)। किसी देश में संघात्मक (federal) सरकार होती है तो दूसरे देश में एकात्मक (unitary)। इसी प्रकार कहीं पर अध्यक्षात्मक (presidential) तो कहीं पर संसदीय (parliamentary)। भारत में संसदीय सरकार है तो अमेरिका में अध्यक्षात्मक।

राज्य और समुदाय या संघ में अन्तर
(Difference between State and Other Associations)

(१) **राज्य की सदस्यता अनिवार्य और समुदायों की ऐच्छिक होती है**—राज्य की सदस्यता प्रत्येक नागरिक के लिए अनिवार्य है। मनुष्य चाहे किसी समुदाय का सदस्य बनना चाहे या न चाहे, उसे किसी न किसी राज्य का सदस्य अवश्य बनना

पड़ता है। राज्य की सदस्यता उसकी इच्छा पर निर्भर नहीं। परन्तु संघ या समुदाय की सदस्यता उसकी इच्छा पर निर्भर है। कोई समुदाय (association) किसी मनुष्य को इस बात के लिए बाध्य नहीं कर सकता कि वह अवश्यमेव उसका सदस्य बने। सदस्य बन कर भी मनुष्य सदस्यता को किसी समय छोड़ सकता है।

(२) राज्य के लिए निश्चित भू-भाग आवश्यक परन्तु समुदायों के लिए अनावश्यक—राज्य एक निश्चित भू-भाग में बसा हुआ होता है। संघ या समुदाय के लिए कोई निश्चित सीमा नहीं होती। समुदाय कई बार अन्तर्राष्ट्रीय होते हैं और कई बार केवल एक देश तक सीमित। समुदाय न केवल अन्तर्राष्ट्रीय या राष्ट्रीय हो सकते हैं बल्कि स्थानीय भी हो सकते हैं। रेडक्रास सोसायटी अथवा मजदूर संघ सारे संसार में फैले हुए हैं। काँग्रेस तथा जनसंघ तमाम भारतवर्ष में फैले हुए हैं। क्लब कई बार स्थानीय होती हैं।

(३) हम एक बार में कई राज्यों के सदस्य नहीं बन सकते परन्तु समुदायों के सदस्य बन सकते हैं—हम एक ही बार कई राज्यों के मेम्बर नहीं बन सकते। यदि हम भारत में उत्पन्न हुए हैं तो केवल भारत के नागरिक हो सकते हैं। यदि हम भारत के नागरिक होते हुए संयुक्त राज्य अमरीका के भी नागरिक बनना चाहें, तो यह सम्भव नहीं है। जहाँ तक समुदायों का सम्बन्ध है, हम एक से अधिक समुदायों के भी सदस्य बन सकते हैं। उदाहरणार्थ एक मनुष्य एक मनोरंजन क्लब, आर्य समाज तथा काँग्रेस का सदस्य एक ही समय में बन सकता है।

(४) राज्य का ध्येय सामान्य और समुदायों का संकीर्ण होता है—राज्य का लक्ष्य सामान्य (general) होता है और समुदायों का संकीर्ण होता है। राज्य का ध्येय सब की भलाई करना है, इसके लिए राज्य समाज में सुव्यवस्था अथवा शान्ति उत्पन्न करता है और लोक-कल्याण के लिए अस्पताल तथा शिक्षा के केन्द्र खोलता है परन्तु समुदायों का प्रयोजन संकीर्ण होता है। समुदाय किसी वर्ग-विशेष की भलाई के लिए बनाये जाते हैं, जैसे मजदूर संघ केवल मजदूरों की भलाई के लिए ही है और मिल ओनर्ज एसोसियेशन (Mill Owners' Association) केवल पूँजीपतियों की सहायता के लिए ही है।

(५) राज्य स्थायी और समुदाय अस्थायी होते हैं—राज्य समुदायों से अधिक स्थायी होते हैं। कई समुदाय तो क्षणिक होते हैं और अपना कार्य पूरा करने के बाद तुरन्त खत्म हो जाते हैं, जैसे भूचाल समिति तथा बाढ़ समिति।

(६) राज्य प्रभु (sovereign) और समुदाय अप्रभु होते हैं—राज्य के पास राजसत्ता या प्रभुता (sovereignty) है परन्तु दूसरे समुदायों के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है। यदि कोई मनुष्य राज्य के कानूनों का उल्लंघन करे तो उसे दण्ड दिया जा सकता है परन्तु यदि कोई किसी समुदाय के नियमों की अवहेलना करे तो केवल अधिक से अधिक उसका बहिष्कार हो सकता है। उसको न्यायालय के द्वारा किसी प्रकार का दण्ड नहीं दिया जा सकता।

(७) राज्य के पास कर लगाने की शक्ति होती है परन्तु समुदायों के पास

आक्रमण तथा रक्षा में सफलता से नेता की सत्ता स्थापित होती है। यही नेता आगे चलकर राजा बन जाता है।"[1]

अतः विकासवादी सिद्धान्त यह बतलाता है कि राज्य की उत्पत्ति और विकास में हजारों साल लगे और कई तत्त्वों ने उस में मिलकर काम किया। यही सिद्धान्त राज्य की उत्पत्ति का वास्तविक सिद्धान्त है।

६. सावयव सिद्धान्त (Organic Theory)

इस सिद्धान्त से राज्य की उत्पत्ति के विषय में कुछ जानकारी न होकर, उसके स्वरूप (nature) के बारे में पता चलता है। यह सिद्धान्त उतना ही पुराना है जितना राज्य-विज्ञान। प्लेटो (Plato), अरस्तू, सिसरो (Cicero), सेंट टॉमस एक्वीनास, जान ऑफ सेलिस्बरी, मारसिल्यो, ओकम आदि कुछ लेखक इसके समर्थक थे। प्लेटो ने राज्य की तुलना व्यक्ति से की और उसके फलस्वरूप कई सिद्धान्त निकाले। इसी प्रकार अरस्तू ने भी इस सिद्धान्त पर काफी विचार किया और कई बार व्यक्ति और राज्य की तुलना की। हॉब्स ने राज्य की तुलना एक दैत्याकार मानव (Leviathan) से की। परन्तु यह बात याद रखने योग्य है कि वह राज्य को एक प्राकृतिक संस्था (natural institution) न मानकर एक कृत्रिम संस्था (artificial institution) ही मानता है। इस सिद्धान्त के महत्त्वपूर्ण लेखक ब्लंटश्ली और स्पेन्सर थे।

स्पेन्सर का विश्वास था कि राज्य या समाज एक प्राकृतिक शरीर है जो किसी आवश्यक बात में अन्य जीवधारियों के शरीर से भिन्न नहीं है। जीवधारियों के अंगों और समाज के अंगों में समानता है। शरीर और उसके अंगों में जो सम्बन्ध है, वही समाज के अंगों और समाज में है। दोनों में एक ही समान उन्नति होती है। स्पेन्सर ने इसके अतिरिक्त मानव-शरीर और राज्य में चार निम्नलिखित समानताएँ दिखलाई हैं।[1]

१. प्रारम्भिक अवस्था में शरीर और राज्य दोनों ही छोटे होते हैं, किन्तु विकास के साथ दोनों के आकार में वृद्धि हो जाती है।

२. विकास के साथ ही साथ शरीर व राज्य दोनों ही की बनावट जटिल हो जाती है।

३. दोनों में ही बनावट की जटिलता के साथ अवयवों की पारस्परिक निर्भरता बढ़ती जाती है। एक की सहायता के बगैर दूसरा कार्य करने में असमर्थ होता है और एक का प्रभाव पूरे शरीर पर पड़ता है। ऐसा श्रम-विभाजन के फलस्वरूप होता है।

---

१. प्रोफेसर सूद—'राज्य विज्ञान के मूल सिद्धान्त'।

2. Spencer asserted that society is an organism and it differs in no essential principles from other biological organisms. The attributes of an organism and the society, he maintained, are similar and the permanent relations existing between their various parts are also the same. Both exhibit the same process of development.

४. राज्य व मानव-शरीर दोनों ही में अंगों या अवयवों की अपेक्षा मूल शरीर का जीवन लम्बा होता है। उदाहरणतः हाथ-पाँव कट जाने पर शरीर बना रहता है, किन्तु उस से समाज के अस्तित्व में कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त स्पेन्सर ने यह भी बतलाया कि राज्य के मस्तिष्क नहीं होता परन्तु व्यक्ति के होता है और जीवधारी शरीर में अंग परस्पर मिले होते हैं किन्तु राज्य में वे पृथक् रहते हैं।

सावयव सिद्धान्त का प्रयोजन तथा आलोचना—सावयव सिद्धान्त से यह निचोड़ निकाला गया कि राज्य किसी एक व्यक्ति ने या कुछ व्यक्तियों ने किसी समय नहीं बनाया बल्कि यह पौधे की भाँति शनैः-शनैः बढ़ा है। अतः राज्य कोई कृत्रिम वस्तु नहीं है। दूसरे, इस सिद्धान्त का यह भी मूल्य है कि राज्य केवल मनुष्य का समूह (collection of individuals) नहीं है। राज्य में शरीर की न्याईं एकता विद्यमान है। तीसरे, यह भी दिखलाया गया कि जैसे सारा शरीर किसी अंग की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है, उसी प्रकार समाज का व्यक्ति की अपेक्षा अधिक महत्त्व है। इससे व्यक्तिवाद का खण्डन किया गया।

इसकी आलोचना यह है कि समाज और शरीर में कुछ समानता अवश्य है परन्तु समाज बिल्कुल शरीर नहीं है। दूसरे इससे सर्वस्वायत्तवाद (totalitarianism) को सहारा मिलता है। तीसरे, समाज के और प्राणी-शरीर के जन्म और विकास के सिद्धान्त बिल्कुल पृथक् हैं। प्राणी-शरीर का जन्म दो प्राणियों के मेल से होता है परन्तु समाज का जन्म दो समाजों के मेल से नहीं होता।

सारांश

राज्य क्या है ? राज्य मनुष्यों के उस बहुसंख्यक समुदाय या संगठन का नाम है जो कि एक निश्चित भू-भाग में रहता है, जिसकी ऐसी संगठित सरकार है जो बाहरी नियन्त्रण से पूर्ण स्वतन्त्र है तथा जिसकी आज्ञा का पालन अधिकांश जनता स्वभाव से करती है। अतः राज्य में चार तत्त्व होने चाहिएँ अर्थात् भूमि, जनसंख्या, सरकार और राजसत्ता। जनसंख्या के बिना राज्य का निर्माण असम्भव है। जिन देशों में बहुत अधिक बरफ पड़ती है और कोई भी आदमी नहीं रहता, वहाँ राज्य सम्भव नहीं। यद्यपि प्लेटो ने ५,०४० और रूसो ने दस हजार तथा एरिस्टॉटल ने दस से अधिक और एक लाख से कम संख्या निश्चित की तथापि आजकल संख्या का निश्चित करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि भारत की जनसंख्या ३५ करोड़ और चीन की ५० करोड़ से अधिक है। राज्य का दूसरा महत्त्वपूर्ण अंग भूमि है। भूमि में केवल पृथ्वी ही नहीं बल्कि आकाश और तट के साथ का कुछ सामुद्रिक भाग भी सम्मिलित है। जनसंख्या की न्याईं भूमि का क्षेत्रफल (area) भी निश्चित नहीं किया जा सकता। सरकार राज्य का तीसरा महत्त्वपूर्ण अंग है। सरकार के तीन अंग हैं, कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका। सरकार के बिना व्यवस्था और शान्ति नहीं रह सकती और अराजकता फैल जाएगी। राज्य का चौथा महत्त्वपूर्ण अंग प्रभुता है। प्रभुता का अर्थ है कि राज्य सब समुदायों से सर्वोपरि है और बाहरी दबाव से स्वतन्त्र है। राज्य

और सरकार में यह भेद है कि राज्य के पास प्रभुता रहती है परन्तु सरकार के पास नहीं।

राज्य कैसे उत्पन्न हुआ ? शक्ति सिद्धान्त को मानने वालों का विचार था कि राज्य शक्ति द्वारा उत्पन्न हुआ। नीत्शे, हालर, लुडविग और ओपेनहाइमर का ऐसा ही विचार था। ग्रीन का विचार था कि राज्य का आधार शक्ति न होकर लोकेच्छा ही है। इस सिद्धान्त में आंशिक सत्य है क्योंकि इसमें सन्देह नहीं कि राज्य की उत्पत्ति में शक्ति ने कुछ काम किया जैसा जब शक्तिशाली कबीले ने कमजोर पर अपना अधिकार जमा लिया, तो राज्य का आरम्भ हुआ और राज्य का विस्तार भी शक्ति द्वारा कुछ हद तक हुआ परन्तु शक्ति के अतिरिक्त रक्त-सम्बन्ध, धर्म और कुटुम्ब तथा राजनैतिक चेतना ने भी राज्य के जन्म और विकास में काफी सहायता दी। दैवी सिद्धान्त मानने वालों का विचार था कि राज्य का निर्माण परमेश्वर ने किया है परन्तु अब इस सिद्धान्त का खण्डन हो चुका है। समझौते का सिद्धान्त मानने वालों का विचार था कि राज्य की उत्पत्ति समझौते द्वारा हुई। हॉब्स, लॉक तथा रूसो का ऐसा ही विचार था। हॉब्स के विचार में प्राकृतिक अवस्था अत्यन्त भयानक, लॉक के विचार में काफी सन्तोषजनक और रूसो के विचार में आदर्श थी। अतः यह अवस्था या तो बहुत खराब थी या बहुत अच्छी परन्तु बहुत समय तक ठहर न सकी। इसलिए लोगों ने समझौते द्वारा राज्य को जन्म दिया। हॉब्स के अनुसार लोगों ने सारे अधिकार एक व्यक्ति अथवा व्यक्ति-समूह को दे दिए, अतः वह निरंकुश राजा का समर्थक था। लॉक के अनुसार लोगों ने राजा को केवल जीवन, सम्पत्ति तथा स्वतन्त्रता की रक्षा करने के अधिकार दिए, अतः वह सीमित राजतन्त्र (limited monarchy) का समर्थक था। रूसो के विचार में लोगों ने अपने सारे अधिकार जनता या समाज को दिए। इसलिए सामाजिक इच्छा या सामान्य इच्छा (general will) संप्रभु (sovereign) बन गई। अतः वह लौकिक प्रभुत्व (popular sovereignty) या लोकतन्त्र (democracy) का समर्थक था। अब इस सिद्धान्त का खण्डन हो चुका है क्योंकि इतिहास में इस प्रकार राज्य बनाने का कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं। यह तर्क के भी विरुद्ध है। अब इसका स्थान ऐतिहासिक या विकासवादी सिद्धान्त ने ले लिया है। उसके अनुसार राज्य का विकास धीरे-धीरे हुआ जिसमें धर्म, रक्त-सम्बन्ध और राजनैतिक चेतना तथा कुछ शक्ति ने अपना-अपना काम किया। यही राज्य का सच्चा सिद्धान्त है।

Important Questions

1. Define State. What are the essential attributes of State ? Distinguish botween State and Society. (*P. U. 1943, 1948*)

2. What is meant by State ? Explain the distinction between State and Government. Is India a State ?
(*C. U. 1937, 1943 ; U. P. 1944, 1947*)

3. Is social life possible without Govt. ? What is the necessity and origin of Govt. ? (*U. P. 1931*)

4. "We should regard the modern State as the outcome of a gradual process of evolution." Amplify this statement. (*U. P. 1945*)

5. "The State is the first essential condition of civilized life." Explain. (*U. P. 1947*)

6. Describe the different theories of the Origin of Society and State and explain which of these is the more satisfactory ? (*U. P. 1937*)

7. Define a State. Distinguish it from Society, Govt., and Nation.

8. Critically examine the Contract Theory of State.

9. Will and not force is the basis of State. Discuss it.

10. Describe the Organic Theory of State. State is like an organism and not organism. Discuss.

11. Describe the Historical or Evolutionary Theory of the State.

योग्यता प्रश्न

१. समाज और राज्य की भिन्नता बतलाइये और संक्षेप में इन दोनों के सम्बन्ध का वर्णन कीजिए। (यू० पी० १९३०)

२. क्या शासन के बिना सामाजिक जीवन सम्भव है ? शासन के अस्तित्व की क्या आवश्यकता है ? (यू० पी० १९३१)

३. राष्ट्र, समाज, राज्य और शासन में क्या भिन्नता है, समझाइये।
(यू० पी० १९३३, १९३६, १९४०, १९४४)

४. मनुष्य राज्य की आज्ञा क्यों पालन करते हैं ? क्या ऐसी भी कोई परिस्थिति है जिसमें नागरिकों को राज्य की आज्ञा भंग करने का अधिकार रहता है ? (यू० पी० १९३३, १९४३)

५. सामाजिक संस्थाओं के नियम क्या हैं ? राज्य के नियम उनसे किस प्रकार भिन्न होते हैं ? (यू० पी० १९३५)

६. सार्वभौमिक राज्य के आवश्यक तत्त्व क्या हैं ? क्या आप निम्नलिखित राज्यों को सार्वभौमिक राज्य समझते हैं ? अपने उत्तर को सप्रमाण समझाइये—हिन्दुस्तान, काश्मीर, न्यूजीलैण्ड, म्युनिसिपल बोर्ड, अन्तर्राष्ट्रीय संघ, स्पेन। (यू० पी० १९३९)

७. 'राज्य सभ्य जीवन की पहली दशा है।' समझाइये।
(यू० पी० १९३२, १९४७)

८. राज्य शब्द का अर्थ समझाइये। उसके आवश्यक गुण क्या हैं ? दूसरी संस्थाओं में और उसमें क्या भेद हैं ? (यू० पी० १९५१)

९. राज्य का अर्थ समझाइये और बताइये कि राज्य और सरकार में क्या अन्तर है ? राज्य का समाज, शासन और देश से पार्थक्य स्पष्ट करो। (यू० पी० १९४८, १९५३)

१०. राज्य के विकास के सम्बन्ध में विभिन्न सिद्धान्त कौन-कौन से हैं ? आपके विचार से कौनसा सिद्धान्त सही है और क्यों ? (यू० पी० १९३५)

११. राज्य के विकास के सम्बन्ध में सामाजिक समझौते का सिद्धान्त समझाइये और उसकी सूक्ष्म आलोचना भी कीजिए। (यू० पी० १९४२, १९४७)

१२. 'वर्तमान राज्य धीरे-धीरे सामाजिक विकास का फल है', इस मत को समझाइये।
(यू० पी० १९४५)

पाँचवाँ अध्याय

संप्रभुता अथवा सार्वभौमिकता (Sovereignty)

"It would be a lasting benefit to political science if the whole concept of sovereignty is surrendered."—*Laski.*

राज्य का विशेष लक्षण संप्रभुता अथवा सार्वभौमिकता या राजसत्ता है। यही गुण राज्य को अन्य संस्थाओं से अलग करता है। राज्य में केवल संप्रभुता (sovereignty) राज्य के पास ही रहती है, अन्य संस्थाएँ तो असंप्रभु (non-sovereign) होती हैं और सदैव राज्य के अधीन रहती हैं। संप्रभुता राज्य की सर्वोच्च शक्ति है। संप्रभुता लैटिन शब्द superanous से निकला है जिसका अर्थ सर्वोच्च (supreme) होता है। गार्नर के अनुसार इसका तात्पर्य यह है कि "प्रत्येक पूर्ण स्वाधीन राज्य में किसी व्यक्ति, परिषद् या जन-समुदाय (अर्थात् निर्वाचक-मण्डल) को सामूहिक इच्छा को कानून के रूप में व्यक्त करने और उसका पालन कराने की सर्वोच्च सत्ता प्राप्त होती है, अर्थात् उसे आदेश देने और उनका पालन करने का अन्तिम अधिकार होता है।" संप्रभुता दो प्रकार की होती है एक आंतरिक और दूसरी बाह्य। आंतरिक संप्रभुता का अर्थ यह है कि राज्य के अन्दर रहने वाले सब व्यक्ति या समुदाय राज्य के पूर्ण अधीन होते हैं अर्थात् उन पर राज्य की शक्ति सर्वोच्च होती है। उनको राज्य की आज्ञा और नियमों का पूर्णरूप से पालन करना पड़ता है। यदि वे राज्य की आज्ञा का पालन न करें तो राज्य को उनको दण्ड देने का पूर्ण अधिकार होता है। बाह्य संप्रभुता का अर्थ यह है कि राज्य किसी बाहिरी देश या संस्था के अधीन नहीं है। राज्य को व्यापारिक सन्धियाँ और सैनिक समझौते करने का पूर्ण अधिकार होता है। हर एक देश को यह अधिकार होता है कि वह अपनी विदेश-नीति किसी तरह भी चलाये, चाहे वह किसी के साथ युद्ध करे, चाहे किसी के साथ गुटबन्दी करे या किसी के साथ सन्धि करे। किसी अन्य राज्य को उसके मामलों में बिल्कुल दखल देने का अधिकार नहीं होता है। अतः बाह्य संप्रभुता का अर्थ यह है कि वह राज्य पूर्ण रूप से बाहिरी दबाव से स्वतन्त्र हो। इससे तात्पर्य राष्ट्रीय स्वतन्त्रता से है।

परिभाषा—बोदां कहता है कि यह नागरिकों तथा प्रजा के ऊपर परम शक्ति है जो कि कानूनों से नियन्त्रित नहीं है।[1] अंग्रेज़ लेखक ऑस्टिन के अनुसार अगर किसी समाज का अधिकांश भाग किसी निश्चित मानवीय प्रधान की आज्ञाओं का साधारणतया पालन करता हो तथा वह निश्चित व्यक्ति किसी अन्य प्रधान की आज्ञा को मानने का आदी न हो, तो उस समाज में वह निश्चित व्यक्ति सर्वप्रधान है तथा वह समाज (उस प्रधान के सहित) एक स्वतन्त्र राज्य है। बर्गेस के अनुसार संप्रभुता नागरिक

1. "It is the supreme power over citizens and subjects unrestrained by laws."

और नागरिकों के समस्त समुदायों पर मौलिक, निरपेक्ष (absolute) एवं अमर्यादित सत्ता का नाम है (या यह व्यक्ति तथा व्यक्तियों के समूह के ऊपर मौलिक, निरंकुश तथा असीमित शक्ति है[1])। जैलिक का कथन है कि सर्वभौमिकता राज्य का वह गुण है जिसके कारण वह अपनी इच्छा के अतिरिक्त किसी दूसरे की इच्छा या किसी बाहरी शक्ति के आदेशों से बाध्य नहीं होता।[2]

सार्वभौमिकता के गुण

डाक्टर गार्नर सार्वभौमिकता के निम्नलिखित गुण बतलाता है। (१) मौलिकता, (२) स्थायित्व (permanence), (३) एकता, (४) पार्थक्य अथवा वर्जनशीलता (exclusiveness), (५) सर्वव्यापिता, (६) असीमितता (illimitability), तथा (७) निरवधिबाधिता (imperscceptibility)।

मौलिकता—सार्वभौमिकता की मौलिकता का तात्पर्य यह है कि वह स्वतः ही अपना आधार है अर्थात् सार्वभौमिकता का अस्तित्व स्वयं अपने ही अधिकार से है, किसी के देने या बनाने से नहीं। यदि सार्वभौमिकता का अस्तित्व किसी अन्य शक्ति की सहायता या कृपा के आधार पर हो तो उसे सर्वोच्च शक्ति कहना ही ठीक न होगा, क्योंकि जो शक्ति उसका आधार है वह उससे उच्चतर या अधिक सामर्थ्यवान होगी और ऐसी दशा में वह सर्वोच्च शक्ति नहीं कही जा सकती।

स्थायित्व—स्थायित्व से आशय यह है कि जब तक राज्य कायम रहता है, तब तक प्रभुत्व भी कायम रहता है। प्रभुत्वधारी की मृत्यु अथवा अल्पकालिक पदच्युति तथा राज्य के पुनः संगठन के कारण प्रभुत्व का नाश नहीं होता, वह तुरन्त नये प्रभुत्वधारी के हाथों में पहुँच जाता है। इसी कारण से इंगलैंड में यह कहा जाता है कि सम्राट् मर गया है, सम्राट् चिरंजीवी हो (The king is dead, long live the king) अर्थात् सम्राट् मर गया है परन्तु उसका पद चिरंजीव रहे।

एकता, पार्थक्य (Exclusiveness) **तथा सर्वव्यापिता** (All-Comprehensiveness)—पार्थक्य से प्रभुत्व के उस गुण से आशय है जिसके कारण राज्य में एक ही ऐसी सर्वोच्च सत्ता होती है जिसे समस्त जनता को आदेश देने तथा उसका पालन कराने का वैध (legal) अधिकार होता है। इसको न मानने पर राज्य की एकता के सिद्धान्त से भी इनकार करना पड़ेगा। प्रभुत्व की सर्वव्यापिता से प्रयोजन राज्य की सीमाओं के अन्तर्गत प्रभुत्व की व्यापकता से है। उसका अधिकार राज्य के भीतर केवल उन वस्तुओं को छोड़कर जिन पर राज्य ने स्वेच्छा से अपना अधिकार का प्रयोग छोड़ दिया है, समस्त व्यक्तियों, संस्थाओं एवं वस्तुओं पर होता है।[3]

अविच्छेद्यता (Inalienability)—गार्नर के अनुसार अविच्छेद्यता से तात्पर्य राज्य के उस गुण से है जिसके कारण वह अपने किसी भी सारभूत (essential)

1. "It is original, absolute, unlimited power over the individual subject and over all associations of subjects."—*Burgess.*

2. "That characteristic of the state by virtue of which it cannot be bound except by its own will or limited by any power other than itself."—*Jellink.*

3. गार्नर—'राज्य विज्ञान और शासन'; पृष्ठ १३६।

तत्त्व को स्वयं नष्ट हुए बिना अलग नहीं कर सकता। लाइबर का कथन है कि प्रभुत्व ठीक उसी प्रकार अलग नहीं किया जा सकता जिस प्रकार कि एक व्यक्ति अपना आत्मविनाश किये बिना अपने व्यक्तित्व या अपने जीवन को अपने से पृथक् नहीं कर सकता। रूसो का भी ऐसा ही विचार था, परन्तु वह मानता था कि सत्ता का हस्तान्तरण (transfer) हो सकता है। प्रभुत्व का विच्छेदन अथवा हस्तान्तरण सम्भव नहीं क्योंकि वह राज्य के व्यक्तित्व का सार है और उसके हस्तान्तरण के साथ उस व्यक्ति का भी विनाश हो जायेगा।

निरवधिबाधिता (Impersceptibility) **तथा अविभाज्यता** (Indivisibility)—यदि राज्य की अपनी प्रभुत्व शक्ति काफी समय तक प्रयुक्त न की जाये, तो वह नष्ट नहीं होती। यही अर्थ निरवधिबाधिता का है। अविभाज्यता का अर्थ है कि एक ही राज्य में दो सार्वभौमिक शक्तियाँ नहीं रह सकतीं। गार्नर का मत है कि यदि बहुवादियों (Pluralists) के सिद्धान्तानुसार प्रभुत्व के खण्ड-खण्ड करके उन्हें राज्य तथा दूसरी संस्थाओं के मध्य विभाजित कर दिया जाय तो इससे सम्भवतः राज्य नष्ट हो जायेगा। अतः ये सब एकत्ववाद (monism) के लक्षण हैं जिसका आधार यह है कि राज्य के पास अखण्डित प्रभुता है। गार्नर, हॉब्स, बोदां इसके समर्थक हैं।

आस्टिन की परिभाषा
(Austin's Theory of Sovereignty)

उसने लिखा है कि "यदि कोई निश्चित मानव, जो सब से श्रेष्ठ है, जो उसी प्रकार के किसी अन्य सब से श्रेष्ठ व्यक्ति से आदेश प्राप्त करने का अभ्यस्त नहीं है, एक निश्चित समाज के एक बड़े भाग से साधारणतया अपने आदेशों का पालन कराने का अभ्यासी है, तो वह उस समाज में प्रभु है और वह समाज उस श्रेष्ठतम मानव सहित राजनीतिक तथा स्वतन्त्र समाज है।" उसके आगे उसने लिखा है कि "प्रत्येक कानून ऐसे प्रभुत्वसम्पन्न व्यक्ति या व्यक्ति-समूह द्वारा स्वाधीन राजनैतिक समाज के सदस्यों के लिए जारी किया जाता है जिस समाज में वह प्रभुत्व-सम्पन्न एवं सर्वोच्च है।"[1]

आस्टिन के संप्रभुता सम्बन्धी सिद्धान्त की जाँच-पड़ताल करने से पता चलता है कि उसके अनुसार संप्रभुता के निम्नलिखित लक्षण हैं—

(१) सार्वभौमिकता या प्रभुता सदैव एक निश्चित व्यक्ति या व्यक्तियों में रहती है। अनिश्चित व्यक्ति या जनता को संप्रभु नहीं कहा जाता।

---

१. गार्नर 'राज्य विज्ञान और शासन'; पृष्ठ १४२।

Austin says, "If a determinate human superior, not in a habit of obedience to a like superior, receives habitual obedience from the bulk of a given society, that determinate superior is sovereign in the society, and the society (including the superior) is a society political and independent." "Every positive law, or every law simply and strictly so called, is set by a sovereign person or a sovereign body of persons to a member or members of the independent political society where in that person or body is sovereign or supreme."

(२) सार्वभौमिकता आन्तरिक तथा बाह्य (external) दोनों क्षेत्रों में असीमित और अनियन्त्रित (unchecked) होती है।

(३) यदि किसी समाज में सार्वभौमिकता या प्रभुता का निवास नहीं है तो वह उसके बिना कदापि राज्य नहीं बना सकता।

(४) देश में सब कानून केवल राजप्रभु (sovereign) के द्वारा ही बनाये जाते हैं। लोकेच्छा या धारा सभा कानून बनाने का आधार नहीं।

(५) राजप्रभु या मानव प्रभु को किसी के अधीन नहीं होना चाहिए। जनता को उसकी आज्ञा मानने की आदत होनी चाहिए। संप्रभुता असीमित तथा निरंकुश होती है।

आस्टिन के सिद्धान्त की आलोचना
(Criticism of Austin's Theory)

(१) यह सिद्धान्त लौकिक प्रभुत्व का घोर विरोधी है—कई लेखकों ने इस सिद्धान्त की कड़ी आलोचना की है, उनमें से सर हेनरी मेन, क्लार्क तथा सिजविक प्रसिद्ध हैं। उनका मत है कि संप्रभुता एक निश्चित व्यक्ति में विद्यमान नहीं रह सकती। इस सिद्धान्त की इस बात पर कड़ी आलोचना की गई है कि यह आजकल प्रचलित लौकिक प्रभुत्व (popular sovereignty) के सर्वथा विरुद्ध है। यह सिद्धान्त रूसो के मत का भी खण्डन करता है। "जनता की सामान्य इच्छा (general will) ही संप्रभु (sovereign) है" इस रूसो के विचार का आस्टिन का सिद्धान्त घोर विरोधी है।

(२) यह लोकमत और राजनैतिक प्रभुत्व की अवहेलना करता है—दूसरे, यह सिद्धान्त लोकमत (public opinion) को कोई विशेष महत्त्व नहीं देता और राजनैतिक प्रभुत्व (political sovereignty) की अवहेलना करता है। इस सिद्धान्त में यह दोष है कि यह सारी शक्ति एक विशेष व्यक्ति को दान कर देता है जो कि किसी नियम या लोकेच्छा से बाधित नहीं है। अतः यह सिद्धान्त निरंकुशता का पोषक है।

(३) संधान (Federation) में राजसत्ता किसी निश्चित व्यक्ति के हाथ में नहीं रहती—तीसरे, प्रभुता संधान (federation) में निश्चित व्यक्ति के हाथ में नहीं रहती। वहाँ पर यह पता चलाना कठिन है कि प्रभुता वास्तव में किस के पास है। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रभुता वास्तव में न तो प्रधान के पास है और न ही काँग्रेस के पास है बल्कि यह संविधान में विद्यमान है। इसी प्रकार हमारे देश में भी यह न तो संसद् (parliament) के हाथ में है और न ही राष्ट्रपति के पास बल्कि इसका अस्तित्व संविधान (constitution) में है। इंगलैण्ड में संप्रभुता राजा सहित पार्लियामेंट (King-in-Parliament) के हाथ में है।

(४) कानून एक श्रेष्ठ व्यक्ति द्वारा दिया हुआ आदेश नहीं है—आस्टिन का विचार था कि कानून एक सबसे श्रेष्ठ व्यक्ति द्वारा दिया हुआ केवल आदेश था (Law is the command of sovereign)। यह विचार भ्रान्तिमूलक (confusing) है क्योंकि कानून लोकेच्छा की एक सुहावनी तसवीर है। सर हेनरी मेन का विचार

था कि पूर्वीय देशों में कई निरंकुश शासक हुए हैं परन्तु उनके आदेश भी कानून नहीं थे बल्कि वे देश के रीति-रिवाजों को ही कानून की शकल दे देते थे। उदाहरणार्थ महाराज रणजीतसिंह एक निरंकुश सम्राट् थे परन्तु वे भी स्वेच्छाचारी नहीं थे। महाराजा रणजीतसिंह ने कभी भी लोकेच्छा की अवहेलना नहीं की बल्कि अपने राज्य के कानून उन्होंने लोकमत, धर्म और रीति-रिवाज पर अवलम्बित किये।

आस्टिन की अन्य भूल यह है कि उसने प्रभुत्व के कानूनी पक्ष पर तो बहुत जोर दिया है परन्तु राजनैतिक संप्रभु (political sovereign) को कुछ भी महत्त्व नहीं दिया जो कि वास्तव में कानूनी संप्रभु (legal sovereign) के पीछे असली शक्ति है।

बहुवादियों के अनुसार प्रभुता विभाज्य (divisible) **है—यह एक निश्चित व्यक्ति में न रह कर अनेक समुदायों में रहती है**—बहुवादियों (pluralists) का विचार है कि प्रभुत्व अनेक समुदायों में रहता है। अतः ड्यूगी, लास्की और क्रैब आदि लेखकों ने आस्टिन के मत की कड़ी आलोचना की है। उनके विचार में संप्रभुता विभाजित की जा सकती है। प्रत्येक समुदाय में कुछ न कुछ प्रभुता अवश्य रहती है। राज्य की शक्ति असीमित तथा अनियन्त्रित नहीं हो सकती। ब्राइस का कथन है कि, "संसार में कभी कोई ऐसा मनुष्य या मनुष्यों का समूह नहीं जन्मा जिसकी शक्ति अनियन्त्रित तथा असीमित थी।" लास्की का मत था कि राजनैतिक दर्शन के लिए कानूनी प्रभुत्व को समुचित मानना असम्भव है। प्रभुत्व-कल्पना को त्याग देना राज्य-विज्ञान के लिए सदा के लिए लाभदायक होगा।[1] लिण्डसे का मत है, "कि यदि हम वास्तविकता को देखें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि प्रभुत्वसम्पन्न राज्यों के सिद्धान्त नष्ट हो चुके हैं।"[2] बार्कर का भी मत है कि कोई भी राजनैतिक सिद्धान्त इतना निष्फल नहीं है जितना कि प्रभुत्वसम्पन्न राज्यों का सिद्धान्त।

आस्टिन के मत का औचित्य—परन्तु आस्टिन ने कानूनी प्रभुत्व का सिद्धान्त हमारे सामने बहुत स्पष्ट रूप में रखा है, यह इसका विशेष लाभ है। वैधानिक दृष्टि से राज्य के ऊपर कोई संस्था नहीं हो सकती। व्यवहार में राजसत्ता को निरंकुश नहीं होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित कारण भी राज्य की शक्ति को सीमित करते हैं। राज्य को व्यवहार में इनका ध्यान रखना चाहिए।

(१) **जनमत**—कोई भी राज्य लोकमत का निरादर बहुत समय तक नहीं कर सकता। यदि कोई राज्य लोकमत की बहुत समय तक बिल्कुल परवाह न करे, तो वह राज्य अधिक समय तक टिक नहीं सकता। प्राचीन काल में रूस के ज़ार और

1. Laski says, "It is impossible to make the legal theory of sovereignty valid for political philosophy. It would be a lasting benefit to Political Science if the whole concept of sovereignty were surrendered." Also see Suda's Theory Book p. 158 in Hindi.

2. Lindsay says, "If we look at the facts it is clear enough that the theory of the Sovereign State has broken down."

भारत में मुगल सम्राट् जनमत की निरन्तर अवहेलना करते थे, तो उसका परिणाम यह हुआ कि कुछ समय के पश्चात् उनका राज्य नष्ट हो गया।

(२) **राज्य में अन्य समुदाय**—इसके अतिरिक्त राज्य में अनेक प्रकार के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समुदाय रहते हैं। राज्य का कर्तव्य है कि ऐसे समुदायों के कार्य में वह अधिक हस्तक्षेप न करे, जब तक कि वे देश में शान्ति भंग न करें। प्रत्येक समुदाय समाज के लिए कुछ न कुछ लाभ का काम करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय मत और नैतिकता
(International Opinion and Morality)

आजकल प्रत्येक राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय मत का सम्मान करता है, यह उसके हित में है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून की अवज्ञा करना प्रत्येक राष्ट्र के लिए अनुचित है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून तथा मत की अवहेलना करने का अर्थ है कि संसार के प्रत्येक राष्ट्र को अपने विरुद्ध कर लेना। अतः राज्य को अन्तर्राष्ट्रीय मत तथा नैतिकता का पालन करना चाहिए। हिटलर ने अन्तर्राष्ट्रीय मत तथा नैतिकता का पालन न करके पोलैण्ड (Poland) तथा अन्य देशों पर आक्रमण कर दिया, इसके फलस्वरूप सारे संसार के राष्ट्र उसके विरुद्ध हो गये और जर्मनी को हार माननी पड़ी।

अन्त में राज्य मनुष्यों के मूल अधिकार, रीति-रिवाज तथा रूढ़ियों का बिलकुल निरादर नहीं कर सकता। इनका निरादर करने से राज्य में सर्वदा विप्लव या विद्रोह का भय रहता है। अफ़ग़ानिस्तान के सम्राट् अमीर अमानुल्लाह ने लोगों के रस्म व रिवाज की कोई परवाह न की, फलतः उसको राज्य छोड़ना पड़ा।

नाम-मात्र की राजसत्ता और यथार्थ राजसत्ता
(Nominal and Real Sovereignty)

बहुत से देशों में पहले राजा को वास्तविक शक्ति प्राप्त होती थी, जैसे चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी में राजा को इंगलैण्ड में वास्तविक शक्तियाँ प्राप्त थीं। वह चाहे जो कर सकता था। पार्लियामेंट उसके हाथों में थी। उस समय वहाँ का राजा यथार्थ में संप्रभु था। इसी प्रकार रूस में सन् १९१७ की क्रान्ति से पूर्व वहाँ के सम्राट् के पास सब प्रकार की शक्तियाँ थीं। उस समय ज़ार रूस का यथार्थ प्रभु था। परन्तु यह परिस्थिति धीरे-धीरे बदल गई। इंगलैण्ड में १६८८ की महान् क्रान्ति के पश्चात् राजा केवल नाम मात्र का रह गया। अब उसके पास दिखावे के लिए सारी शक्तियाँ हैं। परन्तु व्यवहार में वे सारी शक्तियाँ मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रयुक्त की जाती हैं।

वैध राजसत्ता (Legal Sovereignty)—किसी भी देश में वहाँ की सर्वोच्च कानून बनाने वाली शक्ति को वैध प्रभु (legal sovereign) या वैध राजसत्ता कहते हैं। उसको उस देश में वैधानिक कानून (constitutional laws) तथा साधारण कानूनों (ordinary laws) को बनाने, तब्दील और रद्द करने का पूर्णाधिकार होता है। इंगलैण्ड में राजा सहित पार्लियामेंट (King-in-Parliament) वहाँ की वैध प्रभु है। इंगलैण्ड में पार्लियामेंट को सब प्रकार के कानून बनाने का पूर्ण

अधिकार होता है। वह वहाँ के संवैधानिक (constitutional) कानूनों को किसी प्रकार भी बना सकती है, और उनमें किसी प्रकार की तब्दीली कर सकती है। इतना ही नहीं अपितु उसको वैधानिक तथा दूसरे कानूनों को बदलने का भी पूर्ण अधिकार होता है। एक लेखक ने लिखा है कि इंगलैण्ड में पार्लियामेंट को नर को नारी और नारी को नर बनाने के अतिरिक्त सब अधिकार हैं। पार्लियामेंट द्वारा पास किये प्रत्येक बिल पर इंगलैण्ड के बादशाह को हस्ताक्षर करने पड़ते हैं, न्यायालयों को पार्लियामेंट तथा राजा द्वारा बनाये हुए कानूनों को देश भर में लागू करना पड़ता है। ब्रिटिश पार्लियामेंट की शक्ति को दिखाने के लिए डायसी लिखता है, "वह एक बालक को पूर्ण वयस्क कर सकती है, वह मृत्यु के बाद किसी भी व्यक्ति को राजद्रोही सिद्ध कर सकती है, वह दोगली सन्तान को औरस सन्तान बना सकती है और यदि वह उचित समझे तो किसी व्यक्ति को अपने ही मामले में न्यायाधीश बना सकती है।"[1]

राजनैतिक प्रभुता (Political Sovereignty)—लेकिन निरंकुश और असीमित कानूनी प्रभु किसी स्थान पर भी व्यवहार में नहीं है। एक डिक्टेटर भी बिल्कुल अपनी मनमानी नहीं कर सकता। उसकी इच्छा भी कई प्रभावों से प्रभावित होती है। वे प्रभाव कानूनों को अज्ञात हैं। जैसे डायसी ने लिखा है कि, "संप्रभु के पीछे जिसको वकील मानते हैं, एक और प्रभु रहता है जिसके सामने कानूनी प्रभु (legal sovereign) को झुकना पड़ता है।"[2] यही राजनैतिक प्रभु है और प्रोफेसर गिलक्राइस्ट के अनुसार राजनैतिक संप्रभु (political sovereign) राज्य में उन प्रभावों का समूह है जो कि कानून के पीछे (अर्थात् जिनकी शक्ति कानून के पीछे) रहते हैं।[3] राजनैतिक प्रभु न तो मतदाताओं को कहते हैं और न जनमत तथा सारी जनता को ही राजनैतिक प्रभु माना जा सकता है।[4] अतः राजनैतिक प्रभु अनिश्चित है। इसीलिए लीकॉक का कहना है कि राजनैतिक प्रभु के लिए जितनी अधिक खोज की जाय, उतना ही वह अधिक दूर दीख पड़ता है (the more one searches for this final authority, the more it seems to elude one's grasp)। इतनी सब कठिनाइयाँ होते हुए भी हम इसके महत्त्व को कम नहीं कर सकते। अतः श्री अनूपचन्द कपूर लिखते हैं कि इसका आशय मतदाताओं तथा राज्य में उन सब अन्य प्रभावों से है जो कि जनमत को बनाते हैं (We may define it to be the electorate plus all other influences in a state which mould public opinion.)

1. Dicey says that legally the British Parliament is so omnipotent that "it can adjudge an infant of full age; it may attain a man of treason after death; it may legitimize an illegitimate child or if it sees fit, make a man a judge in his own case."

2. As Dicey puts it, "Behind the sovereign which the lawyer recognises, there is another sovereign to whom the legal sovereign must bow."

3. This is called the political sovereign, and according to Professor Gilchrist the political sovereign is the sum total of the influences in a state which lie behind the law."

4. A. C. Kapoor says, "The political sovereign is neither the electorate nor it is identical with the whole mass of the people, nor can it be identified with public opinion."

लौकिक प्रभुत्व (Popular Sovereignty)

इसका अर्थ प्रायः यह लिया जाता है कि जनता की शक्ति सर्वोच्च है अर्थात् वह परम शक्ति है। परन्तु कठिनाई यह प्रतीत होती है कि जनता का क्या अर्थ है। क्या इससे अर्थ मतदाताओं के समूह से है अथवा तमाम जनता से है जिसको राय देने का अधिकार प्राप्त नहीं है। यह स्वयंसिद्ध है कि लौकिक प्रभुत्व से सारी जनता का मतलब नहीं है। अतः जब लौकिक प्रभुता का अर्थ सारी जनता नहीं, तो प्रश्न उत्पन्न होता है कि इसका अर्थ क्या निर्वाचक-गण से है। निर्वाचक-गण की संप्रभुता भी निरर्थक है जब तक कि इसको कानून द्वारा बनाए गए तरीकों से अपने को प्रकट करने का अधिकार न हो। इस सिद्धान्त को प्राचीन काल में कई लेखकों ने राजाओं की निरंकुशता को खण्डन करने के लिए प्रतिपादित किया। इसके प्रसिद्ध समर्थक मारसीलियो, विलियम ऑफ ओखम तथा रूसो हुए हैं। अतः यह सिद्धान्त अमरीका के संविधान में भी अपनाया गया। श्री गार्नर के अनुसार लौकिक प्रभुत्व (popular sovereignty) का अभिप्राय केवल यही है कि "जिन राज्यों में वयस्क मताधिकार प्रचलित है, उनमें निर्वाचक-मण्डल के बहुमत को अपनी इच्छा व्यक्त करने और उस पर अमल करवाने की सत्ता प्राप्त है जिसको वह वैध (legal) प्रणाली द्वारा प्रयोग करता है।"[1]

तथ्यतः बनाम विधानतः सम्प्रभुता
(De Facto *vs.* De Jure Sovereignty)

यथार्थ प्रभुत्व (De Facto Sovereignty)—कई बार वैध प्रभु को वहाँ की कोई क्रान्तिकारी पार्टी गद्दी से उतार देती है और स्वयं मालिक बन बैठती है। उस दशा में वह उस देश की यथार्थ प्रभु बन जाती है। उदाहरणार्थ, रूस में कम्यूनिस्ट पार्टी ने नवम्बर, सन् १९१७ में एक बड़ी भारी क्रान्ति की और निकोलस द्वितीय (Tsar Nicholas II) को गद्दी से उतार दिया। उस समय कम्यूनिस्ट पार्टी रूस की यथार्थ संप्रभु (de facto sovereign) बन बैठी क्योंकि वास्तव में तमाम शक्ति उसके हाथ में आगई थी परन्तु विदेशी शासकों ने उसको कानून के अनुसार प्रभु मानने से इनकार कर दिया और कुछ समय तक जार को ही रूस का वैध सम्राट् (legal sovereign) मानते रहे। इसी प्रकार जब अबीसीनिया पर इटली ने अधिकार कर लिया और वहाँ के सम्राट् को पदच्युत कर दिया, तो वहाँ की जनता कुछ समय तक वहाँ के सम्राट् को वैध संप्रभु (legal sovereign) मानती रही और इटली को केवल यथार्थ प्रभु, परन्तु ये दोनों चीजें बहुत समय तक अलग-अलग नहीं चल सकतीं। कुछ समय के पश्चात् यथार्थ प्रभु को ही जनता और विदेशी शक्तियाँ दोनों ही वैध संप्रभु (legal sovereign) मान लेते हैं।

वैध प्रभुत्व (Legal Sovereignty)—वैध प्रभु किसी भी देश का कानून के अनुसार सबसे सर्वोच्च शासक या प्रभु होता है। यदि वैध प्रभु शक्तिशाली हो तो वह

1. "The sovereignty of the people, therefore can mean nothing more than the power of the majority of the electorate, in a country where a system of approximate universal suffrage prevails, acting through legally established channels, to express their will and make it prevail."—*Garner.*

वहाँ का यथार्थ प्रभु भी रहता है। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगज़ेब अपने समय में वैध प्रभु भी थे और यथार्थ भी (मेवाड़ के राणाओं ने मुगलों को केवल यथार्थ प्रभु तो माना परन्तु वैध मानने से इनकार किया)। औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् भी जब मुग़लों की शक्ति का ह्रास हो गया और असली शक्ति मराठों या अंग्रेजों के हाथ में चली गई, तो भी कम्पनी के गवर्नर और मराठे पेशवा बहुत समय तक मुग़ल सम्राट् को वैध सम्राट् मानते रहे यद्यपि मुग़ल यथार्थ प्रभु नहीं थे। १८५७ के पश्चात् अंग्रेज सम्राट् वैध तथा यथार्थ प्रभु बन गया और सन् १९४७ तक ऐसा ही रहा।

बहुत्ववाद (Pluralism)

इस सिद्धान्त के मुख्य समर्थक लास्की, ड्यूगी, क्रेब, कोल, लिण्डसे और बार्कर हैं। बहुवादियों का मत है कि राजसत्ता या प्रभुता केवल राज्य में नहीं रहती बल्कि कई समुदायों में रहती है। समाज में अनेक प्रकार के राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा आर्थिक समुदाय हैं। इन में से कई समुदाय राज्य से पूर्व उत्पन्न हुए, जैसे कुटुम्ब तथा चर्च। कई विद्वानों का मत है कि राज्य कोई सर्वोच्च संस्था या समुदाय नहीं है बल्कि अन्य समुदायों की भाँति एक समुदाय है। राज्य को यह विशेष अधिकार प्राप्त नहीं है कि प्रभुता केवल उसी के पास निजी सम्पत्ति की भाँति रहे। जब राज्य से मनुष्य की सारी आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो सकतीं, तो उसको क्या अधिकार है कि व्यक्ति से माँग करे कि वह स्वामि-भक्त केवल उसी के प्रति हो। बहुवादियों का सिद्धान्त है कि राज्य की परम शक्ति विभाज्य है अर्थात् वह बँट सकती है। इसीलिए उनके मतानुसार प्रभुता राज्य तथा कई संस्थाओं में रहती है। राज्य के पास केवल आंशिक प्रभुता रहती है (State can claim only a part of sovereignty)। राज्य ने समुदायों का निर्माण नहीं किया, अतः राज्य को यह अधिकार प्राप्त नहीं कि वह उनका खण्डन कर सके। ये समुदाय मनुष्य की भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वयं बन जाते हैं और चूंकि ये भी मनुष्य की कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं अतः ये मनुष्य की किसी न किसी क्षेत्र में उन्नति करते हैं। राज्य को इन समुदायों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है जब तक कि वे अपना काम शान्तिपूर्वक करते रहें। जब प्रथम महायुद्ध में सरकार ने लोगों से यह माँग की कि उनको अपना सर्वस्व राज्य की बलिवेदी पर त्याग देना चाहिए, तो उसका घोर विरोध करने के लिए बहुत्ववाद का जन्म हुआ। ये बातें स्मरण रखने योग्य हैं कि बहुवादी राज्य का अन्त नहीं करना चाहते परन्तु उसको विशेष अधिकार या पूर्णरूप से संप्रभुता नहीं देना चाहते। यदि राज्य यह चाहता है कि जनता उसकी ओर पूर्ण भक्ति रखे तो उसे लोगों की अन्य समुदायों की अपेक्षा अधिक सेवा करनी चाहिए। उदाहरण के रूप में राज्य ने अभी मजदूरों की भलाई के लिए इतना कार्य नहीं किया है जितना कि मजदूर संघ ने। लास्का का कथन है कि यह धारणा कि राज्य सर्वशक्तिशाली है, मिथ्या है।

बहुत्ववाद में यह सचाई है कि यह बतलाता है कि राजसत्ता कार्यरूप में निरंकुश, अनियन्त्रित तथा असीमित नहीं है। यह भी ठीक है कि समुदायों का अस्तित्व

होना समाज में अत्यन्त आवश्यक है। उनके बिना मनुष्य के व्यक्तित्व का पूर्णरूप से विकास नहीं हो सकता। यह भी आवश्यक है कि राज्य को समुदायों के आन्तरिक कार्यों में दखल नहीं देना चाहिए।

बहुत्वाद के आलोचकों का मत है कि यदि राज्य को सत्ताविहीन (non-sovereign) बना दिया जाय तो कोई भी समुदाय किसी के अधीन नहीं रहेगा। फलतः अराजकता और अशान्ति (anarchy and disorder) फैल जायगी। कोई न कोई समाज में विधानतः सर्वशक्तिशाली वैध संप्रभु रहना ही चाहिए परन्तु व्यवहार में उसे सब शक्तियों का उपयोग नहीं करना चाहिए।

सारांश

संप्रभुता क्या है ?—संप्रभुता राज्य की सर्वोच्च शक्ति है। यह दो प्रकार की होती है—आन्तरिक तथा बाह्य। आन्तरिक प्रभुता का अर्थ है कि राज्य तमाम समुदायों और व्यक्तियों से सर्वोपरि (supreme) होता है। बाह्य संप्रभुता का अर्थ है कि राज्य के पास राष्ट्रीय स्वतन्त्रता है। मौलिकता, एकता, सर्वव्यापिता, पार्थक्य, अविच्छेद्यता, निरवधिबाधिता तथा अविभाज्यता संप्रभुता के अन्य गुण हैं। आस्टिन का विश्वास था कि कोई निश्चित मानव, जो सब से श्रेष्ठ है, जो उसी प्रकार के किसी अन्य सब से श्रेष्ठ व्यक्ति से आदेश प्राप्त करने का अभ्यस्त नहीं है, एक निश्चित समाज के एक बड़े भाग से साधारणतया अपने आदेशों का पालन कराने का अभ्यासी है तो वह उस समाज में प्रभु है और वह समाज उस सर्वाधिक श्रेष्ठ मानव सहित राजनैतिक तथा स्वतन्त्र समाज है। आस्टिन के इस सिद्धान्त की कड़ी आलोचना की गई है। आलोचकों का मत है कि यह लौकिक प्रभुत्व (popular sovereignty) की अवहेलना करता है। कानून कभी भी एक व्यक्ति द्वारा दिया हुआ आदेश नहीं हो सकता। कानून लोकेच्छा का ही प्रतिबिम्ब होता है। संघ या संधान (federation) में संप्रभुता अनिश्चित होती है अर्थात् यह किसी निश्चित व्यक्ति के हाथ में नहीं रहती। बहुवादियों का मत है कि संप्रभुता विभाज्य है अर्थात यह एक निश्चित व्यक्ति के हाथ में नहीं रहती बल्कि अनेक समुदायों में रहती है। लास्की कहता है कि राज्य-विज्ञान को बहुत लाभ होगा यदि संप्रभुता के सिद्धान्त को खत्म कर दिया जाय। ड्यूगी और क्रैब भी आस्टिन के सिद्धान्त के आलोचक हैं।

Questions

1. What is meant by sovereignty ? What are its attributes ?

2. What is the monistic conception of sovereignty ? Who are its main supporters ?

3. Critically examine Austin's conception of sovereignty and law.

4. "It will be a lasting benefit to Political Science if the whole concept of sovereignty is surrendered."—Laski. Discuss.

5. What is Pluralism ? Why did it arise ? Is it practicable ?

6. Distinguish between Legal, Political and Popular sovereignty.

प्रश्न

१. सार्वभौमिकता के स्वभाव को समझाइये और इसके प्रधान गुण बतलाइये।

(यू० पी० १९३५)

२. राजनैतिक, वैध तथा लौकिक सार्वभौमिकता में क्या अन्तर है ? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

३. आस्टिन के सिद्धान्त की आलोचना कीजिए। इसमें क्या गुण हैं ?

४. बहुत्ववाद से आपका क्या अभिप्राय है ? इसका जन्म क्यों हुआ ?

छठा अध्याय

नागरिकता (Citizenship)

"Citizenship is the contribution of one's instructed judgement to public good."
—*Laski.*

नागरिकता का स्वभाव (Nature of Citizenship)

नागरिक शास्त्र में इस बात का विशेष महत्त्व है कि नागरिक कौन है। नागरिक शास्त्र का मुख्य विषय यही है कि हमें पता चले कि किसको नागरिकता किस प्रकार से प्राप्त होती है और यह किस प्रकार से खोई जाती है। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि नागरिक के अधिकारों और कर्तव्यों का हमें पूर्ण ज्ञान हो। जब नागरिकों को अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों का पूर्ण ज्ञान होगा, तभी वे देश को उन्नति के शिखर पर ले जा सकेंगे। इतना ही नहीं बल्कि एक अच्छा नागरिक अपना कर्तव्य समझता है कि वह विश्व से साम्राज्यवाद (Imperialism) तथा पूंजीवाद की भावना को समाप्त करके सर्वत्र शान्ति स्थापित करे।

नागरिक शब्द का अर्थ—साधारण भाषा में उस मनुष्य को नागरिक कहा जाता है जो कि नगरवासी हो और ग्रामीण को नागरिक नहीं समझा जाता परन्तु नागरिक शास्त्र में यह शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता। नागरिक शास्त्र में प्राय: नागरिक उसको कहा जाता है जिसको सामाजिक तथा राजनैतिक अधिकार प्राप्त हों। हमारे देश में प्रत्येक वयस्क (२१ वर्ष की आयु का मनुष्य) को मताधिकार प्राप्त है चाहे वह धनाढ्य हो अथवा निर्धन, चाहे शिक्षित हो अथवा अशिक्षित, चाहे नर हो अथवा नारी। प्राचीन यूनान में प्रत्येक नर-नारी को राय देने का अधिकार प्राप्त नहीं था। यूनान में सारी जनता तीन भागों में बँटी हुई थी। एक तो नागरिक थे जिन्हें असेम्बली में जाकर कानून बनाने में भाग लेने का अधिकार था क्योंकि यूनान में प्रतिनिधि भेजने का तरीका नहीं था। दूसरे, लगभग तीन-चौथाई भाग यूनानियों का दास के रूप में रहता था जिनको नागरिकता के अधिकार तो बिल्कुल प्राप्त थे ही नहीं, अपितु उन पर अनेक प्रकार के सामाजिक तथा आर्थिक बन्धन थे। इसमें सन्देह नहीं कि दासों का जीवन असह्य था। उन्हें अनेक प्रकार की यातनाएँ और कठिनाइयाँ सहन करनी पड़ती थीं। यह बात अत्यन्त दुःख की है कि अरस्तू जैसे उच्च कोटि के विद्वानों ने दासता की प्रथा को ठीक सिद्ध करने का भरसक यत्न किया है जब कि हमारे देश में उसी समय आचार्य चाणक्य इसको समूल नष्ट करने का यत्न कर रहे थे। तीसरे, यूनान में विदेशी थे जो कि व्यापार आदि करने के लिए वहाँ बस गए थे। इस वर्ग को भी मताधिकार प्राप्त नहीं था। नारियों को कानून बनाने में भाग लेने की आज्ञा नहीं थी। रोम में भी कुछ लोगों को नागरिकता के अधिकार प्राप्त थे और देश का बहुत भाग जिसमें दास तथा नारियाँ शामिल थीं, नागरिकता

के अधिकारों से वंचित था। रूस में १९१७ की क्रान्ति के पश्चात् पादरियों तथा पूंजीवादियों और जमींदारों को मताधिकार से वंचित कर दिया गया था परन्तु सन् १९३६ ईस्वी से वहाँ अब प्रत्येक नर-नारी को जिसकी आयु अठारह वर्ष की हो, मत देने का अधिकार प्राप्त है। अतः नागरिक वे मनुष्य हैं जिनको राज्य की ओर से राजनैतिक तथा सामाजिक अधिकार प्राप्त हैं और जो राज्य की ओर अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं। अतः ग्राम निवासी भी नागरिक हो सकते हैं। दासता की प्रथा अब प्रायः नष्ट हो चुकी है और नारियों को अब लगभग सभी देशों में राजनैतिक अधिकार प्राप्त हो गए हैं। स्विट्ज़रलैण्ड में अभी तक नारियों को मताधिकार प्राप्त नहीं है।

अरस्तू ने नागरिक शब्द की परिभाषा इस तरह से की है कि 'नागरिक राज्य में वह व्यक्ति है जिसको राज्य के प्रबन्ध-विभाग तथा न्याय-विभाग में भाग लेने का पूर्ण अधिकार है।"[1] वैटल ने नागरिकों की परिभाषा यों की है कि "वे राज्य के सदस्य हैं और कुछ कर्त्तव्यों द्वारा इस (राजनैतिक) समाज से बँधे हुए होते हैं, इसकी शक्ति के अधीन हैं और इससे प्राप्त होने वाले लाभ में बराबर के साझी हैं।"[2] लास्की का कथन है कि "अपनी शिक्षित बुद्धि को लोकहितार्थ प्रयुक्त करना ही नागरिकता है।"[3] अतः नागरिकता के लिए निम्न बातों की आवश्यकता है—(१) राज्य की सदस्यता, (२) राज्य की ओर से सामाजिक और राजनैतिक अधिकारों की प्राप्ति, और (३) राज्य के प्रति भक्ति। इसके अतिरिक्त यह बात याद रखने योग्य है कि प्रत्येक राज्य में लम्बी सजाएँ काटने वाले अपराधी, पागल, कोढी तथा भिखारी को मताधिकार से प्रायः वञ्चित रखा जाता है।

विदेशी (Aliens) और नागरिक (Citizen)

विदेशी (aliens) तीन प्रकार के होते हैं—

(१) **विदेशी निवासी**—ऐसे विदेशी जो अपना घर-बार छोड़ कर दूसरे देश में जा बसते हैं। वे अपना काम-काज वहीं आरम्भ कर देते हैं, अपनी मातृभूमि से सम्बन्ध विच्छेद कर देते हैं और अपनी नागरिकता दूसरे देश की समझने लग पड़ते हैं। उदाहरण के रूप में बहुत से भारतीय लंका और दक्षिणी अफ्रीका जा कर बस गए हैं, उनकी वहाँ कई पीढ़ियाँ बीत गयी हैं और उनका भारत से अब कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रह गया है। अब वे अपने आपको लंका या दक्षिणी अफ्रीका के निवासी समझने लग पड़े हैं और अपने आपको इसलिए वहाँ का नागरिक समझते हैं परन्तु समझने से नागरिकता की प्राप्ति नहीं होती जब तक कि वहाँ की सरकार उनको नागरिकता प्रदान न कर दे। दक्षिणी अफ्रीका और लंका की सरकार ने भारतीयों को

1. "He who has the power to take part in the deliberative or judicial administration of any State is said by us to be a citizen of that State."
—*Aristotle : Politics, Jowett's Translation.*

2. Vattal has defined citizens as "the members of a civil society bound to this society by certain duties, subject to its authority and equal participants in its advantages."

3. Laski defines citizenship as the "contribution of one's instructed judgement to public good."

अभी नागरिकता के अधिकार नहीं दिये हैं। कई दफा विदेशी सरकार दूसरे देश से आकर बसने वाले लोगों को वहाँ के संविधान की शर्तें पूरा करने पर नागरिकता शीघ्र भी दे देती है।

(२) **अस्थायी विदेशी**—अस्थायी विदेशी वे हैं जो कि किसी कार्यवश किसी अन्य देश में जाते हैं और कार्य समाप्त होने के पश्चात् अपने देश में लौट आते हैं, जैसे भारत से इंगलैण्ड या अमरीका में सहस्रों विद्यार्थी जाते हैं और अपना कार्य समाप्त होने पर वापिस लौट आते हैं। इसी प्रकार हमारे देश में भी बाहिर से हजारों यात्री आते हैं और अपना काम समाप्त करके लौट जाते हैं।

(३) **राजदूत**—दूसरे देशों से राजदूत हमारे देश में आकर रहते हैं और हमारे देश के राजदूत अन्य देशों में रहते हैं। राजदूत भी विदेशी हैं परन्तु उनके ऊपर उन्हीं के देश के कानून लागू होते हैं। उनको सामाजिक अधिकार तो होते हैं परन्तु राजनैतिक नहीं होते। दूसरे, विदेशियों और राजदूतों में यह भेद होता है कि राजदूतों को सरकार की तरफ से विशेष सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। उस देश से युद्ध छिड़ने पर वहाँ के राजदूत को सम्मानपूर्वक उस देश में वापिस भेज दिया जाता है।

नागरिकों और विदेशियों में अन्तर—नागरिकों और विदेशियों में यह अन्तर है कि नागरिकों को सामाजिक तथा राजनैतिक अधिकार दोनों प्राप्त हैं परन्तु विदेशियों को केवल सामाजिक अधिकार प्राप्त हैं। विदेशी किसी देश में नागरिक नहीं कहे जा सकते। यदि कोई विदेशी दूसरे देश में नागरिकता प्राप्त करना चाहे, तो उसे वहाँ के नागरिकता प्राप्ति के नियमों पर पूरा उतरना पड़ेगा। नागरिक चुनाव के लिए खड़ा हो सकता है परन्तु विदेशी चुनाव में उम्मीदवार के रूप में खड़ा नहीं हो सकता। विदेशियों को मताधिकार भी प्राप्त नहीं होता परन्तु उनके जानमाल की रक्षा करना सरकार का कर्त्तव्य है। उनके देश से युद्ध छिड़ने पर उन्हें या तो कैद कर लिया जाता है या उन पर कड़ी नजर रक्खी जाती है।

विदेशी मित्र और शत्रु—जिन देशों से हमारा मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध है, वे हमारे विदेशी मित्र (alien friend) हैं और जिन से हमारी शत्रुता है वे हमारे विदेशी शत्रु (alien enemy) समझे जायंगे। प्रथम महायुद्ध में जर्मनी, आस्ट्रिया, टर्की और बलगारिया इत्यादि देश अंग्रेजों के विदेशी शत्रु थे और अमरीका, फ्रांस, इटली, जापान, रूस तथा बेल्जियम विदेशी मित्र थे।

नागरिक बनाम निर्वाचक—(Citizen *vs.* Electorate)—यह बात याद रखने योग्य है कि कई देशों में कुछ लोगों को मताधिकार प्राप्त नहीं है। उदाहरणार्थ, स्विट्ज़रलैण्ड में नारियों को अभी तक मताधिकार प्राप्त नहीं है। कई देशों में सैनिकों, सरकारी नौकरों और स्त्रियों को मताधिकार नहीं हासिल होता। इसके अतिरिक्त प्रत्येक देश में ऐसे व्यक्ति जो कि अल्पायु (minor) होते हैं और बालिग नहीं होते, उनको मताधिकार प्राप्त नहीं होता। हमारे देश में बालिग (संविधान की दृष्टि से) २१ वर्ष का गिना जाता है। इसका यह अर्थ है कि प्रत्येक नर-नारी को जो कि २१ वर्ष की आयु का है, मताधिकार प्राप्त है, चाहे वह अमीर हो या गरीब, चाहे वह शिक्षित हो अथवा अशिक्षित और चाहे वह किसी भी मत-मतान्तर का अवलम्बी हो।

रूस में बालिग या वयस्क १८ वर्ष की आयु का गिना जाता है। इंगलैंड तथा अमरीका में वयस्क २१ वर्ष, जापान में २५ और डेन्मार्क में २३ वर्ष का माना जाता है। आजकल की परिभाषा में या बोल-चाल में जिन नारियों और बच्चों को राजनैतिक अधिकार प्राप्त नहीं होते, उनको भी नागरिक पुकारा जाता है। अतः जिनको राय देने का हक हासिल है, वे मताधिकार नागरिक कहलाते हैं। आजकल अनागरिकों को राजनैतिक अधिकार तो प्राप्त नहीं परन्तु उनको सामाजिक अधिकार अवश्य प्राप्त होते हैं। प्राचीन यूनान में अनागरिकों को सामाजिक अधिकार भी प्राप्त नहीं थे, और वे दास (slaves) कहलाते थे। दास जानवरों की तरह मालिकों की सम्पत्ति खयाल किये जाते थे और बाजार में वे खरीदे और बेचे जा सकते थे। आजकल प्रजातन्त्रात्मक देशों में नागरिक प्रायः निर्वाचक भी होते हैं।

नागरिक बनाम प्रजा (Citizens *vs.* Subjects)—प्राचीन काल में बहुत से एकतन्त्रात्मक देशों में जहाँ प्रजा के अधिकार राजा की दया पर निर्भर होते थे, वहाँ जनता को नागरिक न कहकर प्रजा के नाम से पुकारा जाता था। इंगलैंड में आजकल भी लोग राजा की प्रजा समझे जाते हैं। बहुत से मनुष्यों का विचार है कि जिन लोगों को नागरिकता के अधिकार प्राप्त नहीं होते, उनको प्रजा कहा जाता है परन्तु ऐसा नहीं है। इंगलैंड में प्रजा कहलाने से लोगों के अधिकारों में कोई अन्तर नहीं आया। आजकल प्रायः जिन देशों में वंश-परम्परागत राजा राज्य करते हैं वहाँ लोगों को नागरिक न कहकर प्रजा ही पुकारा जाता है।

नागरिकता का निर्णय (Aquisition of Citizenship)

प्रत्येक राज्य में दो प्रकार के नागरिक हुआ करते हैं, एक तो जन्मजात नागरिक (natural born citizens) और दूसरे राज्यदत्त नागरिक (naturalised citizens)। पहले प्रकार के नागरिक ऐसे व्यक्ति होते हैं जो जन्म से ही उस देश के नागरिक होते हैं और दूसरे ऐसे व्यक्ति होते हैं जो किसी अन्य देश या राज्य के सदस्य होते हैं और किसी दूसरे देश में जाकर बस जाते हैं और नागरिकता प्राप्त करने के लिए यत्न करते हैं। यदि वहाँ की सरकार उन्हें नागरिकता प्रदान कर दे तो वे वहाँ के नागरिक बन जाते हैं। उदाहरणार्थ, बहुत से भारतीय लंका और दक्षिणी अफ्रीका में गये हुए हैं और वे अब वहाँ के नागरिक बनना चाहते हैं और भारत से सम्बन्ध-विच्छेद करना चाहते हैं परन्तु वहाँ की सरकार उन्हें अभी नागरिकता प्रदान नहीं कर रही है। यदि वहाँ की सरकार उन्हें नागरिकता दे दे तो वे वहाँ के नागरिक कहलायेंगे। ये राज्यदत्त नागरिक कहलायेंगे।

(१) **जन्मजात नागरिक**—जन्म से नागरिकों का निर्णय दो प्रकार से किया जाता है।

(क) **रक्तवंशाधिकार नियम** (Jus Sanguinis or Blood Relationship or Parentage)—इस सिद्धान्त के अनुसार नागरिकता (citizenship) रक्त सम्बन्ध पर स्थित है। किसी बच्चे की नागरिकता का फैसला उसके पिता की नागरिकता से किया जाता है। एक अंग्रेज के बच्चा कहीं भी उत्पन्न हो, चाहे फ्रांस में और

चाहे अमरीका में, वह अंग्रेज ही कहलायेगा। यह सिद्धान्त रोम में भी प्रचलित था। वहाँ किसी भी विदेशी के यदि कोई सन्तान उत्पन्न होती थी तो वह रोमन नहीं कहला सकती थी। इसी प्रकार यदि किसी विदेश में रोमन के कोई सन्तान उत्पन्न होती थी, तो वह रोमन ही कहलाती थी। यह सिद्धान्त इटली और जर्मनी में भी प्रचलित है। यदि किसी इटेलियन या जर्मन के किसी अन्य देश में सन्तान उत्पन्न हो तो वह जर्मन या इटेलियन कहलाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार जन्म-स्थान का बिल्कुल कोई महत्त्व नहीं है। परन्तु इस सिद्धान्त के मानने वाले देशों में भी एक कठिनाई प्रतीत होती है और वह यह है कि जिन बच्चों के बाप का पता नहीं या जो अवैध (illegitimate) हैं, उनकी नागरिकता कैसे निश्चित की जाय ? प्रसिद्ध लेखक ओपनहीम लिखता है कि जिन राज्यों में यह सिद्धान्त माना जाता है, वहाँ अवैध बच्चों की नागरिकता उनकी माता की नागरिकता से निश्चित की जायगी। स्विट्जरलैंड और स्वीडन में भी यह सिद्धान्त माना जाता है।

(ख) **जन्म-स्थान सिद्धान्त** (Jus Soli)—इस सिद्धान्त के अनुसार नागरिकता का आधार रक्त-सम्बन्ध न होकर जन्म-स्थान ही है। यह प्रथा या नियम अरजण्टाइना में प्रचलित है। वहाँ पर किसी के भी कोई बच्चा उत्पन्न हो तो वह बच्चा अरजन्टाइना का नागरिक कहलायेगा। यदि कोई विदेशी अरजण्टाइना में यात्रा कर रहा है, तो वहाँ उत्पन्न हुई उसकी सन्तान अरजण्टाइना की नागरिक मानी जायेगी। यदि अरजण्टाइना के किसी व्यक्ति के किसी विदश में बालक उत्पन्न होगा, तो वह अरजण्टाइना का नागरिक नहीं कहलायेगा।

नागरिकता जाँचने का यह नियम वैज्ञानिक नहीं है क्योंकि इसके अनुसार यदि कोई माता-पिता कहीं भ्रमणार्थ गये हों, तो वहाँ उत्पन्न हुआ उनका बच्चा अपने माता-पिता की नागरिकता खो बैठता है।

दोहरा नियम (Double Principle)—कई देशों में दोहरा नियम प्रचलित है अर्थात् वे रक्त-सम्बन्ध तथा जन्म-स्थान आदि दोनो नियमों का पालन करते हैं। इंगलैंड तथा अमरीका मे दोनो सिद्धान्त प्रचलित हैं। फ्रांस भी इस नियम को मानता है। इस सिद्धान्त के अनुसार जो बच्चे फ्रेंच, अमरीकन तथा इंगलिश दम्पति के उत्पन्न हों चाहे उन देशों में चाहे विदेशों में तो वे अपने माता-पिता की नागरिकता ही ग्रहण करेंगे। इसके अतिरिक्त यदि किसी विदेशी के कोई बालक इगलैंड में उत्पन्न हो अथवा किसी अंग्रेजी जहाज में, तो वह भी इंगलैंड का नागरिक माना जायेगा। परन्तु एक अंग्रेज नारी के कोई अवैध बच्चा अंग्रेजी साम्राज्य से बाहिर उत्पन्न हो या किसी अन्य देश के जहाज में उत्पन्न हो तो वह अंग्रेज नहीं समझा जायेगा।

दोहरी नागरिकता (Double Citizenship)—कई बार ऐसा होता है कि एक बच्चा दो देशों का नागरिक बन जाता है। यह ऐसे होता है कि यदि रक्त-सिद्धान्त को मानने वाले देश के निवासी के जन्म-स्थान सिद्धान्त को मानने वाले देश में कोई बच्चा उत्पन्न हो जाये तो वह दोनों देशों की नागरिकता प्राप्त कर लेता है। उदाहरणार्थ, जर्मन दम्पति यदि भ्रमणार्थ इगलैंड में आयें हों और उनके वहाँ कोई बच्चा उत्पन्न हो जाये, तो वह जर्मनी तथा इंगलैंड दोनों देशों का नागरिक हो जायेगा।

जर्मनी रक्त-सिद्धान्त के अनुसार उसे जर्मन नागरिक खयाल करेगा और इंगलैंड जन्म-सिद्धान्त के अनुसार उसे इंगलैंड का नागरिक मानेगा। यह याद रखने योग्य बात है कि दोहरी नागरिकता रखनी लाभप्रद नहीं अपितु हानिकारक है। यदि दो देशों में युद्ध छिड़ जाये तो उस समय यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वह किस देश का नागरिक है क्योंकि एक मनुष्य दो देशों का नागरिक नहीं बन सकता। कई बार ऐसे झगड़ों में पड़कर मनुष्य दोनों देशो की नागरिकता खो बैठता है। अतः इन समस्याओं का यह हल सोचा गया है कि यदि माता-पिता दोबारा अपने देश में जाकर बस जायें तो जन्म-स्थान को मानने वाले देश उनके बच्चे को वहाँ की नागरिकता से बरी कर देते हैं और वह बच्चा रक्त-सिद्धान्त के अनुसार अपने माता-पिता की नागरिकता को प्राप्त करेगा। दूसरे, बहुत से देश इस सिद्धान्त को मानते हैं कि बच्चा वयस्क (adult) होने पर नागरिकता अपनी इच्छानुसार चुन सकता है। अतः इन दोनों सिद्धान्तों में कुछ न कुछ कमी रह जाती है और दोनों में से आदर्श कोई भी नहीं है।

(२) **राज्यकृत नागरिक** (Naturalised Citizens) – यदि एक मनुष्य अपने देश की नागरिकता को छोड़ कर दूसरे देश का नागरिक बनना चाहे तो उसे वहाँ की सरकार को आवेदन-पत्र देना पड़ेगा। यदि वहाँ की सरकार उसे नागरिकता प्रदान कर दे, तो वह वहाँ का राज्यकृत नागरिक (naturalised citizen) कहलायेगा। इस तरीके को नागरिक-करण या देशीयकरण (naturalisation) कहते हैं। कोई राज्य दूसरे राज्य पर दबाव नहीं डाल सकता कि वह किसी व्यक्ति को अपने देश की नागरिकता अवश्य प्रदान करे। भारत से बहुत व्यक्ति लंका तथा दक्षिण अफ्रीका गये परन्तु अब वे भारत की नागरिकता को छोड़कर लंका या दक्षिणी अफ्रीका की नागरिकता को अपनाना चाहते हैं। भारतीय सरकार अवश्य उन सरकारों पर जोर डाल रही है कि उनको (भारत से गये हुए नागरिकों को) वहाँ की नागरिकता प्रदान कर दी जाये परन्तु अभी लंका और दक्षिण अफ्रीका की सरकार इस बात के लिए तैयार नहीं है। आस्ट्रेलिया में भी सिर्फ गौर वर्ण (white colour) के मनुष्यों को नागरिकता प्रदान की जाती है और काले रंग की जातियों को नागरिकता प्रायः नहीं दी जाती है। यदि एक मनुष्य दूसरे देश की नागरिकता प्राप्त करना चाहे तो उसे पहले देश की नागरिकता छोड़नी पड़ेगी क्योंकि जैसा पहले बताया जा चुका है कि एक मनुष्य दो राज्यों का नागरिक नहीं बन सकता। बहुत से ऐसे भी लोग हैं जो कि किसी भी देश के नागरिक नहीं हैं। उदाहरणार्थ, भारत से गये हुए बहुत से मजदूरों की पीढ़ियाँ दक्षिणी अफ्रीका या लंका में बीत गयी हैं परन्तु न ही तो वहाँ की सरकारों ने उन्हें नागरिकता प्रदान की है और न ही भारत सरकार अब उन्हें अपना नागरिक मानने के लिए तैयार है। ऐसी स्थिति को राज्यहीनता (statelessness) कहते हैं। भारत से बहुत समय हुआ जब कुछ सिख कनाडा गए थे; अब उनको वहाँ की नागरिकता प्राप्त हो चुकी है और वे अब भारत के नागरिक नहीं रह गये। कई देश राज्यकृत (naturalised) नागरिकों को इतने अधिकार नहीं देते जितने कि जन्मजात नागरिकों को। उदाहरण के रूप में, अभी तक संयुक्त राष्ट्र अमरीका में राष्ट्रपति का पद केवल जन्मजात अमरीकन ही प्राप्त कर सकता है। अतः राज्यकृत

नागरिक संविधान की दृष्टि से अमरीका का राष्ट्रपति नहीं बन सकता। साधारणतया नागरिकता के अधिकार उसको दिये जाते हैं जो कि किसी दूसरे देश से आकर किसी देश में स्थायी रूप से बस गया हो, वहाँ पर जमीन खरीद ली हो, कारोबार आरम्भ कर दिया हो और उस देश के प्रति पूर्ण भक्त हो। कई देश किसी विवाहित व्यक्ति को नागरिकता के अधिकार दे देते हैं तो उसकी धर्मपत्नी तथा बच्चों को भी अधिकार देने पड़ते हैं। राज्य की ओर से उसे एक सनद मिल जाती है कि वह अब राज्यकृत नागरिक बन गया है। कई देशों में वहाँ का नागरिक बनने के लिए राष्ट्रभाषा का ज्ञान आवश्यक है और संविधान में विश्वास करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त नागरिकता प्राप्ति के कई और साधन हैं।

(१) **विवाह**—यदि किसी देश की स्त्री दूसरे देश के पुरुष से विवाह कर ले तो उस स्त्री की अपनी नागरिकता का लोप हो जाता है और उसकी नागरिकता प्रायः पुरुष की नागरिकता हो जाती है परन्तु सारे देश इस मत के अवलम्बी नहीं हैं। रूसी सरकार ने उन रूसी स्त्रियों को जिन्होंने विदेशियों से विवाह कर लिये थे, देश छोड़ने की आज्ञा नहीं दी। जापान में ऐसा नियम प्रचलित है कि यदि कोई विदेशी जापान की किसी नारी से विवाह कर ले, तो उसको भी जापान की नागरिकता प्राप्त हो जाती है।

(२) **वैधता** (Legitimation)—कुछ देश इस नियम को भी मानते हैं कि यदि उस राज्य के पुरुष का किसी विदेशी स्त्री से सम्बन्ध आ जाए, तो उनके बच्चे अवैध (illegitimate) कहलायँगे परन्तु यदि उन बच्चों के माता-पिता आपस में विवाह कर लें तो उन बच्चों को भी नागरिकता प्राप्त हो जायगी।

(३) **सरकारी नौकरी**—कुछ देशों में यह भी नियम है कि यदि कोई विदेशी उस देश में नौकरी कर ले, तो उसे वहाँ की नागरिकता प्राप्त हो जाए।

(४) **पुनः नागरिकता प्राप्ति**—यदि किसी देश के नागरिक अपनी नागरिकता को छोड़ कर दूसरे देश की नागरिकता को अपना लें, तो उनका देशीयकरण (naturalisation) समझा जायगा परन्तु यदि वे अपने पूर्व देश की नागरिकता फिर प्राप्त करना चाहें, तो कुछ शर्तें पूरा करने पर उन्हें नागरिकता प्राप्त हो सकती है।

(५) दक्षिण अमरीका के कुछ देशों जैसे पीरू और मेक्सीको में यह कानून है कि यदि कोई मनुष्य वहाँ कुछ जायदाद खरीद ले, तो उसे वहाँ की नागरिकता प्राप्त हो जाती है।

(६) यदि किसी राज्य का कोई भाग अन्य देश के द्वारा जीत लिया जाय अथवा एक राज्य अपनी इच्छा से अपना कुछ भाग दूसरे राज्य को दे दे, तो दोनों हालतों में उस भाग के नागरिकों को उस देश की नागरिकता प्राप्त हो जायगी, जिसमें भाग मिलाया गया हो।

नागरिकता का छीना जाना—(Loss of Citizenship)—नीचे लिखे कारणों से नागरिकता खोई जाती है। अलग-अलग राज्यों में इसके लिए भिन्न-भिन्न नियम हैं। प्रायः ये नियम अधिकार माने जाते हैं।

(१) बहुत से राज्य अपने नागरिकों को यह अधिकार दे देते हैं कि यदि वे

अपनी इच्छा से वहाँ की नागरिकता छोड़ना चाहें और दूसरे देश की नागरिकता प्राप्त करना चाहें, तो वे सरकार की आज्ञा से ऐसा कर सकते हैं। इसके लिए नागरिक को सरकार के पास आवेदन-पत्र देना पड़ता है। जर्मन में ऐसा नियम माना जाता है।

(२) बहुत से देशों में यह नियम प्रचलित है कि वहाँ जन्म-स्थान सिद्धान्त तथा रक्त-सम्बन्ध सिद्धान्त (jus soli and jus sanguinis) दोनों ही माने जाते हैं। यदि कोई बालक जन्म-स्थान के कारण एक देश की नागरिकता प्राप्त कर लेता है और रक्त-सम्बन्ध सिद्धान्त के कारण दूसरे की, तो वह बालक वयस्क (adult) होने पर घोषणा द्वारा किसी एक देश की नागरिकता को तिलाञ्जलि दे सकता है क्योंकि एक मनुष्य दो देशों का एक ही समय में नागरिक नहीं रह सकता।

(३) यदि कोई नारी किसी विदेशी से विवाह कर लेती है तो प्रायः उसकी अपनी नागरिकता समाप्त हो जाती है और उसको अपने पति की नागरिकता प्राप्त हो जाती है।

(४) कुछ राज्यों में ऐसा नियम है कि वहाँ का नागरिक दूसरे देशों में किसी प्रकार की कोई सरकारी नौकरी नहीं कर सकता और न ही किसी प्रकार का कोई पद ग्रहण कर सकता है। उसको दूसरे देश की सेना में भरती होने की भी आज्ञा नहीं होती। यदि कोई नागरिक ऐसा करना चाहे तो उसे अपने देश की सरकार से आज्ञा लेनी पड़ती है और यदि आज्ञा के बिना वह दूसरे देश की फौज में भरती हो जाता है या कोई पद ग्रहण कर लेता है तो उसे वहाँ की नागरिकता से वञ्चित कर दिया जाता है।

(५) बहुत से देशों में यह भी नियम है कि यदि उनका नागरिक स्थायी रूप से या कुछ निश्चित अवधि तक बाहिर रहे, तो वह अपने देश की नागरिकता खो बैठता है। यह अनुपस्थिति की अवधि प्रत्येक देश में अलग-अलग है। कई देशों में यह दस वर्ष है और कई देशों में यह और भी अधिक है।

(६) सेना से भागे हुए सिपाही, देशद्रोही तथा पुराने अपराधी भी नागरिकता से वञ्चित कर दिये जाते हैं।

भारतीय नागरिकता (Indian Citizenship)

२६ जनवरी, १९५०, को भारत का नया संविधान लागू किया गया। इससे पूर्व सब भारतीय अंग्रेज सम्राट् की प्रजा कहलाते थे। यद्यपि भारतीय अंग्रेज सम्राट् की प्रजा थे तथापि उन्हें अंग्रेजी साम्राज्य के किसी हिस्से में बसने, जायदाद खरीदने और नौकरियाँ प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया तथा अन्य कई देशों में भारतीयों को नागरिकता के अधिकार नहीं थे। अमरीका में भी स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीयों को नागरिकता प्राप्त करने के अधिकार नहीं थे परन्तु अब यह परिस्थिति नहीं रही है। भारत का संविधान यह नहीं बतलाता कि विदेशियों को नागरिकता किस प्रकार प्राप्त हो सकती है और किस प्रकार भारतीयों को तथा राज्यकृत विदेशियों को नागरिकता से वञ्चित किया जा सकता है।

संविधान में केवल यह बताया गया है कि भारतीय नागरिकों के तीन वर्ग होंगे —

(१) भारत के संविधान भाग २ अनुच्छेद ५ में लिखा है कि इस संविधान के प्रारम्भ पर प्रत्येक व्यक्ति जिसका भारत राज्य-क्षेत्र में अधिवास (domicile) है, तथा—

(क) जो भारत राज्य-क्षेत्र (territory) में जन्मा था; अथवा

(ख) जिसके जनकों (parents) में से कोई भारत राज्य-क्षेत्र में जन्मा था; अथवा

(ग) जो ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले कम से कम पाँच वर्ष तक भारत राज्य-क्षेत्र में सामान्यता (ordinarily) निवासी रहा है; भारत का नागरिक होगा।

(२) **शरणार्थी नागरिक**—दूसरी श्रेणी अर्थात् पाकिस्तान छोड़कर आने वाले हिन्दू और सिखों को नागरिकता का अधिकार प्रदान करने के लिए संविधान में कहा गया है कि जो व्यक्ति स्वयं या जिनके माता-पिता या दादा-दादी या नाना-नानी या इनमें से कोई अविभाजित (undivided) भारत में पैदा हुए हों और जो १९ जुलाई, सन् १९४८ से पूर्व पाकिस्तान से आकर भारत में बस गए हों, उन्हें भारत का नागरिक माना जायगा। जो लोग १९ जुलाई, १९४८, के पश्चात् पाकिस्तान से भारत आये हैं उनके लिए विधान में कहा गया है कि वे केवल उस दशा में नागरिक समझे जायेंगे, जब वे भारत सरकार द्वारा नियुक्त किये हुए अफसरों के सम्मुख आवेदन-पत्र देकर २६ जनवरी, १९५०, से पहले, अपना नाम रजिस्टर करवा लें; परन्तु ऐसे व्यक्तियों के नाम की रजिस्ट्री केवल उस दशा में होगी जब वे आवेदन-पत्र देने से पूर्व कम से कम ६ महीनों से भारत में रह रहे हों। जो व्यक्ति पहली मार्च सन् १९४७ के पश्चात् भारत छोड़कर पाकिस्तान चले गए हैं, उन्हें भारत का नागरिक नहीं माना जायगा; परन्तु उन राष्ट्रवादी मुसलमानों की सुविधा के लिए जो स्वयं या जिनके परिवार के सदस्य साम्प्रदायिक दंगों के समय भय के कारण पाकिस्तान चले गये थे, परन्तु बाद में पक्का परमिट पाकर भारत लौट आये हैं, उनको नागरिकता का अधिकार दे दिया गया है।[1]

(३) **विदेशों में बसने वाले भारतीय**—अन्त में तीसरी श्रेणी के लोगों को नागरिकता का अधिकार प्रदान करने के लिए संविधान में कहा गया है कि जो लोग आजकल विदेशों में रहते हैं परन्तु जिनका स्वयं या जिनके माता-पिता या दादा-दादी या नाना-नानी में से किसी का जन्म अविभाजित भारत में हुआ था, वे लोग यदि विदेशों में स्थित भारत के राजदूत के दफ्तर में प्रार्थना-पत्र देकर अपने नाम की रजिस्ट्री करा लेंगे, तो उन्हें भारतीय नागरिकता का अधिकार दे दिया जायगा। साथ ही संविधान में कहा गया है कि जो व्यक्ति विदेशी नागरिकता ग्रहण करेंगे, उन्हें

१. राजनारायण गुप्त : 'नागरिक शास्त्र के सिद्धान्त'; पृष्ठ ७६।

भारत का नागरिक बनने का अधिकार नहीं होगा। संसद् को यह अधिकार दिया गया है कि इस विषय में वह विस्तृत कानून बनाये।[१]

आदर्श नागरिकता

नागरिक शास्त्र का कर्तव्य है कि नागरिकों को यह कर्तव्य तथा अधिकार का ज्ञान कराये। नागरिक शास्त्र का उद्देश्य एक आदर्श समाज की स्थापना करना है। किसी देश का संविधान कितना भी अच्छा क्यों न हो, परन्तु जब तक वहाँ के लोगों में बुद्धि, स्वार्थ-त्याग और परार्थ की भावना न होगी, तब तक वहाँ संविधान ठीक प्रकार से नहीं चल सकता। इसके अतिरिक्त विधान को सुचारु रूप से चलाने के लिए सहयोग की आवश्यकता है।

एरिस्टॉटल ने कहा है कि किसी विधान की सफलता मनुष्यों के चरित्र पर निर्भर है। अतः नागरिकों के लिए चरित्रवान् होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए देश में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समता होनी जरूरी है। जब तक समाज में आर्थिक विषमता रहेगी अर्थात् कुछ मनुष्य अत्यन्त निर्धन और कुछ बहुत धनवान् रहेंगे तो किसी भी व्यक्ति की उन्नति नहीं हो सकती। धनवानों को विद्या की ओर प्रायः उदासीनता रहती है। गरीबों को सदैव रोटी की चिन्ता रहती है, अतः वे न तो अपने बच्चों को शिक्षित कर सकते हैं, और न स्वयं ही कला और विज्ञानों के अध्ययन की ओर ध्यान दे सकते हैं। सामाजिक समता का होना भी अत्यन्त आवश्यक है तभी व्यक्तियों का पूर्ण विकास हो सकता है। ऊँच-नीच की भावना समाज की उन्नति में बड़ी बाधक है। अछूत को जब तक समाज में बराबरी का स्थान नहीं प्राप्त होता, तब तक उसके व्यक्तित्व का विकास नहीं हो सकता। इसी प्रकार आदर्श नागरिकता स्थापित करने के लिए राजनैतिक समता का होना भी अत्यन्त आवश्यक है ताकि प्रत्येक नर-नारी देश की उन्नति में कन्धे से कन्धा मिला कर काम कर सके। इसलिए समाज में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समता का होना अत्यन्त आवश्यक है ताकि व्यक्ति के चरित्र का पूर्ण विकास हो सके। आदर्श नागरिकता तभी कायम हो सकती है जब कि मनुष्य यह समझे कि समाज-हित में ही उसका हित छिपा है।

इसके अतिरिक्त समाज में कई समुदाय रहते हैं। नागरिकता का अर्थ है कि भिन्न-भिन्न समुदायों (associations) के प्रति हम अपने कर्त्तव्य निभाएँ। प्रत्येक नागरिक का कुछ न कुछ कर्त्तव्य राज्य, समाज और अनेक प्रकार के समुदायों के प्रति अवश्य रहता है। समाज में अनेक तरह के राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक समुदाय रहते हैं। प्रत्येक समुदाय मनुष्य के किसी न किसी पहलू की भलाई के लिए आवश्यक है। मनुष्य कई बार एक से अधिक समुदायों का सदस्य हो जाता है। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वह किस समुदाय की सेवा करे, यदि बहुत से समुदायों के हित एक दूसरे के बिल्कुल विरुद्ध हों। उदाहरणार्थ, यदि युद्ध छिड़ जाता है तो उस समय देश की सरकार प्रत्येक व्यक्ति से देश-भक्ति के नाम पर अपना सर्वस्व

१. राजनारायण गुप्त : 'नागरिक शास्त्र के सिद्धान्त' ; पृष्ठ ७७।

बलिदान करने को कहेगी और कुटुम्ब के सदस्य उसे ऐसा करने से प्रायः रोकेंगे, तो अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि उस समय व्यक्ति को अपनी भक्ति देश या राज्य के प्रति दिखानी चाहिए अथवा कुटुम्ब के प्रति ? इसका कुछ लेखकों ने यह उत्तर दिया है कि व्यक्ति को ऐसी हालत में अधिक महत्त्वपूर्ण संस्थाओं की ओर अपनी भक्ति दिखानी चाहिए और छोटी संस्थाओं की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। नागरिक को पड़ोस तथा गाँव के लिए अपने कुटुम्ब की परवाह नहीं करनी चाहिए और इसी प्रकार राष्ट्र के हित के लिए उसको प्रान्त या गाँव की परवाह नहीं करनी चाहिए। यदि संसार में शान्ति स्थापित करने के लिए उसको अपने राष्ट्र के हितों का भी त्याग करना पड़े, तो उसे ऐसा करना चाहिए। आदर्श समाज में अनेक समुदायों के हितों में कोई संघर्ष नहीं हो सकता परन्तु आज के समाज में संघर्ष अवश्य सम्भव है अतः मनुष्य का कर्त्तव्य है कि छोटे हित को बड़े हित के लिए त्याग दे। इसलिए कहा गया है कि नागरिकता भक्तियों का उचित रीति से संगठन है[1] (Citizenship consists in the right ordering of loyalties)। अच्छे नागरिक का यही गुण है कि वह अपने राष्ट्र और समाज की उन्नति के लिए काम करे। मनुष्य को निजी स्वार्थ छोड़कर देश-भक्ति में लगना चाहिए। अतः प्रसिद्ध लेखक लास्की ने कहा है, "नागरिकता जनता के हित के लिए व्यक्ति का योगदान है।"[2]

एक आदर्श नागरिक के गुण (Qualities of a Good Citizen)

(१) **सामाजिक भावना**—मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास केवल समाज में ही हो सकता है क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य समाज का एक अंग मात्र है और उसके हित समाज के ऊपर नहीं बल्कि समाज में ही निहित हैं। एक आदर्श नागरिक दूसरे की भलाई के लिए सदैव तत्पर रहता है और समाज पर संकट पड़ने के समय अपने आपको बलिदान भी कर देता है। समाज की उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि मनुष्य अपना स्वार्थ छोड़कर समाज-सेवा में लीन हो जाय। एक आदर्श नागरिक को दीन-दुःखियों के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए और उसमें दया, सहयोग तथा कर्त्तव्यपरायणता की भावना सदैव जागृत रहनी चाहिए।

(२) **कर्त्तव्यपरायणता और सुव्यवहार**—मनुष्य में केवल सामाजिक दोषों को जानने की शक्ति ही नहीं होनी चाहिए अपितु उसमें यह भी गुण होना चाहिए कि वह समाज में प्रेम का वायुमण्डल निर्माण कर सके। एक आदर्श नागरिक की जबान में मिठास होनी चाहिए और दूसरों के प्रति अपने कर्त्तव्यों को निभाने की आदत होनी चाहिए। समाज में एक आदर्श नागरिक को भ्रातृ-भाव का वातावरण (atmosphere of brotherhood) निर्माण करना चाहिए। प्रत्येक नागरिक को अपने अधिकार सुरक्षित रखने चाहिएँ और कर्त्तव्यों का भली भाँति पालन करना

---

१. विलियम बॉयड।

2. "Citizenship is the contribution of one's instructed judgment to public good."—*Laski.*

चाहिए। उसमें देश-भक्ति की भावना अत्यन्त तीव्र होनी चाहिए। जब एक नागरिक दूसरे की तकलीफ को अपनी तकलीफ समझेगा और परोपकार के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने को तैयार रहेगा, तभी आदर्श समाज कायम हो सकेगा।

(३) **अच्छा स्वास्थ्य**—कहा गया है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है (Healthy mind in a healthy body)। जिस मनुष्य का स्वास्थ्य ठीक नहीं है, वह न अपनी सेवा कर सकता है और न ही समाज की। एक बीमार आदमी से क्या आशा हो सकती है कि वह विद्याध्ययन ठीक प्रकार से करेगा। एक बीमार आदमी फौज में भरती नहीं हो सकता और न ही देश के लाभ के लिए अन्य कोई काम कर सकता है। इसलिए प्राचीन काल में एक कवि ने कहा था कि धर्मसाधन के लिए शरीर पहली चीज है। अर्थात्, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति अच्छे स्वास्थ्य पर निर्भर है।

(४) **सुशिक्षा, उदार विचार और आत्मसंयम**—नागरिकों में सेवा-भाव उत्पन्न करने के लिए सुशिक्षा का होना अत्यन्त आवश्यक है। जब तक शिक्षा के द्वारा उनमें नैतिकता (morality) की भावनाएँ उत्पन्न नहीं होंगी, तब तक वे आदर्श नागरिक कदापि नहीं बन सकते। यदि हम यह चाहते हैं कि प्रत्येक नागरिक समाज-सेवा में लीन रहे, तो हमें छुआछूत, साम्प्रदायिक भावनाएँ तथा प्रान्तीयता के विरुद्ध बहुत प्रचार करना पड़ेगा। विद्यार्थियों में अनुशासन, अध्यापक तथा माता-पिता की ओर भक्ति और कर्त्तव्यपरायणता केवल सुशिक्षा द्वारा ही आ सकती है। उत्कट देश-भक्ति, दूसरों की सहायता की भावना, भ्रातृभाव तथा वात्सल्य केवल अच्छी शिक्षा द्वारा ही समाज में उत्पन्न हो सकता है। आत्म-संयम की भी अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि तभी मनुष्य अपने अधिकार इस भाँति प्रयुक्त करेगा कि जिससे दूसरों के अधिकारों को कोई हानि न पहुँचे। बिना शिक्षा के ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता है और ज्ञान के बिना नागरिक अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं कर सकता। अतः सफल नागरिकता का आधार नैतिक शिक्षा है। सरकार को चाहिए कि इस प्रकार का प्रबन्ध करे कि प्रत्येक मनुष्य को मुफ्त शिक्षा मिल सके। ब्राइस के अनुसार अच्छे नागरिक के प्रमुख गुण बुद्धि, आत्म-संयम तथा उत्तरदायित्व की भावनाएँ हैं। डाक्टर ह्वाइट ने आदर्श नागरिकता के तीन गुण—बुद्धि, ज्ञान और लगन बतलाये हैं। आदर्श नागरिक चरित्रवान् अवश्य होना चाहिए।

(५) **नागरिकता कर्त्तव्यों के उचित क्रम-निर्माण पर अवलम्बित है**—समाज में कुटुम्ब, राज्य और अनेक प्रकार के समुदाय विद्यमान हैं। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह इन समुदायों का सदस्य बने। प्रत्येक समुदाय मनुष्य के किसी न किसी पहलू की उन्नति करता है। अतः अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि इन अनेक समुदायों के हितों में आपस में संघर्ष हो, तो व्यक्ति का क्या कर्त्तव्य है। इसका उत्तर यह है कि मनुष्य को परिवार के हित के लिए अपना, नगर के लिए परिवार का, देश के लिए नगर का और मानव-समाज के लिए राष्ट्र का बलिदान करने के लिए सदा कटिबद्ध रहना चाहिए।

(६) **मताधिकार का उचित उपयोग तथा देश-भक्ति**—१५ अगस्त, सन् १९४७,

को भारत अंग्रेजों की दासता से मुक्त हुआ और स्वाधीनता के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। स्वतन्त्र भारत में नागरिकों को पहली बार मूलाधिकार (fundamental rights) प्राप्त हुए। अधिकारों से बिल्कुल अभिन्न मनुष्य के कुछ कर्त्तव्य भी हैं। नये संविधान के अनुसार प्रत्येक भारतीय नर-नारी को जिसकी आयु २१ वर्ष होगी, मताधिकार दिया गया है। जाति, धर्म तथा अन्य भेद-भाव नष्ट कर दिये गये हैं। प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि इन अधिकारों का दुरुपयोग न करे। इसी प्रकार विचार प्रकट करने का अधिकार दे दिया गया है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि कोई मनुष्य अशान्ति फैलाये। इसी प्रकार धर्म-प्रचार का अधिकार प्रत्येक मनुष्य को दे दिया गया है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि कोई मनुष्य घृणा फैलाये। प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह राज्य की ओर पूर्ण भक्ति दिखलाये और किसी प्रकार भी देश-द्रोह न करे। नागरिक का यह भी कर्त्तव्य है कि वह टैक्स इत्यादि सरकार को देता रहे।

आदर्श नागरिकता के मार्ग में बाधाएँ—लार्ड ब्राईस के कथनानुसार अच्छी नागरिकता के मार्ग में तीन बाधाएँ हैं—आलस्य, स्वार्थ तथा दलबन्दी की भावना। इनके अतिरिक्त अन्य बाधाएँ भी हैं, यथा अशिक्षा, दरिद्रता, साम्प्रदायिकता (communalism), प्रान्तीयता (provincialism), छुआछूत तथा उग्र राष्ट्रवाद (aggressive nationalism)।

(१) **आलस्य**—कोई भी राज्य जिसके नागरिक अत्यन्त आलसी हैं ठीक प्रकार नहीं चल सकता। कई मनुष्य तो राजनीति की ओर बिलकुल उदासीन रहते हैं। उन्हें यह पता नहीं कि राजनीति की जानकारी रखना अत्यन्त आवश्यक है। जब तक राजनीति की जानकारी नहीं, तब तक हम एक अच्छे और बुरे कार्यकर्त्ता में भेद ही नहीं कर सकते। कई मनुष्य तो निर्वाचन के समय इतना भी कष्ट नहीं करते कि वे जाकर अपनी राय दे आयें। बहुत से मनुष्य तो यह खयाल करते हैं कि कोई भी शासक बने परन्तु उनकी दशा तो वैसी ही रहनी है और उनको किसने प्रधान मन्त्री बना देना है? परन्तु ये सब भावनाएँ मिथ्या हैं। कुछ लोग अपने में इतनी योग्यता ही नहीं महसूस करते कि वे सार्वजनिक कार्यों में भाग लें।

(२) **स्वार्थ**—यह भी याद रखने योग्य बात है कि जिस देश के नागरिकों में स्वार्थ की भावना सदैव विद्यमान रहती है वहाँ पर अशान्ति का साम्राज्य हो जाता है और वह देश शीघ्र ही अपनी स्वतन्त्रता खो बैठता है। जहाँ लोग अधिक स्वार्थी होंगे, वहाँ सदैव कलह रहेगी। स्वार्थी मनुष्य केवल अपने ही अधिकारों की चिन्ता करते हैं और दूसरे के अधिकारों को कुचलने के लिए उत्सुक रहते हैं ऐसी दशा में क्या आदर्श नागरिकता उत्पन्न हो सकती है? स्वार्थी मनुष्य अपने वोट दूसरों को बेच देते हैं। यदि प्रत्येक मनुष्य स्वार्थी हो जाय, तो राज्य छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट जायगा।

(३) **दलबन्दी की भावना**—प्रजातन्त्र में दलों का होना स्वाभाविक है परन्तु यदि ये दल स्वार्थी मनुष्यों के हाथों में हों तो वे समाज को अत्यन्त हानि पहुँचाते हैं। ये स्वार्थी मनुष्य जनता में झूठा प्रचार फैलाते हैं। मुस्लिम लीग ने भारत में बहुत धार्मिक वैषम्य (religious bitterness) फैलाया और उसका परिणाम यह हुआ

कि भारत को दो भागों में बँटना पड़ा। धार्मिक दल लोगों के मजहबी जोश को भड़काते हैं और उनके नेता अपना उल्लू सीधा करने के लिए नाना प्रकार के षड्यन्त्र रचते हैं।

(४) **अशिक्षा**—शिक्षा के बिना मनुष्य अन्धकार में डूबा रहता है और उसके ज्ञान-चक्षु बन्द रहते हैं। अशिक्षित मनुष्य को उसके कर्तव्यों का ज्ञान नहीं रहता और न ही वह अपने अधिकारों की भली भाँति रक्षा कर सकता है। अशिक्षित मनुष्य प्राचीन रीति-रिवाज और अन्धविश्वास के गढ़े में डूबे रहते हैं। स्वार्थी नेता अशिक्षित मनुष्यों के जोश को उभारते रहते हैं ताकि उनका अपना उल्लू सीधा होता रहे। अशिक्षित मनुष्य देश की कठिन समस्याओं को भली भाँति नहीं समझ सकता और इसलिए उनको हल करने के लिए कोई युक्ति नहीं दे सकता। शिक्षा के बिना एक नागरिक अपने को इस योग्य नहीं समझता कि वह जनता की कुछ सेवा कर सके। रूढ़िवादिता प्रगति के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट है। शिक्षा से मनुष्य को ज्ञान होता है और वह इस योग्य बन जाता है कि नागरिकता के कर्तव्यों को भली प्रकार निभाये।

(५) **दरिद्रता**—दरिद्रता और बेकारी आदर्श नागरिकता की बड़ी भारी शत्रु हैं। जिस देश में अत्यन्त गरीबी होती है, वहाँ नागरिक चौबीस घंटे अपनी आर्थिक समस्याओं में उलझे रहते हैं और उन्हें इतना अवकाश ही प्राप्त नहीं होता कि वे देश में प्रति दिन होने वाली घटनाओं में कुछ रुचि रक्खें। जिस मनुष्य को सवेरे रोटी मिल जाती है और शाम को नहीं मिलती वह क्या देश की भलाई को सोचेगा? दरिद्र मनुष्य न स्वयं शिक्षा का अध्ययन कर सकता है और न ही अपने बच्चों को करा सकता है। जिस देश में अत्यन्त गरीबी हो, वह देश कभी उन्नत नहीं हो सकता।

(६) **उग्र राष्ट्रवाद, पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की प्रबल भावना**—उग्र राष्ट्रवाद (aggressive nationalism) का यह अर्थ है कि दूसरे देशों की स्वतन्त्रता को नष्ट किया जाय और अपने देश का झंडा सारे जगत में फहराये। हिटलर और मुसोलिनी ने इस सिद्धान्त को अपनाया। हिटलर ने आस्ट्रिया, पोलैंड तथा फ्रांस पर आक्रमण किया और जर्मनी का प्रभुत्व जमाने के लिए उन देशों की सभ्यता तथा संस्कृति को पैरों-तले कुचल दिया। इसी प्रकार इटली ने अबीसीनिया की आजादी को खाक में मिला दिया। पूँजीवादी भी गरीबों का शोषण करते हैं और अपने लाभ के सामने देश के लाभ की कोई परवाह नहीं करते। पूँजीवाद से देश अमीर तथा गरीब ऐसे दो वर्गों में बँट जाता है जिसके कारण देश में सदैव कलह रहती है। कुछ मनुष्य बहुत अमीर और कुछ बहुत गरीब हो जाते हैं। आर्थिक विषमता सच्ची नागरिकता की राह में बड़ी भारी अड़चन है। उग्र राष्ट्रवाद के कारण संसार में शान्ति कदापि स्थापित नहीं हो सकती। जर्मनी ने इसी सिद्धान्त का अनुकरण करके यहूदियों को निकाल दिया। अमरीका और इंगलैंड भी साम्राज्यवादी देश हैं। फ्रांस और इंगलैंड ने अपना साम्राज्य भारत, अफ्रीका, चीन तथा अन्य देशों में फैलाया और उन देशों के निवासियों की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का अपहरण किया। अतः ये सब भावनाएँ आदर्श नागरिकता के मार्ग में बाधाएँ हैं।

(७) **वर्ण-व्यवस्था, प्रान्तीयता तथा साम्प्रदायिकता**—वर्ण-व्यवस्था, प्रान्तीयता

तथा साम्प्रदायिकता और काली तथा गोरी जातियों का भेद-भाव भी आदर्श नागरिकता के मार्ग में कुछ कम बाधाएँ नहीं हैं। वर्ण-व्यवस्था के कारण ही छूआ-छूत की भावना उत्पन्न होती है। वर्ण-व्यवस्था के कारण ही एक जाति दूसरी जाति से घृणा करती है और अपने को सब से ऊँचा खयाल करती है। प्रान्तीयता की भावना से संकीर्ण विचार उत्पन्न होते हैं और देश अनेक प्रकार के छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट जाता है। साम्प्रदायिकता भी आदर्श नागरिकता के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है। इसी से मजहबी झगड़े पैदा होते हैं। साम्प्रदायिकता का ही फल था कि १९४७ में भारत का विभाजन हुआ और लाखों लोग बेघर होगए।

इन बाधाओं को दूर करने के उपाय—आदर्श नागरिकता के मार्ग में आने वाली बाधाएँ ऊपर लिखी जा चुकी हैं। इनको हटाना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि जब तक देश में आदर्श नागरिक नहीं होंगे, तब तक देश ऊँचा नहीं उठ सकता। इसके लिए आवश्यक है कि समाचार पत्र, स्कूल तथा कालेज, रेडियो और सारे दलों के नेता इस बात पर जोर लगावें कि बच्चों में आदर्श नागरिकता के गुण उत्पन्न किये जायँ। छुआछूत देश में से खत्म होनी चाहिए। भारतीय संविधान में से छुआछूत समाप्त कर दी गई है। साम्प्रदायिकता (communalism), प्रजातीयता (racialism), प्रान्तीयता (provincialism), पूंजीवाद (capitalism), साम्राज्यवाद (imperialism), और उग्र राष्ट्रवाद (aggressive nationalism) का भी नाश होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जबकि मनुष्य सारी वसुधा को एक कुटुम्ब के समान समझे। प्लेटो ने आदर्श नागरिकता के निर्माण के लिए शिक्षा पर बहुत जोर दिया है। शिक्षा के बिना मनुष्य को ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता और वह अन्धकार के गढ़े में डूबा रहता है। अतः सरकार को गरीब तथा अमीर अर्थात् सबके लिए मुफ्त शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए। गरीबी भी बहुत बुरी बला है। जिस मनुष्य को सवेरे रोटी खाने को मिल जाती है और शाम का पता नहीं कि मिलेगी या नहीं वह देश के लिए क्या सोच सकता है। उस व्यक्ति से यह आशा ही नहीं की जा सकती कि वह अपने बच्चों को स्कूल या कालेज में पढ़ायेगा, देश की कठिन समस्याओं को समझेगा, वेदों का अध्ययन करेगा और ज्ञान के भण्डार से सभ्यता या संस्कृति को उन्नत करेगा। अतः आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक असमता को दूर करना सरकार का परम कर्तव्य है। इतना ही नहीं बल्कि सरकार का यह कर्तव्य है कि गरीब और अमीर को जीवन में बराबर अवसर दे और पूंजीवाद का नाश करे। आदर्श नागरिक में स्वार्थ, आलस्य तथा पार्टीबाजी की भावना बिलकुल नहीं हो सकती। शिक्षा के द्वारा ही आलस्य, स्वार्थ और साम्प्रदायिकता के भाव नष्ट किये जा सकते हैं। खराब रीति-रिवाज भी दूर होने चाहिएँ।

सारांश

नागरिकता क्या है? यह कैसे प्राप्त होती है और कैसे छीनी जाती है? आदर्श नागरिकता के मार्ग में क्या बाधाएँ हैं और कैसे दूर की जा सकती हैं? आजकल प्रत्येक बालिग को जिसे राजनैतिक और सामाजिक अधिकार प्राप्त हैं, नागरिक

कहते हैं। लास्की का कथन है कि अपनी शिक्षित बुद्धि को लोक-हितार्थ प्रयुक्त करना ही नागरिकता है। अतः नागरिकता के लिए निम्न तीन बातों की आवश्यकता है—(१) राज्य की सदस्यता, (२) राज्यों की ओर से सामाजिक और राजनैतिक अधिकारों की प्राप्ति, और (३) राज्य के प्रति निष्ठा (allegiance)। राज्य पागलों, कोढ़ियों, भिखारियों और लम्बी सजाएँ काटने वाले अपराधियों को नागरिकता नहीं प्रदान करता। आजकल अधिकतर देशों में वयस्क मताधिकार प्रचलित है। इंगलैण्ड, भारत, अमरीका में बालिग २१ वर्ष के नवयुवक को कहते हैं। रूस में बालिग १८ वर्ष की आयु वाला माना जाता है। अतः आजकल प्रायः प्रत्येक बालिग को मताधिकार प्राप्त हो जाता है। विदेशियों को नागरिकता के अधिकार नहीं प्राप्त होते। नाबालिग भी नागरिक नहीं कहलाते। नागरिकता दो प्रकार की होती है—जन्मजात नागरिक और राज्यकृत नागरिक। जो विदेशी हमारे देश की नागरिकता प्राप्त करना चाहें और अपने देश की छोड़ना चाहें, उन्हें हम राज्यकृत नागरिक कहेंगे। इसके लिए उन्हें आवेदन-पत्र देना पड़ता है और सरकार की स्वीकृति लेनी पड़ती है। जन्मजात नागरिक जन्म से ही उस देश के निवासी होते हैं और बालिग होने पर नागरिकता के अधिकारी बन जाते हैं। विवाह, वैधता (legitimation), सरकारी नौकरी और जायदाद इत्यादि खरीदने से भी कई बार अन्य देश की नागरिकता प्राप्त हो सकती है। कोई भी मनुष्य अपनी इच्छा से किसी देश की नागरिकता छोड़ सकता है। यदि कोई किसी विदेशी से विवाह कर ले, तो उसकी नागरिकता नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार से सरकार की आज्ञा के बिना दूसरे देश में नौकरी करने, देश-द्रोह करने, फौज में से भागने, बहुत समय लगातार देश से बाहर रहने और पुराना अपराधी बनने से नागरिकता छिन जाती है। एक आदर्श नागरिक बनने के लिए मनुष्य में कर्तव्य-परायणता और सुव्यवहार, सामाजिक भावना, अच्छा स्वास्थ्य, सुशिक्षा, उदार विचार, आत्म-संयम तथा देश-भक्ति इत्यादि गुण होने चाहिएँ। आलस्य, स्वार्थ, दलबन्दी की भावना, अशिक्षा, दरिद्रता, उग्र राष्ट्रवाद, जिंगोवाद, साम्राज्यवाद की प्रबल भावना, प्रान्तीयता, छुआछूत की भावना और साम्प्रदायिकता इत्यादि आदर्श नागरिकता के मार्ग में बाधाएँ हैं।

Questions

1. Describe the hindrances to good citizenship and show how they may be removed ? (*U. P. Board 1938*)

2. "Citizenship is a condition of life which guarantees to the citizen the enjoyment of all rights, civil as well as political, in the state." Discuss. (*U. P. Board 1941*)

3. Define citizenship. Distinguish a citizen from a resident alien. (*U. P. Board 1943*)

4. Enumerate the qualities of a good citizen. What are the hindrances to good citizenship ?

5. What according to you is the ideal of free creative citizenship ? (*U.P. Board 1950*)

6. What should be the civic ideal of a citizen of independent India ?

7. "Citizenship consists in the right ordering of loyalties." Discuss.

8 Citizenship is a condition of life which guarantees to the individual the enjoyment of all rights, civil as well as political, in return for allegiance which he owes to the State." Discuss.

(*U. P. 1941*)

9. Distinguish between a natural born and naturalised citizen. In what manner citizenship is acquired and lost ?

योग्यता-प्रश्न

१. आप नागरिक और नागरिकता से क्या समझते हैं ?

(यू० पी० १९३०, १९३२)

२. "मनुष्य की उन्नति उसके अल्प हितों को उच्च और विस्तृत हितों के अधीन बनाने में सन्निहित है" इसका विवेचन कीजिए। (यू० पी० १९३०)

३. आप नागरिकता की किस तरह व्याख्या करेंगे ? नागरिक के राज्य के प्रति क्या कर्तव्य हैं ? (यू० पी० १९३२, १९२६)

४. "नागरिकता का अर्थ हमारी शक्ति को अपने में, परिवार में, धर्म में, नगर में, और राष्ट्र में क्रमानुसार उचित रूप से जमाना है।" इस पर प्रकाश डालिये। (यू० पी० १९३८, १९३९)

५. अच्छी नागरिकता की बाधाओं का वर्णन कीजिए और बताइए कि वे किस तरह हटाई जा सकती हैं ? (यू० पी० १९३८)

६. अच्छी और खराब नागरिकता का भेद समझाइए। अच्छी नागरिकता की बाधाएँ क्या हैं और वे किस तरह हटाई जा सकती हैं ?

७. "नागरिकता का अर्थ भक्ति का उचित क्रमानुसार संगठन है।" आप अपनी भक्ति परिवार, नगर, समाज और देश के प्रति किस प्रकार से संगठित करेंगे, यह समझाइए।

(यू० पी० १९३९)

८. जन्मजात नागरिक (natural-born citizens) और राज्यदत्त नागरिक (naturalised citizen) की भिन्नता समझाइए। नागरिकता किस प्रकार प्राप्त की जाती है और किस प्रकार नष्ट हो जाती है, इस पर प्रकाश डालिए। (यू० पी० १९४५)

९. एक विदेशी, नागरिक और प्रजा में क्या विशेष भेद है ? अच्छे नागरिक में कौन-कौन से गुण होने चाहिएँ ?

सातवाँ अध्याय

अधिकार और कर्त्तव्य (Rights and Duties)

"एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य के कार्यों की समाज के मत और शक्ति द्वारा प्रभावित करने की क्षमता का ही नाम अधिकार है"—हालैण्ड।

मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए अधिकारों का होना अत्यन्त आवश्यक है। अधिकारों के बिना समाज का अस्तित्व ही नहीं रह सकता। अधिकारों द्वारा ही समाज की नींव रक्खी जा सकती है। जंगल में शक्ति का राज्य रहता है। शेर चाहे जिस जानवर को खा सकता है क्योंकि पशु-जगत् में किसी जानवर के अधिकारों का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। जिस समय समाज में राज्य की उत्पति नहीं हुई थी, तो उस समय मनुष्य के कोई अधिकार नहीं थे। फलतः बहुत से बलहीन पुरुष शक्तिशाली पुरुषों द्वारा लूटे और मारे गए। मानव-समाज को इस क्षति (decay) से बचाने के लिए राज्य का जन्म हुआ और राज्य की ओर से मनुष्य को कुछ अधिकार प्राप्त हुए तथा उसके कुछ कर्त्तव्य भी निर्धारित किए गए। अधिकारों द्वारा ही मनुष्य अपनी स्वतन्त्रता, माल और जान की रक्षा कर सकता है।

अधिकार की परिभाषा (Definition of Rights)

भिन्न-भिन्न लेखकों ने अधिकार की भिन्न-भिन्न परिभाषा की है। कुछ लेखकों के मत नीचे दिए जाते हैं।

(१) लास्की ने यह कहा है—"अधिकार सामाजिक जीवन की वे अवस्थाएँ हैं जिनके बिना कोई मनुष्य अपना पूर्ण विकास नहीं कर सकता।"[1]

(२) आस्टिन के अनुसार "एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य या मनुष्यों से बल-पूर्वक कुछ विशेष प्रकार के काय कराने की क्षमता का नाम अधिकार है।

(३) क्रस के शब्दों में अधिकार नैतिक जीवन की बाह्य आवश्यक शर्तों का समूह है।

(४) विले ने अधिकार शब्द की परिभाषा ऐसे की है—"विशेष कार्य करने में स्वाधीनता की उचित माँग ही अधिकार है।"[2]

(५) मैकने के अनुसार "अधिकार सामाजिक हित की कुछ लाभदायक परि-स्थितियाँ हैं जो कि मनुष्य के सच्चे विकास के लिए आवश्यक हैं।"

---

1. "Rights are those conditions of social life without which no man can seek to be himself at his best."—*Laski.*

2. A right, according to Wille is "a reasonable claim to freedom in the exercise of certain activities."

(६) श्री निवास शास्त्री ने कहा है—"वास्तव में अधिकार उस व्यवस्था, नियम या रीति को कहते हैं जिसे किसी समुदाय का कानून मंजूर करता है और जिससे नागरिक के उच्चतम नैतिक कल्याण में सहायता मिलती है।"[1]

अधिकार के आवश्यक तत्त्व (Contents of Rights)

(क) अधिकार समाज के विरुद्ध एक दावा (claim) होता है—अधिकार वे 'शक्तियाँ' या दावे हैं जो कि एक व्यक्ति या कुछ व्यक्ति समाज में प्रयुक्त करना जरूरी समझते हैं। प्रत्येक मनुष्य की कुछ न कुछ आवश्यकताएँ होती हैं जो कि केवल समाज में ही पूरी हो सकती हैं। मनुष्य उन अधिकारों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जरूरी समझता है।

(ख) अधिकार असीमित नहीं होते—वे बुद्धि और सदाचार पर आश्रित होते हैं। किसी मनुष्य को यह अधिकार नहीं दिया जा सकता कि वह चोरी करे या डाके मारे। इसी प्रकार किसी मनुष्य को दूसरे को कत्ल करने या आत्महत्या करने का अधिकार नहीं प्रदान किया जा सकता क्योंकि वे सदाचार के विरुद्ध हैं।

(ग) अधिकार समाज पर आश्रित होते हैं—अधिकार समाज पर आश्रित हैं। यदि समाज अधिकारों को नहीं मानता तो वे केवल पाशविक शक्तियाँ रह जाती हैं। फिर उनको एक व्यक्ति दूसरे के विरुद्ध अपनी शक्ति के भरोसे पर लागू कर सकता है। इसका परिणाम यह होगा कि व्यक्तियों में आपस में लड़ाई-झगड़े होंगे और किसी प्रकार सुरक्षा सम्भव नहीं होगी। यदि अधिकार समाज द्वारा स्वीकृत हैं तो उनको सारा समाज पुष्टि देगा। राज्य प्रायः समाजकृत अधिकारों के लिए ऐसा वातावरण (atmosphere) उत्पन्न करता है जिससे व्यक्ति शान्तिपूर्ण तरीकों से उनका उपभोग कर सके।

(घ) अधिकार सार्वजनिक होते हैं—अधिकार किसी एक व्यक्ति की जायदाद या सम्पत्ति न होकर सार्वजनिक होते हैं। ऐसे अधिकार जो कि एक व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक हैं, दूसरे के लिए भी उतने ही आवश्यक हैं। अतः राज्य को धर्म, सम्प्रदाय, जाति या वर्ण के कारण किसी को न तो विशेष अधिकार ही प्रदान करने चाहिएँ और न किसी को कुछ अधिकारों से वञ्चित करना चाहिए।

(ङ) अधिकार और कर्त्तव्य आपस में सम्बन्धित हैं—अधिकार और कर्त्तव्य आपस में बहुत सम्बन्धित हैं। बहुत से मनुष्य केवल अधिकारों की चिन्ता करते हैं और कर्त्तव्यों के बारे में कुछ नहीं सोचते। वे भूल जाते हैं कि अधिकार कर्त्तव्यों का ही फल हैं। वास्तव में अधिकार और कर्त्तव्य एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। प्रत्येक अधिकार के साथ-साथ कर्त्तव्य भी चलता है।

अतः राज्य में बहुत से ऐसे अधिकार मनुष्य को प्राप्त होते हैं जो कि उसकी सामाजिक प्रकृति का फल हैं। राज्य में मनुष्य के अनेक कर्त्तव्य भी होते हैं वरना उनके

1. As Shrinivasa Shastri puts it, "In its essence a right is an arrangement, rule or practice sanctioned by the law of the community and conducive to..... the highest moral good of the citizen."

बिना राज्य चल नहीं सकता। कर्त्तव्य तथा अधिकारों में निम्नलिखित सम्बन्ध हैं—

(१) जहाँ प्रत्येक मनुष्य का कुछ अधिकार है, वहाँ वही दूसरे मनुष्य का कर्त्तव्य भी है। उदाहरणार्थ, प्रत्येक मनुष्य का अधिकार है कि वह अपनी सम्पत्ति तथा जीवन की रक्षा कर सके, तो यह दूसरों का भी कर्त्तव्य हो जाता है कि वे उसकी सम्पत्ति तथा जीवन को किसी प्रकार की हानि न पहुँचायें।

(२) जो एक मनुष्य का अधिकार है वही उसका कर्त्तव्य भी है। प्रत्येक नागरिक को मत देने का अधिकार है परन्तु उसका यह भी कर्त्तव्य है कि वह उस मत को केवल योग्य पुरुष को दे और वोट या राय देते समय किसी धर्म, जाति या वर्ण का भेद-भाव अपने दिमाग में न रखे। यदि एक मनुष्य का सड़क पर चलने का अधिकार है तो उसका यह भी कर्त्तव्य है कि वह दूसरों को भी उस पर चलने से न रोके। जो एक मनुष्य का अधिकार है, वही दूसरे का कर्त्तव्य भी है। मुझे यह महसूस करना चाहिए कि जैसे मुझे कुछ अधिकार प्राप्त हैं उसी प्रकार वही अधिकार दूसरे को भी प्राप्त हैं। मैं अपने अधिकारों का उपभोग तब कर सकता हूँ जब कि दूसरे मेरे अधिकारों में बिल्कुल हस्तक्षेप न करें, इसी प्रकार मेरा भी यह कर्त्तव्य है कि मैं दूसरों के अधिकारों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करूँ ताकि दूसरे व्यक्ति बिल्कुल निश्चिन्त होकर अपने अधिकारों का उपभोग करें।

(३) अधिकार का यह भी अर्थ है कि प्रत्येक मनुष्य उसको जनता के लाभ के लिए इस्तेमाल करे। क्योंकि अधिकार न केवल मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए दिये जाते हैं बल्कि वे समाज के कल्याण के लिए भी राज्य द्वारा अनिवार्य समझे जाते हैं। यदि एक मनुष्य वाक्स्वतन्त्रता (freedom of speech) के अधिकार को लोक-हित के लिए प्रयुक्त न करके घृणा फैलाने के लिए इस्तेमाल करे, तो वह उस अधिकार का दुरुपयोग समझा जायेगा।

राज्य और अधिकार—यह बात याद रखने योग्य है कि अधिकार मनुष्य की सामाजिक प्रकृति का फल हैं। मनुष्य अधिकारों के बिना सामाजिक जीवन बिता ही नहीं सकता। दूसरे, अधिकार केवल राज्य में सम्भव हो सकते हैं क्योंकि राज्य उनको नागरिकों को प्रदान करता है तथा उनकी रक्षा करता है। यदि कोई आचार-भ्रष्ट मनुष्य किसी के अधिकार को छीनना चाहे, तो राज्य ऐसा नहीं करने देगा।

अधिकार सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्त
(Theories or Doctrines of Rights)

अधिकारों के सम्बन्ध में निम्नलिखित सिद्धान्त प्रचलित हैं—

(१) नैसर्गिक अधिकार सिद्धान्त (Theory of Natural Rights)

(२) वैधानिक अधिकार सिद्धान्त (The Legal Theory of Rights)

(३) ऐतिहासिक अधिकार सिद्धान्त (The Historical Theory of Rights)

(४) लोक कल्याण अधिकार सिद्धान्त (The Social Welfare Theory of Rights)

(५) नैतिक या दार्शनिक अधिकार सिद्धान्त (Idealistic Theory of Rights)

(१) **नैसर्गिक अधिकार सिद्धान्त** (Theory of Natural Rights)—इस सिद्धान्त के अनुसार अधिकार प्रकृतिदत्त माने जाते हैं। इस सिद्धान्त को मानने वालों का विचार है कि अधिकार मनुष्य को जन्म से ही प्रकृति द्वारा प्राप्त होते हैं। ये अधिकार सनातन हैं और अनादिकाल से प्रचलित हैं। जिस समय राज्य की उत्पत्ति नहीं हुई थी, उस समय भी मनुष्य को लॉक के अनुसार, जीवन की रक्षा करने, स्वतन्त्रता तथा सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार प्राप्त थे। हॉब्स का विचार था कि प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य को यह अधिकार था कि वह अपनी इच्छा की पूर्ति कर सके। आलोचक कहते हैं कि अधिकार के सम्बन्ध में यह कल्पना मिथ्या है क्योंकि वह अधिकार न होकर एक प्रकार से शक्ति थी। रूसो का विचार था कि प्राकृतिक अवस्था में सब मनुष्य बराबर थे और वे स्वर्गीय आनन्द का अनुभव करते थे। ये अधिकार चूंकि मनुष्य को राज्य और समाज बनने से पहले मिले थे, अतः राज्य और समाज को भी उन्हें मानना चाहिए। राज्य को इन अधिकारों पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिए क्योंकि ये अधिकार राज्य और समाज के ऊपर हैं।

आलोचना—इस सिद्धान्त की कड़ी आलोचना की गई है। प्राकृतिक अधिकारों का कोई निश्चित अर्थ नहीं है। जितने लेखक हैं उतने ही 'प्राकृतिक' शब्द के अर्थ हैं। आजकल भी बहुत से मनुष्य यह मानने को तैयार नहीं कि नारियाँ प्रकृति से मनुष्यों के बराबर हैं। दूसरे, अधिकार केवल समाज में ही प्राप्त हो सकते हैं। राज्य उन अधिकारों का समर्थन करता है। प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य को कुछ अधिकार न प्राप्त होकर केवल शक्तियाँ ही प्राप्त थीं। इस अवस्था में जिसकी शक्ति थी, उसी का राज्य था। ग्रीन के अनुसार समाज के बिना अधिकार नहीं हो सकते।

(२) **वैधानिक अधिकार-सिद्धान्त** (The Legal Theory of Rights)—इस सिद्धान्त के समर्थकों का विचार है कि अधिकार केवल राज्य के द्वारा स्वीकृत होते हैं और राज्य के द्वारा ही उनकी रक्षा होती है। प्रकृति के द्वारा कोई अधिकार किसी को प्राप्त नहीं हो सकते। अधिकार केवल राज्य के कानून द्वारा मनुष्य को प्राप्त होते हैं। आस्टिन, हालैण्ड और सालमन्ड इस मत के पोषक थे।

आलोचना—यह सिद्धान्त भी ठीक नहीं है क्योंकि यदि राज्य जनता की उचित माँगों को मानने के लिए तैयार न हो तो वे अधिकार नहीं रहते। यदि राज्य जनता की उचित माँगों को स्वीकार नहीं करता तथा उसके धार्मिक और राजनीतिक विश्वासों की अवहेलना करता है, तो इसमें राज्य का ही अपराध है, जनता की मांगों में कोई अनुचित बात नहीं। चाहे राज्य जनता की माँगों का संरक्षण करे या न करे, लेकिन समाज यदि उनको स्वीकार करता है, तो वे अधिकार ही कहलायेंगे। अतः इस सिद्धान्त में आंशिक सत्यता है। लास्की कहता है कि राज्य अधिकारों को उत्पन्न नहीं करता बल्कि उनको स्वीकृति (recognition) देता है।

(३) **ऐतिहासिक अधिकार-सिद्धान्त** (The Historical Theory of Rights)—ऐतिहासिक अधिकार सिद्धान्त हमें बतलाता है कि अधिकारों का निर्माता इतिहास है। इसका समर्थन करने वाले मानते हैं कि कुछ समय के पश्चात् लोगों के रीति-रिवाज कानून की शक्ल धारण कर लेते हैं। उदाहरणार्थ, मुस्लिम कानून सारे

का सारा लगभग कुरान और मुसलमानों के रीति-रिवाजों पर आश्रित है। अंग्रेजों में भी रीति-रिवाजों को बहुत अधिक महत्त्व प्राप्त है। हिन्दुओं में भी मिताक्षरा और दायभाग प्रणाली ने रीति-रिवाजों के आधार पर ही कानून की शक्ल धारण कर ली हैं। हिन्दुओं में रीति-रिवाजों के अनुसार उच्च जातियों का यह अधिकार हो गया कि वे हरिजनों को अपने मन्दिरों में आने से रोक सकें।

आलोचना—यह सत्य है कि बहुत से अच्छे रीति-रिवाज राज्य द्वारा कानून में बदल दिये जाते हैं परन्तु बहुत से कानून राज्य द्वारा भी बनाये जाते हैं। सारे कानून रीति-रिवाजों से नहीं निकले हैं। बहुत से खराब रीति-रिवाज राज्य के द्वारा समाप्त भी कर दिये जाते हैं। उदाहरणार्थ, छुआछूत का कानून द्वारा निषेध कर दिया गया है।

(४) **लोक-कल्याण अधिकार-सिद्धान्त** (The Social Welfare Theory of Rights)—इस मत के प्रवर्तक लास्की, बेन्थम तथा मिल हैं। बेन्थम का कथन है कि राज्य को ऐसे अधिकारों को मान्यता (recognition) देनी चाहिए जिनसे अधिकतम लोगों का अधिकतम लाभ हो सके। उनके विचारानुसार दिल की प्रेरणा या केवल रीति-रिवाज कानून की कसौटी नहीं होनी चाहिए बल्कि लोगों का ज्यादा से ज्यादा लाभ ही कानून का आधार होना चाहिए।

आलोचना—यह निश्चित करना अत्यन्त कठिन है कि किस कानून से अधिकतम लोगों को अधिकतम फायदा होगा। इसके अतिरिक्त कभी-कभी समाज के अधिकतर मनुष्य एक खराब रस्म को चलाने में ही लाभ समझते हैं। उदाहरणार्थ, बहुत से हिन्दू छुआछूत तथा सती-प्रथा को अच्छा समझते थे परन्तु अब समय बहुत बदल गया है। अतः राज्य को ऐसे लोगों के अधिकारों का घोर विरोध करना पड़ता है।

(५) **नैतिक या दार्शनिक-सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त के अनुसार अधिकारों का आधार हमारी नैतिक आवश्यकताएँ हैं। हमें अधिकारों की जरूरत इसलिए होती है कि उनके बिना हम अपनी किसी प्रकार की उन्नति करने में असमर्थ हैं। इन्हीं अधिकारों की समाज में इसलिए आवश्यकता है कि उनके बिना समाज में न तो नैतिक जीवन सम्भव है और समाज स्थिर ही रह सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार अधिकार वे बाहिरी हालात हैं जिनके बिना व्यक्ति का पूर्ण विकास सम्भव नहीं। यह सिद्धान्त मानता है कि व्यक्ति के आदर्श हित और समाज के आदर्श हित में किसी प्रकार का विरोध नहीं। इस सिद्धान्त के अनुसार एक व्यक्ति का अधिकार ऐसा होना चाहिए कि उससे दूसरे को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे। अधिकार केवल समाज में ही प्राप्त हो सकते हैं और मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए अनिवार्य हैं। अधिकार समाजकृत हैं राज्यकृत नहीं, अतः प्रत्येक राज्य का कर्त्तव्य है कि उनका संरक्षण करे।

अधिकारों का नैतिक सिद्धान्त अन्य सिद्धान्तों की अपेक्षा पूर्ण और श्रेष्ठ है क्योंकि इसमें अधिकारों के वैयक्तिक (personal), सामाजिक और नैतिक पहलुओं को यथेष्ट महत्त्व दिया जाता है। यह नैसर्गिक सिद्धान्त की भाँति न तो अधिकार

और शक्ति को एक मानता है और न वैधानिक सिद्धान्त की भाँति अधिकारों की कानून से मौलिक स्वतन्त्रता ही को अस्वीकार करता है।

अधिकार तथा कर्त्तव्य (Rights Imply Duties)

अधिकार तथा कर्त्तव्यों में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है जितना कि आत्मा तथा शरीर में। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व कायम ही नहीं रह सकता। अधिकार वास्तव में कर्त्तव्यों का ही फल है। जब मनुष्य अपने परिश्रम से कुछ उत्पन्न करता है तभी उसका उस पर अधिकार स्थापित होता है। यदि एक पुरुष खेती न करे, तो उसका दूसरे की उपज पर कैसे अधिकार हो जायगा। समाज मनुष्य की जिन माँगों को स्वीकार कर लेता है और व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक समझता है, उन्हें प्रायः अधिकार कहा जाता है। प्रत्येक मनुष्य अपने अधिकारों का तब प्रयोग कर सकता है जब कि दूसरा मनुष्य उसके अधिकार के मार्ग में कोई बाधा उपस्थित न करे। अतः जो एक मनुष्य का अधिकार है वही दूसरे का कर्त्तव्य है। जब तक प्रत्येक मनुष्य अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता तब तक कोई भी सुखपूर्वक अपने अधिकार का उपभोग नहीं कर सकता। अतः कर्त्तव्यों के धागों में ही अधिकारों के मनके पिरोये जाते हैं। कर्त्तव्य और अधिकारों की एक अटूट शृंखला है। कर्त्तव्य और अधिकारों की माला ही मानव-जाति का भूषण है।

बहुत से मनुष्य समझते हैं कि उन्हें अधिकार ही चाहिएँ और कर्त्तव्य केवल बोझ हैं। यह विचार गलत है। केवल अधिकारों का यह अर्थ होगा कि समाज में न तो अधिकार हैं और न कर्त्तव्य। बिना कर्त्तव्यों के अधिकार चल ही नहीं सकते। बिना कर्त्तव्य के अधिकार केवल शक्ति-मात्र रह जायँगे जैसा कि हॉब्स की प्राकृतिक अवस्था में था। जंगल में भी शेर की शक्ति रहती है कि चाहे जिसको वह खा जाय। समाज की मान्यता के बिना वैयक्तिक शक्ति अधिकार का रूप धारण नहीं कर सकती। उदाहरण के रूप में हम कह सकते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। चूँकि ये अधिकार समाज द्वारा व्यक्तित्व के विकास के लिए अनिवार्य स्वीकार किए गए हैं, तो दूसरे व्यक्तियों का भी यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे किसी प्रकार की रुकावट इनके उपयोग में उपस्थित न करें। प्रत्येक मनुष्य को भाषण तथा लेखन का अधिकार प्राप्त है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि कोई भी मनुष्य जनता में किसी प्रकार की घृणा फैलाये या कोई अपमानजनक लेख समाचारपत्रों में लिखे। इसी प्रकार हमारे देश में धार्मिक स्वतन्त्रता है। कोई मनुष्य परमात्मा की भक्ति किसी प्रकार भी कर सकता है। चाहे कोई गिरजाघर में जाय, चाहे मन्दिर अथवा मस्जिद में, राज्य की ओर से किसी प्रकार की रुकावट नहीं होगी। लेकिन यदि कोई पार्टी अपना उल्लू सीधा करने के लिए मन्दिर और मस्जिदों या अन्य धार्मिक स्थानों को राजनैतिक आन्दोलनों का अड्डा बनाये, तो उस समय सरकार धार्मिक स्वतन्त्रता का दुरुपयोग समझेगी और ऐसी पार्टी का दमन करने का सरकार को पूर्ण अधिकार होगा। पुलिस का ऐसी परिस्थिति में धार्मिक स्थानों में प्रवेश करना अनुचित न होगा। इसी प्रकार से कुछ जमींदारों

का विश्वास है कि किसानों से कर लेना उनका अधिकार है परन्तु उनके प्रति उनका कोई कर्त्तव्य नहीं। कर्त्तव्य के बिना अधिकार केवल शक्ति समझी जायगी।

बहुत से मनुष्यों का विचार है कि समाज में केवल कर्त्तव्य ही होने चाहिएँ, अधिकार की कोई आवश्यकता नहीं, परन्तु यह भी मिथ्या विचार है। फ्रेंच लेखक ड्यूगी कहता है कि "कल्याणकारी राज्य (Welfare State) में केवल कर्त्तव्य ही हैं अधिकार नहीं।" यह कथन हमारे में एक दम उदार भावना उत्पन्न करता है परन्तु कुछ सोचने के पश्चात् हमको मालूम होगा कि यह विचार कुछ ही सत्य है। यदि हमको अधिकार प्राप्त नहीं होंगे, तो हम अपने व्यक्तित्व का विकास कर ही नहीं सकते। हमें यदि अपनी जान और माल की रक्षा का अधिकार ही नहीं, तो हम एक चोर और डाकू के विरुद्ध, जो कि हमारी जान और माल पर हस्तक्षेप करता है, कोई वैध (legal) कार्रवाई नहीं कर सकते। यदि हमको मूलाधिकार (fundamental rights) न प्राप्त हों तो सरकार किसी प्रकार भी हमारी स्वतन्त्रता का अपहरण कर सकती है। इसलिए लास्की कहता है कि "हमें अपने कर्त्तव्यों को निभाने के लिए कुछ अधिकारों की आवश्यकता होती है। इसलिए अधिकार और कर्त्तव्य एक ही चीज के दो पहलू हैं।" वाइल्ड कहता है, "कर्त्तव्यों के संसार में अधिकारों का महत्त्व है।"

प्रोफेसर लास्की के मतानुसार अधिकार और कर्त्तव्य में निम्न सम्बन्ध हैं—

(१) मेरा अधिकार तुम्हारे कर्त्तव्य के साथ बँधा है (My right implies your duty)। इसका यह अर्थ है कि यदि मुझे कुछ अधिकार प्राप्त हैं तो दूसरे का कर्त्तव्य है कि उन अधिकारों में किसी प्रकार की अड़चन न पैदा करे। जैसे मुझे अपने जीवन की रक्षा करने का अधिकार प्राप्त है तो दूसरों का कर्त्तव्य है कि मुझे किसी प्रकार की शारीरिक हानि न पहुँचायें।

(२) मेरे अधिकार के साथ मेरा कर्त्तव्य है कि तुम्हारे अधिकार को उसी प्रकार स्वीकार किया जाय (My right implies my duty to admit similar right of yours)। जो दूसरे का अधिकार है, वही मेरा कर्त्तव्य है। यदि दूसरे को जान-माल की रक्षा करने का अधिकार है तो मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं उसके जीवन तथा सम्पत्ति को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाऊँ। दूसरे के अधिकारों का मान करना मेरा परम कर्त्तव्य है।

(३) मैं अपने अधिकारों को समाज की भलाई के लिए प्रयुक्त करूँगा (I shall exercise my right to promote social good)। राज्य की ओर से नागरिक को अनेक अधिकार प्राप्त होते हैं तो मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं उनको जनता के हित के लिए इस्तेमाल करूँ। उदाहरणार्थ, मुझे वोट देने का अधिकार प्राप्त है तो मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं उस वोट को केवल योग्य पुरुष को दूँ और वोट देते समय मेरे दिमाग में अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, पुरुष-स्त्री और काले-गोरे तथा जाति या धर्म का भेद-भाव नहीं होना चाहिए।

(४) राज्य मेरे अधिकारों की रक्षा करता है तो मेरा कर्त्तव्य है कि मैं राज्य की और अपने कर्त्तव्य का भली प्रकार पालन करूँ (Since the State guarantees

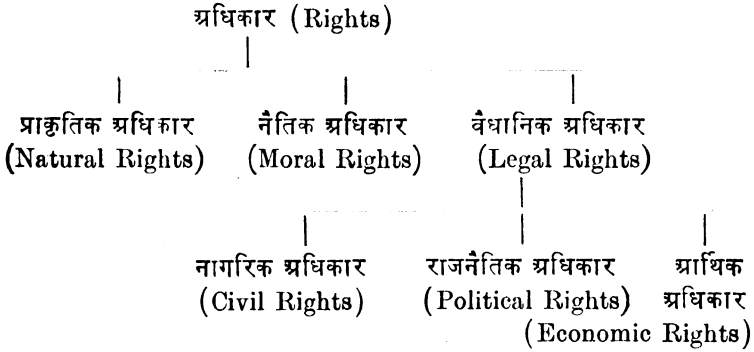
and maintains my rights, I have the duty to support the State) राज्य हमें अनेक प्रकार के अधिकार प्रदान करता है, तो हमारा भी राज्य की ओर कुछ कर्त्तव्य अवश्य हो जाता है। राज्य हमारी रक्षा करता है तो हमारा कर्त्तव्य है कि राज्य को टैक्स या कर दें और राज्य की ओर पूर्ण निष्ठा (allegiance) दिखायें। देशद्रोह वास्तव में अपराध है।

अतः राज्य में अधिकार और कर्त्तव्य अभिन्न हैं, वे एक ही चीज के दो पहलू हैं। डाक्टर बेनीप्रसाद लिखते हैं, "अगर प्रत्येक अधिकारों का ही ध्यान रखे तथा दूसरों के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन न करे तो शीघ्र ही किसी के लिए भी अधिकार न रहेंगे।"

अधिकारों के भेद या वर्गीकरण (Classification of Rights)

अधिकारों और शक्तियों में बहुत भेद है। जंगल में जानवरों के अधिकार न होकर केवल शक्तियाँ ही होती हैं। जब तक शक्तियों को समाज मान्यता न दे और व्यक्ति उनको सार्वजनिक हित के लिए प्रयुक्त न करे, तब तक वे अधिकार नहीं कहला सकते। समाज की मान्यता तथा राज्य के संरक्षण द्वारा वैयक्तिक शक्तियाँ अधिकार का रूप धारण कर लेती हैं।

अधिकारों का वर्गीकरण (Classification of Rights)



प्राकृतिक अथवा नैसर्गिक अधिकार (Natural Rights)—प्राकृतिक अधिकारों का अर्थ है कि समाज बनने से पूर्व प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य के कुछ अधिकार थे। लॉक का विचार था कि प्राकृतिक अवस्था में प्राकृतिक कानून (Natural Law) प्रचलित था और उनके अनुसार जीवन, स्वतन्त्रता और सम्पत्ति की रक्षा करने का लोगों को अधिकार था। ये अधिकार मनुष्य को राज्य द्वारा प्राप्त नहीं हुए थे बल्कि स्वभाव से ही प्राप्त थे। राज्य को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि इन अधिकारों का अन्त कर सके। दूसरे 'प्राकृतिक' शब्द आदर्श अधिकारों के लिए भी प्रयुक्त होता है। ऐसे प्राकृतिक अधिकारों से यह आशय लिया जाता है कि वे व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। आदर्श अधिकार केवल आदर्श समाज में ही सम्भव हो सकते हैं। आदर्श समाज का आधार सत्य, अहिंसा, न्याय तथा लोक-मत होता है। ये विचार, बहुत से आलोचकों के अनुसार, बिल्कुल मिथ्या हैं। समाज के बिना अधिकारों

का अस्तित्व सम्भव नहीं है। राज्य के बिना अधिकारों का संरक्षण कौन करेगा ? अतः प्राकृतिक अवस्था में प्राकृतिक अधिकारों का होना सम्भव नहीं। बोसाँके के अनुसार अधिकार राज्य द्वारा मान्य हैं और राज्य उनका पालन करवाता है।

नैतिक अधिकार (Moral Rights)—नैतिक अधिकार मनुष्य की नैतिक भावना पर अवलम्बित हैं। इनके पीछे राज्य की कानूनी शक्ति न होकर केवल समाज की नैतिक शक्ति ही रहती है। उदाहरणस्वरूप, माता-पिता का यह नैतिक अधिकार है कि बच्चे उनका बुढ़ापे में पालन-पोषण का खर्चा बरदाश्त करें। इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य सर्दी से ठिठुर रहा है और हमारे दरवाजे पर खड़ा है तो उसका यह नैतिक अधिकार है कि हमारे से कपड़ा ले परन्तु यह उसका कानूनी अधिकार नहीं क्योंकि वह हमें कपड़ा देने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। नैतिक अधिकार और कानूनी अधिकार में यह भेद है कि नैतिक अधिकार के पीछे राज्य की कोई शक्ति नहीं रहती वरन् समाज की ही शक्ति रहती है। कानूनी अधिकार के पीछे राज्य की सर्वोच्च शक्ति रहती है। इसलिए यदि कोई मनुष्य अपने नैतिक कर्त्तव्य का पालन नहीं करता या दूसरे के नैतिक अधिकारों की परवाह नहीं करता, तो उसे किसी प्रकार का दण्ड नहीं दिया जा सकता। अधिक से अधिक समाज ऐसे पुरुष का निरादर कर देगा।

कानूनी अधिकार (Legal Rights)—जिन अधिकारों की राज्य मान्यता (recognition) करता है अथवा संरक्षण करता है वे कानूनी अधिकार कहलाते हैं। उदाहरणार्थ, हमारे देश में प्रत्येक मनुष्य को जीवन तथा सम्पत्ति के अधिकार प्राप्त हैं। यदि कोई निर्दयी मनुष्य किसी सज्जन को लूट लेता है अथवा मार देता है, तो राज्य लूटने और मारने वाले पुरुष को दण्ड देगा तथा जिसके अधिकारों को कुचला गया है, उसकी रक्षा करेगा। कानूनी अधिकार के पीछे यदि नैतिक आधार हो, तो वह अधिक चिरस्थायी रहता है वरना वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। कई बार राज्य के कानून न्यायसंगत नहीं होते। फ्रांस में राज्य को बेगार का अधिकार था और केवल गरीबों से टैक्स वसूल किए जाते थे; फलस्वरूप सन् १७८९ में एक बड़ी भारी क्रान्ति हुई जिसमें सम्राट् लुई सोलहवाँ मारा गया। रूस में सन् १९१७ की क्रान्ति से पूर्व जमींदारों को किसानों पर अनेक ऐसे कानूनी अधिकार प्राप्त थे जो कि बिल्कुल न्याय-संगत नहीं थे और केवल खून चूसने के लिए बनाए गए थे। लीकॉक का विचार है कि कानूनी अधिकार एक नागरिक का दूसरों के विरुद्ध एक विशेष अधिकार (privilege) होता है जिसको राज्य की प्रभुत्व शक्ति स्वीकार करती है और उसका संरक्षण करती है।[1]

विधान द्वारा घोषित अधिकार (Fundamental Rights)—ये अधिकार मौलिक अधिकार भी कहलाते हैं। ये संविधान सभा (Constituent Assembly) द्वारा बनाए जाते हैं और संविधान में लिखे जाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि कोई

---

1. A legal right, according to Leacock is "a privilege enjoyed by a citizen against his fellow citizens granted by the sovereign power of the state and upheld by that power."

भी सरकार इन मूल अधिकारों को पद-दलित करने का सामर्थ्य नहीं रखती। ये अधिकार जनता द्वारा मनुष्य के अस्तित्व के लिए तथा उसके पूर्ण विकास के लिए परमावश्यक समझे जाते हैं। अतः जनता द्वारा तथा न्यायालय द्वारा ये अधिकार पवित्र खयाल किए जाते हैं। प्रायः जीवन, सम्पत्ति तथा स्वतन्त्रता के अधिकार इस सूची में रखे जाते हैं। यदि सरकार इन अधिकारों का उल्लंघन करे तो सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) को यह अधिकार प्राप्त है कि सरकार के ऐसे कानून को, जो कि संविधान के विरुद्ध है, अवैध (illegal) घोषित कर दे। अतः सरकार को प्रत्येक कानून संविधान की मर्यादा में ही बनाना पड़ता है। इसका यह अर्थ है कि कोई भी कानून संविधान के विरुद्ध नहीं बनाया जा सकता।

राजनैतिक तथा सामाजिक अधिकार (Social and Political Rights)—कानूनी अधिकार प्रायः दो हिस्सों में बाँटे जाते हैं—(i) राजनैतिक अधिकार और (ii) सामाजिक अधिकार।

यह याद रखने योग्य बात है कि राजनैतिक अधिकार केवल नागरिकों को ही प्राप्त होते हैं। नाबालिगों (अल्पवयस्क), विदेशियों, पागलों तथा बहुत पुराने अपराधियों को ये अधिकार प्राप्त नहीं होते। बहुत से देशों में नारियों, फौजियों और राजकर्मचारियों को ये अधिकार प्राप्त नहीं होते। कई देशों में कंगालों को भी इन अधिकारों से विहीन कर दिया जाता है। कई देशों में राजनैतिक अधिकार प्रत्येक बालिग को नहीं दिए जाते बल्कि सम्पत्तिशाली या शिक्षित व्यक्तियों को ही दिए जाते हैं। यह भी याद रखने योग्य बात है कि ये अधिकार प्रायः प्रजातन्त्रात्मक देशों में ही नागरिकों को उपलब्ध हैं। तानाशाही देशों में नागरिकों को इतने अधिकार प्राप्त नहीं होते जितने कि प्रजातन्त्रात्मक देशों में। स्विट्ज़रलैण्ड में लोकतन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था होते हुए भी वहाँ नारियों को राजनैतिक अधिकारों से सर्वथा वंचित रक्खा गया है। हमारे देश में प्रत्येक नर-नारी को जिसकी आयु २१ वर्ष की हो, वोट देने का अधिकार प्राप्त है। काले-गोरे, मर्द-औरत, शिक्षित-अशिक्षित तथा जात-पात और धर्म का भेद-भाव संविधान में समाप्त कर दिया गया है। रूस में प्रत्येक नर-नारी को जिसकी आयु १८ वर्ष की हो, नागरिकता के अधिकार प्राप्त हैं।

मुख्य राजनैतिक अधिकार ये हैं—

(१) मत देने का अधिकार (Right to Vote)
(२) निर्वाचित होने का अधिकार (Right of Election to Legislature)
(३) पदाधिकार (Right to hold Public Office)
(४) प्रार्थना-पत्र देने का अधिकार (Right to Petition)
(५) समता का अधिकार (Equality before the Law)

इसके अतिरिक्त प्रत्येक देश में मनुष्यों को कुछ सामाजिक अधिकार (civic rights) भी दिए जाते हैं। ये राज्य में रहने वाले सब व्यक्तियों को दिए जाते हैं। ये अधिकार विदेशियों को भी दिए जाते हैं। केवल राजनैतिक अधिकार मनुष्य की उन्नति के लिए पर्याप्त (adequate) नहीं हैं। व्यक्ति की धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक (cultural) उन्नति के लिए सामाजिक अधिकारों का होना

अनिवार्य (essential) है। प्रायः निम्नलिखित सामाजिक अधिकार लोगों को प्रत्येक देश में दिए जाते हैं—

(१) जीवन का अधिकार (Right to Life)
(२) धर्म का अधिकार (Right to Religion and Conscience)
(३) शिक्षा का अधिकार (Right to Education)
(४) सम्पत्ति का अधिकार (Right to Property)
(५) लिखने-बोलने का अधिकार (Right to Speech and Press)
(६) इकट्ठा होने तथा संगठन बनाने का अधिकार (Right to Assemble and form Associations)
(७) कुटुम्ब का अधिकार (Right to Family)
(८) जहाँ चाहे जाने की स्वतन्त्रता (Freedom of Movement)
(९) न्याय का अधिकार (Right to Justice)
(१०) काम का अधिकार (Right to Work)

राजनैतिक अधिकार (Political Rights)

(१) **मत देने का अधिकार** (Right to Vote)—जनता का शासन तभी स्थापित हो सकता है जबकि जनता को मताधिकार प्राप्त हो। जनता को यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि वे अपने प्रतिनिधि चुन सकें। उन प्रतिनिधियों का कर्त्तव्य है कि वे केवल लोक-हित को ध्यान में रखकर कानून बनायें। ऐसा कोई कानून नहीं बनाना चाहिए जो केवल एक वर्ग-विशेष (a particular class) के हित में हो और साधारण जनता के हित के सर्वथा प्रतिकूल हो। प्रजातन्त्र का अर्थ है कि शासन लोगों का हो, उनके द्वारा चलाया जाय और उनके हितार्थ चलाया जाय। प्रजातन्त्र की स्थापना तभी हो सकती है जब कि जनता को वोट देने का अधिकार प्राप्त हो और जनता उस अधिकार का दुरुपयोग न करे। इसलिए प्रजातन्त्र का भार लोगों के कन्धों पर है। यदि राय को जाति, सम्प्रदाय, धर्म तथा लिंग (sex) के आधार पर दिया जाय, तो प्रजातन्त्र का पौधा कभी भी पनप नहीं सकता। अतः प्रजातन्त्र का साफल्य (success) इस बात पर निर्भर है कि वोट का ठीक इस्तेमाल किया गया है या नहीं। राय केवल योग्य आदमी को दी जानी चाहिए वरना लोकतन्त्र नहीं चल सकता और इस असफलता की ज़िम्मेदारी लोगों पर होगी। कई देशों में स्त्रियों, अशिक्षितों तथा गरीबों या काले आदमियों को राय देने का अधिकार हासिल नहीं होता परन्तु ये सब भेद-भाव नष्ट हो जाने चाहिएँ। दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया तथा अमरीका में अब भी काले-गोरे का भेद चल रहा है। हमारे देश में सब भेद-भावों को नष्ट करके प्रत्येक वयस्क को मत देने का अधिकार दिया गया है। यह स्वतन्त्र भारत का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। पागलों, विदेशियों तथा बहुत पुराने अपराधियों को यह अधिकार नहीं देना चाहिए।

(२) **निर्वाचित होने का अधिकार** (Right to be Elected)—यदि प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिए मताधिकार प्रदान करने की आवश्यकता है तो इसी

प्रकार प्रत्येक मतदाता को निर्वाचित होने का अधिकार देना भी काफी आवश्यक है। बहुत से देशों में काले आदमियों को कुछ हद तक राय देने का अधिकार तो है परन्तु उनको निर्वाचित होने का अधिकार नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि उन देशों में काले आदमी अपना प्रतिनिधि नहीं भेज सकते और उनको गोरे आदमियों को ही वोट देने पड़ते हैं। ऐसी दशा में सच्चा प्रजातन्त्र कायम नहीं रह सकता। अतः निर्वाचित होने का अधिकार भी उतना ही आवश्यक है जितना कि मताधिकार। दोनों प्रजातन्त्र के आधार-स्तम्भ हैं।

(३) **पदाधिकार** (Right to Hold Office)—इसका अर्थ यह है कि यदि किसी मनुष्य में योग्यता है तो केवल वर्ण, जाति, धर्म अथवा लिंग-भेद (difference of sex) के आधार पर उसको किसी सरकारी पद से वञ्चित न रखा जाय। योग्य व्यक्ति को अवश्य स्थान प्राप्त होना चाहिए। कोई समय था जब कि उच्च सरकारी नौकरियाँ केवल अंग्रेज़ों को ही प्राप्त होती थीं और भारतीयों को वे पद योग्यता होने पर भी नहीं मिलते थे। ये भेद-भाव प्रायः नष्ट कर दिये गए हैं। अंग्रेज़ों के समय हमारे देश में फौजी और ग़ैर फौजी-वर्ग तथा कृषक और ग़ैर-कृषक का बहुत उत्कट प्रश्न था। ऐसी जातियाँ जिन्हें गैर-फौजी करार दे दिया गया था, वे सेना के किसी पद की योग्यता रखते हुए भी (केवल जाति-भेद के कारण) उसको प्राप्त करने में असमर्थ थीं। अतः प्रजातन्त्र में इस प्रकार का भेद-भाव नहीं होना चाहिए।

(४) **प्रार्थना-पत्र देने का अधिकार** (Right to Petition)—प्रत्येक सभ्य देश में लोगों को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वे सरकार का ध्यान अपने कष्टों की ओर आकर्षित कर सकें। इसके लिए एक व्यक्ति अथवा बहुत से व्यक्ति मिलकर प्रार्थना-पत्र दे सकते हैं। उदाहरणस्वरूप, यदि पुलिस लोगों पर अत्याचार कर रही है या लोगों को किसी अन्य प्रकार का विशेष कष्ट है, तो वे सरकार को उस बारे में प्रार्थना-पत्र दे सकते हैं। लोकतन्त्र में सरकार जनता की नौकर समझी जाती है, अतः सरकार का कर्त्तव्य है कि वह जनता के कष्टों का निवारण करे। कष्ट अनेक प्रकार के हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी भाग में बाढ़ आ गयी है या अकाल पड़ गया है तो वहाँ के निवासी तुरन्त सरकार का ध्यान उधर आकर्षित कर सकते हैं।

(५) **समता का अधिकार** (Equality before the Law)—इसका यह अर्थ है कि कानून के सामने, चाहे कोई बहुत बड़ा अफसर हो अथवा भिखारी हो, सब बराबर हैं। बड़े से बड़े अफसर को भी, यदि वह वास्तव में अपराधी है, न्यायालय द्वारा अवश्य दण्ड मिलना चाहिए। यह नहीं होना चाहिए कि एक गरीब अपराधी को तो दण्ड मिल जाय और एक अमीर अपराधी को दण्ड न मिले। इंगलैंड में आजकल कानून का राज्य (rule of law) प्रचलित है जिसके अनुसार सब व्यक्तियों को, चाहे वे बहुत अमीर हों अथवा बहुत गरीब, कानून की दृष्टि से बराबर समझा जाता है। इंगलैंड में जिस प्रकार एक साधारण अपराधी अफसर के विरुद्ध न्यायालय में अभियोग चलाया जा सकता है, उसी प्रकार वहाँ के प्रधान मन्त्री के विरुद्ध भी उसी न्यायालय में मुकदमा चलाया जा सकता है।

सामाजिक अधिकार (Social Rights

(१) **जीवन का अधिकार**—मनुष्य का अस्तित्व तभी कायम रह सकता है जब कि उसको जीवन का अधिकार प्राप्त हो। यदि हमको जीवन का अधिकार प्राप्त न हो, तो हमारे जीवन की कोई सुरक्षा नहीं रहेगी। यदि राज्य मनुष्य के जीवन की रक्षा न करे, तो सर्वदा उसको अपने जीवन की चिन्ता बनी रहेगी। जब तक मनुष्य का जीवन सुरक्षित न हो, तब तक वह अपना ध्यान कला, विज्ञान और शिल्प के अध्ययन में नहीं लगा सकता। उदाहरणस्वरूप, सन् १९४७ में भारत में इतने झगड़े पैदा हुए कि लोगों के जानो माल की कोई सुरक्षा न रही। बिहार, बंगाल, गढ़मुक्तेश्वर, पंजाब और राजस्थान के कुछ भागों में कोई सरकार दंगों को न रोक सकी और फलतः सहस्रों नर-नारी घर से बेघर हो गये। ऐसी दशा में जब कि लोगों को अपने जीवन का चौबीसों घण्टे भय रहता था और यह पता नहीं था कि किस समय वे मारे जायँ, तो वे साहित्य, इतिहास और दर्शन (philosophy) की बातें भला क्या सोच सकते थे। अतः अशान्ति और अराजकता में मनुष्य की किसी प्रकार की उन्नति नहीं हो सकती। व्यक्ति का अस्तित्व ही सम्भव नहीं है जब कि अव्यवस्था हो और चौबीसों घण्टे लड़ाई-झगड़े होते रहें। जब राज्य हमारी रक्षा नहीं करता तो हमें शक्ति द्वारा अपनी रक्षा करनी पड़ती है। यदि हमें राज्य की ओर से जीवन-अधिकार प्राप्त न हो, तो हम हत्यारे के विरुद्ध कोई कानूनी कार्रवाई नहीं कर सकते। ऐसी दशा में कत्ल कोई अपराध नहीं खयाल किया जायेगा। अतः मनुष्य को ऐसी भयानक परिस्थिति से बचाने के लिए और उसका पूर्ण विकास करने के लिए प्रत्येक राज्य मनुष्य को जीवन-रक्षा का अधिकार देता है। इसका अर्थ यह है कि कत्ल सबसे बड़ा अपराध है और कत्ल करने वाले के विरुद्ध वैध कार्रवाई की जा सकती है अर्थात् न्यायालय द्वारा अपराधी को दण्ड दिलवाया जा सकता है। इतना ही नहीं बल्कि यदि व्यक्ति का जीवन बहुत खतरे में हो और उसको कोई शत्रु किसी शस्त्र से मारे, तो उसको भी आत्म-रक्षा के लिए शस्त्र-प्रयोग करने की आज्ञा है। आत्म-हत्या करना पाप भी है और गैर-कानूनी भी है।

(२) **धर्म का अधिकार** (Right to Religion and Conscience)—इस का अर्थ यह है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने धार्मिक विश्वास रखने और उसको फैलाने की पूर्ण स्वतन्त्रता है परन्तु धर्म फैलाने वालों को राज्य घृणा फैलाने की आज्ञा नहीं दे सकता। राज्य किसी व्यक्ति को बाध्य नहीं कर सकता कि उसको उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई धर्म अपनाना पड़ेगा। यह व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है कि उसको किस धर्म का अनुयायी बनना है। व्यक्ति चाहे जिस धर्म को अपना सकता है और चाहे जिसको छोड़ सकता है। यदि धर्म का प्रचार हिंसात्मक तरीकों से किया जाए, तो राज्य को ऐसे धर्म-प्रचार को रोकने का हक हासिल है। इसके अतिरिक्त राज्य किसी धर्म के खराब रस्म-रिवाजों को रोक सकता है अथवा उनमें सुधार भी कर सकता है, जैसे सती, बाल-विवाह और लड़कियों को मार देने की प्रथा को कानूनन रोका गया। प्रत्येक देश में धार्मिक सहिष्णुता होनी चाहिए।

(३) **शिक्षा का अधिकार** (Right to Education)—मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए शिक्षा की आवश्यकता है। जब तक शिक्षा का प्रचार न होगा, तब तक लोगों को कर्त्तव्यों तथा अधिकारों का ज्ञान हो ही नहीं सकता। प्रजातन्त्र की सफलता शिक्षा पर निर्भर है। अशिक्षित मनुष्य में देश की समस्याएँ समझने की शक्ति ही कहाँ ? अशिक्षित व्यक्ति स्वार्थी नेताओं के हाथ में कठपुतली की तरह खेलते हैं। अशिक्षित व्यक्ति देश की ओर अपनी जिम्मेवारी कैसे निभा सकते हैं जबकि उनकी बुद्धि का पूर्ण विकास ही न हो पाया हो। अतः देश तथा समाज की सेवा करने में वे अशक्त हैं। आजकल प्रायः सभी राज्यों ने यह महसूस कर लिया है कि देश को उन्नत करने के लिए उन्हें अशिक्षा तथा दरिद्रता का नाश करना पड़ेगा। अतः सभी सभ्य देशों में प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य करने तथा निःशुल्क देने (free and compulsory primary education) का प्रयत्न चल रहा है। इसके अतिरिक्त राज्य को उच्च शिक्षा के लिए भी और अधिक सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिएँ। इतना ही नहीं बल्कि राज्य को (अर्थात् सरकार को) वाचनालय (reading rooms), पुस्तकालय तथा अजायबघर खोलने चाहिएँ। सार्वजनिक स्थानों (public places) पर रेडियो लगाने चाहिएँ ताकि जनता दूसरे देशों और अपने देशों की खबरें आसानी से सुन सके और इसके अतिरिक्त गाने भी सुन सके।

(४) **सम्पत्ति का अधिकार** (Right to Property)—इस विषय में राजनीति के लेखकों के भिन्न-भिन्न विचार है। बहुत से मनुष्यों का विचार है कि सम्पत्ति मनुष्य के पूर्ण विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य के पास यदि मकान, कपड़े, बरतन, चारपाई इत्यादि अपने न हों, तो उसे बहुत कष्ट होता है। सम्पत्ति रुपये-पैसे की शक्ल में भी हो सकती है और जमीन-जायदाद के रूप में भी। यदि मनुष्य को किसी काम में रुपये-पैसे के लाभ की आशा न हो, तो वह उसको क्यों करेगा। साधारण मनुष्य स्वभाव से ही स्वार्थी है। रुपये-पैसे के लालच से ही वह अनेकों उद्योग-धन्धे चलाता है। एरिस्टॉटल का विचार था कि सम्पत्ति मनुष्य के पूर्ण विकास के लिए उतनी ही आवश्यक है जितना कि कुटुम्ब। कॉण्ट, हेगल तथा ग्रीन भी इन्हीं विचारों के पोषक थे। बहुत से लेखकों का विचार है कि राज्य के आरम्भ से पूर्व से ही प्राकृतिक अवस्था में मनुष्यों को जीवन, सम्पत्ति तथा स्वतन्त्रता के अधिकार थे। इस विचार के समर्थक बोदां तथा लॉक हैं। अतः वे सम्पत्ति के अधिकार को प्रकृति से दिया हुआ मानते हैं। उनके मतानुसार राज्य को सम्पत्ति पर आघात करने का कोई अधिकार नहीं। बहुत से मनुष्य यह भी कहते हैं कि सम्पत्ति के बिना सभ्यता तथा संस्कृति का उदय ही नहीं हो सकता। जिस मनुष्य के पास सवेरे की रोटी खाने के लिए है और शाम की नहीं, वह भला सभ्यता और संस्कृति के बारे में क्या सोचेगा, अतः सम्पत्तिशाली व्यक्तियों के पास अवकाश होता है और चौबीसों घण्टे उन्हें यह चिन्ता नहीं होती कि सवेरे तो रोटी मिल गयी है शाम को मिलेगी या नहीं। अतः वे अपना कुछ अवकाश का समय ऐसे कार्यों में लगाते हैं जिससे सभ्यता और संस्कृति की उन्नति हो। इसके अतिरिक्त मनुष्य को आपत्ति के समय सम्पत्ति का ही सहारा रहता है वरना उसको दूसरों के सामने हाथ फैलाने पड़ें।

इसके विरुद्ध अन्य लेखकों का विचार है कि सम्पत्ति सब दुःखों का मूल है। सम्पत्ति के कारण ही भाई-भाई में वैर-भाव उत्पन्न हो जाता है। रुपये-पैसे के झगड़ों से घनिष्ठ मित्रों में मन-मुटाव हो जाता है। सम्पत्ति की संस्था के कारण ही बहुत से लोग करोड़पति बन जाते हैं और अन्य पुरुष गरीबी की बेड़ियों में सदैव जकड़े रहते हैं। सम्पत्ति के कारण समाज में आर्थिक विषमता उत्पन्न होती है और अरस्तू के अनुसार ऐसी भयानक परिस्थिति ही क्रान्ति की जननी है। (Inequality, according to Aristotle is the mother of revolution)। प्लेटो, मॉण्टेस्क्यू और मेक्यावली भी इन विचारों के समर्थक थे। समाजवादी और साम्यवादी (socialists and communists) सम्पत्ति सिद्धान्त का घोर खण्डन करते हैं। उनके विचारानुसार सम्पत्ति की संस्था न्याय-संगत नहीं है और सामाजिक हित के अनुकूल न होकर पूंजीवाद की उत्पत्ति का मुख्य कारण है। अतः गरीबों के हितार्थ इस संस्था का नाश होना चाहिए। अमीर लोग गरीबों का शोषण (exploitation) करते हैं और स्वयं समाज में सभ्यता तथा संस्कृति की उन्नति के लिए कुछ काम नहीं करते। वे भोग-विलास में सारा समय लगाते हैं और समाज पर भार हैं।

सत्यता, वास्तव में, इन दो सिद्धान्तों के बीच में पाई जाती है। सम्पत्ति को दो भागों में बाँटना चाहिए, निजी सम्पत्ति तथा राष्ट्रीय सम्पत्ति। निजी सम्पत्ति में केवल अपने कपड़े, जूते, बरतन, किताबें, साइकिल और रहने का मकान इत्यादि शामिल हैं। इन सब वस्तुओं पर मनुष्य का अपना अधिकार होना चाहिए। जंगल, पहाड़, चश्मे, बावड़ी और खानें तथा भूमि इत्यादि पर समाज का अधिकार होना चाहिए। अतः सरकार को उत्पादन तथा वितरण पर अपना नियन्त्रण रखना चाहिए। पूंजीवाद को खत्म करना, समाज से आर्थिक विषमता को दूर करना और गरीबों की भलाई करना भी सरकार का कर्त्तव्य है। इसी सिद्धान्त के अनुसार जमींदारी यू० पी० में खत्म की गयी है और पूंजीपतियों पर अनेक प्रकार के नियन्त्रण लागू किये जा रहे हैं।

(५) **लिखने का अधिकार** (Right to Freedom of Speech and Press)—इसका यह अर्थ है कि हमें अपने विचार प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो। जब तक व्यक्ति को अपने विचार प्रकट करने का अधिकार न हो, तब तक वह दूसरों से क्या सीख सकता है और उनको क्या सिखा सकता है। मनुष्य के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास सम्भव नहीं है यदि वह अपने सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक अथवा धार्मिक विचार जनता के सामने प्रकट न कर सके। हिटलर के समय जर्मनी में और मुसोलिनी के समय इटली में सरकार के विरुद्ध भाषण देने का जनता को अधिकार नहीं था। ऐसी परिस्थिति में प्रजातन्त्र की उन्नति नहीं हो सकती। आजकल भी कम्यूनिस्ट रूस में विचारों की स्वतन्त्रता नहीं है। वहाँ कोई भी मनुष्य कम्यूनिस्ट सरकार के विरुद्ध भाषण नहीं दे सकता। रूस में कम्यूनिस्ट पार्टी के अतिरिक्त दूसरी पार्टियों का अस्तित्व रह ही नहीं सकता। अतः यह सिद्ध हो गया है कि प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिए विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है परन्तु इस अधिकार का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। विचार प्रकट करने की

स्वतन्त्रता का यह अर्थ है कि व्यक्ति ने इतिहास, साहित्य, कला तथा विज्ञान में जो उन्नति की है उससे दूसरों को लाभ पहुँचाया जाय परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह अपना नेतृत्व जमाने के लिए समाज में घृणा का बीज बोये। यदि कोई मनुष्य समाज में द्वेष की अग्नि प्रज्वलित करता है तो यह इस अधिकार का दुरुपयोग समझा जायेगा और सरकार को यह अधिकार है कि शक्ति द्वारा ऐसे घृणात्मक प्रचार को रोक सके। मुस्लिम लीग ने सन् १९४७ से पूर्व इस अधिकार का इतना दुरुपयोग किया कि हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के खून के प्यासे हो गये, देश का विभाजन हुआ और लाखों मनुष्य नष्ट व बरबाद हो गये।

इसी प्रकार समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता का हाल है। प्रजातन्त्र को कामयाब बनाने के लिए समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता अति आवश्यक है और इसमें सन्देह नहीं कि कई समाचारपत्रों जैसे 'अमृतबाजार पत्रिका' तथा 'हिन्दुस्तान टाइम्स' ने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में बहुत भाग लिया परन्तु कुछ उर्दू के समाचारपत्रों ने सन् १९४७ में देश का तमाम वातावरण दूषित कर दिया और फलतः ऐसा हत्याकाण्ड हुआ जिसका उदाहरण संसार में उपलब्ध नहीं। यदि समाचारपत्र स्वार्थी पार्टियों के हाथों में पड़ जायें तो उन जितना कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकता। 'डान' 'नवाए वक्त' तथा 'जमींदार' ने (जो कि मुस्लिम लीग के अखबार थे) द्वेष की अग्नि को कम प्रज्वलित नहीं किया। इसका परिणाम यह हुआ कि लाखों घर तबाह व बरबाद हो गए। इससे सिद्ध होता है कि समाचारपत्रों पर बहुत जिम्मेवारी है और उनका कर्त्तव्य है कि सरकार को तथा लोगों को ठीक मार्ग दिखाएँ और जनता में धार्मिक जोश बिल्कुल न भड़काएँ।

(६) **इकट्ठा होने तथा संगठन बनाने का अधिकार** (Right to Assemble and Form Associations)—हमारे संविधान में लोगों को यह अधिकार दिया गया है कि वे निःशस्त्र और शान्तिपूर्वक इकट्ठे हो सकते हैं। मनुष्यों को यह भी अधिकार दिया गया है कि वे ऐसी संस्थाएँ या समुदाय बना सकते हैं जो कि सामाजिक हित के विरुद्ध न हों और जिनका ध्येय शक्ति द्वारा सरकार को पलटना न हो। मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए समुदायों का होना परमावश्यक है। राज्य मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति नहीं कर सकता, अतः उसकी सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनैतिक उन्नति करने के लिए इन समुदायों का होना बहुत जरूरी है। यदि मनुष्यों को इकट्ठा होने की आज्ञा न हो, तो वे जुलूस-जलसे नहीं कर सकते और फलतः पूर्वजों की स्मृति को ताजा नहीं कर सकते। अतः प्रत्येक सभ्य देश में लोगों को इकट्ठा होने तथा सार्वजनिक हित (common welfare) के लिए समुदाय (associations) बनाने का अधिकार प्राप्त होता है; परन्तु कोई राज्य ऐसे समुदायों को बरदाश्त नहीं कर सकता जिनका लक्ष्य देश में क्रान्ति मचाना और शक्ति द्वारा सरकार को पलटना हो। अहिंसात्मक तरीकों द्वारा सरकार को पलटने का अधिकार लोगों को अवश्य होना चाहिए।

(७) **कुटुम्ब का अधिकार** (Right to Family)—मनुष्य को कुटुम्ब में

रहने का अधिकार होना चाहिए क्योंकि मनुष्य स्वभाव से ही सामाजिक प्राणी है। सदा से मनुष्य कुटुम्ब में रहता आया है और कुटुम्ब बिना उसका पूर्ण विकास सम्भव नहीं। राज्य बनने से पूर्व मनुष्य छोटे-छोटे कुटुम्बों में रहता था। अतः मनुष्य को कौटुम्बिक जीवन (family life) बिताने का पूर्ण अधिकार है। मेरे कुटुम्ब के मामलों में दूसरे को दखल देने का अधिकार प्राप्त नहीं होना चाहिए। इसके अतिरिक्त मुझे विवाह करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए। यदि व्यक्ति को उसकी इच्छानुसार विवाह करने की स्वतन्त्रता प्राप्त न हो और राज्य के हुक्म के मुताबिक उसको कहीं सम्बन्ध जोड़ना पड़े, तो उसका तमाम जीवन ही व्यर्थ हो जायेगा। माँ-बाप को भी रिश्ते-नाते करने से पहले लड़के-लड़की की स्वीकृति ले लेनी चाहिए। इसके अलावा दूसरी बात यह जरूरी है कि व्यक्ति को तलाक देने का अधिकार उस दशा में होना चाहिए जब कि वैवाहिक जीवन में अत्यधिक विषमता रहती हो। साधारण बात पर तलाक या विवाह-विच्छेद करना (divorce) न्यायसंगत नहीं है परन्तु यदि पुरुष और स्त्री में इतनी लड़ाई रहती हो कि वे एक दूसरे के खून के प्यासे हो जायँ, तो विवाह-विच्छेद के अतिरिक्त और कोई इलाज नहीं है। अतः ऐसी अवस्था में विवाह-विच्छेद ठीक ही है।

(८) **जहाँ चाहे जाने की स्वतन्त्रता** (Freedom of Movement)—इसका अर्थ यह है कि नागरिकों को जहाँ चाहे, आने-जाने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। आजकल भारतवर्ष में एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त या राज्य में आ-जा सकते हैं और किसी प्रकार की कोई रुकावट नहीं है। यदि कोई घूमने के अधिकार का दुरुपयोग करे तो उस पर पाबन्दी लगायी जा सकती है और देश के किसी हिस्से में दाखिल होने से सरकार उसको रोक सकती है। दूसरे देशों में जाने के लिए अभी पासपोर्ट की आवश्यकता है। एक प्रान्त के निवासियों को यह भी अधिकार होना चाहिए कि देश में किसी जगह जाकर वे बस सकें और वहाँ पर जमीन-जायदाद खरीद सकें। बिना अपराध के किसी व्यक्ति को न तो एक ही स्थान में रहने के लिए बाध्य किया जा सकता है और न ही उसे जेल में रखा जा सकता है। यदि किसी मनुष्य को उसका अपराध साबित किए बिना जेल में रखा जाय, तो वह अपनी मुक्ति के लिए रक्षाबन्दी प्रत्यक्षीकरण प्रार्थना-पत्र (habeas corpus petition) के अधीन अर्जी या अपील दायर कर सकता है और न्यायालय यदि उचित समझे तो उसे छोड़ सकता है।

(९) **न्याय का अधिकार** (Right to Justice)—इस अधिकार का अर्थ यह है कि न्यायालयों में गरीबों तथा अमीरों को एक जैसा अधिकार प्राप्त है। कानून के सम्मुख सब बराबर हैं चाहे वह देश में ऊँचे से ऊँचा अफसर हो, चाहे छोटे से छोटा चपरासी। न्यायालयों में गरीबों को न्याय शीघ्र बिना किसी खर्च के प्राप्त होना चाहिए। भारत और इंगलैंड में कानून का राज्य कायम है जिसके अनुसार अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, गोरा-काला, मर्द और औरत सब बराबर हैं। न्यायाधीशों को भी किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करना चाहिए। सारे देश भर में एक ही जैसा कानून

लागू होना चाहिए। किसी प्रान्त में कुछ कानून और किसी में कुछ न्याय की दृष्टि से ठीक नहीं। नागरिकों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे न्यायालयों में झूठी गवाही न दें।

(१०) **काम का अधिकार** (Right to Work)—इसका यह अर्थ है कि नागरिक सरकार से नौकरी देने की माँग कर सकता है और यदि सरकार नागरिक को कोई काम देने में असमर्थ हो तो उसका कर्त्तव्य है कि वह अपने नागरिक के पालन-पोषण अर्थात् खाने-पीने, कपड़े और मकान का प्रबन्ध करे। इस अधिकार को केवल रूस ने अभी तक अपनाया है और वहाँ सरकार की जिम्मेदारी है कि या तो वह नागरिक को कोई काम दे वरना उसकी रोटी, कपड़े और मकान का मुफ्त प्रबन्ध करे। हमारे देश में सरकार ने इसको अभी तक अपनाया नहीं है लेकिन आशा है शीघ्र इसको अपना लेगी। इसी प्रकार लोगों को प्रत्येक राज्य की सीमा में इच्छानुसार उद्योग करने का अधिकार होता है। बेरोजगारी को दूर करना भी सरकार का मुख्य कर्त्तव्य है। मजदूरों की हालत अच्छी बनायी जानी चाहिए और उनके लिए कम से कम तनख्वाहें निश्चित करनी चाहिएँ।

(११) **अन्य अधिकार** (Other Rights)—समाज में अधिकारों की संख्या अनिश्चित है। ऊपर लिखे हुए अधिकारों के अतिरिक्त व्यक्तिगत सम्मान की रक्षा, सार्वजानक सभा बुलाने, मनोरञ्जन अधिकार, न्यूनतम आर्थिक अधिकार (right of economic minimum) इत्यादि अन्य अधिकार हैं जो प्रायः नागरिकों को दिये जाते हैं।

मूल अधिकार (Fundamental Rights)—आजकल प्रत्येक सभ्य देश में मूल अधिकारों का विशेष महत्त्व है। ये अधिकार पवित्र अधिकार गिने जाते हैं और प्रत्येक सरकार पर यह बाध्य (binding) है कि वह इन अधिकारों की अवहेलना नहीं करेगी। यदि कोई सरकार इन अधिकारों का उचित रीति से पालन नहीं करती है, तो नागरिक को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह अपने अधिकारों के संरक्षण के लिए उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) की शरण ले। उच्चतम न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त है कि ऐसे किसी भी कानून को जो कि संविधान के विरुद्ध है, अवैध (illegal) करार दे दे। भारतीय संविधान में लोगों को समता का अधिकार (Right to Equality), स्वातन्त्र्य-अधिकार (Right to Freedom), धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Religious Freedom), सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (Cultural and Educational Rights), शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against Exploitation), सम्पत्ति का अधिकार (Right to Property) इत्यादि प्राप्त हैं। 'समता के अधिकार' के अनुसार हमारे देश में अस्पृश्यता (untouchability) का नाश कर दिया गया है और लिंग (sex) वर्ग, जाति, धर्म, जन्म-स्थान और अमीर-गरीब का भेद-भाव नष्ट कर दिया गया है।

प्रत्येक नागरिक को, जिसकी आयु २१ वर्ष की है, वोट का अधिकार दिया गया है। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक होटलों, तालाबों, कुओं और मनोरञ्जन के स्थानों का इस्तेमाल प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है और कोई भेदभाव नहीं रखा गया। अतः सामाजिक जनतन्त्र (social democracy) को कायम किया गया है।

इसके अतिरिक्त लोगों को स्वातन्त्र्य अधिकार दिया गया है। लोगों को वाक्स्वातन्त्र्य (freedom of speech), अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता (freedom of expression), शान्तिपूर्वक और बिना शस्त्रों के इकट्ठा होने, देश के किसी भाग में घूमने और बसने या कोई भी पेशा स्वीकार करने की आज्ञा दी गई है। इसके साथ-साथ धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार भी जनता को दिया गया है। लोगों की इच्छा पर निर्भर है कि वे किसी भी धर्म का पालन करें और कुछ भी धार्मिक विश्वास रखें। राज्य किसी मनुष्य को कोई मत-मतान्तर या धर्म मानने के लिए मजबूर नहीं करेगा। अतः हमारे देश में धर्म-निरपेक्ष राज्य (secular state) की स्थापना हो गई है।

नागरिकों को सांस्कृतिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी अधिकार भी दिये गए हैं जिसका अर्थ यह है कि जिन लोगों की भाषा, लिपि या संस्कृति एक है उनको यह बनाये रखने का अधिकार है। जाति, धर्म और भाषा के आधार पर किसी भी नागरिक को सरकारी स्कूलों और कालेजों में या सरकार के द्वारा सहायता प्राप्त करने वाले स्कूलों और कालेजों में प्रवेश करने से इनकार नहीं किया जा सकता। इतना ही नहीं बल्कि अल्पसंख्यक वर्गों (minorities) को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपने स्कूल और कालेज खोल सकें और ऐसी संस्थाओं को बिना किसी भेद-भाव के सरकारी सहायता प्राप्त होगी।

मनुष्यों को शोषण के विरुद्ध भी अधिकार दिये गए हैं और स्त्रियों और बच्चों में व्यापार करना (traffic in women and children) तथा बेगार इत्यादि को गैरकानूनी ठहराया गया है। १४ वर्ष से कम उम्र के बच्चों को फैक्टरी और खानों में भी काम करने की आज्ञा नहीं दी गई है। इसके अतिरिक्त हमारे संविधान में सम्पत्ति का अधिकार भी दिया गया है। किसी मनुष्य को कानून के बिना सम्पत्तिहीन नहीं किया जा सकता। जब किसी मनुष्य की कोई सम्पत्ति राज्य द्वारा ली जायगी, तो राज्य को उसके लिए मुआवजा या प्रतिकर (compensation) देना पड़ेगा और यदि प्रतिकर थोड़ा है तो नागरिक उच्चतम न्यायालय में सरकार के विरुद्ध अभियोग चला सकता है। जमींदारी उन्मूलन (zamindari abolition) के बारे में अब न्यायालय कुछ नहीं कर सकते।

कर्त्तव्य (Duties)

कर्त्तव्य क्या हैं ?—अधिकार के साथ-साथ कर्त्तव्य भी गुंथा हुआ है। नागरिक शास्त्र में कर्त्तव्य दूसरों के लिए किये गए काम का दूसरा नाम है। वह अधिकार का प्रतिरूप होता है।

कर्त्तव्यों के प्रकार—कर्त्तव्य दो प्रकार के होते हैं : (१) नैतिक (२) कानूनी। यह हमारा नैतिक कर्त्तव्य है कि हम अपने माता-पिता का आदर करें, भाई-बहनों से प्रेम करें और गरीबों की सहायता करें। नैतिक और कानूनी कर्त्तव्यों में यह भेद है कि नैतिक कर्त्तव्यों के पीछे राज्य की सामूहिक शक्ति नहीं रहती है बल्कि जनमत की सामूहिक शक्ति रहती है। यदि हम अपने नैतिक कर्त्तव्यों का पालन न करें तो हमें

कोई दण्ड राज्य द्वारा नहीं मिल सकता परन्तु यदि हम अपने कानूनी कर्त्तव्यों का पालन न करें तो हमें राज्य द्वारा दण्ड प्राप्त होता है । उदाहरणस्वरूप यदि हम राज्य को टैक्स या कर न दें तो राज्य द्वारा अवश्य दण्ड मिलेगा ।

कर्त्तव्यों का क्षेत्र

कर्त्तव्यों का क्षेत्र भी इतना ही विशाल है जितना कि अधिकारों का । कर्त्तव्यों की कोई सूची (list) निश्चित करना उचित नहीं । ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास होता जाता है, त्यों-त्यों मनुष्य के कर्त्तव्यों में वृद्धि होती जाती है । प्रत्येक अधिकार के साथ कर्त्तव्य बँधा हुआ है । यदि मुझे सड़क पर चलने का अधिकार है तो मेरा भी यह कर्त्तव्य है कि मैं अन्य व्यक्तियों को सड़क पर चलने से न रोकूँ :

निम्नलिखित कर्त्तव्य मुख्य हैं—

(१) अपने प्रति कर्त्तव्य;
(२) परिवार के प्रति कर्त्तव्य;
(३) ग्राम, नगर तथा प्रान्त के प्रति कर्त्तव्य;
(४) राज्य के प्रति कर्त्तव्य; और
(५) मानवता के प्रति कर्त्तव्य ।

(१) **अपने प्रति कर्त्तव्य**— मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि अपने स्वास्थ्य को ठीक रखे और अपनी बुद्धि का पूर्ण विकास करे । स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए सब से आवश्यक है कि ब्रह्मचर्य का पालन किया जाए । ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही आर्यों ने मृत्यु को जीत लिया था । इसके अतिरिक्त मनुष्य को चाहिए कि वह व्यायाम करे । स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रह सकता है । धर्म, अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति केवल स्वस्थ शरीर द्वारा ही हो सकती है । नीरोग मनुष्य अपने कुटुम्ब तथा देश की सेवा कर सकता है । जो व्यक्ति चौबीस घण्टे चारपाई पर व्याधि के कारण लेटा रहता है, वह समाज की क्या सेवा करेगा ? जिस मनुष्य ने अपनी बुद्धि के विकास के लिए खून-पसीना एक नहीं किया, उसको क्या ज्ञान प्राप्त होगा ? अतः व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह अपनी शारीरिक तथा बौद्धिक उन्नति करे ।

(२) **परिवार के प्रति कर्त्तव्य** (Duties towards Family)—हमारे अपने कुटुम्ब के प्रति भी बहुत कर्त्तव्य हैं । कुटुम्ब के सदस्यों ने ही हमारा पालन-पोषण किया है । अतः उनके ऋण से उऋण होना हमारा कर्त्तव्य है । हमारा परम कर्त्तव्य है कि हम अपने माता-पिता की वृद्धावस्था में सेवा करें; दादा-दादी, नाना-नानी का आदर करें; तथा अपनी अर्धांगिनी से उत्तम व्यवहार करें और अपने बाल-बच्चों को अच्छी शिक्षा दें ताकि वे भारत के भावी कर्णधार बन सकें । हमें परिवार में से कलह और लड़ाई-झगड़े सदा के लिए दूर करके प्रेम का वातावरण निर्माण करना चाहिए । बड़े-बूढ़ों की सेवा-शुश्रूषा करना ही धर्म का पालन है । घर की आर्थिक व्यवस्था ठीक रखना भी परमावश्यक है ।

(३) **ग्राम, नगर तथा प्रान्त के प्रति कर्त्तव्य** (Duties towards Village, City and Province)—जिस प्रकार परिवार की उन्नति के लिए अपने स्वार्थ को त्यागना

पड़ता है उसी प्रकार ग्राम के हितार्थ कई बार परिवार के हित का बलिदान करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह अपने ग्राम की सेवा करे क्योंकि उसने सब कुछ समाज से सीखा है। यदि मनुष्य ने शिक्षा प्राप्त कर ली है तो उसका कर्त्तव्य है कि ग्राम के अन्य व्यक्तियों को भली भाँति शिक्षित करे। यह जरूरी नहीं कि ग्राम और परिवार के हित टकरायें। ग्राम की सर्वांगीण उन्नति करने के पश्चात् नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह अपने नगर की उन्नति की ओर ध्यान दे और नगर की उन्नति के पश्चात् उसको सारे प्रान्त की उन्नति की ओर ध्यान देना चाहिए। सहस्रों तरीकों से वह अपने प्रान्त की सेवा कर सकता है लेकिन यदि देश का हित प्रान्त के हित के साथ टकराता हो, तो उसे प्रान्त का हित छोड़कर देश की ओर मुख्य ध्यान देना चाहिए। हमें अपने गाँव, नगर, प्रान्त तथा देश की शिक्षा, स्वास्थ्य और सफाई की तरफ अवश्य कुछ न कुछ ध्यान देना चाहिए। नगर, ग्राम तथा प्रान्त में सेवा के लिए जो समुदाय बने रहते हैं, हमें उनमें निःस्वार्थ भावना से भाग लेना चाहिए और स्वार्थी व्यक्तियों को वहाँ से निकालना चाहिए।

(४) **राज्य के प्रति कर्त्तव्य** (Duties towards State)—राज्य के प्रति नागरिक के अनेक कर्त्तव्य हैं परन्तु निम्नलिखित मुख्य कर्त्तव्य हैं—

(i) **आज्ञा-पालन**—नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह राज्य के कानूनों का पालन करे। यदि कानून न हो, तो देश में कोई व्यवस्था सम्भव नहीं हो सकती और अराजकता (anarchy) का नंगा नाच होवे। गोडविन और क्रोपाटकिन तथा बाकुनिन अराजकतावादी लेखक थे और उनके मतानुसार कानून स्वतन्त्रता का घातक था। लॉक के विचार में स्वतन्त्रता और कानून अभिन्न हैं। कानून के द्वारा ही स्वतन्त्रता की रक्षा होती है। प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य को कोई अधिकार नहीं थे बल्कि शक्ति प्राप्त थी। अधिकार केवल राज्य में ही प्राप्त हो सकते हैं और राज्य ही अधिकारों का संरक्षण करता है। अतः प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि कानून का पालन करे। प्रश्न उत्पन्न होता है कि मनुष्य को राज्य की आज्ञा उल्लंघन करने का अधिकार है या नहीं ? यहाँ पर केवल यह कहना उचित होगा कि व्यक्ति को जरा-जरा सी बात पर राज्य के कानूनों की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए परन्तु यदि कोई कानून इस प्रकार का है कि जिसको शासक वर्ग ने केवल अपने लाभ और जनता के शोषण के लिए बनाया है, तो उस हालत में लोगों को अवश्य अधिकार है कि वे उस कानून को मंसूख कराने के लिए शान्तिपूर्वक आन्दोलन कर सकें।

(ii) **देश-भक्ति**—प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह देश-भक्त हो। देशद्रोही को राज्य कड़े से कड़ा दण्ड दे सकता है। जिस समय देश पर आपत्ति के बादल छा जायँ, तो उस समय सब का कर्त्तव्य हो जाता है कि वे देश की स्वतन्त्रता को जीवित रखने के लिए अपने शरीर को न्यौछावर कर दें। बहुत से देशों में ऐसी प्रथा है कि आक्रमण के समय प्रत्येक नर-नारी को सेना में अनिवार्य रूप से भरती होना पड़ता है। केवल उन नर-नारियों को सेना में भरती होने के लिए बाध्य नहीं किया जाता जो कि शरीर से कुछ काम करने में (रोगी होने के कारण) बिल्कुल असमर्थ हों। हमारे देश में ऐसा कानून नहीं है तथापि नागरिकों का यह कर्त्तव्य है कि सब प्रकार

से देश की रक्षा करें। परकीयों (foreigners) के आक्रमण-रूपी झोंकों से रक्षा किये बिना स्वतन्त्रता रूपी दीपक शीघ्र ही बुझ जाता है। पराधीनता एक राष्ट्र की सबसे ज्यादा गिरावट है अतः नागरिकों का परम कर्त्तव्य है कि वे देश को कभी भी अवनत न होने दें और उसको वैभव के शिखर पर पहुँचा दें।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि नागरिक ऐसी सरकार का साथ दें जो दूसरे राष्ट्रों को पद-दलित करना चाहती हो। राष्ट्र के वैभव का यह अर्थ कदापि नहीं लेना चाहिए कि वह दूसरों की स्वतन्त्रता का अपहरण करे और केवल स्वयं जीवित रहे। **'जीयो और जीने दो'** के सिद्धान्त को सब देशों को अपनाने की अति आवश्यकता है। अतः नागरिक को चाहिए कि वह आक्रमणात्मक युद्ध में बिलकुल भाग न ले परन्तु रक्षणात्मक युद्ध में अपने जीवन की आहुति दे दे।

(iii) **करों का देना**—आमदनी के बिना राज्य कदापि नहीं चल सकता। अतः राजनीति के प्राचीन लेखकों ने कोष को बहुत महत्त्व दिया है। चाणक्य का मत था कि जिस राजा के पास थोड़ा खजाना हो, वह प्रजा को हड़पने की सोचता है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में राज्य को चलाने के लिए कोष या अर्थ को बहुत महत्त्व दिया गया है परन्तु साथ में यह भी कहा है कि राजा को केवल न्यायपूर्ण कर लगाना चाहिए। ऐसे कर नहीं लगाने चाहिएँ जो जनता का खून चूस लें। इंगलैंड में जब चार्ल्स प्रथम ने अन्यायपूर्ण कर लगाये तो पार्लियामेंट ने इसका घोर विरोध किया और अन्त में राजा की हार के पश्चात् यह सिद्धान्त मान लिया गया कि कोई टैक्स जनता पर संसद (Parliament) की मंजूरी बिना नहीं लगाया जायेगा। कर केवल गरीबों पर ही नहीं लगाये जाने चाहिएँ बल्कि अधिकतर धनाढ्यों पर। नागरिकों का कर्त्तव्य है कि वे न्यायपूर्ण करों को चुकाएँ। राज्य को चाहिए कि वह लोगों से वसूल किये हुए रुपये को उनकी भलाई में ही खर्च कर दे।

(iv) **मताधिकार का प्रयोग**—हमारे देश में प्रत्येक वयस्क (२१ वर्ष की आयु वाला व्यक्ति) को मताधिकार प्राप्त है। हमारे संविधान में लिंग, धर्म, वर्ण तथा जाति और जन्म-स्थान के भेद-भाव बिल्कुल नष्ट कर दिये गए हैं। मत देने के लिए शिक्षा अथवा सम्पत्ति का होना भी जरूरी नहीं। ऐसी अवस्था में लोगों को यह महसूस करना चाहिए कि प्रजातन्त्र की बुनियाद हिल जायगी यदि उन्होंने इस मत का ठीक प्रयोग न किया। यदि इस मत का जनता ने दुरुपयोग किया तो निकम्मे, स्वार्थी तथा अयोग्य व्यक्तियों के हाथों में देश की बागडोर चली जायगी, वे जनता से रिश्वत लेंगे और देश को गुलामी के गड्ढे में डाल देंगे। इसलिए प्रजातन्त्र की सफलता इस बात पर निर्भर है कि जनता इस महत्त्वपूर्ण अधिकार का दुरुपयोग तो नहीं करती। जनता पर बहुत भारी जिम्मेवारी है कि वह योग्य, ईमानदार और देश-भक्त व्यक्तियों को चुने। यदि देश का पतन हो जाता है, तो प्रजातन्त्र में यह जनता की जिम्मेवारी है क्योंकि उसने देश की बागडोर अयोग्य व्यक्तियों को सौंप दी थी। इसलिए जनता का यह परम धर्म है कि वह अपने मन से लिंग, धर्म, जाति, वर्ण तथा जन्म-स्थान का भेद-भाव निकाल कर सच्चे देश-भक्त और ईमानदार व्यक्तियों को राय दे।

(५) **मानवता के प्रति कर्त्तव्य**—जहाँ मनुष्य के अपने ग्राम, नगर, प्रान्त तथा देश

की ओर कर्त्तव्य हैं वहाँ उसके संसार की ओर भी कुछ कर्त्तव्य हैं। मनुष्य देश की सेवा करे परन्तु उसे उग्र राष्ट्रवाद तथा साम्राज्यवाद के विरुद्ध भी डंका बजाना चाहिए। व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने आपको विश्व का नागरिक समझे और वसुधा को एक कुटुम्ब समझे। सच्ची देश-भक्ति और संसार की नागरिकता में कोई विरोध नहीं परन्तु यदि कोई देश दूसरे पर आक्रमण करता है तो उसका विरोध अवश्य करना चाहिए ताकि विश्व-शान्ति भंग न हो।

सारांश

अधिकार और कर्त्तव्य—मिस्टर हालैंड कहते हैं कि एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्यों के कार्यों की समाज के मत और शक्ति द्वारा प्रभावित करने की क्षमता का ही नाम अधिकार है। लास्की भी कहता है कि अधिकार सामाजिक जीवन की वे अवस्थाएँ हैं जिनके बिना कोई मनुष्य अपना पूर्ण विकास नहीं कर सकता। अतः अधिकार मनुष्य की वे माँगें हैं जो श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक हैं और समाज द्वारा अंगीकृत हो गई हैं। अधिकारों की रक्षा राज्य द्वारा होती है। अधिकारों के सम्बन्ध में विभिन्न सिद्धान्त प्रचलित हैं। नैसर्गिक अधिकार सिद्धान्त को मानने वाले अधिकारों को प्रकृतिदत्त, सनातन और अनादि मानते हैं। परन्तु अधिकारों का यह सिद्धान्त भ्रान्तिमूलक है क्योंकि अधिकार केवल राज्य में ही सम्भव हैं। वैधानिक सिद्धान्त को मानने वालों जैसे हालैंड और साल्मंड का विचार था कि अधिकार प्रकृति के द्वारा किसी को प्राप्त नहीं होते बल्कि राज्य के द्वारा ही स्वीकृत होते हैं। इसमें दोष यह है कि यदि जनता की उचित माँगें राज्य द्वारा स्वीकृत न हों तो वे अधिकार नहीं रहते। ऐतिहासिक सिद्धान्त को मानने वाले कहते हैं कि अधिकारों का निर्माता इतिहास है अर्थात् लोगों के रीति-रिवाज कानून की शक्ल धारण कर लेते हैं। इसमें दोष यह है कि सारे कानून रीति-रिवाजों से नहीं निकले हैं। अनेक कानून राज्य द्वारा बनाये जाते हैं। बेन्थम और मिल लोक-कल्याण सिद्धान्त के समर्थक हैं। वे कहते हैं कि राज्य को ऐसे कानूनों को मान्यता देनी चाहिए जिससे अधिकतम लाभ हो परन्तु कई बार ऐसा निश्चित करना कठिन हो जाता है। नैतिक या दार्शनिक सिद्धान्त के अनुसार हमारी नैतिक आवश्यकताएँ अधिकारों का आधार हैं।

अधिकार और कर्त्तव्य साथ-साथ चलते हैं। कर्त्तव्यों के बिना अधिकार उत्पन्न नहीं हो सकते। जो मेरा कर्त्तव्य है, वही दूसरे का अधिकार है। जो दूसरे का अधिकार है, वही मेरा कर्त्तव्य है। अधिकार समाज के लाभ के लिए होने चाहिएँ। अधिकारों का प्राकृतिक, नैतिक, वैधानिक, नागरिक, राजनैतिक और आर्थिक इत्यादि वर्गीकरण किया जाता है। आजकल सभ्य देशों में मूल अधिकार प्रायः नागरिकों को दिये जाते हैं। मनुष्य के कुछ कर्त्तव्य अपनी ओर तथा कुटुम्ब के प्रति होते हैं। इसी प्रकार मनुष्य के कुछ कर्त्तव्य नगर, गाँव, प्रान्त, देश तथा मानवता की ओर हैं।

Important Questions

1. Give a definition of Right. What rights in your opinion should be guaranteed by the State ? (*P. U. Sept. 1951*)

2. Define 'Rights'. What do you understand by Civil Rights, Political Rights and Natural Rights ? (*P.U. April 1952*)

3. "Rights and duties are interrelated." (*P.U. 1952 Sept.*)

4. Give a definition of Rights. Can a man possess rights against the State ? (*P.U. April 1954*)

5. What are the duties that a citizen owes to the State ? To what extent can the State compel him to perform them ? (*U.P. Board, 1930, 1953*)

6. Discuss the rights and duties of a citizen in a modern State. (*P.U. 1949; C.U. 1940, 1943*)

परीक्षा-प्रश्न

१. अधिकारों की व्याख्या कीजिये और बतलाइये कि आपकी राय के अनुसार राज्य को कौन से अधिकार प्रदान करने चाहिएँ ? (यू० पी० १९३२)

२. आप मनुष्य के 'अधिकार' शब्द से क्या समझते हैं ? वे किस प्रकार स्वीकृत किये जाते हैं और नागरिक के लिए सुरक्षित रखे जाते हैं ? (यू० पी० १९३७)

३. अधिकार कर्त्तव्यों के जगत् में उत्पन्न होते हैं। इस पर प्रकाश डालिए। (यू० पी० १९३७, १९४३)

४. अधिकार की व्याख्या कीजिये। एक नागरिक के सामाजिक अधिकारों का वर्णन कीजिये। (कलकत्ता १९३२, १९४१)

५. "अधिकार और कर्त्तव्यों का एक दूसरे से पारस्परिक सम्बन्ध है" समझाइये। (यू० पी० १९४९)

६. राज्य के प्रति नागरिक के क्या कर्त्तव्य हैं ? राज्य कहाँ तक उसको इनके पालन के लिए बाध्य कर सकता है ? (यू० पी० १९५३)

७. 'राजनैतिक अधिकार' शब्द की व्याख्या कीजिये। आपके खयाल से मुख्य राजनैतिक अधिकार क्या हैं ? (यू० पी० १९३६, १९५३)

आठवाँ अध्याय

स्वतन्त्रता और समानता
(Liberty and Equality)

Liberty does not descend upon a people. A people must raise themselves to liberty. Liberty is a blessing that must be earned in order to be enjoyed.

(Central Secretariat, Delhi)

'स्वतन्त्रता' शब्द मुख पर आते ही नवजीवन का संचार होता है। 'स्वतन्त्रता' शब्द के पीछे मानव-जाति का इतिहास छिपा हुआ है। 'स्वतन्त्रता' शब्द में मानव-जाति के उत्थान-पतन की कहानी निहित है। स्वतन्त्रता के नारे लगाते-लगाते सहस्रों वीरों ने अपने आपको सन् १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम में बलिदान कर दिया। गेरिबाल्डी और मेज़िनी ने इटली की स्वतन्त्रता के लिए जो प्रयत्न किये, वे उस देश के इतिहास में सुनहरी अक्षरों में लिखे हुए हैं। यहूदियों की लगभग २००० वर्ष पर्यन्त लम्बी स्वतन्त्रता की लड़ाई मानव-इतिहास की एक अमर कहानी है। पोलैंड के लोगों के उत्थान-पतन की कहानी इतिहास में एक विशेष स्थान रखती है।

स्वतन्त्रता का भ्रममूलक अर्थ—लिबर्टी (liberty) शब्द लैटिन भाषा के शब्द लिबर (liber) से निकला है। 'लिबर' (liber) का अर्थ है बन्धनों का न होना (absence of restraint)। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य को चाहे जो कुछ करने की स्वाधीनता हो और मनुष्य पर किसी प्रकार का कोई बन्धन न हो। ऐसी मनुष्य की अवस्था प्राकृतिक दशा में थी। रूसो का विचार था कि मनुष्य स्वतन्त्र पैदा होता है और सर्वत्र वह बन्धनों में जकड़ा हुआ है। रूसो के मनुष्य को जो आनन्द प्राकृतिक अवस्था में प्राप्त होता था वह समाज के बन्धनों में कहाँ? लॉक का विचार था कि मनुष्य को प्राकृतिक अवस्था में काफी स्वतन्त्रता थी परन्तु उसको प्राकृतिक कानून के अधीन रहना पड़ता था। हॉब्स का मनुष्य प्राकृतिक अवस्था में पूर्ण स्वतन्त्र था। उस पर किसी प्रकार का बन्धन न था। वह चाहे जो कुछ कर सकता था।

स्वतन्त्रता का सही अर्थ—स्वतन्त्रता का यह अर्थ नकारात्मक (negative) है। यदि प्रत्येक मनुष्य को चाहे जो कुछ करने की आज्ञा दे दी जाय, तो मानव-समाज में कभी भी शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। स्वार्थी मनुष्य केवल अपने लाभ के लिए काम करता है और दूसरे के अधिकारों की किञ्चित् भी परवाह नहीं करता। इसका परिणाम यह निकलता है कि मानव-जाति में निरन्तर कलह होती रहेगी। हॉब्स का मनुष्य चूंकि स्वार्थी था, अतः प्राकृतिक अवस्था में सदा लड़ाई-झगड़े रहते थे। ऐसी दशा में किसी प्रकार की कोई उन्नति सम्भव नहीं थी। इसलिए ऐसी दशा में अराजकता और अशान्ति का साम्राज्य होगा। सभ्यता और संस्कृति का उदय

तथा विकास ही न होगा। अतः यह सिद्ध हुआ कि स्वतन्त्रता का यह अर्थ भ्रममूलक (confusing) है। बार्कर लिखता है कि जिस प्रकार बदसूरती का न होना खूबसूरती नहीं है, उसी प्रकार बन्धनों का न होना स्वतन्त्रता नहीं है। सच्ची स्वतन्त्रता का अर्थ है कि मुझे कुछ सुविधाएँ या अधिकार प्राप्त होने चाहिएँ ताकि मैं अपने व्यक्तित्व का विकास पूर्ण रूप से कर सकूं परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि मैं दूसरों के अधिकारों की परवाह न करूँ या उनको (दूसरे के अधिकारों को) अपने पैरों तले कुचल दूं। मुझे अपने अधिकारों का उपभोग इस प्रकार से करना चाहिए जिससे दूसरों के अधिकारों पर कुठाराघात न हो। 'स्वतन्त्रता से अर्थ उस दशा से है जिसके बिना अधिकारों का उपभोग सम्भव नहीं है। स्वतन्त्रता उन कार्यों को करने की शक्ति है जिनके बिना व्यक्तित्व का विकास सम्भव नहीं है।'[1] अतः स्वतन्त्रता सकारात्मक (positive) है। इसका अर्थ बन्धनों का न होना नहीं बल्कि उन अधिकारों का पाया जाना है जिनके बिना व्यक्ति का विकास सम्भव नहीं। लास्की के कथनानुसार स्वतन्त्रता का अर्थ उस वातावरण की स्थापना है जिसमें मनुष्यों को अपने पूर्ण विकास के लिए अवसर प्राप्त होते हैं।[2] स्वतन्त्रता के बिना अधिकारों का अस्तित्व सम्भव नहीं है और बिना अधिकारों के स्वतन्त्रता सारहीन हो जायगी। अतः दोनों में बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है।

स्वतन्त्रता के द्वारा ही मनुष्य की पूर्ण उन्नति सम्भव है। स्वतन्त्रता के बिना सभ्यता तथा संस्कृति (civilization and culture) का उदय सम्भव नहीं है। जिस राज्य में नागरिकों को राजनैतिक और सामाजिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती वहाँ व्यक्तियों का विकास बिलकुल रुक जाता है। हिटलर के राज्य में कोई जर्मन नाजी सरकार के विरुद्ध अपने विचार प्रकट नहीं कर सकता था और इसी प्रकार रूस में कम्यूनिस्ट सरकार के विरुद्ध किसी को मुंह खोलने की आज्ञा नहीं है। अतः ऐसी दशा में स्वतन्त्र सामाजिक भावनाओं का उदय हो ही नहीं सकता और मनुष्य की स्वाभाविक कलाओं का विकास सम्भव नहीं। अतः मिल का विचार ठीक प्रतीत होता है कि स्वतन्त्रता के बिना सत्य बहुत समय तक जीवित नहीं रह सकता।

स्वतन्त्रता के विभिन्न प्रकार

स्वतन्त्रता कई प्रकार की है। निम्नलिखित प्रकार की स्वतन्त्रता अधिक आवश्यक है: (१) स्वाभाविक स्वतन्त्रता, (२) वैयक्तिक स्वतन्त्रता, (३) राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, (४) वैधानिक स्वतन्त्रता, (५) राजनैतिक स्वतन्त्रता, (६) नागरिक स्वतन्त्रता, (७) आर्थिक स्वतन्त्रता, (८) नैतिक स्वतन्त्रता, और (९) धार्मिक स्वतन्त्रता।

स्वाभाविक स्वतन्त्रता (Natural Liberty)—स्वभाव से मनुष्य स्वतन्त्र रहना चाहता है। वह किसी प्रकार के बन्धनों को पसन्द नहीं करता। प्रत्येक मनुष्य यह चाहता है कि उसके कार्यों पर किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध न हो। अतः बहुत

---

१. अम्बादत्त पन्त—'नागरिक शास्त्र के आधार'; पृष्ठ २३२।

2. Liberty, according to Laski, is "the eager maintenance of that atmosphere in which men have the opportunity to be their best selves."

से लेखकों का विचार है कि व्यक्ति को मनमानी करने की आजादी होनी चाहिए। इस प्रकार की स्वतन्त्रता जंगल में रहती है। जंगल में शेर चाहे जिसको खा जाय, उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं किया जा सकता। अतः ऐसी प्राकृतिक स्वतन्त्रता का अर्थ केवल बलशाली व्यक्ति को दूसरों को हड़प करने का अवसर देना होगा। दूसरे लेखक कहते हैं कि प्राकृतिक स्वतन्त्रता प्राकृतिक अवस्था (State of Nature) में उपलब्ध थी। हॉब्स लिखता है कि प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य को चाहे जो कुछ करने का अधिकार प्राप्त था। लॉक लिखता है कि यह प्राकृतिक अवस्था में प्राप्त स्वतन्त्रता प्राकृतिक कानून (Natural Law) द्वारा सीमित थी अर्थात् प्राकृतिक कानून के अनुसार मनुष्य को जीवन, स्वतन्त्रता तथा सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार प्राप्त थे और इसी के द्वारा ये नियमित होते थे। रूसो का विचार था कि मनुष्य स्वतन्त्र पैदा होता है और वह सब जगह जंजीरों में जकड़ा हुआ है। तीसरे, बहुत से लेखकों का विचार है कि मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि बिना स्वतन्त्रता के उसका उत्कर्ष सम्भव नहीं।

वैयक्तिक स्वतन्त्रता (Personal Liberty)—मनुष्य अपने दैनिक जीवन में किसी अन्य व्यक्ति का हस्तक्षेप सहन नहीं करना चाहता। प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि उसे वेश-भूषा, भोजन, रहन-सहन, शादी-विवाह और बच्चों की शिक्षा तथा कारोबार की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। राज्य को व्यक्तिगत मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए परन्तु कुरीतियों को रोकने और सुधार करने का अधिकार राज्य को अवश्य प्राप्त होना चाहिए। व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए ऐसी स्वतन्त्रता अत्यन्त अनिवार्य या आवश्यक है।

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता (National Liberty)—राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का अर्थ एक देश की स्वतन्त्रता से है। जिस देश में लोगों की समान भाषा, धर्म, इतिहास, साहित्य, राजनैतिक और आर्थिक इच्छाएँ हों, उनमें एकता की भावना उत्पन्न होती है। वह उस देश से अपना विशेष सम्बन्ध जोड़ते हैं। उन लोगों के मन में एक दूसरे के प्रति अगाध प्रेम उत्पन्न होता है। इसी से देश-भक्ति की भावना के अंकुर फूटते हैं। प्रत्येक राष्ट्र की यह प्रबल इच्छा होती है कि वह पूर्णरूप से स्वतन्त्र रहे और कभी भी उसको किसी की पराधीनता स्वीकार न करनी पड़े। प्रत्येक राष्ट्र को अपनी स्वतन्त्रता इतनी प्रिय होती है कि उसके लिए वह कोई भी कुर्बानी बड़ी नहीं समझता। भारतीयों ने अपनी प्यारी स्वाधीनता को प्राप्त करने के लिए कौन सा बलिदान नहीं दिया। लाखों वीरों ने १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम में अपने प्राण एक क्षण में न्यौछावर कर दिये। हज़ारों वीरों ने अण्डमान की जेलों में अनेक प्रकार की यातनाएँ सहन कीं। महात्मा गांधी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, लोकमान्य तिलक, सरदार भगतसिंह और वीर सावरकर तथा सहस्रों अन्य अप्रसिद्ध व्यक्तियों ने देश के लिए कुछ कम त्याग नहीं किया। जब तक स्वतन्त्र भारत का इतिहास जीवित है, तब तक उनके नाम अमर होंगे। गैरीबाल्डी तथा मेज़िनी ने जो त्याग इटली की स्वतन्त्रता के लिए किये, वे वहाँ के इतिहास में अद्वितीय हैं। पोलैंड, फिलस्तीन, यूनान, मिश्र, इण्डोनेशिया और हिन्द-चीन में उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में जो स्वतन्त्रता-संग्राम हुए, वे इतिहास में अनुपम हैं। इंगलैंड ने अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता क

स्थापित रखने के लिए हिटलर और नेपोलियन से अनेक खूनी युद्ध किये।

वैधानिक स्वतन्त्रता (Constitutional Liberty)—प्रत्येक देश के व्यक्ति चाहते हैं कि उन्हें अपना संविधान बनाने का स्वयं अधिकार हो। १९४७ ईस्वी से पूर्व भारत स्वतन्त्र नहीं था, अतः यहाँ के नागरिकों को यह अधिकार नहीं था कि वे अपने शासन के लिए स्वयं एक संविधान बना सकें। ब्रिटिश पार्लियामेंट को अन्तिम अधिकार था कि भारत के ऊपर कोई भी कानून लागू कर सके। भारत सरकार १९३५ का अधिनियम (Government of India Act, 1935) अंग्रेजी सरकार द्वारा ही बनाया और लागू किया गया परन्तु अब भारत स्वतन्त्र है और उसके नागरिकों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपने लिए इच्छानुसार वैधानिक कानून (constitutional law) बना सकें। संविधान बनाने का अधिकार लोगों का पैतृक अधिकार होना चाहिए और किसी शासक, डिक्टेटर या राजा को जनता पर कोई संविधान उसकी इच्छा के विरुद्ध लागू करने का अधिकार नहीं होना चाहिए। देश में शासन-सम्बन्धी कार्य संविधान के अनुसार चलाना चाहिए और लोगों के मूल अधिकार जो कि वैधानिक स्वतन्त्रता के द्योतक हैं, सदैव सुरक्षित रखने चाहिएँ।

राजनैतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता (Political and Economic Liberty) राजनैतिक स्वतन्त्रता का यह अर्थ है कि प्रत्येक वयस्क को मताधिकार प्राप्त हो तथा उसे निर्वाचित होने के अधिकार से भी वञ्चित न रखा जाये। उसको शासन सम्बन्धी कार्यों में भाग लेने की भी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। किसी भी व्यक्ति को किसी राजनैतिक पद से केवल लिंग (sex), जाति, धर्म, वर्ण और जन्म-स्थान के कारण विहीन न किया जाय।

आर्थिक स्वतन्त्रता का यह अभिप्राय है कि उद्योग-धन्धे चुनने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। गरीब अमीरों के ग्रास न बन जायँ, ऐसा ध्यान सदा सरकार का रहना चाहिए। मज़दूरों को पर्याप्त वेतन मिलना चाहिए।

नागरिक स्वतन्त्रता (Civil Liberty) **और सामाजिक स्वतन्त्रता**—~~सामाजिक~~ स्वतन्त्रता का अर्थ है कि व्यक्ति को कुछ ऐसे अवसर प्राप्त होने चाहिएँ जिससे वह अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सके। इसी कारण से प्रत्येक राज्य अपने नागरिकों को पूर्णरूप से उन्नत करने के लिए कुछ अधिकार देता है जैसे विश्वास, विचार, भाषण और लेखन की स्वतन्त्रता, सभा करने और संगठन बनाने की स्वतन्त्रता, राज्य की सीमा में कहीं भी आने-जाने, बसने तथा कोई भी व्यवसाय या कारोबार करने की स्वतन्त्रता। नागरिक स्वतन्त्रता का यह अर्थ नहीं कि हम अपने अधिकारों का उपभोग चाहे जैसे कर सकते हैं। हमें अपने अधिकारों का उपभोग करते समय यह देखना पड़ेगा कि दूसरे के अधिकारों में किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप न हो। यदि हम दूसरों के अधिकारों को पददलित करते हैं; तो यह अधिकारों का दुरुपयोग समझा जायेगा और राज्य को किसी प्रकार का भी प्रतिबन्ध लगाने का पूर्ण अधिकार होगा।

सामाजिक स्वतन्त्रता का अर्थ है कि समाज में प्रत्येक मनुष्य को अपने विकास करने का समान अवसर प्राप्त हो। उसके रास्ते में कोई सामाजिक अड़चन न हो।

हिन्दुओं में वर्ण-व्यवस्था सामाजिक स्वतन्त्रता के बिल्कुल विरुद्ध है क्योंकि इसके कारण हरिजनों को अस्पृश्य (untouchables) समझा जाता है और उनको बराबर के अधिकार प्राप्त नहीं होते।

नैतिक तथा धार्मिक स्वतन्त्रता—इसका यह अर्थ है कि प्रत्येक मनुष्य को पूजा-पाठ करने या किसी भी धर्म का अनुयायी होने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। चाहे कोई मनुष्य मन्दिर में जाय अथवा मस्जिद में, राज्य को कोई रुकावट पैदा नहीं करनी चाहिए। राज्य को जनता के लिए कोई धर्म निर्माण नहीं करना चाहिए (State should not prescribe a religion for the people)। इसी प्रकार से राज्य को इस बात के लिए मजबूर नहीं करना चाहिए कि लोग किसी धर्म-विशेष का ही पालन करें। उदाहरणार्थ, औरंगज़ेब ने हिन्दुओं को इस्लाम स्वीकार करने के लिए मजबूर किया जिसका परिणाम यह हुआ कि राजपूत, मराठे, सिक्ख और जाट उसके कट्टर दुश्मन हो गए और उन्होंने मुग़लों के साम्राज्य को छिन्न-विच्छिन्न कर दिया। धर्म के नाम पर इंगलैण्ड में अनेक हत्या-काण्ड हुए। हेनरी अष्टम, मेरी तथा एलिज़ाबेथ के समय विरोधी मतों को मानने वाले सहस्रों नर-नारी यमलोक को पहुँचाए गए। टर्की में मुसलमानों को जो सुविधाएँ दी गयीं वे ईसाइयों को नहीं दी गयीं। इतना ही नहीं बल्कि ईसाइयों पर अनेक प्रकार के अत्याचार किए गए। आजकल के युग में प्रायः सभी सभ्य राष्ट्रों ने अपने नागरिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर दी है। भारतीय संविधान में प्रत्येक नागरिक को उसकी इच्छानुसार मत-मतान्तरों को मानने की स्वतन्त्रता दी गयी है और राज्य को निरपेक्ष (secular) रखा गया है। राज्य को लोगों के फैशन (पहराव), रस्म व रिवाज और विश्वासों में भी आवश्यकताओं से अधिक दखल नहीं देना चाहिए। उदाहरणार्थ, अमीर अमानुल्लाह जो कि अफगानिस्तान के सम्राट् हुए हैं, उन्होंने मुसलमानों को अपने राज्य में यह आज्ञा दी कि वे दाढ़ी कटवाएँ, फलतः उनको देश छोड़कर भागना पड़ा। रूसी सम्राट् पीटर ने भी लोगों को एक विशेष प्रकार की पोशाक पहनने के लिए बिवश करना चाहा परन्तु उसको पूर्ण सफलता नहीं मिली। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि राज्य को लोगों के खराब रस्म व रिवाजों को बन्द नहीं करना चाहिए। भारत में राज्य की ओर से सती, बाल-विवाह तथा शराबनोशी (मधुपान) को बन्द किया गया।

कानून तथा स्वतन्त्रता में सम्बन्ध
(Relation between Law and Liberty)

बहुत से मनुष्य यह समझते हैं कि कानून स्वतन्त्रता का विरोधी है। वे स्वतन्त्रता का मतलब यह लेते हैं कि व्यक्ति को चाहे जो कुछ करने की आज्ञा होनी चाहिए। व्यक्ति के कार्यों पर किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए। अतः विलियम गोडविन का विचार था कि कानून स्वतन्त्रता के लिए सब से अधिक हानिकारक संस्था है।[1] अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दि में व्यक्तिवादियों ने भी स्वतन्त्रता का ठीक अर्थ नहीं समझा। अतः मिल ने यह लिखा कि यदि मनुष्य किसी

1. "Law is an institution of the most pernicious type".—*William Godwin.*

सरकारी ड्यूटी पर न हो और वह अपने घर में हो, तो उसे शराब पीने का अधिकार है। परन्तु इस प्रकार की स्वतन्त्रता किसी भी व्यक्ति को नहीं दी जा सकती क्योंकि मनुष्य समाज का एक अंग है और उसके कुटुम्ब, ग्राम, प्रान्त, राष्ट्र तथा विश्व के प्रति कुछ कर्त्तव्य हैं। शराबी मनुष्य अपने स्वास्थ्य का नाश कर लेता है और अपने कुटुम्ब पर तबाही लाता है। शराबी मनुष्य के बाल-बच्चे भूखे मरते हैं। शराबी देश और मानव-समाज की क्या सेवा कर सकता है। अतः राज्य ऐसी स्वतन्त्रता अपने नागरिकों को प्रदान नहीं कर सकता। राज्य आजकल नागरिकों की भलाई के लिए अनेक प्रकार के कार्य कर रहा है। सरकार अपने नागरिकों को यह स्वतन्त्रता नहीं दे सकती कि वे अफीम अथवा शराब से अपना स्वास्थ्य खराब कर लें और समाज की कुछ सेवा न करें। अतः कानून के द्वारा मधुपान की प्रथा समाप्त की जा रही है। बम्बई और मद्रास सरकार ने ऐसे कानून बनाए हैं जिनके द्वारा मधु या शराब का बनाना, बेचना और पीना बिल्कुल बन्द कर दिया गया है। कुरीतियों को बन्द करने के लिए कानून का आश्रय लेना प्रायः अनिवार्य हो जाता है। हमारे देश में सती, छुआछूत और बाल-विवाह की कुप्रथाओं को दूर करने के लिए सुधारकों के यत्न काफी साबित नहीं हुए और कानून की शरण ली गई। इसलिए कानून साधारणतया स्वतन्त्रता की रक्षा करता है।

लॉक का कहना सत्य ही प्रतीत होता है कि जहाँ कानून नहीं है वहाँ स्वतन्त्रता नहीं है इसलिए कानून का होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि कानून के द्वारा ही अधिकारों की रक्षा होती है। यदि कानून न हो तो मनुष्य को अपने अधिकारों की रक्षा शक्ति के भरोसे करनी पड़े। ऐसी अवस्था में शक्ति का राज्य स्थापित हो जायगा और 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत ठीक सिद्ध हो जायगी। कानून के बिना देश में अराजकता (anarchy) फैल जायगी और वैसी ही परिस्थिति पुनः दृष्टिगोचर होगी जैसी कि हॉब्स की प्राकृतिक अवस्था में थी।

आदर्शवादियों (Idealists) के अनुसार कानून के पालन में ही स्वतन्त्रता है और कानून के अन्तर्गत स्वतन्त्रता के उपभोग को ही वे यथार्थ स्वतन्त्रता गिनते हैं। उदाहरणार्थ, हीगेल का विचार था कि स्वतन्त्रता का उपभोग केवल राज्य में ही सम्भव हो सकता है क्योंकि राज्य बुद्धि का मूर्त्त रूप है (State is a march of God upon earth and it is the highest expression and organ of social morality)। बोसांके भी कानून तथा स्वतन्त्रता में कोई भेद नहीं समझता। आदर्श-वादियों के अनुसार कानून का पालन ही यथार्थ इच्छा का पालन है। कानून के द्वारा ही निर्बलों की रक्षा होती है।

कानून के द्वारा स्वतन्त्रता की रक्षा तीन प्रकार से हो सकती है। पहले तो कानूनों के द्वारा समाज में ऐसा वातावरण निर्माण किया जाता है जिससे सभ्य जीवन सम्भव हो। इसके लिए अपराधियों को दण्ड भी दिया जाता है। दूसरे, कानून के द्वारा मनुष्य के कर्त्तव्यों तथा अधिकारों को निश्चित किया जाता है और उनकी रक्षा भी की जाती है। यदि कोई मनुष्य दूसरे के अधिकारों में अनेक प्रकार की अड़चनें उपस्थित करता है तो राज्य उसको दण्ड दे सकता है। तीसरे, संविधान (constitu-

tion) प्रायः प्रजातन्त्रात्मक देशों में स्वतन्त्रता का सब से बड़ा समर्थक है। संविधान के द्वारा ही सरकार की मनमानी कार्रवाइयों का अन्त होता है। न्यायालय भी लोगों की स्वतन्त्रता का सब से बड़ा रक्षक है। संविधान के द्वारा ही जनता के मूलाधिकारों की रक्षा होती है।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्रत्येक कानून स्वतन्त्रता की रक्षा करता है या नहीं ? अतः लास्की का विचार था कि जो कानून मेरी उन्नति में किसी प्रकार की रुकावट पैदा नहीं करते, वे ही कानून मेरी स्वतन्त्रता के पोषक हैं। क्या व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक कानून का चाहे वह अच्छा हो या बुरा, पालन करे ? १७८९ की क्रान्ति से पूर्व फ्रांस की सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक व्यवस्था बहुत खराब हो चुकी थी। वहाँ पर गरीबों को सारे टैक्स देने पड़ते थे और अमीर आनन्द में मस्त रहते थे। कानूनों ने गरीबों का खून चूस लिया था। अतः ऐसी दशा में लोगों का कर्त्तव्य था कि वे ऐसे कानूनों का अवश्यमेव उल्लंघन करें। राज्य को केवल न्यायसंगत कानून पालन करवाने का ही अधिकार प्राप्त है। जो कानून न्याय-संगत नहीं हैं और गरीबों पर अत्याचार करते हैं, लोगों को ऐसे कानूनों को तोड़ने का पूर्ण अधिकार है परन्तु छोटी-छोटी बातों पर राज्य की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। वरना समाज में अराजकता और अशान्ति का राज्य हो जायगा। यह बात सिद्ध हो चुकी है कि नागरिकों को अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए सदैव सतर्क रहना पड़ता है। इसलिए लास्की कहता है कि सतत सतर्कता स्वतन्त्रता का मूल्य है (eternal vigilance is the price of liberty)।

सार्वभौमिकता तथा स्वतन्त्रता (Sovereignty and Liberty)

यदि स्वतन्त्रता का अर्थ यह है कि मनुष्य को कुछ ऐसे अवसर या अधिकार प्राप्त होने चाहिएँ जिससे वह अपने व्यक्तित्व का विकास कर सके तो यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि समाज में कोई ऐसी शक्ति होनी चाहिए जो उन अधिकारों की रक्षा कर सके। ऐसी शक्ति राज्य के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकती। स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए यह भी जरूरी है कि जो मनुष्य दूसरों के अधिकारों की परवाह नहीं करते, उन्हें राज्य की ओर से दण्ड मिलना चाहिए। जब तक प्रत्येक मनुष्य अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं करता और दूसरों को हानि न पहुँचाने का प्रण नहीं ले लेता, तब तक समाज में कोई व्यवस्था कायम नहीं रह सकती। यदि एक मनुष्य दूसरे के अधिकारों को कुचलने का यत्न करे तो समाज में अशान्ति फैल जायगी। अतः राज्य चोरों, डाकुओं, लुटेरों तथा अन्य अपराधियों को कड़ा दण्ड देता है ताकि वे समाज में अशान्ति न फैला सकें। राज्य यदि ऐसा न करे तो दुर्बल मनुष्य सबल मनुष्यों का ग्रास बन जायें। अतः राजा के बिना किसी की भी स्वतन्त्रता सुरक्षित नहीं रह सकती।[1] इसलिए यह कहा जा सकता है कि सार्वभौमिकता स्वतन्त्रता की विरोधी नहीं परन्तु सब प्रकार की सरकारें स्वतन्त्रता की रक्षा नहीं करतीं। कई सरकारें मनुष्य का शोषण (exploitation) करती हैं। ऐसी सरकारों को शान्तिपूर्वक तरीकों

१. राजा का अर्थ यहाँ सरकार से है।

से बदलने की आवश्यकता होती है। यह याद रखना चाहिए कि सरकार बुरी हो सकती है परन्तु राज्य नहीं।

समानता (Equality)

समानता का अर्थ—बहुत से मनुष्यों का यह विचार है कि स्वतन्त्रता और समानता एक दूसरे के विरुद्ध हैं परन्तु यह विचार गलत है। जिन मनुष्यों का यह विचार है कि स्वतन्त्रता और समानता एक दूसरे के विरोधी हैं, वे कहते हैं कि स्वतन्त्रता का अर्थ है कि कोई भी नियन्त्रण व्यक्ति के कार्यों पर न हो और समानता में नियन्त्रण का होना आवश्यक है (क्योंकि राज्य यदि अपनी शक्ति द्वारा अमीरों-गरीबों को एक जैसा न करे, तो समानता कैसे स्थापित हो सकती है), अतः उनके विचार में ये दोनों चीज एक दूसरे के विरुद्ध हैं परन्तु थोड़ी देर के बाद यह मालूम होगा कि यह विचार असत्य है क्योंकि स्वतन्त्रता का अर्थ नियन्त्रणों (checks) का न होना नहीं है। स्वतन्त्रता तथा समानता का गहरा सम्बन्ध है क्योंकि यदि राज्य सब जातियों के साथ एक जैसा व्यवहार न करे तो लोगों की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाय। असमानता का अर्थ यह है कि राज्य की सत्ता किसी एक ऐसे वर्ग के हाथ में हो जो इसको केवल अपने लाभ के लिए प्रयुक्त करे। जब राज्य में कोई व्यक्ति-समूह राज्य की शक्ति को केवल निजी स्वार्थ के लिए काम में लाता है तो दूसरों की स्वतन्त्रता स्वाभाविक रूप से ही नष्ट हो जाती है। इसलिए समानता और स्वतन्त्रता इकट्ठी चलती हैं। समानता का यह मतलब नहीं कि राज्य में सब मनुष्यों को बराबर तनख्वाहें प्राप्त हों बल्कि इसका यह अर्थ है कि समाज में प्रत्येक मनुष्य को दूसरों के बराबर अधिकार प्राप्त हों और सबको अपने पूर्ण विकास के लिए समान अवसर मिलें। सब मनुष्यों की बुद्धि, रंग, सूरत तथा योग्यताएँ भिन्न-भिन्न हैं, इसलिए समाज में बिल्कुल एक जैसी समानता स्थापित नहीं की जा सकती। दूसरे, प्रो० लास्की कहता है कि समानता का यह तात्पर्य है कि समाज में कोई विशेष अधिकार वाला वर्ग न हो (There should be no privileged class)।[1]

समानता का वर्गीकरण (Kinds of Equality)

समानता के अधिकारों को निम्नलिखित श्रेणी में बाँटा जा सकता है :

(१) **सामाजिक समानता** (Social Equality)—सामाजिक समता का यह अर्थ है कि मनुष्यों में आपस में जन्म-स्थान, जाति, धर्म और लिंग के आधार पर कोई भेद-भाव नहीं किया जाता। भारत में जब तक छूआछूत है तब तक सामाजिक बराबरी स्थापित नहीं हो सकती। इसी प्रकार अमरीका में अनेक हब्शी रहते हैं और जब तक वहाँ पर गोरे और हब्शी का भेद-भाव प्रचलित है, तब तक वहाँ पर सामाजिक समता स्थापित नहीं हो सकती। हमारे संविधान में छुआछूत को गैर-कानूनी करार दिया गया है। हरिजनों को ऊँची जातियों के मन्दिरों में प्रवेश करने, कुओं से

1. Laski says, "Equality therefore means, first of all the absence of special privilege. In the second place it means that adequate opportunities are laid open to all."

पानी भरने, तथा स्कूलों और कालेजों में पढ़ने का अधिकार दिया गया है। नौकरियों में भी हरिजनों को समान अवसर दिये जायँगे। दक्षिणी अफ्रीका में अभी सामाजिक असमानता विद्यमान है क्योंकि वहाँ काले और गोरे का भेद-भाव पूरे जोरों से प्रचलित है। इस विषय पर दक्षिणी अफ्रीका की संयुक्त-राष्ट्र संघ में भी कड़ी आलोचना की गयी है। सामाजिक समता के साथ-साथ सांस्कृतिक समानता का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। यदि समाज में शिक्षा की सुविधाएँ बराबर प्राप्त नहीं हैं तो कुछ मनुष्य अधिक उन्नति कर जायँगे और कुछ बहुत पीछे रह जायँगे।

(२) **नागरिक समानता**—इसका यह अर्थ है कि कानून की दृष्टि में सब मनुष्य बराबर हैं। अदालत में न्यायाधीशों को बड़े-छोटे, अमीर गरीब तथा ऊँच-नीच में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं करना चाहिए। इंगलैंड में कानून का राज्य प्रचलित है जिसके द्वारा अंग्रेजों की स्वतन्त्रता की रक्षा होती है। वहाँ पर चाहे अपराधी प्रधान मन्त्री हो, चाहे भिखारी हो, दोनों पर उसी अदालत में मुकद्दमा चलाया जायगा और दोनों को कानून की दृष्टि से बराबर समझा जायगा तथा समान दण्ड मिलेगा।

(३) **राजनैतिक समानता**—राज्य के प्रत्येक नागरिक को राय देने का अधिकार होना चाहिए और धर्म, जाति, शिक्षा, सम्पत्ति, जन्म-स्थान तथा लिंग के आधार पर कोई भेद-भाव नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार से प्रत्येक नागरिक को चुनाव में उम्मीदवार के तौर पर खड़ा होने का अधिकार होना चाहिए। प्रत्येक नागरिक को सरकारी नौकरी और ऊँचे से ऊँचा पद प्राप्त करने का अधिकार भी होना चाहिए। कई राज्यों में प्रत्येक वयस्क को मताधिकार नहीं होता है। स्विट्ज़रलैंड में अभी तक नारियों को राय देने का हक हासिल नहीं है। इसी प्रकार सन् १९४६ से पूर्व फ्रान्स में भी नारियों को राय देने का अधिकार प्राप्त नहीं था। इंगलैण्ड में भी सन् १९१८ से पूर्व नारियों को प्रायः मत देने का अधिकार प्राप्त नहीं था। मताधिकार के लिए वहाँ पर कई दफा सम्पत्ति या शिक्षा का होना आवश्यक समझा जाता था।

(४) **आर्थिक समानता**—यदि आर्थिक समानता का शाब्दिक अर्थ लिया जाय तो राज्य में सारे नागरिकों की आमदनी और जायदाद बराबर करनी पड़ेगी परन्तु व्यवहार में ऐसा करना बहुत कठिन हो जाता है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य की बुद्धि और योग्यता अलग-अलग है। इसीलिए लास्की कहता है कि समता का अर्थ है कि समाज में कोई वर्ग अपना विशेष हित न रखता हो और प्रत्येक मनुष्य को बराबर के अवसर प्राप्त हों ताकि वह अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सके।[1] समता का यह अर्थ भी नहीं है कि सबको बिल्कुल समान वेतन प्राप्त हो लेकिन इसका अभिप्राय यह अवश्य है कि सबको रोटी, कपड़ा और रहने के लिए मकान मिले और राज्य में अधिक आर्थिक विषमता न रहे। ऐसा न हो कि एक पुरुष की आमदनी दस लाख

1. "Equality does not mean identity of treatment so long as men are different in want and capacity and need. Equality does not imply identity of reward for effort so long as the difference in reward does not enable me, by its magnitude, to invade the rights of others. Equality therefore, means first of all the absence of special privilege. Equality means in the 2nd place that adequate opportunities are laid open to all." —*Laski*: 'Grammar of Politics'.

रुपये मासिक हो और दूसरे की आय केवल दस रुपया महीना। लोगों की आय में बहुत थोड़ा भेद होना चाहिए। अधिक-से-अधिक भेद यह होना चाहिए कि राज्य में सबसे बड़े व्यक्ति की आमदनी छोटे-से-छोटे व्यक्ति की आमदनी से केवल दस गुना हो। इतना ही नहीं बल्कि दूसरे क्षेत्रों में अमीर-गरीब को समान अवसर प्राप्त हों। केवल रूस और चीन में कुछ हद तक यह सिद्धान्त अपनाया गया है, शेष राज्यों ने इसे अभी तक नहीं अपनाया है।

(५) **अवसर और शिक्षा की समानता** (Equality of Opportunity and Education)—राज्य को चाहिए कि नागरिकों को समान अवसर दे। समान अवसर देने से ही जनता का कल्याण हो सकता है। राज्य की दृष्टि में किसी प्रकार का कोई भेद-भाव नहीं होना चाहिए। अमीर-गरीब सब को शिक्षा, नौकरी और अन्य क्षेत्रों में समान अवसर प्राप्त होने चाहिएँ, तभी देश की उन्नति हो सकती है। ऐसा नहीं होना चाहिए कि गरीब अपनी गरीबी के कारण ऊँची शिक्षा प्राप्त करने में बिल्कुल असमर्थ रहे।

स्वतन्त्रता तथा समानता में सम्बन्ध
(Relation between Liberty and Equality)

स्वतन्त्रता और समानता में क्या सम्बन्ध है, इस विषय में भिन्न-भिन्न लेखकों के अलग-अलग सिद्धान्त हैं। बहुत से लेखकों का विचार है कि स्वतन्त्रता के बिना समानता व्यर्थ है और समानता के बिना स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं। अतः ये दोनों एक दूसरे से अलग नहीं की जा सकतीं। एक के बिना दूसरी ठीक प्रकार से जीवित नहीं रह सकती। इसके विरुद्ध लार्ड एक्टन[1] और डी टाकविल का विचार है कि स्वतन्त्रता और समानता एक दूसरे के विरोधी हैं। उनका कहना है कि जहाँ स्वतन्त्रता है वहाँ समानता नहीं रह सकती और जहाँ समानता है वहाँ स्वतन्त्रता नहीं हो सकती। उनका कहना है कि प्रत्येक मनुष्य दूसरे से बल, विद्या, बुद्धि और शक्ल व सूरत की दृष्टि से अलग है, अतः असमानता हमको प्रकृति के द्वारा मिली हुई है। स्वयं प्रकृति में अनेक प्रकार की भिन्नताएँ हैं, कहीं नदी है, तो कहीं पहाड़, कहीं मैदान है तो कहीं झील। यदि हम एक बुद्धिमान पुरुष को एक बुद्धिहीन मनुष्य के बराबर करना चाहें तो हमको बुद्धिमान पुरुष के विकास को रोकना पड़ेगा। इसका अर्थ यह होगा कि समानता तो कायम हो जायगी परन्तु स्वतन्त्रता नष्ट हो जायगी।

दूसरे विचारकों का मत है कि स्वतन्त्रता और समानता एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं अपितु समानता स्वतन्त्रता का मुख्य आधार है। बिना समानता के स्वतन्त्रता व्यर्थ और सारहीन है। यदि समाज में सामाजिक समानता नहीं है तो राजनैतिक स्वतन्त्रता का क्या लाभ? उदाहरणार्थ, भारत में जब तक छुआछूत है तब तक वहाँ हरिजनों के लिए राजनैतिक स्वतन्त्रता निरर्थक होगी। इसी प्रकार से यदि शिक्षा की समानता न हो तो कुछ मनुष्य जिनके पास धन होगा, वे ही केवल शिक्षित हो सकेंगे और गरीब अशिक्षित रह जायेंगे। अशिक्षित मनुष्य क्या उन्नति कर सकते हैं? इसी

1. "The passion for equality made vain the hope for liberty'—*Lard Acton.*

प्रकार आर्थिक समानता के न होने पर अमीर गरीबों का खून चूसेंगे। यदि गरीबों को वोट देने का अधिकार है तो भी उसका कोई लाभ नहीं क्योंकि अमीर लालच और भय से गरीबों के वोट हासिल कर लेते हैं। एक गरीब और अशिक्षित व्यक्ति के वोट की कोई कीमत नहीं, और वह बड़ी जल्दी अपना वोट बेच देता है। रूसो का विश्वास था कि स्वतन्त्रता बिना समानता के जीवित नहीं रह सकती। अतः लास्की कहता है कि जहाँ पर अमीर और गरीब लोग हैं, जहाँ पर शिक्षित और अशिक्षित हैं, वहाँ पर सदैव स्वामी और सेवक मिलते हैं।[1]

इसी प्रकार से धार्मिक समानता का होना अत्यन्त आवश्यक है। सारे धर्म बराबर हैं, अतः राज्य को किसी विशेष मत का पक्षपात नहीं करना चाहिए। कोई राज्य-धर्म (state religion) नहीं होना चाहिए। भारत में निरपेक्ष राज्य (secular state) की स्थापना की गई है। संविधान (constitution) में तमाम मतों को अपना-अपना धर्म फैलाने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि किसी मत को मानने वाले घृणा फैलायें या ज़बर्दस्ती किसी को दूसरे धर्म में परिवर्तित करें। धर्म की बिना पर सब प्रकार का भेद-भाव खत्म कर दिया गया है। यह प्रयत्न किया जा रहा है कि हरिजन हिन्दुओं और जैनियो के मन्दिरों में प्रवेश कर सकें। इंगलैण्ड में धार्मिक समानता अभी तक स्थापित नहीं हुई है क्योंकि वहाँ सम्राट् रोमन कैथोलिक नारी से विवाह नहीं कर सकता और न ही कोई रोमन कैथोलिक वहाँ का सम्राट् बन सकता है। हमारे देश में किसी भी धर्म को मानने वाला राष्ट्रपति बन सकता है।

सारांश

स्वतन्त्रता और समानता—स्वतन्त्रता का भ्रममूलक अर्थ है बन्धनों का न होना परन्तु स्वतन्त्रता का सही अर्थ है कि ऐसा वातावरण उत्पन्न किया जाय जिसमें मनुष्यों को अपने पूर्ण विकास के लिए अधिक से अधिक अवसर प्राप्त हों। स्वतन्त्रता कई प्रकार की होती है, जैसे स्वाभाविक, वैयक्तिक, राष्ट्रीय, वैधानिक, राजनैतिक, नागरिक, आर्थिक, नैतिक और धार्मिक। स्वाभाविक स्वतन्त्रता का अर्थ है कि मनुष्य स्वभाव से स्वतन्त्र रहना चाहता है और वह किसी प्रकार के बन्धनों को पसन्द नहीं करता। वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अभिप्राय है कि मनुष्य अपने दैनिक जीवन में किसी का हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकता। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का अर्थ देश की पूर्ण स्वतन्त्रता से है अर्थात् देश किसी बाहरी शक्ति के अधीन नहीं होना चाहिए। वैधानिक स्वतन्त्रता का अर्थ है कि लोग अपने देश के लिए स्वयं संविधान बना सकें, जैसे भारतीयों को अपना संविधान बनाने की शक्ति केवल सन् १९४७ के पश्चात् ही प्राप्त हुई। राजनैतिक स्वतन्त्रा का अर्थ है कि प्रत्येक वयस्क को मताधिकार और निर्वाचित होने का अधिकार प्राप्त है। आर्थिक स्वतन्त्रता का अर्थ है कि प्रत्येक पुरुष को उद्योग-धन्धे चुनने के लिए स्वतन्त्रता होनी चाहिए और मजदूरों की नौकरियाँ सुरक्षित रहें तथा

1. "Where there are rich and poor, educated and uneducated, we find always masters and servants."—*Laski.*

गरीब अमीरों की दया पर न जीवें। नागरिक स्वतन्त्रता का अर्थ है कि व्यक्ति को अपने विकास के लिए भाषण, लेखन और विश्वास आदि की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। धार्मिक स्वतन्त्रता का अर्थ है कि प्रत्येक मनुष्य को पूजा-पाठ करने का अधिकार होना चाहिए। राज्य को उसके लिए कोई धर्म-निर्माण नहीं करना चाहिए।

कानून और स्वतन्त्रता में घनिष्ठ सम्बन्ध है। अराजकतावादियों का विचार था कि कानून स्वतन्त्रता का घातक है। व्यक्तिवादी भी स्वतन्त्रता का गलत अर्थ समझते थे। विलियम गोडविन का विचार था कि कानून स्वतन्त्रता के लिए सबसे हानिकारक संस्था है। इसके विरुद्ध लॉक कहता है कि जहाँ कानून नहीं वहाँ स्वतन्त्रता नहीं। वास्तविकता यही है कि अच्छे कानून स्वतन्त्रता की रक्षा करते हैं। संवैधानिक कानून स्वतन्त्रता की विशेष रक्षा करते हैं। समानता और स्वतन्त्रता में भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। आर्थिक सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक समानता के बिना स्वतन्त्रता एक प्रपंच है। यदि मजदूरों के पास रोटी खाने को नहीं तो स्वतन्त्रता से क्या लाभ ? यदि हरिजनों के साथ समाज में घृणात्मक व्यवहार किया जावे, तो स्वतन्त्रता से क्या फायदा ? अतः स्वतन्त्रता और समानता सहचरी हैं।

Important Questions

1. What do you understand by the term 'Liberty' ? What is the relation between Law and Liberty ? (*P. U. April 1951*)

2. What do you understand by the terms 'Liberty' and 'Equality'. Discuss the different meanings given to them. (*P. U. April 1953*)

3. "Civil liberty is not the absence of restraint but an opportunity for self-development." Discuss. (*P. U. April 1954*)

4. Explain the term 'Liberty'. Is there any conflict between the liberty of the individual and the authority of the State ? (*P. U. April 1955*)

5. How are the conflicting demands of law and liberty reconciled in a true democracy ? Can liberty exist without law ? Give examples in support of your answers. (*Delhi H. S. 1954*)

6. Explain what do you understand by the terms 'Equality' and 'Liberty.' Is liberty consistent with equality ? (*Ajmer 1953*)

7. Explain the term 'Equality' and bring out its implications in the social, political and economic spheres. (*M. B. 1953*)

8. Explain the term 'Equality' and examine its implications in the social, political and economic spheres. (*U. P. 1952*)

9. What do you understand by the phrases—Liberty of Speech and Liberty of Press. Can liberty exist without law ?

प्रश्न

१. कहा जाता है कि समानता का सिद्धान्त एक दम मूर्खतापूर्ण है। इस विषय में आपका क्या मत है? (यू० पी० १९२९)

२. आप स्वाधीनता और समानता शब्दों से क्या समझते हैं?
(यू० पी० १९३२, १९३४, १९४६)

३. आप समानता शब्द से क्या समझते हैं? क्या समाज में सब लोगों में समानता स्थापित करना उचित है? किस भाव में समानता प्राप्त करना सम्भव है? (यू० पी० १९३८)

४. "प्रजातन्त्र शासन का मूल सिद्धान्त है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में अधिक से अधिक उन्नति करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए," समझाइये। (यू० पी० १९४२)

५. विभिन्न प्रकार की समानता का वर्णन करो। "समानता की भावना स्वाधीनता के सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं है वरन् उसकी पूरक है।" क्या आप इससे सहमत हैं? (यू० पी० १९४३)

नौवाँ अध्याय

कानून, अपराध तथा दण्ड
(Law, Crime and Punishment)

"कानून अधिकारों और कर्त्तव्यों की वह व्यवस्था है जिसे राज्य लागू करता है।"
—ग्रीन

कानून क्या है ?

कानून शब्द का प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में होता है। कानून से एक व्यवस्था का ज्ञान होता है। कानून से तात्पर्य प्रायः व्यवहार के नियमों से लिया जाता है। कानून प्रायः ऐसे नियमों को कहा जाता है जो मनुष्यों के आपसी सम्बन्धों को क्रम (regulation) में रखते हों। कानून मानवीय भी हो सकते हैं और भौतिक (physical) भी। प्राकृतिक वस्तुओं और ताकतों के व्यवहार के नियमों को भौतिक कानून कहा जाता है, जैसे गेंद को ऊपर उछाला जाय तो यह नीचे गिरेगी। पानी अपनी सतह हमेशा हमवार रखता है अर्थात् पानी ऊपर से नीचे की ओर बहता है। इसी प्रकार से यदि किसी ठोस वस्तु को गर्म किया जाय तो वह फैलेगी और सर्दी से सुकड़ेगी। भौतिक नियम सदा सत्य, अटल और निश्चित रहते हैं। मानवीय कानून उन नियमों को कहा जाता है जो समाज में रहने वाले मनुष्यों के आपसी सम्बन्धों को नियमित करते हैं। मानवीय कानूनों के अन्तर्गत नैतिक कानून, सामाजिक कानून, राज्य के कानून तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानून आ जाते हैं।

परिभाषा—सालमन्ड के शब्दों में कानून नियमों का वह समूह है जिसे राज्य मान्यता देता है और न्याय-व्यवस्था के प्रशासन में लागू करता है। ग्रीन के मतानुकूल कानून अधिकारों और कर्त्तव्यों की वह व्यवस्था है जिसे राज्य लागू करता है। ऑस्टिन के मतानुसार कानून जनता के लिए राजसत्ताधारी की आज्ञा है।[1] वुडरो विल्सन लिखता है कि कानून, स्थिति, विचार तथा स्वभाव का वह अंश है जिसे समान नियमों के रूप में विशिष्ट और नियमानुसार स्वीकृति प्रदान की गई हो और सरकार की शक्ति लागू करती हो।[2] हालैंड के मतानुसार कानून मनुष्य के बाह्य जीवन से सम्बन्धित सामान्य नियम है और यह राज्य की सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति द्वारा लागू किया जाता है।[3]

1. "Law is the command of the sovereign."—*Austin.*

2. "Law is that portion of the established thought and habit which has gained distinct and formal recognition in the shape of uniform rules backed by the authority and power of the government."—*W. Wilson.*

3. "A law is a general rule of external human action enforced by a sovereign political authority".—*Holland.*

अतः नागरिक शास्त्र में कानून ऐसे नियमों को कहा जाता है जो राज्य से बनाये जायँ और जिन पर चलने के लिए राज्य अपने नागरिकों को मजबूर कर सकता है और जो नागरिकों के सामाजिक जीवन तथा आपसी सम्बन्धों को नियमित करते हों।

ऊपर लिखी हुई परिभाषाओं से ये नियम निकलते हैं कि कानून बनाने के लिए राज्य की सार्वभौमिक शक्ति (sovereign power) का होना अत्यन्त आवश्यक है, कानून हमारे आपसी सम्बन्धों को नियमित (regulate) करने के लिए बनाये जाते हैं और यदि हम कानूनों को तोड़ें तो राज्य हमें कानूनों पर अमल करने के लिए मजबूर भी कर सकता है।

उद्देश्य—कानूनों का उद्देश्य हमारे जीवन, स्वतन्त्रता और अधिकारों की रक्षा करना है। कानूनों द्वारा ही हम अपने कर्त्तव्य-मार्ग पर अग्रसर होते हैं। कानून ही हमारे जीवन को नियमित और व्यवस्थित रखते हैं। यदि कानून न हो तो सर्वत्र अराजकता और अशान्ति का साम्राज्य छा जाय। जहाँ कानून नहीं होता, वहाँ बलशाली निर्बलों को हड़प कर जाते हैं, जैसे बड़ी मछली छोटी को खा जाती है। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाला नियम सदा उस समाज पर लागू होता है जहाँ कोई राजसत्ता (sovereign power) नहीं होती। कानूनों द्वारा ही हमारे मौलिक अधिकारों (fundamental rights) की रक्षा होती है। कानून लिखित भी हो सकता है और अलिखित भी। कानून प्राचीन रीति-रिवाजों और रूढ़ियों की शक्ल में भी हो सकता है। कानून का राज्य (rule of law) स्थापित करने के लिए ही न्यायपालिका (judiciary) और कार्यपालिका (executive) की स्थापना की जाती है। राज्य ही समाज में लड़ाई-झगड़े और कलह-द्वेष रोक सकता है। राज्य कानून के द्वारा ही शान्ति स्थापित करता है और लोगों के लाभ के लिए अनेक कार्य करता है।

कानूनों का वर्गीकरण (Classification of Laws)

कानूनों की मुख्य किस्में नीचे दी जाती हैं—

(१) **व्यक्तिगत कानून** (Private Laws)—व्यक्तिगत कानून वे कानून हैं जो मनुष्यों के आपसी सम्बन्धों को निर्धारित करते हैं। इन कानूनों का मनुष्य के सामाजिक जीवन से कोई खास सम्बन्ध नहीं होता। वे केवल यह बतलाते हैं कि एक नागरिक का दूसरे नागरिक से क्या सम्बन्ध होना चाहिए। इन कानूनों की सूची में हम ऋण सम्बन्धी कानून और जायदाद खरीदने व बेचने सम्बन्धी कानून शामिल कर सकते हैं।

(२) **सार्वजनिक कानून** (Public Laws)—सार्वजनिक कानून वे कानून होते हैं जो व्यक्ति का राज्य के साथ सम्बन्ध निर्धारित करते हैं। इन कानूनों द्वारा मनुष्यों को बताया जाता है कि उन्हें सार्वजनिक और सामाजिक क्षेत्र में किस प्रकार का कार्य नहीं करना चाहिए। इन कानूनों को तोड़ने वालों को अपराधी समझा जाता है और राज्य की ओर से उन्हें उचित दण्ड भी दिया जाता है। इन कानूनों में चोरी या डकैती, खून करना और धोखा देना इत्यादि शामिल हैं।

(३) **वैधानिक कानून** (Constitutional Laws)—इसके द्वारा सरकार के स्वरूप, विधान-सभा, कार्यपालिका और न्यायपालिका के संगठन के विषय में काफी ज्ञान प्राप्त होता है। इन कानूनों से देश की शासन-व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त होता है। राष्ट्रपति का चुनाव और मन्त्रिमण्डल की नियुक्ति इत्यादि बातों का ज्ञान केवल हमको वैधानिक कानूनों द्वारा ही होता है। मूलाधिकारों की रक्षा भी वैधानिक कानून द्वारा ही होती है। वैधानिक कानून साधारण कानूनों की भाँति नहीं बदले जा सकते। उनको तबदील करने के लिए एक खास तरीका होता है। इंगलैंड में साधारण और वैधानिक कानूनों में बिल्कुल भेद नहीं है परन्तु भारत और अमरीका में बहुत भेद है।

संविधि (Statute Laws)—ऐसे कानून जो राज्य की विधान-सभा द्वारा बनाये जाते हैं, उन्हें संविधान कहा जाता है। प्रजातन्त्र में अधिकतर कानून विधान-सभा द्वारा बनाये जा सकते हैं। संविधि और वैधानिक कानूनों में काफी भेद रहता है।

अध्यादेश (Ordinances)—यदि देश में किसी प्रकार की कोई असाधारण परिस्थिति उत्पन्न हो जाय और उस समय यदि संसद् न बैठी हो, तो सरकार को यह अधिकार होता है कि थोड़े समय के लिए उस परिस्थिति का सामना करने के लिए कोई कानून बना सके।

साधारण कानून (Common Laws)—ये प्रायः रीति-रिवाजों के आधार पर न्यायालयों में इस्तेमाल होते हैं। इंगलैंड में हजारों इस प्रकार के कानून प्रचलित हैं। हजारों सालों से प्रचलित होने के कारण इनको भी कानून की ही शक्ल मिल जाती है। ये विधान सभा द्वारा नहीं बनाये जाते।

प्रशासनीय कानून (Administrative Laws)—डायसी के अनुसार ये वे नियम हैं जो सरकारी नौकरों के पद और जिम्मेवारियों का, आम जनता के साथ उनके व्यवहार का तथा उन खास-खास अधिकारों का वर्णन करते हैं जो सरकारी नौकरों को खास तौर पर राज्य के द्वारा दिये हुए होते हैं। ये कानून इंगलैंड, भारत और अमरीका में नहीं हैं परन्तु फ्रांस तथा यूरोप के कुछ देशों में प्रचलित हैं। वहाँ पर यदि किसी अफसर का लोगों के साथ झगड़ा हो जाय तो उसकी अपील के लिए विशेष अदालतें बनी हुई हैं और उनका निर्णय आखिरी होता है। वे मुकद्दमे साधारण अदालतों में नहीं जा सकते। इंगलैंड और भारत में लोगों के आपसी झगड़ों और अफसरों के साथ लड़ाइयों को निपटाने के लिए साधारण अदालतें हैं। चाहे कोई प्रधान मन्त्री है अथवा चपरासी, उसके झगड़े का निपटारा करने के लिए कोई विशेष अदालतें नहीं हैं, उसे साधारण अदालतों में ही उपस्थित होना पड़ेगा। फ्रांस और इटली में नागरिकों के आपसी झगड़ों को सुलझाने के लिए साधारण अदालतें और नागरिकों तथा सरकारी अफसरों में वाद-विवादों का फैसला करने के लिए प्रशासनीय अदालतें (administrative courts) हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून (International Laws)—वे कानून हैं जो कि अधिकांश राष्ट्रों द्वारा आपसी व्यवहार में बरते जाते हैं। ये नियम प्रत्येक राष्ट्र द्वारा अपनी सुविधाओं और नैतिक स्तर के अनुसार लागू किए जाते हैं (International Law is the body of rules which civilised states observe in their

dealings with each other, these rules being enforced by each particular state according to its own moral standard or convenience)। वास्तव में यह स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों को लागू करना प्रत्येक राष्ट्र अथवा राज्य की इच्छा पर निर्भर है क्योंकि राज्य-सत्ता (sovereignty) अभी तक राज्यों के पास ही है। इसी कारण से अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों को आस्टिन कानून नहीं मानता।

कानूनों के स्रोत (Sources of Law)

यद्यपि यह ठीक है कि आजकल अधिकतर कानून राज्य की संसद् (Parliament) या विधान-सभा द्वारा बनाये जाते हैं, तथापि केवल यही कानूनों के स्रोत नहीं हैं। कानूनों के निम्नलिखित मुख्य स्रोत हैं—

(१) **रीति-रिवाज** (Custom)—प्राचीन काल में रीति-रिवाजों का बहुत अधिक महत्त्व था। प्रत्येक कबीले के अपने-अपने रीति-रिवाज होते थे। कबीले के प्रत्येक सदस्य की दृढ़ श्रद्धा और भक्ति उन रीति-रिवाजों में होती थी। जब कबीले के सदस्यों में कोई लड़ाई-झगड़ा होता था, तो उसका फैसला कबीले के रीति-रिवाजों के अनुसार कबीले के सरदार द्वारा किया जाता था। शनैः शनैः जब एक कबीले के सरदार ने अपना राज्य फैला लिया तो उसने रीति-रिवाजों को कानून का रूप दे दिया। इस प्रकार इंगलैंड में कॉमन ला (Common Law) की नींव पड़ी। महाराज रणजीतसिंह ने भी बहुत-थोड़े कानून बनाये, अधिकतर फ़ैसले उसने रीति-रिवाजों के अनुसार ही किये। आजकल भी पंजाब में बहुत से रीति-रिवाजों को कानूनों का रूप दिया हुआ है। वज़ीरिस्तान (काबुल और पाकिस्तान के मध्य देश में) आजकल भी सारे फ़ैसले कबीले की रस्म व रिवाज के अनुसार ही होते हैं।

(२) **धार्मिक सिद्धान्त** (Religion)—धार्मिक सिद्धान्त भी कानून का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। प्रचीन काल में धर्म का बहुत अधिक प्रभाव था। धर्म का सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में विशेष प्रभाव रहता था। भारत में हिन्दू और मुसलमानों के कानून प्रायः स्मृतियों, कुरान व हदीस में ही लिखे हुए हैं। उस ज़माने में रीति-रिवाजों और धर्म का गहरा सम्बन्ध होता था। रीति-रिवाजों का पालन प्रायः इसलिए किया जाता था कि किसी दैवी शक्ति का प्रकोप न हो। प्राचीन यूनान और रोम में कानून और धर्म में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध था। टर्की में मुस्तफा कमाल पाशा के युग से पूर्व राजनीति और धर्म एक दूसरे पर आश्रित थे। पाकिस्तान में धर्म या मजहब की राजनीति पर गहरी छाप है। वहाँ पर यह यत्न किया जा रहा है कि संविधान कुरान के अनुसार बनाया जाय। पुराने जमाने में खलीफा मुसलमानों का आध्यात्मिक और संसारिक मुखिया (Spiritual and Temporal Head) दोनों होता था। इसी प्रकार योरोप में पोप जो कि ईसाइयों का आध्यात्मिक मुखिया होता था, राजनीति को काफी प्रभावित करता था। धर्म आचरण के नियम बतलाता है, इस वास्ते भी इसका कानून पर प्रभाव है।

(३) **नजीरें तथा न्यायालयों के निर्णय** (Judicial Decisions)—जब न्यायाधीशों के पास मुकद्दमे आते हैं तो कई बार बहुत से नुक्ते कानून में अस्पष्ट

होते हैं। वहाँ पर उन्हें अपनी न्याय-बुद्धि और नैतिकता के अनुसार अस्पष्ट कानूनों की सूक्ष्म व्याख्या करनी पड़ती है और अर्थ को काफी स्पष्ट करना पड़ता है। इस व्याख्या के करने में न्यायाधीश वास्तव में नये कानून का निर्माण करता है। अतः अस्पष्ट कानून का अर्थ समझाते समय वे कानून का बारीक अर्थ निकालते हैं। हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों के दिये हुए फैसले न्यायाधीश-निर्मित कानून या नजीरें (judicial precedents) कहे जाते हैं और वकील अदालतों में अपने मत की पुष्टि के लिए उनको दोहराते हैं।

(४) **न्यायाधीश की न्याय-भावना** (Equity)—न्यायाधीश केवल अस्पष्ट कानून को स्पष्ट ही नहीं करते बल्कि उनके सामने बहुत से मुकद्दमे ऐसे आते हैं जिनमें कानून मौन (silent) होता है वहाँ पर वे मुकद्दमों का फैसला अपनी न्याय-भावना और बुद्धि के अनुसार करते हैं।

(५) **वैज्ञानिक टीकाएँ** (Scientific Commentaries)—प्रत्येक देश में कानून-विशारद (jurists) वहाँ के प्रचलित कानूनों पर जो काफी कठिन हैं और आसानी से समझ नहीं आते, प्रकाश डालते हैं। वे कानून की समालोचना भी करते हैं और खराब कानूनों के सुधार के लिए सुझाव पेश करते हैं। भारत में मनु, याज्ञवल्क्य तथा विज्ञानेश्वर, ग्रीस में सोलन, इंग्लैंड में कोक और ब्लैकस्टोन इत्यादि कानून-विशारद हुए हैं। कभी-कभी ये कानूनी पण्डित प्रचलित नियमों का संग्रह कर उनको सुव्यवस्थित भी करते हैं। यह सत्य है कि ये कानूनी पण्डित कानून के निर्माता नहीं हैं तथापि वकील और जज न्याय के समय उनका बहुत ध्यान रखते हैं।

(६) **विधान सभाएँ** (Legislatures)—आजकल कानून का सब से महत्त्व-पूर्ण स्रोत विधान सभाएँ या व्यवस्थापिका सभाएँ हैं। प्रत्येक देश में आजकल अधिकतर कानून इन सभाओं द्वारा बनाये जाते हैं और राज्य की शक्ति द्वारा लागू किये जाते हैं। ऐसे कानूनों का उल्लंघन करने पर व्यक्तियों को न्यायालयों द्वारा दण्ड मिलता है।

कानून और आचार शास्त्र का सम्बन्ध
(Relation between Law and Morality)

आचार शास्त्र नागरिकों को सदाचार की शिक्षा देता है। वह उन्हें सत्य और असत्य में भेद करना सिखलाता है। इसके द्वारा हमें पता चलता है कि हम गलत रास्ते पर हैं या ठीक रास्ते पर। आचार शास्त्र हमारे सम्मुख नैतिकता का मार्ग उपस्थित करता है और हमको समाज के प्रति सद्व्यवहार करने की अनुमति देता है। राज्यकृत कानूनों का भी उद्देश्य यही है कि वे समाज का नैतिक स्तर (moral standard) ऊँचा करें, तभी देश का कल्याण हो सकता है। एक मनुष्य आदर्श नागरिक तभी बन सकता है जब कि उसने नैतिकता का पाठ आरम्भ से ही पढ़ा हो। जिस समाज का नैतिक स्तर ऊँचा है, उसी समाज में अधिक से अधिक आदर्श नागरिक निर्माण हो सकते हैं। यदि कानून का आधार नैतिकता हो तो कानून बहुत अधिक प्रभावशाली हो जाता है। यदि कहीं नागरिक का नैतिक स्तर बहुत गिर

जाय और वे सदा चोरी, डाके, झूठ और अन्य दुष्कर्मों में लगे रहें, तो उस देश की क्या उन्नति हो सकती है ? प्लेटो के अनुसार सर्वोत्तम राज्य वह है जो कि सद्गुणों में व्यक्ति के सब से निकट है।[1] एक रद्दी राज्य में रद्दी व्यक्ति ही पैदा होंगे। अतः राज्य का कर्त्तव्य है कि वह नागरिकों का नैतिक स्तर सदा ऊँचा रखे। इसी कारण से भारत सरकार छुआछूत को समाप्त करने के लिए अपना भरसक प्रयत्न कर रही है और संविधान में छुआछूत को अवैध (illegal) या गैर-कानूनी भी घोषित किया गया है। मनुष्य मात्र में जाति, धर्म, लिंग (sex) और जन्म-स्थान का भेद-भाव करना पाप है। सरकार यह भी यत्न कर रही है कि मदिरा-पान देश से खत्म हो जाय। शराब पीना पाप है और गैर-कानूनी भी। उन्नीसवीं शताब्दी में सती और ठगी की प्रथा को गैर-कानूनी ठहराया गया। बाल-विवाह की प्रथा को भी कानून द्वारा ही रोका गया।

लेकिन कानून और नैतिकता में काफी भेद भी हैं। सबसे पहला भेद यह है कि कानून राज्य की सार्वभौमिक शक्ति द्वारा मनवाये जाते हैं परन्तु आचार शास्त्रों का पालन मनुष्य अपनी अन्तःकरण की प्रेरणा से करता है। यदि कोई कानून को न जाने तो उसे अवश्य ही राज्य द्वारा दण्ड मिलेगा परन्तु यदि कोई आचार शास्त्र के नियमों का पालन न करे, तो उसको कोई शारीरिक दण्ड नहीं दिया जा सकता। अधिक से अधिक जनता उसको बुरा समझकर घृणित दृष्टि से देखेगी। दूसरे, नैतिकता मनुष्य के आन्तरिक अथवा बाह्य दोनों कार्यों से सम्बन्धित है परन्तु कानून केवल बाह्य कार्यों से ही सम्बन्धित है। इसलिए कानून केवल उन मनुष्यों को दण्ड देता है जो अपने बाह्य कार्यों के कारण दूसरों के अधिकारों पर छापा मारते हैं, जैसे कोई आदमी अगर चोरी, डाका, कत्ल या कोई और जुर्म करे तो उसको कानून सजा देगा परन्तु झूठ बोलने पर दण्ड नहीं देगा। झूठ बोलना, निन्दा करना, द्वेष करना और कृतज्ञता को महसूस न करना पाप है परन्तु अवैध या गैर-कानूनी नहीं है। तीसरे, राज्य के कानून बहुत सी बातों को जो नैतिक दृष्टि से अनुचित हैं, जैसे अकृतज्ञता, झूठ बोलना, गरीबों की भलाई न करना, बहुत लालच करना—अनुचित नहीं समझते। इतना ही नहीं बल्कि एक राज्य बहुत बार जब दूसरे राज्यों से बर्ताव करता है, तो अनैतिकता को अपने राष्ट्रीय पुरुषों के लाभ के लिए अपनाता भी है। मैक्यावली ने राज्य के हित के लिए की गई अनैतिकता (immorality) को भी उचित ही माना है। इसी तरह से बहुत सी ऐसी बातें हैं जिनको राज्य अनुचित समझकर दण्ड भी देता है परन्तु नैतिकता की दृष्टि से वे सर्वथा उचित हैं, जैसे सड़क की दाईं ओर चलना, बाज़ार में बहुत तेज़ी से मोटर चलाना। वास्तविकता यह है कि आचार शास्त्र के नियम नैतिक कर्त्तव्यों से सम्बन्ध रखते हैं और कानून केवल शासन-सम्बन्धी कर्त्तव्यों से। चौथे, कानून और नैतिकता में यह भी अन्तर है कि कानून निश्चित और सर्वव्यापी होते हैं अर्थात् कानून सब नागरिकों पर एक जैसे लागू होते हैं परन्तु नैतिक नियम अनिश्चित होते हैं। इतना ही नहीं बल्कि कई दफा

1. "The best State", according to Plato, "is that which is nearest in virtue to the individual. If any part of the body politic suffers, the whole body suffers."

समाज में बहुत सी जातियों के नैतिक विचार भिन्न-भिन्न होते हैं, उदाहरणार्थ, भारत में बहुत से लोग शराब और मांस का भक्षण अनैतिक समझते हैं, दूसरे कुछ लोग इसको अच्छा समझते हैं और मद्यपान तथा मांस को फैशन में गिनते हैं और इन चीजों का प्रयोग न करने वालों को लकीर का फकीर समझते हैं। सरकार को कानून मनवाने के लिए लोगों की नैतिक भावना सदैव जाग्रत करनी चाहिए और जो कानून लोगों के नैतिक विचारों से बहुत ज्यादा आगे बढ़े हुए होते हैं, वे कम सफल होते हैं; जैसे शारदा एक्ट अथवा विधवा-विवाह कानून। अन्त में हम यह कह सकते हैं कि नैतिकता राज्य द्वारा नहीं थोपी जा सकती। मेरा यह नैतिक कर्त्तव्य है कि अपने माँ-बाप, भाई-बहन की सेवा करूँ और निर्धनों को दान दूँ, परन्तु राज्य मुझे ऐसा करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता। इसी प्रकार से राज्य का कोई कानून मुझे मन्दिर या गुरुद्वारे में जाने के लिए मजबूर नहीं कर सकता। नैतिकता अन्तःकरण की प्रेरणा और जनमत के भय से केवल मानी जाती है।

प्राकृत और राज्यकृत कानूनों में अन्तर
(Difference between Natural and State Laws)

प्राकृत कानून का भिन्न-भिन्न अर्थ लिया जाता है। प्राकृत कानून की कल्पना सब से पहले यूनानी दार्शनिकों ने की थी। उनका विचार था कि तमाम संसार का संचालन प्रकृति द्वारा होता है। स्टोइक दार्शनिकों (Stoic philosophers) का मत था कि संसार का संचालन ईश्वरीय वृद्धि तथा शक्ति द्वारा होता है, अतः प्राकृतिक नियम उसी ईश्वर ने बनाये हैं। ईश्वरीय विवेक पर अवलम्बित होने के कारण ये नियम सदा सत्य हैं। रोमन लोगों ने शनैः शनैः अपने राज्यदत्त कानून (*jus jentium*) को प्रकृतिदत्त कानून (*jus naturale*) पर अवलम्बित कर दिया। मध्य-युग के पादरियों ने इसे ईश्वर का कानून बताया। हॉब्स, लॉक और रूसो ने भी इसको अपने समझौते के सिद्धान्त में भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया। स्पेन्सर ने प्राकृतिक कानून का समान अधिकारों के अर्थ में इस्तेमाल किया। बहुत से यह समझते हैं कि प्राकृतिक कानून वे आदर्श नियम हैं जो व्यक्ति के पूर्ण विकास के लिए बहुत जरूरी हैं। परन्तु कभी-कभी इसका प्रयोग भौतिक कानूनों के लिए भी होता है, जैसे दो हिस्से हाइड्रोजन और एक हिस्सा ऑक्सीजन मिलाने से पानी बन जाता है। इस दशा में प्राकृतिक और मानवीय कानूनों में निम्नलिखित भेद हैं—

(क) प्राकृतिक या भौतिक कानून प्रकृति की समानता को बतलाते हैं, जैसे गुरुत्वाकर्षण (law of gravity) सिद्धान्त और पानी का सिद्धान्त इत्यादि। प्राकृतिक कानून हमको यह बतलाते हैं कि यदि कोई चीज ऊपर उछाली जाय तो यह नीचे को गिरेगी। ठोस चीजें गरमी से फैलती हैं और सर्दी से सुकड़ती हैं। पानी हमेशा अपनी सतह समतल रखता है। राज्य द्वारा बनाये हुए कानूनों से नागरिकों का बाह्य जीवन नियमित किया जाता है।

(ख) यदि प्राकृतिक नियम किसी स्थान पर ठीक न बैठें तो हम समझते हैं

कि वह नियम गलत था परन्तु राज्यकृत कानूनों के सम्बन्ध में हम ऐसा नहीं कह सकते। यदि कोई कानून का उल्लङ्घन करे तो हम उसको अपराधी समझकर दण्ड देते हैं। कई बार लोग मानवीय कानूनों का ठीक होने पर भी विरोध करते हैं, जैसे सती-प्रथा के सम्बन्ध में जब कानून बना, तो उसका कड़ा विरोध किया गया।

(ग) भौतिक कानूनों की मनुष्य खोज करता है, उन्हें बनाता नहीं है, परन्तु राज्य के कानून मनुष्य द्वारा बनाये जाते हैं।

(घ) राज्य के नियम सदा एक जैसे नहीं रहते। राज्य के कानूनों में समय-समय के अनुसार परिवर्त्तन करना पड़ता है परन्तु भौतिक नियम सब जगह और सब हालतों में अटल और सत्य हैं।

अच्छे और बुरे कानून की पहचान
(Distinction between Good and Bad Laws)

अच्छे कानून सारी जनता के लिए लाभदायक होते हैं, वे किसी खास तबके या वर्ग के हित के लिए नहीं होते। जो कानून किसी प्रकार से अमीर-गरीब का भेद-भाव नहीं करते और जिन से सारी जनता का हित हो, वही कानून न्याय-संगत कहे जा सकते हैं। यदि कानून ज़मींदारों और पूंजीपतियों या किसी और शक्तिशाली वर्ग के लाभ के लिए बनाये जायें, तो वे कानून किसानों और मज़दूरों का खून चूसेंगे और ऐसे कानून न्यायसंगत नहीं कहे जा सकते। अतः कानून ऐसा होना चाहिए जिससे गरीबों के अधिकार न छिनें। कानून के द्वारा व्यक्ति के पूर्ण विकास में कोई बाधा नहीं आनी चाहिए। अतः कानून वही अच्छा है जिस से सब का लाभ हो। ऐसे भी कानून हो सकते हैं जो कि अमीरों को हानि पहुँचाते हैं, जैसे ज़मींदारी को खत्म करने का कानून, परन्तु ये गरीबों के लाभ के लिए हैं, अतः अच्छे कानून समझे जायेंगे।

मिस्टर बेन्थम ने अच्छे कानून के निम्नलिखित लक्षण बतलाये हैं—

(१) **स्थायित्व** (Permanence)—इसका यह अर्थ है कि कानून प्रतिदिन नहीं बदलते रहने चाहिएँ। जब कानून बहुत शीघ्र बदलते रहें तो नये-नये कानूनों का लोगों को पता चलना कठिन हो जाता है। यदि एक कानून पर ठीक तरह से अमल हुए बिना और दूसरा कानून आ जाये, तो ऐसी सूरत में गड़बड़ हो जायेगी। अतः कानून बहुत सोच-समझकर बनाये जाने चाहिएँ और फिर ठीक प्रकार से लागू किये जाने चाहिएँ, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि आवश्यकता पड़ने पर कानून बदले ही न जायें। यदि कोई विशेष आवश्यकता पड़ जाय तो कानून बदले भी जाने चाहियें परन्तु ज़रा-ज़रा सी बात पर कानून में परिवर्तन करना ठीक नहीं।

(२) **व्यापकता** (Universality)—कानून सब मनुष्यों पर बिना किसी भेद-भाव के लागू होने चाहिएँ। ऐसा नहीं होना चाहिए कि बलशाली और अमीर कानून के शिकंजे से बच जायें और गरीब ही केवल कानून के पंजे में फँसे रहें। चाहे देश में कोई ऊँचे से ऊँचा व्यक्ति हो अथवा छोटे से छोटा, कानून के सामने सब बराबर होने चाहिएँ।

(३) **सरलता**—कानून ऐसा होना चाहिए जो कि लोगों की समझ में आसानी से आ जाय।

(४) **पालन में सरलता**—कानून ऐसा होना चाहिए जो कि लोगों से आसानी से पालन करवाया जा सके।

बैन्थम के चार सिद्धान्त ठीक हैं परन्तु उसने सार्वजनिक हित की चर्चा नहीं की। कोई कानून समाज के लिए कल्याणकारी सिद्ध नहीं हो सकता, यदि उसका लक्ष्य सब व्यक्तियों को लाभ पहुँचाना न हो। इसके अतिरिक्त कानून लोगों के प्रतिनिधियों द्वारा बनाना चाहिए। कानून का उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास होना चाहिए। कानून दीन-दुखियों को सताने के लिए नहीं बल्कि उनके लाभ के लिए होने चाहिएँ। कानून लोगों की नैतिक भावना के अनुकूल होने चाहिएँ ताकि लोग उनको अपनी हार्दिक इच्छा से मानें, न कि केवल भय के कारण। बुरे कानून लोगों को सताते हैं. उनके दैनिक जीवन में अनावश्यक दखल देते हैं और किसी वर्ग-विशेष के हित के लिए होते हैं। अच्छे कानून लोगों की सच्ची स्वतन्त्रता और अधिकारों की रक्षा करते हैं।

क्या नागरिक कानूनों की अवहेलना कर सकता है ?
(Can the Citizen disobey the Laws ?)

यदि कानून अच्छे हैं तो उनको न मानने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। लोकतन्त्रात्मक राज्यों में कानून जनता की इच्छा के ही मूर्त्त रूप होते हैं, परन्तु तानाशाही राज्यों अथवा निरंकुश राज्यों (despotic states) में प्रायः ऐसा देखा जाता है कि सारे कानून जनता के हित के लिए नहीं बनाये जाते। लोकतन्त्रात्मक राज्यों में भी कई बार कानून ऐसे बनाये जाते हैं जो पूंजीपतियों के ही हित में होते हैं। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या जनता को यह अधिकार है कि वह ऐसे कानूनों का उल्लंघन कर सके। अब यह सर्वसम्मति से मान लिया गया है कि निस्सन्देह जनता को ऐसे कानूनों के परिवर्तन कराने का अधिकार है, परन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शक्ति का प्रयोग वर्जित है। जनता को चाहिए कि वह राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी के तरीकों को अपनाये। पहले रद्दी कानूनों को हटवाने के लिए शान्तिमय संविधानात्मक तरीके अपनाये जायें। प्रेस, पब्लिक प्लेटफार्म तथा विधान-सभा में ऐसे नियमों का घोर विरोध करना चाहिए। यदि फिर भी सफलता प्राप्त न हो तो चुनाव के समय इसे मुख्य प्रश्न बनाना चाहिए। यदि ये सारे उपाय असफल हो जायें तो उस समय सविनय अवज्ञा आन्दोलन (civil disobedience) या सत्याग्रह अथवा करों को न देने का आन्दोलन (movement) और असहयोग (non-co-operation) तथा धरना (picketing) इत्यादि आरम्भ किये जा सकते हैं। ऐसा करते समय यह अवश्य देख लेना चाहिए कि जनता की नैतिक भावना हमारे साथ है या नहीं। प्रो० लास्की का मत था कि कानून यदि व्यक्ति का विकास न करे और उसमें बाधक सिद्ध हो तो उसको तोड़ा जा सकता है।

क्या नागरिक किसी दशा में फौज में काम करने से इनकार कर सकता है ? (Can a citizen refuse to serve in the army when called upon to do under any circumstances ?)

यदि किसी देश का हमारे देश पर हमला हो जाये और हमारी प्यारी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता खतरे में हो तो हमें अपने देश के लिए अपने जीवन की बलि देने में कुछ भी संकोच नहीं करना चाहिए और सरकार को भी यह अधिकार है कि सब स्वस्थ युवकों से वह सैनिक-सेवा ले सके, परन्तु यदि हमारी सरकार कोई साम्राज्यवादी युद्ध करती है अर्थात दूसरे देशों के लोगों को गुलाम बनाने के लिए उन पर कोई हमला करती है तो हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम ऐसे युद्ध में सरकार का साथ न दें।

अपराध तथा दण्ड (Crime and Punishment)

अपराध क्या है ?

राज्य समाज में शान्ति और सुव्यवस्था को कायम करने के लिए कानून बनाता है, अतः उसको तोड़ना अपराध है—राज्य का परम कर्त्तव्य है कि समाज में शान्ति और सुव्यवस्था रखे। यह तभी हो सकता है जब कि राज्य सार्वजनिक हित के लिए कानून बनाए। कानून बहुत सोच-समझ कर बनाए जाने चाहिएँ और उनका लक्ष्य किसी विशेष वर्ग अथवा दल की भलाई न होकर समाज का कल्याण होना चाहिए। कानून गरीबों, दीन-दुखियों, किसानों और मज़दूरों की भलाई के लिए होने चाहिएँ। ऐसे कानून जो गरीबों का खून चूसते हैं, बिल्कुल समाज का कल्याण नहीं कर सकते। अतः खराब कानूनों को तोड़ना कोई पाप नहीं। आजकल लोक-तन्त्रात्मक राज्यों में कानून लोकमत का प्रतिबिम्ब होते हैं और ये सब की भलाई के लिए ही बनाए जाते हैं, अतः कानून का तोड़ना अपराध है। कानून का पालन लोग केवल शान्ति और सुव्यवस्था की दृष्टि से नहीं, बल्कि भय के कारण भी करते हैं। प्रत्येक समाज में कुछ न कुछ लोग ऐसे होते हैं जो दूसरों के अधिकारों की तनिक भी परवाह नहीं करते। यदि राज्य ऐसे मनुष्यों को दण्ड न दे, तो समाज में शान्ति कदापि नहीं रह सकती। अतः राज्य के बनाए कानूनों को तोड़ना अपराध है और अपराधी दण्ड का अधिकारी है।

अपराध और पाप में अन्तर (Difference between Crime and Sin)

अपराध और पाप में बहुत अन्तर है।[1] किसी देश के कानून को तोड़ना

1. Mr P. J. Jagirdar says, "There is a difference between 'crime' and 'sin.' Crime is a violation of the law of the State; sin is a violation of the rules of morality. All rules of morality are not turned into laws of the State; and there are several reasons why this can not be done. Firstly, laws are mainly concerned with anti-social acts and morality with such acts as well as with acts which are harmful only to those who do them. (Example Indolence). Secondly, law must include only those wrongs which can be proved and there are several moral wrongs which can not be definitely proved. Thirdly, although crime is anti-social, not all anti-social acts are made criminal by law.....But though many sins are not crimes it remains true that most crimes are sins ; and generally speaking, what is legally wrong is rightly regarded as morally wrong."

अपराध है, परन्तु ईश्वरीय और धार्मिक नियमों का उल्लंघन करना पाप है। बहुत से दुष्कर्म पाप और अपराध दोनों हैं। बहुत से कार्य पाप में शामिल हैं परन्तु जुर्म नहीं कहे जा सकते; उदाहरणस्वरूप, चोरी, डकैती, खून करना इत्यादि पाप और जुर्म दोनों हैं परन्तु झूठ बोलना, द्वेष करना, बुरे विचार रखना और शराब तथा मांस का अपने घरों में प्रयोग करना पाप तो अवश्य है परन्तु उन्हें जुर्म नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार सड़कों पर दाईं ओर चलना अपराध है परन्तु पाप नहीं। विदेशी राज्य के विरुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन, सत्याग्रह, करों का न देना और सविनय अवज्ञा आन्दोलन (civil disobedience) करना पाप नहीं है परन्तु अपराध अवश्य हैं। विदेशी राज्य से अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र करना प्रत्येक नर-नारी का परम धर्म है परन्तु विदेशी सरकार की दृष्टि में यह घोर अपराध समझा जायगा। यह बात अवश्य जान लेनी चाहिए कि कानून मनुष्य के बाहरी सम्बन्धों को नियमित करते हैं और धर्म का सम्बन्ध प्रायः अन्तरात्मा से होता है। अतः धर्म और अधर्म का न्याय मनुष्य के अन्तःकरण की भावना तथा समाज के नैतिक स्तर (moral standard) पर निर्भर है।

अपराध के कारण (Causes of the Crime)

अपराधों के निम्नलिखित कारण हैं—

(i) **वंशानुगत अथवा पैतृक** (Hereditary)—भारत में कई जातियाँ ऐसी हैं जिनका पेशा ही चोरी और डकैती करना है। अपराधी माँ-बाप के बच्चे जन्म से ही अपने माता-पिता के लक्षण सीख जाते हैं और वे भी अपराधी बन जाते हैं। इस तरह यह जुर्म का पेशा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता है। कई डाकुओं के वंश में यह पेशा सैकड़ों वर्षों से चल रहा है। वंश-परम्परा का प्रभाव अवश्य पड़ता है।

(ii) **दोषपूर्ण पालन-पोषण** (Defective Nourishment or Upbringing)—दूसरे, अपराध का कारण यह है कि कई बच्चों की परवरिश अच्छी संगत में नहीं होती अर्थात् दूषित वातावरण में होती है। बहुत से बच्चों के माँ-बाप अपने बच्चों की तरफ कोई ध्यान नहीं देते और उनके बच्चे खराब संगतों में पड़ जाते हैं। बहुत से माँ-बाप अपने बच्चों को जरूरत से ज्यादा प्यार करते हैं और उनका अपराध देखते हुए भी बचपन में कुछ नहीं कहते। यदि बच्चे को शुरू में ही चोरी और जुए की आदत पड़ गई और उसी समय बन्द न की गई तो बड़े होकर ये आदतें आसानी से जाने वाली नहीं।

(iii) **आर्थिक परिस्थिति**—कई बार मनुष्य को शुरू से कोई ऐसा काम नहीं सिखाया जाता जिससे वह अपनी रोजी बड़ा होने पर आसानी से कमा सके। बेरोजगारी और आर्थिक विषमता अपराध को जन्म देती है। एक प्राचीन कहावत प्रसिद्ध है कि भूखा मरता क्या न करता अर्थात् भूखा पुरुष कौनसा पाप करने को तैयार नहीं हो जाता।

(iv) **मानसिक रोग**—कई बार मानसिक रोग अपराधी प्रवृत्तियाँ पैदा कर देते हैं। ऐसे रोगों की लिस्ट में एक नाड़ी दुर्बलता रोग (neurasthenia) है। ऐसे रोगों से अपराधों की वृद्धि होती है।

(v) **नशा लाने वाली चीजों का प्रयोग**—बहुत से मनुष्य शराब और अफीम तथा अन्य नशा लाने वाली चीजों का बहुत अधिक मात्रा में प्रयोग करते हैं। फलतः वे नित्य नए जुर्म करते हैं। शराबी को बिल्कुल होश नहीं रहती कि वह कोई अच्छा काम कर रहा है अथवा बुरा। अपराधों का मुख्य कारण शराब का अत्यधिक प्रयोग है। इसी कारण से भारतीय सरकार शराब को बन्द करने की कोशिश कर रही है। बम्बई, मद्रास और आन्ध्र सरकार को इस विषय में काफी सफलता मिली है।

(vi) **सामाजिक परिस्थितियां**—कई बार मनुष्य को नैतिक शिक्षा बिल्कुल प्राप्त नहीं होती है। वह चोरी, डाके और खून को पाप नहीं समझता क्योंकि मनुष्य की संगत कई बार ऐसे काम करने वालों के साथ हो जाती है। कई बालकों की माताएँ अशिक्षित होती हैं और वे बच्चों को अच्छे रास्ते पर लगाने में प्रायः असफल रहती हैं। कई बार ऐसी सामाजिक परिस्थिति होती है कि व्यक्ति को बहुत ज्यादा निराशा का सामना करना पड़ता है, अतः वह खुदकशी या आत्म-हत्या के लिए उतारू हो जाता है। कई बार दहेज इत्यादि की प्रथाएँ भी ऐसा करने पर मजबूर कर देती हैं। कई बार कुटुम्ब में चौबीसों घण्टे बहुत अधिक क्लेश रहता है। कई बार बहुत से नेता अपना उल्लू सीधा करने के लिए समाज में इतना विष का बीज बो देते हैं कि लोगों में धर्म के आधार पर लड़ाई-झगड़े अथवा दंगे हो जाते हैं। सन् १९४७ में भारत और पाकिस्तान में जो खून बहाया गया, उसकी मिसाल आसानी से नहीं मिल सकती।

अपराध कैसे कम किए जा सकते हैं ?—अतः हम कह सकते हैं कि बहुत से युवक माता-पिता की लापरवाही, खराब मकान, बुरे साथी, अच्छे खेलों की कमी, दोषपूर्ण शिक्षा, बेकारी, विशेष लालच, निर्धनता, शारीरिक कमजोरी, मानसिक विकार, घरवालों के चारित्रिक दोष, मदिरा-पान आदि से अपराधी बन जाते हैं। अपराध घटाने के लिए बच्चों को ठीक शिक्षा दी जाय। नैतिकता और अनुशासन पर विशेष बल दिया जाय। खेल-कूद में भी अनुशासन सीखा जाता है, अतः सरकार को खेल-कूद का काफी प्रबन्ध करना चाहिए। भूख, बेकारी, गरीबी, मदिरा-पान को खत्म करना चाहिए। खानदानी मुजरिमों के बच्चों को नैतिक शिक्षा और दस्तकारी सिखानी चाहिए ताकि वे सभ्य बन सकें। आजकल जेलों में कैदियों को काम भी सिखाया जाता है और नैतिकता के पाठ भी पढ़ाए जाते हैं।

दण्ड के मुख्य सिद्धान्त (Theories of Punishment)

कौटिल्य (चाणक्य) तथा मनु का विचार था कि दण्ड राज्य का आधार है। जहाँ पर राजा अपना दण्ड उद्यत नहीं रखता, वहाँ पर चोर डाकुओं का साम्राज्य स्थापित हो जाता है (where the king does not keep the sceptre raised, the thieves and the dacoits have their sway)। आचार्य चाणक्य अपनी पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में लिखते हैं कि जो राजा आवश्यकता से अधिक कड़ा दण्ड देता है, उसका लोग मुकाबला करने को तैयार हो जाते हैं और जो जरूरत से ज्यादा नरमी बरतता है, वह घृणित हो जाता है अर्थात् लोग उसकी परवाह करना छोड़ देते हैं

लेकिन जो न्यायपूर्ण दण्ड का प्रयोग करता है, वह लोगों द्वारा सम्मानित होता है।[1] अतः राज्य के नियमों को भंग करने वालों को अपराधी कहा जाता है और उन्हें उचित दण्ड भी दिया जाता है। यदि ऐसा न किया जाय तो बलशाली व्यक्ति निर्बलों का खून चूस लें। दण्ड के कारण ही समाज में शान्ति और सुव्यवस्था कायम रह सकती है। दण्ड के अभाव में समाज में वही स्थिति कायम हो जाती है जैसे कि तालाब में बड़ी मछली छोटी को खा जाती है और जंगल में शेर बाकी जानवरों को अपना भक्ष्य समझता है। अतः दण्ड का होना आवश्यक है ताकि समाज में न्याय का राज्य रहे।

(i) प्रतिशोधात्मक सिद्धान्त (Retributive Theory)

'खून का बदला खून', यह इस सिद्धान्त का मूल आधार है, अब यह बदला लेने का अधिकार राज्य ने स्वयं ले लिया है—प्राचीन काल में यदि कोई किसी की हत्या कर देता था तो मृत पुरुष (murdered person) के रिश्तेदार (murderer) से बदला लेने की कोशिश करते थे और कई बार इस तरह से दुश्मनी कई पीढ़ियों तक चलती थी। मृत पुरुष के रिश्तेदार अपना अधिकार समझते थे कि वे कातिल या हत्यारे से बदला (revenge) ले सकें। प्राचीन काल में 'खून का बदला खून' वाला सिद्धान्त प्रचलित था। 'आँख फोड़ने वाले की आँख फोड़ दो और दाँत तोड़ने वाले के दाँत तोड़ दो,' ऐसा सिद्धान्त अभी तक अफगानिस्तान और पाकिस्तान के बीच में रहने वाले वज़ीरस्तानी कबीलों में प्रचलित है। अतः इस सिद्धान्त का आधार "अदले का बदला" वाला नियम है।

इस सिद्धान्त में असभ्यता की बू है। आजकल यह अधिकार व्यक्ति को नहीं रहा कि वह किसी अपने मृत रिश्तेदार का बदला ले सके। आजकल यह अधिकार राज्य के पास है। राज्य मृत पुरुष के रिश्तेदारों के मुकद्दमों को सुनता है और कातिल को उचित दण्ड देने का यत्न करता है। इस तरह से राज्य मृत पुरुष के रिश्तेदारों के बदले की भावना को सन्तुष्ट करने का यत्न करता है। यदि व्यक्ति को बदला लेने की आज्ञा मिल जाये तो यह सिद्धान्त बर्बरता को बढ़ाने का यत्न करेगा। समाज में अशान्ति और अराजकता का राज्य छा जायेगा। अतः दण्ड देने का अधिकार अब व्यक्ति से राज्य ने ले लिया है।

(ii) दृष्टान्त तथा नियन्त्रणात्मक सिद्धान्त (Preventive and Deterrent Theory)

इस सिद्धान्त के समर्थकों का विचार है कि राज्य अपराधी के लिए ऐसा दण्ड निश्चित करे जिससे अपराधों की रोक-थाम हो और दूसरे अपराधियों को भी सबक

1. "No," says Kautilya ; "for whoever imposes severe punishment becomes repulsive to the people ; while he who awards mild punishment becomes contemptible. But whoever imposes punishment as deserved becomes respectable. But when the law of punishment is kept in abeyance, it gives rise to such disorder as implied in the proverb of fishes.

मिले।[1] अतः पुराने जमाने में अपराधों की रोक-थाम के लिए चोर और डाकुओं के हाथ-पैर कटवा दिये जाते थे ताकि भविष्य में वे उन्हीं अपराधों को बार-बार न कर सकें। अतः इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य का काम बदला लेना नहीं होना चाहिए बल्कि इसको अपराधी के मन में इतना आतंक पैदा करना चाहिए ताकि दूसरे मनुष्य भी ऐसे घृणित काम करने से दूर रहें। एक न्यायाधीश की कहावत प्रसिद्ध है कि उसने एक अपराधी को दण्ड देते समय कहा कि मैं तुमको दण्ड इसलिए नहीं दे रहा हूँ कि तुमने भेड़ चुराई है बल्कि इसलिए दे रहा हूँ कि भविष्य में लोग दूसरों की भेड़ें न चुरायें। इस कहावत से सिद्ध होता है कि इस सिद्धान्त का लक्ष्य इतना कठोर दण्ड देना है ताकि दूसरों को चेतावनी मिल जाये।

इस सिद्धान्त के अनुसार प्राचीन काल में अपराधियों को फाँसी, हाथ-पैर कटवाने, और हाथियों के पैरों से रुँदवा देने, शेरों के सामने फैंकने, चरखी पर चढ़ा कर हड्डियाँ तोड़ने और काले पानी की सजा (banishment from the country) इत्यादि मिलती थी। राजा के विरुद्ध भाषण देने पर जीभ कटवा दी जाती थी। मौर्यों के काल में छोटी चोरी करने पर भी हाथ-पैर कटवा दिये जाते थे या मृत्यु-दण्ड मिलता था। आचार्य चाणक्य अठारह प्रकार की यातनाओं (tortures) का अपने 'अर्थशास्त्र' में वर्णन करते हैं। मुगलों और पठानों के समय भारत में चोर-डाकुओं और राज-विद्रोहियों को कोड़े लगवाना, शेर के सामने डालना और हाथी के पैरों से कुचलवाना और फाँसी देना साधारण बात समझी जाती थी। मध्यकालीन इंगलैंड में भी अपराधियों के नाक-कान कटवाना, बहुत गर्म सलाखें लगवाना, जिन्दा जलाना और सारी जनता के सामने फाँसी देना साधारणतया चालू था। आजकल लोगों का विचार है कि इस सिद्धान्त पर अमल करने से कोई लाभ नहीं हो सकता। कड़ी सजायें देने से अपराधों में कोई कमी नहीं आ सकती, जैसा कि एलिज़ाबेथ-कालीन एक घटना से सिद्ध होता है कि यद्यपि उस समय जेबकतरों को मृत्यु-दण्ड सारी जनता के सामने मिलता था लेकिन उसी समय दूसरे पुरुष जनता की जेब कतरने में लगे रहते थे।

(iii) सुधार सिद्धान्त (Reformative Theory)

लोम्ब्रोसो और अन्य सुधार सिद्धान्त के मानने वाले व्यक्तियों का विचार है कि अपराध एक प्रकार की बीमारी है और उसका इलाज होना आवश्यक है। इसका अर्थ यह है कि जैसे किसी रोग-विशेष का इलाज करने से पहले उसके कारण (causes) तलाश किये जाते हैं और उसके बाद उनको दूर करने के लिए इलाज

1. Mr. Jagirdar says, "According to the preventive or deterrent theory, the aim of punishment is to prevent the criminal himself and others from committing similar offences in future—"to make the consequences of wrong doing so terrible that the offender would thereby be deterred from a repetition of his offence and others from any imitation of it·····Men can not be made good by fear alone. Crime is the outward expression of anti-social desire. Fear can do little more than curb the outside expression of the desire, which then remains to work itself in some other way."

शुरू किया जाता है, उसी प्रकार से जुर्म के कारणों का पहले पता लगाना चाहिए और फिर उनको दूर करने के लिए यत्न करना चाहिए। बहुत से लेखकों का विचार है कि मनुष्य प्रायः जुर्म इसलिए करता है कि उसकी नैतिक शिक्षा बाल्यावस्था में बिल्कुल नहीं हुई, वह अत्यन्त गरीब है और उसको दो वक्त रोटी भी नसीब नहीं होती, उसको ऐसा कोई काम नहीं आता जिससे वह दो वक्त पेट भरने के लिए काफी धन कमा सके, उसे किसी दूषित सामाजिक वातावरण में रहना पड़ा हो या वह खराब संगत में रहा हो जहाँ उसे चोरी, डकैती, जूए और जेब काटने की आदत पड़ गई तथा शराब का अधिक इस्तेमाल करता हो या मानसिक रोग से पीड़ित हो। सुधारात्मक सिद्धान्त को मानने वालों का कहना है कि सरकार को चाहिए कि वह इन कारणों को दूर करे ताकि जुर्मों में कुछ कमी हो। केवल अपराधी को दण्ड देने से न जुर्मों में कमी होगी और न समाज को कोई लाभ होगा। एक पुरानी कहावत प्रसिद्ध है "भूखा मरता क्या न करता"[1] अतः राज्य को समाज से गरीबी, आर्थिक विषमता (glaring economic inequality), मदिरा-पान और जुआ खेलने के स्थान दूर करने चाहिएँ। जेलों में मानसिक रोगों से पीड़ित कैदियों के इलाज के लिए अस्पताल खोले जायें। इतना ही नहीं बल्कि जेलों में शिक्षा और दस्तकारी सिखाने का उचित प्रबन्ध हो ताकि नये-नये अपराधी शीघ्र ही सुधर जायें। अल्प-वयस्कों (Minors) के जुर्मों की जाँच-पड़ताल करने के लिए अलग अदालत और अलग जेलें होनी चाहिएँ ताकि वे बहुत पुराने और स्वाभाविक अपराधियों के सम्पर्क में न आयें। ऐसी जेलें जिन में साफ हवा और रोशनी नहीं जाती हो वे गिरा दी जाएँ। और उनके स्थान पर स्वास्थ्य को खराब न करने वाले बन्दी-गृह बनाये जायें। कैदियों के लिए दूषित चीजें (जैसे रेत मिला हुआ आटा) न पहुँचाई जाएँ और जेल के डाक्टरों द्वारा उनका मैडिकल टैस्ट किया जाए। अपराधी को अपराध के अनुसार ही सज़ा मिलनी चाहिए। ऐसा न हो कि छोटे-छोटे अपराधों के लिए अत्यन्त कठोर दण्ड मिले या हाथ-पैर कटवा दिये जायें। संक्षेप में जेल-यातनाएँ भोगने के स्थान न होकर सुधार-गृह (reformatory) बन जाएँ।

(iv) आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of Punishment)

आधुनिक सिद्धान्त में तीनों सिद्धान्तों का सम्मिश्रण है। प्रतिशोधक सिद्धान्तों का प्रयोग दीवानी अभियोगों में किया जाता है अर्थात् व्यक्ति को किसी अपराधी द्वारा जो कोई रुपये-पैसे सम्बन्धी हानि पहुँचती है तो राज्य अपराधी पर जुर्माना करके या उससे मुआवज़ा दिलाकर व्यक्ति की सन्तुष्टि करता है। नियंत्रणात्मक सिद्धान्त और दृष्टान्त सिद्धान्त का प्रयोग प्रायः पुराने और स्वाभाविक अपराधियों के साथ किया जाता है ताकि ऐसे अपराधी जुर्म करने से रुकें और व्यर्थ में ही प्रोत्साहित न हों। यदि बहुत पुराने और स्वाभाविक चोर-डाकुओं, लुटेरों और गुण्डों को कठोर दण्ड न दिया जाए तो देश में शान्ति और व्यवस्था कायम नहीं रह सकती और अपराधियों की संख्या में बहुत वृद्धि हो जायेगी। अतः ऐसे व्यक्तियों को कठोर दण्ड देना ही उचित

१. बुभुक्षितः किम् न करोति पापम्।

है, इस से जिन पुरुषों को हानि पहुँचती है उनकी भी सन्तुष्टि हो जाती है और छोटे-छोटे अन्य अपराधियों को भी चेतावनी मिल जाती है। सुधारात्मक सिद्धान्त का प्रयोग प्रायः छोटे-छोटे और नये तथा बालक अपराधियों से किया जाता है। आजकल अपराधियों को जेलों में शिक्षा दी जाती है और उन्हें नैतिकता का पाठ पढ़ाया जाता है। इतना ही नहीं बल्कि उन्हें अनेक प्रकार के उद्योग-धन्धे सिखाये जाते हैं। मानसिक रोग से पीड़ित अपराधियों की चिकित्सा भी कराई जाती है।

इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि राज्य जुर्म के मुताबिक ही सजा दे। यदि जुर्म बहुत संगीन या घृणित है तो कठोर दण्ड मिलना चाहिए वरना साधारण कैद (simple imprisonment) या केवल जुर्माना काफी रहता है। छोटी उम्र के अपराधियों के लिए अलग न्यायालय होने चाहिएँ और जेलों में भी उन्हें अधिक सहूलियतें प्राप्त होनी चाहिएँ। न्याय में जरूरत से ज्यादा देरी करना ठीक नहीं। जेलों की स्थिति में भी सुधार करना अत्यन्त आवश्यक है। अँधेरी कोठरियों को गिरा देना चाहिए ताकि अपराधियों का स्वास्थ्य खराब न हो। राज्य को चिकित्सालय और सुधारालय भी खोलने चाहिएँ। जिस समय अपराधी को दण्ड दिया जाय तो उसके पिछले रिकार्ड, आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति और उसकी उम्र का ध्यान भी रखा जाय। इसके अलावा अपराधी की वंश-परम्परा, कानून तथा व्यवस्था की आवश्यकता और दिये जाने वाले दण्ड का समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इन सब बातों का ध्यान न्यायाधीश को रखना चाहिए। कुछ युवा अपराधियों के लिए बोर्स्टल जेल खोली जायें। बोर्स्टल का मक़सद या लक्ष्य दण्ड देना नहीं, बल्कि शिक्षा देना है।

लॉक का विचार था कि दण्ड के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिएँ–(अ) इसका लक्ष्य समाज की भलाई होना चाहिए और दण्ड अपराध के अनुसार मिलना चाहिए अर्थात् घोर अपराध के लिए कठोर दण्ड और थोड़े अपराध के लिए थोड़ा दण्ड, (ब) इस से घायल पुरुष की सन्तुष्टि होनी चाहिए, (स) दण्ड का लक्ष्य अपराधी को दोबारा अपराध करने से रोकना होना चाहिए, (द) दण्ड दूसरे अपराधियों के लिए एक प्रकार से चेतावनी हो। ग्रीन का विचार था कि राज्य का कर्त्तव्य मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा (free will) के रास्ते में से बाधाओं को हटाना है।[1] इसलिए उसका विचार था कि दण्ड अपराध के अनुरूप होना चाहिए और यह अपराधी के जीवन में कुछ परिवर्तन लाये जिससे वह सन्मार्ग में लग जाये। रूसो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का उपासक था अतः दण्ड द्वारा इसे सुरक्षित रखना चाहता था ताकि सामान्य (general will) का पालन होता रहे। कॉन्ट के विचार में दण्ड का लक्ष्य न्याय और बेन्थम के मतानुसार शान्ति और व्यवस्था कायम रखना है।

---

1. Green regards man as an ethical being who seeks the good life as member of a State. Punishment is the only means to enable the individual to achieve this end. The deterrent punishment, if it is not unnecessarily harsh, can lead to this effect indirectly. It can shock the criminal into realising the anti-social character of his action and the importance of the rights of others. An offender may be reformed not only by awakening his conscience but also by making him fear the coercive power of the State.

राज्य के द्वारा दण्ड का औचित्य और अनेक प्रकार के दण्ड

(i) **मृत्यु-दण्ड** (Capital Punishment)—राज्य को व्यक्ति के हितार्थ अधिक से अधिक कार्य करना चाहिए। अतः देश में शान्ति और व्यवस्था कायम रखना राज्य का परम कर्त्तव्य है। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि चोरों, डाकुओं और लुटेरों को कठोर दण्ड दिया जाए ताकि वे सज्जन व्यक्तियों की सम्पत्ति को न लूट सकें और समाज में अशान्ति न फैला सकें। मृत्यु-दण्ड के समर्थकों का विचार है कि यदि मृत्यु-दण्ड को कानून के कोप से हटा दिया जाये तो जुर्म बढ़ जायेंगे। अब साधारण चोर गुण्डे और लुटेरे मृत्यु-दण्ड के भय से अपराधों की चरम सीमा तक पहुँचने में घबराहट मानते हैं परन्तु जब मृत्यु-दण्ड का भय न रहेगा तो वे अपनी मन-मानी कर सकेंगे और देश में गड़बड़ हो जायेगी। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत ठीक सिद्ध हो जायेगी। बलशाली निर्बलों को खा जायेंगे। आदिम अपराधियों के सुधरने की क्या आशा हो सकती है? अतः उन्हें मृत्यु-दण्ड देना ही समाज की भलाई करना है।

इसके विरुद्ध दूसरे लेखक ऐसा कहते हैं कि मृत्यु-दण्ड अमानुषिक (inhuman) है। मृत्यु-दण्ड से अपराध घटते नहीं बल्कि बढ़ते हैं क्योंकि अपराधियों के रिश्तेदारों के दिलों में बदले की भावना जाग्रत होती है, जब कि उनके किसी रिश्तेदार को फाँसी दी जाए। बहुत से मनुष्य कहते हैं कि अपराध एक बीमारी है। उसका इलाज होना चाहिए न कि अपराधी को जान से ही मार दिया जाय। यह सिद्धान्त अपराधी को सुधारने का कोई अवसर नहीं देता।

मृत्यु-दण्ड के अतिरिक्त कई अन्य प्रकार के दण्ड हैं, जैसे हाथ-पैर कटवाना, काले पानी की सजा देना अर्थात् देश-निर्वासन (banishment) करना, कोड़े लगवाना, हवालात में बन्द करना अथवा जुर्माने और कैद करना इत्यादि। हाथ-पैर कटवाने, कोड़े लगवाने तथा फाँसी का रिवाज अब कम होता जा रहा है। फाँसी बहुत कम दी जानी चाहिए।

(ii) **क्या राज्य को दण्ड देने का अधिकार है?** राज्य को दण्ड देने का पूर्ण अधिकार है क्योंकि राज्य के पास राजसत्ता (sovereignty) है। राज्य समाज में शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने के लिए ही कानून बनाता है और इसलिए कानूनों के तोड़ने वालों को दण्ड देना अत्यन्त आवश्यक है। यदि राज्य कानून के तोड़ने वालों को दण्ड न दे तो समाज में शान्ति नाम को भी न रहे और गुण्डे-बदमाशों, चोरों और डाकुओं का राज्य हो जाय। दण्ड के भय से ही चोर, और गुण्डे सज्जनों को तंग करने से घबराते हैं। दण्ड के अभाव में बड़ी मछली छोटी को खा जायेगी अर्थात् बलवान् निर्बलों को अपना भक्ष्य समझेंगे। दण्ड के द्वारा ही व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा होती है।

सारांश

कानून, अपराध तथा दण्ड—कानून प्रायः ऐसे नियमों को कहते हैं जो मनुष्यों के आपसी सम्बन्धों को नियमित करते हैं। ये मानवीय कानून कहलाते हैं। इसके

अतिरिक्त भौतिक नियम भी होते हैं, जैसे पानी अपनी सतह हमेशा समतल रखता है। सालमन्ड के शब्दों में कानून उन नियमों का वह समूह है जिसे राज्य मान्यता देता है और न्याय-व्यवस्था के प्रशासन में लागू करता है। कानून का उद्देश्य समाज में शान्ति-व्यवस्था तथा हमारे जीवन, स्वतन्त्रता और अधिकारों की रक्षा करना है। कानून कई प्रकार के होते हैं, जैसे व्यक्तिगत, सार्वजनिक, वैधानिक, संविधि (statute), अध्यादेश (ordinances), साधारण कानून (common laws) और प्रशासनीय। कानूनों के स्रोत रीति-रिवाज, धार्मिक सिद्धान्त, नजीरें तथा न्यायालयों के निर्णय, न्यायाधीश की न्याय-भावना, वैज्ञानिक टीकाएँ और विधान सभाएँ हैं।

कानून और आचार शास्त्र में घनिष्ठ सम्बन्ध है। आचार शास्त्र और कानून दोनों का उद्देश्य समाज का नैतिक स्तर ऊँचा करना है। जिस समाज का नैतिक स्तर बहुत ऊँचा है उसी में आदर्श नागरिक निर्माण हो सकते हैं। यदि देश का नैतिक स्तर गिर जाय तो सदा लोग चोरी-डाके और कानून को तोड़ने की प्रतीक्षा में रहेंगे। यदि कानूनों का आधार नैतिकता हो तो इनको अधिक शक्ति मिल जाती है क्योंकि अधिकतर लोग इनको अपनी इच्छा से मानेंगे। कानून और नैतिकता में बहुत भेद भी है। कानून के पीछे राज्य की शक्ति रहती है और नैतिकता के पीछे केवल जनमत की। झूठ बोलना पाप है परन्तु गैर-कानूनी नहीं। सड़क पर दायीं तरफ साइकल चलाना गैर-कानूनी है परन्तु अनैतिक नहीं।

राज्य के कानूनों को तोड़ना अपराध है। अपराध के कारण पैतृक, दोषपूर्ण पालन-पोषण, विकट आर्थिक परिस्थिति, मानसिक रोग नशेवाली चीजों का प्रयोग तथा अन्य सामाजिक परिस्थितियाँ हैं। अपराध को कम करने के लिए दण्ड दिया जाता है। दण्ड के तीन मुख्य सिद्धान्त प्रचलित हैं, अर्थात् प्रतिशोधात्मक सिद्धान्त, दृष्टान्त सिद्धान्त और सुधारात्मक सिद्धान्त। प्रतिशोधात्मक सिद्धान्त बदले का सिद्धान्त है। इसमें खून का बदला खून है। यह सिद्धान्त आजकल असभ्य गिना जाता है। दृष्टान्त सिद्धान्त के अनुसार एक अपराधी ने कानून तोड़कर एक व्यक्ति को ही हानि नहीं पहुँचाई बल्कि समाज के सारे नियमों का उल्लंघन किया है, अतः उसको ऐसी सजा मिलनी चाहिए जिससे बाकी अपराधियों को भी चेतावनी मिल जाय। इसमें यह दोष है कि अपराधी को कसूर के अनुपात (proportion) में दण्ड नहीं मिलता। सुधारात्मक सिद्धान्त के अनुसार अपराध एक बीमारी है, अतः इसका इलाज होना चाहिए। आधुनिक सिद्धान्त में इन तीनों सिद्धान्तों का सम्मिश्रण है। दीवानी मुकद्दमों में प्रतिशोधात्मक सिद्धान्त का प्रयोग किया जाता है। पुराने अपराधियों को कड़ी सजा मिलती है ताकि दूसरों को चेतावनी हो जाय। नये अपराधियों को औद्योगिक और नैतिक शिक्षा दी जाती है।

Important questions

1. Define Law. What are the sources of law and its kinds ? *(U. P. 1936)*

2. What is the purpose of law ? Give an imaginary picture of a State without law. *(U. P. 1945)*

3. Can you distinguish between a good law and bad law ? If so, what is the basis of distinction ? How would you secure the repeal of a bad law ? (*P. U. 1936*)

4. What are the various purposes of punishment ? (*1947*)

5. What are the different ways in which crime is punished ? (*P. U. 1948*)

6. Critically examine the relation between law and morality.

प्रश्न

१. कानून की व्याख्या कीजिये । कानून के स्रोत और उनके प्रकार कौन-कौन से हैं ? (उ० प्र० १९४२)

२. कानून का उद्देश्य क्या है ? क्या आप एक ऐसे राज्य का चित्र खींच सकते हैं, जहाँ कोई कानून न हो । (उ० प्र० १९४५)

३. क्या आप अच्छे और बुरे कानून को पहचान सकते हैं ? यदि हाँ, तो इस पहचान का क्या आधार है ? आप बुरे कानून को कैसे रद्द करेंगे ? (उ० प्र० १९३६)

४. क्या मनुष्य के लिए राज्य के कानूनों और आदेशों का मानना अनिवार्य है ? यदि है, तो किस सीमा तक ?

५. दण्ड का क्या उद्देश्य है, अच्छी दण्ड-व्यवस्था में किन सिद्धान्तों व बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

दसवाँ अध्याय

शिक्षा का अर्थ और उद्देश्य

(Meaning and Aim of Education)

"शिक्षा भव्य जीवन के मन्दिर का मूल आधार है।" —डाक्टर बेनीप्रसाद

परिभाषा—अंग्रेजी का 'एजूकेशन' शब्द लैटिन भाषा के शब्द 'एजूकेटम' (educatum) से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है 'बढ़ाना' अथवा उभारना। शिक्षा का अभिप्राय है कि प्रत्येक मनुष्य की सर्वांगीण (all-sided) उन्नति हो। शिक्षा के द्वारा मन और बुद्धि का विकास होना चाहिए। यह मनुष्य की छिपी हुई प्रतिभाओं को जाग्रत और विकसित करती है। यह "मन की भावना से प्रेरित होकर उभरती है, सहानुभूति इसे पवित्र और शुद्ध बनाती है और समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना से यह गतिशील होती है।"[1] डाक्टर बेनीप्रसाद लिखते हैं कि शिक्षा मनुष्य को सामाजिक बनाने का बड़ा भारी साधन है और समाज के विस्तृत जीवन के साथ आत्मा का मेल भी इसी के द्वारा होता है।[2]

महत्त्व (Importance of Education)

शिक्षा का बड़ा भारी महत्त्व है। शिक्षा से ही मनुष्य में वास्तविक मनुष्यता आती है। शिक्षा के कारण मनुष्य की अन्तरात्मा का विकास होता है। शिक्षा से ही मनुष्य सद्गुणों का केन्द्र बनता है। अशिक्षित मनुष्य प्रायः आदर्श नागरिक नहीं बन सकता। शिक्षा के द्वारा मनुष्य में सहानुभूति, प्रेम और त्याग का अंकुर फूटता है। शिक्षा प्रजातन्त्र का बड़ा भारी आधार-स्तम्भ है। शिक्षा के बिना प्रजातन्त्र का पौधा फल नहीं सकता। ब्राइस ने लिखा है कि शिक्षा का बीज राजनीति के क्षेत्र में अन्त में एक फसल पैदा करेगा, चाहे धान्य धीरे-धीरे पके।[3] अफलातून (Plato) ने शिक्षा के महत्त्व पर इस सीमा तक जोर दिया है कि उसने इसे राज्य का एक बहुत ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण कार्य माना है। उसका विचार था कि यदि राज्य एक उत्तम शिक्षा का लोगों के लिए प्रबन्ध कर सके तो इसे और कुछ करने की जरूरत नहीं। एक मतदाता जो कि समाचार-पत्र नहीं पढ़ सकता और उम्मीदवारों के निर्वाचन-सम्बन्धी भाषण समझने में असमर्थ है, वह अयोग्य मतदाता है।[4] शिक्षा के

१. प्रो० वी० डी० महाजन।

2. "Education is the greatest instrument of socialising the individual, of bringing the self into tune with the larger life of society."

3. "The seed of education will ultimately yield a harvest in the field of politics, though the grain may be slow in ripening."

4. The voter who cannot read a newspaper or the election address of a candidate is ill-equipped for voting.

बिना कर्त्तव्यों और अधिकारों का ज्ञान नहीं हो सकता और न ही इसके बिना राजनैतिक जाग्रति और सार्वजनिक भावना का उदय सम्भव है।

शिक्षा का उद्देश्य—प्रो० जोड के अनुसार आधुनिक युग में शिक्षा के तीन उद्देश्य होने चाहिएँ— (क) यह लड़के अथवा लड़की को अपने जीवन-निर्वाह के योग्य बनाये, (ख) यह उनको देश के नागरिक होने के नाते अपना-अपना कर्त्तव्य निभाने के योग्य बनाए, और (ग) यह मानसिक भावनाओं के शिक्षण के परिणामस्वरूप उन्हें अच्छा जीवन बिताने के योग्य बनाये। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का शारीरिक और मानसिक विकास है। शिक्षा का ध्येय मनुष्य में से बर्बरता को निकाल कर दया-भाव उत्पन्न करना है। शिक्षा ही मनुष्य में से स्वर्थ को निकाल कर उसको परमार्थ की ओर झुकाती है। शिक्षा ऐसी नहीं होनी चाहिए जो कि उसको रोटी कमाने के योग्य न बनाये। ऐसी शिक्षा जो केवल मानसिक विकास करती है परन्तु कोई उद्योग-धन्धा नहीं सिखाती, व्यर्थ है। शिक्षा का जहाँ लक्ष्य मानसिक विकास है, वहाँ हाथ का काम सिखाना भी होना चाहिए। शिक्षा ऐसी नहीं होनी चाहिए जो कि मजहबी जोश फैला दे और लोगों को तंगदिल बनाकर उनको तबाही की ओर ले जाये। शिक्षा के द्वारा लोगों का विशाल दृष्टिकोण बनना चाहिए और उनमें उदारता उत्पन्न होनी चाहिए। अतः शिक्षा द्वारा मनुष्य का पूर्ण विकास होना चाहिए ताकि वह भौतिक (material), नैतिक, आर्थिक, राजनैतिक, राष्ट्रीय (national) तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों (cultural fields) में अपने कर्त्तव्यों का भली भाँति पालन कर सके। शिक्षा के द्वारा सदाचार बनना चाहिए। शिक्षा से मनुष्य में परिश्रम की ओर सम्मान उत्पन्न होना चाहिए। शिक्षा के द्वारा ज्ञान की उन्नति होती है। हमें ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए जिससे समाज में छुआछूत के भाव दूर हो जाएँ और गरीबों तथा मजदूरों का मान बढ़े। शिक्षा के द्वारा वर्ण, जाति और लिंग के सब भेद-भाव समाप्त होने चाहिएं।

प्रारम्भिक शिक्षा (Primary Education)

हमारे देश में प्रारम्भिक शिक्षा पहली कक्षा से आरम्भ होकर प्रायः चार या पाँच वर्ष तक चलती है। इस अवस्था में लड़के या लड़की को प्रादेशिक भाषा में शिक्षा दी जाती है और उसे गणित, भूगोल और कुछ लिखना-पढ़ना सिखाया जाता है। बहुत से स्थानों पर बुनियादी शिक्षा भी दी जाती है। बुनियादी स्कूलों (basic schools) में गणित, भूगोल तथा प्रादेशिक भाषा के ज्ञान के अतिरिक्त कुछ उद्योग-धन्धे भी सिखाये जाते हैं। इस शिक्षा का प्रबन्ध प्रायः गाँव पंचायत, जिला बोर्ड और नगरपालिकाओं (municipalities) के द्वारा होता है। राज्य की ओर से कुछ पैसा इन नगरपालिकाओं, जिला बोर्डों और पंचायतों को शिक्षा फैलाने के लिए अवश्य मिलता है। इसीलिए राज्य इन पर अपना नियन्त्रण (control) रखता है और अपने निरीक्षक (inspector) तथा अंकेक्षक (auditor) हिसाब की जाँच-पड़ताल करने और काम-काज देखने के लिए नियुक्त करता है। हमारे संविधान में यह लिखा है कि सरकार १४ वर्ष तक के बालकों की शिक्षा को निःशुल्क देने का प्रयत्न करेगी।

इस लक्ष्य की प्राप्ति अभी पूर्ण रूप से नहीं हुई। अतः इस शिक्षा में यह दोष है कि यह मुफ्त नहीं दी जाती तथा प्रत्येक बालक के लिए अनिवार्य (compulsory) नहीं है। इसके अतिरिक्त शिक्षक-वर्ग प्रायः इन स्कूलों में थोड़ा पढ़ा-लिखा होता है, उसको थोड़ा वेतन मिलता है और वह शिक्षा देने के नये-नये ढंगों से अनभिज्ञ है। इसलिए वह पढ़ाने में रुचि नहीं पैदा करता। सरकार को चाहिए कि वह इस दुर्गुण को दूर करे।

माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education)

माध्यमिक शिक्षा पंजाब में दसवीं कक्षा के पश्चात् समाप्त हो जाती है। यू० पी० में माध्यमिक शिक्षा बारहवीं कक्षा तक और दिल्ली में ग्यारहवीं तक दी जाती है। माध्यमिक शिक्षा भी प्रायः प्रादेशिक भाषा में ही दी जाती है। पहले माध्यमिक शिक्षा में बहुत से विषय अंग्रेज़ी में पढ़ाये जाते थे परन्तु अब यह यत्न किया जा रहा है कि सारे विषय या तो प्रादेशिक भाषा में पढ़ाये जाएँ या हिन्दी में पढ़ाये जाएँ। इस अवस्था में विद्यार्थियों को अनेक प्रकार के विषय पढ़ाये जाते हैं परन्तु बहुत से आलोचक कहते हैं कि विद्यार्थियों को केवल सैद्धान्तिक ज्ञान दिया जाता है और उनको व्यावहारिक ज्ञान नहीं प्राप्त होता। यह शिक्षा भी अधिकतर प्राइवेट स्कूलों द्वारा दी जाती है। सरकारी स्कूल देश में बहुत थोड़े हैं। प्राइवेट स्कूलों के पास रुपया-पैसा थोड़ा रहता है अतः वे योग्य अध्यापक नहीं रख सकते। प्राइवेट स्कूल को सरकार की तरफ से जो ग्रान्ट मिलती है, वह प्रायः पर्याप्त नहीं होती, अतः अध्यापकों को थोड़ा वेतन मिलता है, फलतः वे छात्रों की बढ़ोतरी में अधिक रुचि नहीं लेते। प्राइवेट स्कूलों में साम्प्रदायिकता की भावना को जन्म दिया जाता है जो कि देश के लिए घातक सिद्ध होती है। प्राइवेट स्कूलों को कुछ ग्रान्ट मिलती है, अतः उन पर थोड़ा-बहुत नियन्त्रण सरकार के निरीक्षकों का रहता है। सरकारी स्कूलों पर निरीक्षकों (inspectors) का काफी नियन्त्रण रहता है। टेकनीकल और व्यवसाय धन्धों का इस अवस्था में विशेष ध्यान रखना चाहिए। इसमें अनेक सुधारों की आवश्यकता है। इससे व्यावहारिक ज्ञान कम प्राप्त होता है।

उच्च शिक्षा (University Education)

भारत में उच्च शिक्षा प्रायः विश्वविद्यालयों द्वारा दी जाती है। विश्वविद्यालय तीन प्रकार के हैं—(१) शिक्षक विश्वविद्यालय; (२) परीक्षात्मक या सम्मेलक; और (३) शिक्षक तथा सम्मेलक।

(१) **शिक्षक विश्वविद्यालय** (Teaching Universities)—इन विश्वविद्यालयों में छात्रावास (hostels) होते हैं और विद्यार्थी प्रायः उनमें ठहरते हैं। अतः इनको Residential Universities भी कहते हैं। ये विश्वविद्यालय स्वयं शिक्षा का प्रबन्ध करते हैं और इसके लिए वे अपने प्रोफेसर, रीडर तथा लेक्चरार भी रखते हैं। ये विश्वविद्यालय अपने विद्यार्थियों की परीक्षा भी लेते हैं। इस गणना में प्रयाग और लखनऊ यूनिवर्सिटी आती है। इसमें सन्देह नहीं कि इन विश्वविद्यालयों में छात्रावास होने के कारण पढ़ाई अच्छी होती है।

(२) **परीक्षात्मक या सम्मेलक** (Affiliating Universities)—इनमें विश्वविद्यालय स्वयं शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करते बल्कि इसके अन्तर्गत बहुत से भिन्न-भिन्न स्थानों पर कालेज होते हैं जिनमें पढ़ाई की जाती है। वे कालेज यूनिवर्सिटी से सम्बन्धित होते हैं। कालेजों को यूनिवर्सिटी के नियमों का पालन करना पड़ता है क्योंकि यूनिवर्सिटी या राज्य की सरकार द्वारा उन्हें ग्रान्ट मिलती है। ग्रान्ट राज्य की सरकार द्वारा तभी मिल सकती है जबकि यूनिवर्सिटी के नियमों का कालेजों द्वारा पालन किया जाये। कालेजों को यह अधिकार है कि वे किसी भी दूसरे और प्रथम दर्जे में पास किये हुए एम० ए० को नियुक्त कर सकते हैं परन्तु उस नियुक्ति की स्वीकृति उन्हें यूनिवर्सिटी से लेनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त यूनिवर्सिटी कमीशन कालेजों का निरीक्षण करने के लिए कभी-कभी आते रहते हैं और यह देखते हैं कि उनके पास अच्छी प्रयोगशालाएँ (laboratories) और पुस्तकालय तथा योग्य अध्यापक हों। इसके अतिरिक्त वे विश्वविद्यालय परीक्षाएँ भी लेते हैं। इस प्रकार की यूनिवर्सिटियाँ पंजाब और आगरा की हैं।

(३) **शिक्षा तथा सम्मेलक विश्वविद्यालय** (Teaching and Affiliating Universities)—हमारे देश में बहुत से विश्वविद्यालय इस प्रकार के हैं जो कि पढ़ाने का और अपने से बहुत से कालेजों को सम्बद्ध करने का कार्य करते हैं। उनमें पढ़ाने के लिए स्टाफ रखा जाता है और छात्रावास का भी प्रबन्ध किया जाता है। विद्यार्थी प्रायः उन छात्रावासों में ठहरते हैं। इसके अतिरिक्त बहुत से कालेज उनसे सम्बद्ध होते हैं। सम्बद्ध कालेजों को यूनिवर्सिटी के नियमों का भली भाँति पालन करना पड़ता है। विश्वविद्यालय परीक्षा भी लेते हैं।

विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा देने का प्रबन्ध करते हैं। प्रत्येक विश्वविद्यालय में साइन्स, कामर्स, लॉ या वकालत तथा आर्ट्स फैकल्टीज़ तो अवश्य होती हैं परन्तु बहुत से विश्वविद्यालयों में एग्रीकल्चर फैकल्टीज़, मैडिसन तथा इंजीनियरिंग की फैकल्टीज़ भी होती हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक विश्वविद्यालय में रिसर्च या अनुसन्धान (research) भी होता है। रिसर्च करने वालों को पी० एच-डी० या डॉक्टरेट (Doctor of Literature) की डिग्री मिलती है।

प्रत्येक विश्वविद्यालय सरकार के अधिनियम (act) द्वारा स्थापित होता है। विश्वविद्यालयों को आन्तरिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। प्रत्येक विश्वविद्यालय का गवर्नर या राज्यपाल कुलपति (Chancellor) होता है। कुलपति के नीचे उपकुलपति होता है। सारी शक्ति प्रायः उप-कुलपति (Vice-Chancellor) के हाथ में होती है। उपकुलपति की सहायता के लिए एक सिन्डीकेट होती है। उपकुलपति अपना सारा काम इसकी सलाह या परामर्श से ही चलाता है। प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक सीनेट भी होता है। सीनेट के अधिकतर सदस्य निर्वाचित होते हैं। यूनिवर्सिटियाँ परीक्षाओं को चलाने और कालेजों पर नियन्त्रण रखने के लिए नियम बनाती हैं और इसके अतिरिक्त सिलेबस निर्धारित करती हैं।

उच्च शिक्षा में दोष तथा सुधार के उपाय (Defects in the University Education and how to remove them)

दोष (Defects)—पहला दोष हमारी शिक्षा में यह है कि यह अत्यन्त मँहगी है। विद्यार्थियों को इसकी प्राप्ति में बहुत पैसा खर्च करना पड़ता है और फिर भी वे रोटी कमाने के योग्य नहीं बनते। प्रत्येक नागरिक जिसने उच्च शिक्षा प्राप्त कर ली है, नौकरी की तलाश में रहता है। वह घर के काम-काज में रुचि नहीं लेता, न वह कृषि के ही काम कर सकता है और न दुकान के काम। चूंकि पढ़ाई के समय उसे न तो कोई औद्योगिक धन्धा सिखाया जाता है और न व्यावहारिक ज्ञान अतः क्लर्क बनने के सिवा वह कोई काम प्रायः नहीं कर सकता। प्रत्येक विद्यार्थी जज, मैजिस्ट्रेट और डिप्टी कमिश्नर बनना चाहता है परन्तु स्कूलों और कालेजों में विद्यार्थियों में इतनी योग्यता ही पैदा नहीं होती कि वे आसानी से पब्लिक सर्विस कमीशन की परीक्षा में सफलता प्राप्त कर सकें, अतः बहुत थोड़े विद्यार्थी उन पदों को प्राप्त कर सकते हैं।

दूसरे, इस दिशा में यह दोष है कि इसमें नैतिकता पर बिल्कुल बल नहीं दिया जाता। इससे भारत के लिए आदर्श नागरिक तैयार नहीं होते। जिस शिक्षा से तप, सेवा, बलिदान, भ्रातृ-भाव, प्रेम, अनुशासन और सहानुभूति उत्पन्न न हो, वह व्यर्थ है। इससे राष्ट्र-भक्ति के भाव जाग्रत नहीं होते। अतः विद्यार्थियों में अपने अध्यापक की ओर श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती। विद्यार्थियों के चरित्र-निर्माण में इससे विशेष सहायता नहीं मिलती; इसलिए आधुनिक विद्यार्थियों में अनुशासन की कमी चारों ओर दिखाई पड़ती है। यदि भारत के इन भावी नागरिकों में अनुशासन उत्पन्न न हुआ, तो देश का भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता।

तीसरे, अभी तक इस शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। विद्यार्थियों का अधिक समय अंग्रेजी सीखने में ही लग जाता है, वे दूसरे विषयों का अध्ययन करने के लिए अधिक समय नहीं निकाल सकते। परन्तु अब यह कठिनाई अधिक समय तक नहीं रह सकती क्योंकि बहुत सी यूनिवर्सिटियों ने माध्यम या तो हिन्दी कर दिया है, या प्रादेशिक भाषा। यदि उच्च शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषाओं की अपेक्षा सारे देश में हिन्दी हो तो और भी अधिक अच्छा होगा। प्रादेशिक भाषाओं से प्रान्तीय भावनाओं की उन्नति होती है, जिससे भारत की सुरक्षा और एकता को महान् हानि पहुँचेगी।

चौथे, विद्यार्थी अपना अधिक समय व्यर्थ गँवा देते हैं, वे सारे साल नहीं पढ़ते। परीक्षा के दिनों में वे बहुत अधिक पढ़ते हैं जिससे उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है। उनका लक्ष्य केवल परीक्षा पास करना है न कि ज्ञानोपार्जन। अतः वे थोड़े से महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का रट्टा लगा लेते हैं और पास हो जाते हैं परन्तु उनका बाहरी ज्ञान बहुत ही थोड़ा रहता है। ऐसे विद्यार्थियों से समाज को भला क्या लाभ हो सकता है? चूंकि विश्वविद्यालय की परीक्षाएँ पास किए बिना नौकरी नहीं मिल सकती, अतः कालेजों में विद्यार्थियों की संख्या दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ रही है। देश में टैक्नीकल और औद्योगिक काम सिखाने वाले विद्यालयों की कमी होने के कारण अप्राविधिक कालेजों (non-technical institutions) में आवश्यकता से अधिक भीड़

रहती है। फलतः वहाँ पर अनुशासन की कमी दिखाई पड़ती है। कई विद्यार्थियों को टैक्नीकल और मेडिकल कालेजों में प्रवेश न मिलने के कारण साधारण कालेजों में प्रवेश लेना पड़ता है, जहाँ पर उनका मन नहीं लगता। इससे मानसिक शक्ति का अपव्यय होता है।

सरकारी कालेज बहुत थोड़े हैं। अधिकतर कालेज जनता द्वारा चलाए जाते हैं। प्रायः कालेज किसी सम्प्रदाय के होते हैं। उनमें साम्प्रदायिक विष पैदा किया जाता है जो कि देश के लिए घातक सिद्ध हुआ है। सरकार की ग्रान्ट बहुत थोड़ी होती है अतः अध्यापकों को पूरा वेतन नहीं मिलता। प्राइवेट कालेजों का प्रबन्ध बहुत खराब है। वहाँ पर अध्यापकों की नौकरियाँ भली प्रकार से सुरक्षित नहीं हैं। अतः योग्य पुरुष शिक्षा विभाग में कम आते हैं और प्रायः लोक-सेवा आयोग (Public Service Commission) द्वारा घोषित नौकरियों की ओर दौड़ते हैं। इसके अतिरिक्त यूनिवर्सिटियों में दलबन्दी की भावना इतनी प्रचलित है कि प्रायः सिण्डीकेट और सीनेट के सदस्यों को इन झगड़ों के अलावा दूसरी बातों की ओर ध्यान देने का अवकाश कम प्राप्त होता है। सिलेबस या पाठ्यक्रम को देश की आवश्यकता के अनुसार ढालने की आवश्यकता बहुत कम अनुभव की जाती है। सारे देश भर में एक जैसी उच्च शिक्षा का रिवाज नहीं है। कहीं एफ० ए० खत्म कर दी गई है और बी० ए० तीन साल का कर दिया गया है तथा हायर सैकण्डरी ग्यारहवीं तक; दूसरी तरफ कहीं मैट्रिक दस कक्षाओं तक का है और बी० ए० का कोर्स ४ वर्ष का। यह असमानता विद्यार्थियों के लिए हानिप्रद है।

सुधार के उपाय (Remedies)—ऊपर लिखे हुए इन सब दोषों को दूर करना सरकार का परम कर्त्तव्य है। प्रत्येक अमीर-गरीब को शिक्षा के समान अवसर प्राप्त होने चाहिएँ। औद्योगिक और टैक्नीकल शिक्षा का विशेष प्रबन्ध होना चाहिए। आजकल औद्योगिक और टैक्नीकल शिक्षालयों की संख्या बहुत कम है, अतः उसमें वृद्धि होनी चाहिए। माध्यम अंग्रेजी की बजाए हिन्दी होना चाहिए। प्रादेशिक भाषा भी शिक्षा का माध्यम हो सकती है परन्तु सारे देश को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए हिन्दी में शिक्षा देना अधिक उचित है। प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग माध्यमिक शिक्षा में अधिक लाभप्रद होगा। नैतिक शिक्षा पर अधिक बल दिया जाए ताकि विद्यार्थी-वर्ग में अनुशासन भंग करने की आदत न रहे। विद्यार्थियों में देश-भक्ति, प्रेम, उत्साह और व्यावहारिक ज्ञान उत्पन्न होना चाहिए। शिक्षा से सत्य, अहिंसा और न्याय की भावना को जन्म मिले अर्थात् शिक्षा चरित्र-निर्माण करने में बहुत अधिक सहायक सिद्ध होनी चाहिए। सारे देश में समान शिक्षा-प्रणाली आवश्यक है। पाठ्यक्रम देश की आवश्यकता के अनुसार निश्चित किया जाना चाहिए। साम्प्रदायिक विष को विद्यार्थियों में न फैलने दिया जाए। अध्यापक-वर्ग का अधिक मान किया जाए और उन्हें अच्छा वेतन प्राप्त होना चाहिए। सरकार को जहाँ तक हो सके, सारे कालेज अपने हाथ में लेने चाहिएँ और यदि ऐसा न कर सके तो कम से कम इतना तो अवश्य करे कि अध्यापकों को बहुत अच्छा वेतन मिले और उनकी नौकरियाँ सुरक्षित रहें।

वर्धा योजना (Wardha Scheme of Education or Basic Education)

बुनियादी शिक्षा—बुनियादी शिक्षा के सब से बड़े समर्थक महात्मा गांधी थे। उनका विचार था कि केवल सैद्धान्तिक शिक्षा (theoretical education) अपूर्ण है। सैद्धान्तिक शिक्षा के साथ-साथ विद्यार्थी को कुछ हाथ का काम भी सिखाया जाना चाहिए ताकि वह पढ़ने के साथ-साथ कुछ कमाता भी रहे। यदि सैद्धान्तिक शिक्षा या किताबी ज्ञान के साथ विद्यार्थी को औद्योगिक शिक्षा भी दी जाए, तो उसकी बनाई हुई चीजें बाजार में बिकेंगी और उससे पैसा आता रहेगा। इससे बच्चा अपने माँ-बाप पर बोझ साबित नहीं होगा और देश भी समृद्ध होगा। इसके अतिरिक्त बच्चों का शिक्षण यान्त्रिक ढंग से न होकर वैज्ञानिक ढंग से होगा जिससे बच्चे के मन और बुद्धि का पूर्ण विकास होगा।

सन् १९३७ में भारत के अनेक विद्वान् महात्मा गांधी की अध्यक्षता में बुनियादी शिक्षा की योजना बनाने के लिए इकट्ठे हुए। डाक्टर जाकिर हुसैन के जिम्मे यह काम लगाया गया। उनका विचार था कि प्रत्येक बच्चे के लिए जिसकी आयु ७ वर्ष से १४ वर्ष तक हो, शिक्षा निःशुल्क (free) तथा अनिवार्य (compulsory) करा दी जाए तथा यह उसकी मातृभाषा में दी जाए। बच्चों की शारीरिक उन्नति के लिए भी कुछ कार्यक्रम रखे जाएँ। इसको वर्धा शिक्षा योजना कहा जाता है।

वर्धा शिक्षा के गुण—इस योजना में बहुत से गुण हैं। पहले, इसमें यान्त्रिक (technical) विद्या के साथ-साथ सामान्य या उदार शिक्षा (liberal education) दी जाती है। इसका लाभ यह है कि बच्चा शिक्षा के साथ-साथ कुछ काम भी सीख लेता है। दूसरे, इससे बेरोजगारी की समस्या भी कुछ हल हो जाती है। बच्चा अपनी शिक्षा का खर्चा, अपने हाथ की बनाई हुई चीजों को बेचकर निकाल लेता है। उसे माता-पिता पर निर्भर नहीं होना पड़ता। अपनी माध्यमिक शिक्षा (higher secondary education) खत्म करने के पश्चात् बालक को नौकरी की तलाश में मारे-मारे फिरना नहीं पड़ता और उसे व्याकुलता का मुँह नहीं देखना पड़ता। यदि उसे नौकरी न मिले तब भी वह रोटी कमाकर खा सकता है। तीसरे, यह शिक्षा हम को मेहनत-मजदूरी करने की आदत डालती है और हमें श्रमिकों को आदर-मान की दृष्टि से देखना सिखाती है। चौथे, हाथ का काम करने से हमारा कुछ शारीरिक श्रम अवश्य हो जाता है। इससे स्वास्थ्य भी ठीक रहता है। पाँचवें, इस शिक्षा से समता की भावना उत्पन्न होती है क्योंकि जब सब विद्यार्थी हाथ का काम करते हैं तो कोई एक दूसरे को तुच्छ नहीं समझता। अन्त में हम कह सकते हैं कि इससे हमारे देश की अशिक्षा की जटिल समस्या का कुछ हल हो जाता है। यदि सरकार प्रत्येक नर और नारी को शिक्षित करने की जिम्मेवारी ले, तो उसे लाखों-करोड़ों रुपयों का खर्च होगा। चूंकि हमारा देश अत्यन्त गरीब है, इसलिए सरकार के पास इतना रुपया नहीं है। ऐसी दशा में गरीब जनता को शिक्षित बनाने का वर्धा शिक्षा योजना ही एक अच्छा उपाय है। इससे अमीर, गरीब सब शिक्षा पा सकेंगे और देश में छोटी-छोटी चीजों की कमी भी न रहेगी।

वर्धा योजना के दोष—वर्धा योजना में सबसे बड़ा दोष यह है कि इससे मानसिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है। बच्चे का अधिकतर समय उद्योग-धन्धे (industries) सीखने में लग जाता है और उसे पुस्तक पढ़ने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिलता। बच्चों की मनोवृत्ति शिक्षा अथवा ज्ञानोपार्जन न होकर पैसा कमाना हो जाती है। यह भी सम्भव है कि उन्हें थकावट महसूस हो और वे फिर उदार शिक्षा में अरुचि रखने लगें। इसके अतिरिक्त यह भी देखा जाता है कि बहुत से बालकों के मन का झुकाव केवल पुस्तकों में निहित ज्ञान की ओर ही होता है और वे औद्योगिक शिक्षा में कुछ भी रुचि नहीं लेते।

व्यावसायिक तथा प्रौद्योगिक शिक्षा
(Vocational and Technical Education)

शिक्षा दो प्रकार की होती है—सामान्य शिक्षा अथवा उदार शिक्षा (liberal education), और व्यावसायिक तथा प्रौद्योगिक शिक्षा (vocational and technical education)। सामान्य शिक्षा का उद्देश्य मन और बुद्धि का अधिक से अधिक विकास करना है और प्रौद्योगिक शिक्षा हमें कुछ हाथ का काम करना सिखाती है ताकि हम आनन्दपूर्वक अपना गुजारा कर सकें। हमारे देश में पहले अंग्रेजों ने केवल सामान्य शिक्षा की ओर ही ध्यान दिया। उन्होंने प्रौद्योगिक शिक्षा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया क्योंकि उन्हें सस्ते क्लर्कों की आवश्यकता थी। जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो इस ओर सरकार का ध्यान आकर्षित हुआ। अब यह यत्न किया जा रहा है कि प्रत्येक स्कूल अथवा कालेज में प्रौद्योगिक शिक्षा देने का प्रबन्ध हो। कोई भी देश उन्नति नहीं कर सकता जब तक कि वहाँ बच्चे को प्रौद्योगिक और व्यावसायिक शिक्षा न दी जाए परन्तु केवल यही शिक्षा पर्याप्त नहीं, इसके साथ-साथ सामान्य शिक्षा भी होनी चाहिए। हमारे देश में यान्त्रिक शिक्षणालय (technical colleges) बहुत थोड़े हैं। पंजाब में चण्डीगढ़ तथा उत्तर प्रदेश में बनारस, लखनऊ और रुड़की में इस प्रकार के कालेज हैं। व्यावसायिक शिक्षा भी अत्यन्त आवश्यक है। पंजाब में लुधियाना और अमृतसर में मेडिकल कालेज हैं। चूंकि देश में बड़े-बड़े बाँध बाँधे जा रहे हैं, सड़कें और पुल बनाए जा रहे हैं, बिजली पैदा की जा रही है और नये-नये कारखाने खोले जा रहे हैं तथा नहरें निकाली जा रही हैं, अतः भारत को बहुत अनुभवी कारीगरों और शिल्पज्ञों अथवा यन्त्र-शास्त्रियों (engineers) की आवश्यकता है। देश के विभिन्न भागों में बहुत से टैक्नीकल स्कूल खोले जा रहे हैं और श्रम-सचिवालय (labour ministry) इस ओर अधिक ध्यान दे रहा है। विभाजन के पश्चात् नीलोखेड़ी में भी छोटे-छोटे उद्योग-धन्धे सिखाने के लिए स्कूल खोले गए हैं।

शिक्षा पर राज्य के नियन्त्रण की समस्या
(How far the State should control education)

हमारे सम्मुख यह बड़ी भारी समस्या है कि राज्य का शिक्षा पर कहाँ तक नियन्त्रण हो। इसके सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न लेखकों के भिन्न-भिन्न मत हैं। अभी तक इस विषय में एक मत स्थापित नहीं हो सका है। व्यक्तिवादियों (individualists)

का विचार था कि राज्य एक आवश्यक बुराई (necessary evil) है। उनके मतानुसार राज्य का काम केवल बाहरी आक्रमणों से देश की रक्षा, आन्तरिक शान्ति और न्यायालयों द्वारा अनुबन्धों (contracts) को लागू करना होना चाहिए। अतः राज्य को लोगों की शिक्षा अथवा स्वास्थ्य के विषय में कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। हर्बर्ट स्पेन्सर के मतानुसार यदि गरीबों की शिक्षा के लिए धनिकों पर कर लगाया जाए तो यह ऐसे ही होगा जैसे कि पीटर से छीन कर पाल को दे दिया जाए। मिस्टर मिल भी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के समर्थक थे। उनके विचार में शिक्षा के सम्बन्ध में व्यक्तियों को पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वे अपने बच्चों को कौन सी शिक्षा दें, कहाँ तक दें और कैसे दें। यदि राज्य लोगों को विवश करता है कि वे अपने बच्चों को अवश्य शिक्षा दें तो राज्य उनकी स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करता है।

इंगलैंड में यह सिद्धान्त उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक काफी प्रचलित रहा जिसके कारण राज्य ने शिक्षा का भार अपने ऊपर न लेकर धार्मिक संस्थाओं को ही सौंप रखा था। अतः उस समय शिक्षा का संचालन धार्मिक संस्थाओं के नेताओं (जो कि पादरी कहलाते थे) द्वारा होता था। पादरी केवल धार्मिक शिक्षा देते थे और धर्मनिरपेक्ष (secular) शिक्षा बिल्कुल नहीं देते थे जिसके कारण धार्मिक कटुता (religious bitterness) फैल गयी। अतः इस सिद्धान्त की कड़ी आलोचना की गई। आलोचक प्रायः कहते हैं कि यदि राज्य सार्वजनिक शिक्षा के प्रति उदासीन अथवा विमुख रहे तो शिक्षा उन व्यक्तियों के हाथों में पड़ जायगी जो कि व्यापार की दृष्टि से इसका संचालन करेंगे। धार्मिक संस्थाएँ प्रायः विष का बीज बोती हैं और कटुता का वातावरण निर्माण करती हैं। इसलिए ऐसी दशा में शिक्षा के संचालक अध्यापकों को थोड़ा वेतन देंगे और संकुचित तथा साम्प्रदायिक विचारों का प्रचार करेंगे। इतना ही नहीं बल्कि व्यापारिक दृष्टि से शिक्षा का संचालन करने वाले व्यक्ति पाठांतर कार्यों (extracurricular activities) का भी ठीक प्रबन्ध नहीं करेंगे। फलतः शिक्षा का स्तर (standard) भी गिर जायेगा और एकरूपता (uniformity) भी नहीं रह सकेगी। अतः देश के हितों को हानि पहुँचेगी।

समाजवादियों (socialists) का विचार है कि राज्य का पूरा नियन्त्रण शिक्षा पर होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जबकि शिक्षा का राष्ट्रीयकरण (nationalisation) हो जाये। समाजवादियों का विचार है कि राज्य ही स्कूल खोले, उनका संचालन करे और धर्म-निरपेक्ष शिक्षा दे। यदि राज्य स्कूलों और कालेजों का संचालन करे, तो अध्यापकों को अच्छा वेतन मिलेगा, उनकी नौकरी अधिक सुरक्षित रहेगी और विद्यार्थियों के लिए सर्वोत्तम शिक्षा का प्रबन्ध हो सकेगा। राज्य के पास पैसा काफी होने के कारण विद्यार्थियों के लिए पाठान्तर कार्यों का भी ठीक प्रबन्ध हो सकेगा। धार्मिक संस्थाओं के पास द्रव्य का सदैव अभाव रहता है और वे धर्म-निरपेक्ष शिक्षा भी नहीं देते अतः शिक्षा का प्रबन्ध उनके हाथ से लेना ही उचित है। राज्य ही केवल शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओं का संचालन ठीक ढंग से कर सकता है परन्तु कई बार सरकार भी अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए उनका दुरुपयोग कर लेती है, जैसा कि हिटलर-शासित जर्मनी और मुसोलिनी-शासित इटली में हुआ

आज रूस और चीन में भी शिक्षा-संस्थाएँ साम्यवाद (communism) के प्रचार के लिए प्रयोग में लाई जा रही हैं। इसके विरुद्ध लोकतन्त्रात्मक देशों में विश्वविद्यालयों को काफी स्वायत्तता (autonomy) होती है। राज्य केवल एकरूपता (uniformity) स्थापित करने के लिए ही कुछ दखल देता है।

भारत की शिक्षा-प्रणाली के दोष
(Defects in the Present Educational System)

(१) मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का देश में कोई प्रबन्ध नहीं है। भारतीय संविधान के नीति-निदेशक तत्त्वों (directive principles of state policy) में यह लिखा है कि सरकार मुफ्त और अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध करेगी परन्तु यह चीज अभी कार्यरूप में परिणत नहीं हो सकी है।

(२) शिक्षा का प्रबन्ध बहुत से राज्यों, विशेषकर पंजाब में, जनता के हाथों में छोड़ दिया गया है। सरकारी कालेज तथा स्कूल बहुत थोड़े हैं, अधिकतर धनाढ्य पुरुषों द्वारा चलायी हुई संस्थाएँ हैं। धनाढ्य पुरुषों द्वारा चलायी हुई संस्थाओं में प्रायः धन का अभाव रहता है, अतः वे योग्य अध्यापक रखने और अच्छी प्रयोगशालाएँ बनाने में प्रायः असमर्थ हैं। उनके पास अच्छे पुस्तकालय भी नहीं होते हैं। अध्यापकों की नौकरियाँ भी सुरक्षित नहीं होती हैं। कई बार छोटे-छोटे अपराधों पर उनको नौकरियों से हटा दिया जाता है। बहुधा देखा जाता है कि बहुत सी प्राइवेट संस्थाओं में प्रत्येक वर्ष तरक्की (increment) नहीं दी जाती। विश्वविद्यालयों ने यद्यपि अध्यापकों के ग्रेड निश्चित कर दिए हैं परन्तु कई पब्लिक स्कूलों में थोड़ी तनख्वाह या वेतन देकर ज्यादा पर हस्ताक्षर करवा लिये जाते हैं। अध्यापक विवश होकर ऐसा करते हैं। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और म्युनिसिपल कमेटियों द्वारा चलायी हुई संस्थाओं की भी दुर्दशा है। अतः राज्य को शिक्षा के प्रति ऐसा उदासीन नहीं होना चाहिए।

(३) आजकल किताबी शिक्षा पर बहुत जोर दिया जाता है और औद्योगिक तथा यान्त्रिक शिक्षा पर बहुत कम। देश में उद्योग-धन्धे सिखाने वाले शिक्षणालय बहुत थोड़े हैं। इसी प्रकार टक्नीकल शिक्षा का भी उचित प्रबन्ध नहीं है। देश में टैक्नीकल कालेज इतने थोड़े हैं कि विद्यार्थियों को प्रवेश पाने में अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ता है। किताबी शिक्षा को प्राप्त करने से रोटी की समस्या भी हल नहीं होती। किताबी शिक्षा में रट्टे पर अधिक जोर दिया जाता है। रट्टे लगाने वाले कई दफा अधिक नम्बर भी ले जाते हैं। विद्यार्थियों को व्यावहारिक ज्ञान बिल्कुल नहीं होता।

(४) इस शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी नहीं रहना चाहिए। बहुत समय तक शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रहा है, इसलिए विद्यार्थियों की उन्नति नहीं हो सकी। जो विद्यार्थी अंग्रेजी भाषा में दक्षता नहीं प्राप्त कर सकते थे, उनको इतिहास, साहित्य तथा कला-कौशल का ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता था।

(५) आजकल स्कूलों और कालेजों में प्रायः शारीरिक शिक्षा पर अधिक बल नहीं दिया जाता है, फलतः विद्यार्थी रोगग्रस्त रहते हैं और दृढ़ शरीर वाले नहीं बन

पाते। बहुत सी संस्थाओं में ट्रेण्ड ड्रिल मास्टरों की कमी है या खेल के मैदान ही नहीं हैं। बहुत से स्कूलों और कालेजों में खेल का सामान रुपये-पैसे की कमी होने के कारण नहीं खरीदा जाता।

(६) शिक्षा का स्तर प्रतिदिन गिर रहा है। प्रश्न तथा उत्तर के रूप में जो पुस्तकें छापी जा रही हैं, उनकी बिक्री में वृद्धि हो रही है। विद्यार्थी रट्टे लगा कर पास हो जाते हैं। बहुत से स्कूलों और कालेजों में अध्यापक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर लिखवा देते हैं। सिलेबस में से ही प्रश्न आते हैं और सामान्य ज्ञान (general knowledge) के प्रश्न नहीं पूछे जाते, अतः विद्यार्थियों का सीमित-सा ज्ञान रहता है। योग्य विद्यार्थी ऊँची-ऊँची सरकारी नौकरियों की तरफ दौड़ते हैं। क्योंकि प्राइवेट स्कूलों और कालेजों में बहुत थोड़ा वेतन मिलता है, अतः योग्य अध्यापकों का अभाव हो गया है। यदि कोई अध्यापक चला जाय, तो रिक्त स्थान की पूर्ति बहुत समय तक नहीं की जाती, ताकि कुछ पैसा बच जाये। कक्षाएँ बहुत लम्बी-लम्बी होती हैं, अतः अध्यापक का प्रत्येक विद्यार्थी से सम्पर्क नहीं हो पाता। अध्यापकों का समाज में वह मान नहीं जो कि होना चाहिए। अनुशासन की कमी प्रायः सारे देश में दिखाई देती है परन्तु विद्यार्थी वर्ग में यह बहुत अधिक मात्रा में आ गई है। विद्यार्थी अपने अध्यापकों को गुरु का दर्जा नहीं देते और उनका अपमान कर देते हैं। कई धार्मिक संस्थाओं द्वारा चलाये हुए स्कूलों और कालेजों में इस प्रकार की शिक्षा दी जाती है जिससे विद्यार्थी संकुचित हृदय के बन जाते हैं।

शिक्षा-सुधार के उपाय
(How to Remove the Defects in the Educational System)

शिक्षा में सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है। देश में प्रारम्भिक शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य होनी चाहिए। अंग्रेजी माध्यम की अपेक्षा हिन्दी माध्यम उच्च शिक्षा के लिए होना चाहिए। प्रादेशिक भाषाओं में शिक्षा केवल प्रारम्भिक अथवा माध्यमिक अवस्थाओं तक ही होनी चाहिए। यदि सारे देश में उच्च शिक्षा के लिए हिन्दी माध्यम नहीं रखा गया तो अनुरूपता (uniformity) नहीं रहेगी, विदेशी पुस्तकों के अनुवाद प्रत्येक प्रादेशिक भाषा में उपलब्ध नहीं होंगे और स्तर भी गिर जायेगा। बुद्धि को परखने की परीक्षाओं (intelligence test) पर अधिक जोर दिया जाये और विद्यार्थियों का व्यावहारिक ज्ञान बढ़ाया जाये। नैतिक शिक्षा, रचनात्मक कार्यों और देश-भक्ति पर अधिक बल दिया जाये ताकि अनुशासन उत्पन्न हो। अध्यापकों का मान बढ़ाया जाये। यह तभी हो सकता है जबकि उनको बहुत अच्छा वेतन मिलता हो, उनका व्यक्तिगत जीवन आदर्श हो और नौकरी सुरक्षित हो। प्रिंसिपल का दर्जा डिप्टी कमिश्नर से नीचा नहीं होना चाहिए। शिक्षा-विभाग के प्रति भी वही आकर्षण उत्पन्न करना चाहिए जो कि आई० ए० एस० तथा पी० सी० एस० में है। किताबी शिक्षाओं की अपेक्षा यान्त्रिक और औद्योगिक शिक्षा को अधिक प्रोत्साहित करने से ही देश का कल्याण हो सकता है। इसका यह अर्थ नहीं कि किताबी शिक्षा समाप्त कर दी जाय बल्कि उद्योग-धन्धों और यान्त्रिक शिक्षा को देने वाले अधिक से

अधिक स्कूल और कालेज खोले जायें। शारीरिक शिक्षा तथा खेल-कूद पर अधिक बल दिया जाये। सरकार को तमाम संस्थाओं का काम अपने हाथों में ले लेना चाहिए या उन्हें पर्याप्त ग्राण्ट देनी चाहिए और उन पर कड़ा नियन्त्रण रखना चाहिए ताकि अध्यापकों को पूरा वेतन मिले और उनकी नौकरियाँ सुरक्षित रहें।

सारांश

शिक्षा का उद्देश्य तथा महत्त्व—शिक्षा मनुष्य में सामाजिक वृत्ति उत्पन्न करती है और उसकी सर्वांगीण उन्नति करती है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य में त्याग, प्रेम और सहानुभूति का अंकुर फूटता है। शिक्षा मन की भावना से प्रेरित होकर उभरती है, सहानुभूति इसे पवित्र और शुद्ध बनाती है और समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना से यह गतिशील होती है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य का पूर्ण विकास होना चाहिए ताकि वह भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति कर सके।

प्रारम्भिक शिक्षा—पहली से चार-पाँच वर्ष तक चलती है। यह प्रादेशिक भाषा में दी जाती है और इस अवस्था में भूगोल, गणित तथा कुछ पढ़ने-लिखने का ज्ञान प्राप्त कराया जाता है। पंचायतों, जिला बोर्डों तथा नगरपालिकाओं द्वारा इसका प्रबन्ध होता है। राज्य सरकार की इनको ग्रान्ट मिलती है तथा उन पर देख-भाल होती है। संविधान के अनुसार प्रारम्भिक शिक्षा को सरकार द्वारा मुफ्त और अनिवार्य बनाने का घोर यत्न चल रहा है।

माध्यमिक शिक्षा—माध्यमिक शिक्षा पाँचवीं या छठी कक्षा से आरम्भ होकर दसवीं-ग्यारहवीं या बारहवीं कक्षा तक—यह प्रादेशिक भाषा में दी जाती है—अनेक विषयों का ज्ञान तथा टैक्नीकल और उद्योग-धन्धों की कहीं-कहीं पर शिक्षा सरकार की प्राइवेट स्कूलों को ग्रान्ट तथा उन पर निरीक्षण।

उच्च शिक्षा—यह विश्वविद्यालयों द्वारा प्रादेशिक भाषा, राष्ट्रभाषा अथवा अंग्रेजी में दी जाती है। एम० ए०, बी० ए०, एम० कॉम०, एम० एस-सी० इत्यादि डिग्रियाँ उच्च शिक्षा समाप्त करने पर ही मिलती हैं। उच्च शिक्षा विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत कालेजों में भी दी जाती है। इसमें यह दोष है कि यह बहुत मँहगी है और फिर भी रोटी कमाने के योग्य नहीं बनाती। इसमें नैतिकता पर भी कम बल दिया जाता है अतः अनुशासन की कमी दिखाई पड़ती है। सरकारी कालेजों का अभाव है और प्राइवेट कालेजों में शिक्षा का अपर्याप्त प्रबन्ध है।

वर्धा-योजना—यह चार सिद्धान्तों पर आधारित है—(i) ७ वर्ष की अवधि के लिए निःशुल्क और अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा हो; (ii) बच्चों पर शिक्षा थोपी न जाय बल्कि उनको व्यावहारिक रूप से शिक्षा प्राप्त करने की शिक्षा दी जाय; (iii) शिक्षा का माध्यम बच्चे की मातृभाषा हो; (iv) शिक्षा स्वावलम्बी हो। इसका गुण यह है कि इस प्रकार अमीर, गरीब सबको शिक्षा मिल जाती है। इसका दोष यह है कि बच्चे का सारा समय उद्योग-धन्धे में लग जाता है और पुस्तकों के प्रति अरुचि उत्पन्न होती है।

व्यावसायिक तथा प्रौद्योगिक शिक्षा—उदार शिक्षा हमारे मन और बुद्धि का

विकास करती है। व्यावसायिक तथा प्रौद्योगिक शिक्षा हमें हाथ का काम सिखाती है ताकि हम अपना पेट आसानी से भर सकें। अंग्रेजों द्वारा व्यावसायिक तथा प्रौद्योगिक शिक्षा को न फैलाने का यत्न—भारत में व्यावसायिक तथा प्रौद्योगिक शिक्षणालयों की अत्यन्त कमी—स्वतन्त्र भारत में इस शिक्षा का विशेष महत्त्व—भारत का भविष्य इस शिक्षा पर निर्भर।

भारत की शिक्षा-प्रणाली के दोष—शिक्षा मुफ्त तथा अनिवार्य नहीं—शिक्षा का प्रबन्ध अधिकतर पंचायतों, जिला-बोर्डों तथा नगरपालिकाओं और साम्प्रदायिक संस्थाओं के हाथ में होने के कारण स्तर का गिरना—अनुशासन की कमी—नैतिकता तथा व्यावसायिक और प्रौद्योगिक शिक्षा पर कम बल—बेरोज़गारी की समस्या—शारीरिक शिक्षा पर कम बल।

Questions

1. What is the true aim of education? How far does the present education enable the citizen to achieve the same?

2. Explain the connection between education and democracy. Can democracy flourish in any country without education?

3. How far Wardha Scheme of Education can succeed in removing the defects of present educational system? Can it succeed in spreading literacy throughout the country?

4. What are the defects in the present educational system? How would you remove them?

प्रश्न

१. शिक्षा का क्या उद्देश्य होना चाहिए? आजकल की शिक्षा-प्रणाली हमको कहाँ तक उस उद्देश्य की पूर्ति के योग्य बनाती है?

२. शिक्षा का प्रजातन्त्र से क्या सम्बन्ध है? क्या प्रजातन्त्र बिना शिक्षा के सफल हो सकता है?

३. वर्धा-योजना का वर्णन कीजिए। भारत की अशिक्षा की समस्या इसके द्वारा कहाँ तक हल हो सकती है?

४. उच्च शिक्षा का वर्णन कीजिये। इसमें क्या दोष हैं?

५. आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में क्या दोष हैं? उनके सुधार के उपाय लिखो।

ग्यारहवाँ अध्याय

जाति, सम्पत्ति और धर्म

(Caste, Property and Religion)

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्म विभागशः"

(मैंने चार वर्णों की गुण और कर्मों के लिहाज से उत्पत्ति की।)

—गीता

परिभाषा—वी० ए० स्मिथ के मतानुसार जाति परिवारों के उन समूहों को कहते हैं जो विवाह और भोजन-सम्बन्धी कुछ संस्कारों की पवित्रता का पालन करने के लिए बनाये गये विशेष नियमों में बँधे हों। मिस्टर एच० रिसले ने लिखा है—"जाति एक ऐसे वंश-समूह का नाम है जिसका एक ही सामान्य नाम हो और जिसका सम्बन्ध किसी पौराणिक पुरुष अथवा देवता से हो, जो एक ही पेशा करते हों तथा दूसरे योग्य मनुष्यों द्वारा एक ही समझी जाती हो।" शोम सोसटुट की परिभाषा में भी भोजन और विवाह मुख्य हैं तथा जन्म और रीति-रिवाज गौण हैं।

जात-पाँत की उत्पत्ति—मनु महाराज ने लिखा है कि लोक-वृद्धि के लिए परमेश्वर ने अपने मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य और चरण से शूद्र को उत्पन्न किया। प्रोफेसर रेपसन जात-पाँत की उत्पत्ति आर्यों तथा अनार्यों के रंग की विभिन्नता से मानते हैं। Dr. Smith के मतानुसार जात-पाँत के विषय में भ्रम फैलने का कारण मनु के शब्द वर्ण को ठीक-ठीक न समझना था। बहुत से लोगों ने इसका अर्थ जात-पाँत से किया जो कि अशुद्ध है। इसी का शुद्ध अर्थ "विभाग", क्रम अथवा इसी के समान कोई और है। शोम सोसटुट कहता है कि "प्रागैतिहासिक काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र शब्दों का अभिप्राय जाति न होकर विभाग था। वर्ण शब्द का प्रयोग सब जातियों के लिए होता था।" "सम्भवतः इस शब्द की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न विभागों के वस्त्रों के भिन्न-भिन्न रंगों से हुई थी। उदाहरणार्थ, ब्राह्मण सफेद, क्षत्रिय लाल, वैश्य पीले तथा शूद्र काले रंग के कपड़े पहनते थे। सर्वप्रथम बौद्ध साहित्य में इस शब्द का अर्थ 'जाति' मिलता है।"[1]

एच० जी० रोवल्सन लिखता है कि "caste" शब्द पुर्तगाली भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ है 'वंश की पवित्रता'। सम्भवतः प्राचीन काल में वर्ण का अभिप्राय रंग से ही था। गोरे रंग के आर्य काले रंग के दस्युओं से घृणा करते थे। डा० गोखले के मतानुसार "इस व्यवस्था को स्पष्ट करने के लिए भारत में दो शब्द प्रयुक्त होते हैं, वर्ण अथवा जाति और रंग अथवा जन्म। आर्य और अनार्य जातियों में भेद अंकित करने के लिए "आर्य वर्ण" और "दस्यु वर्ण" शब्दों का प्रयोग किया

१. डाक्टर महाजन, कृपालसिंह नारंग।

जाता था। सर्वप्रथम यह शब्द ऋग्वेद में मिलता है। जब आर्यों ने भारत पर आक्रमण किया तो इनका रंग, रीति-रिवाज, धर्म तथा सभ्यता भारत के आदिवासियों से भिन्न थी; अतः उसी समय आर्यसमाज में सर्वप्रथम विभाग बने। यदि राजनैतिक दृष्टि से देखें तो आर्य विजेता तथा अनार्य विजित थे और यदि रंग की दृष्टि से देखें तो आर्य गोरे तथा अनार्य काले रंग के थे।" मानव इतिहास को चार कालों में बाँटा जा सकता है : (१) आखेट काल, (२) चराई का काल, (३) कृषि काल (४) औद्योगिक काल। कृषि काल में ही वर्ण-व्यवस्था का जन्म हुआ। दूसरे देशों में भी दास तथा सामन्तशाही प्रथा का आरम्भ हुआ।

जात-पाँत का विकास—ऋग्वेद के दसवें मण्डल के एक सूक्त में वर्ण-भेद का होना माना गया है। इस पुरुष-सूक्त के अनुसार पुरुष को विभाजित करते समय उसके मुँह से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, उसकी टाँगों से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। यदि हम मान लें कि दसवाँ मण्डल उसी समय बनाया गया जब कि ऋग्वेद, तो हमें मानना पड़ेगा कि ऋग्वेद काल में जात-पाँत की उत्पत्ति हो चुकी थी परन्तु बहुत से विद्वानों का मत है कि यह बाद में जोड़ा गया है। यह बात अवश्य सिद्ध हो चुकी है कि उस समय जात-पाँत इतनी दृढ़ नहीं थी। ऋग्वेद में एक अन्य स्थान पर वर्णन मिलता है "मैं कवि हूँ, मेरा बाप वैद्य है, और माँ अनाज पीसनहारी है।" अतः हम कह सकते हैं कि ऋग्वैदिक काल में बहुत से वर्ग तथा कर्म थे, लेकिन कोई भी जाति ब्राह्मण हो अथवा क्षत्रिय, जन्मानुसार नहीं मानी जाती थी; लड़ने वाले लोग सारी जनता में से लिये जाते थे और कोई भी योग्य पुरुष पुरोहित के रूप में काम कर सकता था।[1] बहुत से इन विचारों से सहमत नहीं हैं। उनके विचार में ब्राह्मण और क्षत्रिय जन्मानुसार थे परन्तु फिर भी मिस्टर म्योर के विचारों से सहमत न होना कठिन है। उनका विचार था कि ब्राह्मण एक अलग-अलग जाति नहीं थी और मन्त्र बनाने और यज्ञों में पुरोहिताई करना केवल उन (ब्राह्मणों) तक सीमित नहीं था। छोटे कर्मों (professions) के विषय में भी यह बात सत्य थी। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि एक पुरुष स्वयं कवि था, उसका बाप वैद्य था और माँ अनाज पीसने वाली थी। लेकिन धीरे-धीरे ये कर्मानुसार माने जाने लगे थे परन्तु जात-पाँत की दूसरी विशेषताएँ जैसे कि आपस में इकट्ठे बैठकर न खाना और आपस में (एक जाति का दूसरी जाति से) विवाह न करना इत्यादि उस समय प्रचलित नहीं हुई थी।[2]

1. According to recognised version, in the earliest society represented by the bulk of the Rig Veda, there were probably different classes and professions, but none, not even the priestly and the warrior classes were hereditary. The warriors were drawn from the people at large, and any person with the requisite qualifications could officiate as priest, (*'Rig Vedic Age'*)—(Bhartiya Vidya Bhawan, Bombay).

2. "The Brahmans (far less the Kshatriyas or Vaishyas) did not constitute an exclusive caste or race and that the prerogatives of composing hymns and officiating at the sacrifices of the gods were not regarded, in the age of Rig Veda, as entirely confined to men of priestly families. The same thing was equally or

यही बात इससे भी सिद्ध होती है कि परशुराम जन्म से ब्राह्मण और कर्म से क्षत्रिय था। विश्वामित्र जन्म से क्षत्रिय और कर्म से ब्रह्मर्षि था। प्रसिद्ध ऋषि वसिष्ठ एक वैश्या का पुत्र था और व्यास, जिसने महाभारत लिखी, एक धीवर स्त्री का पुत्र था। पाराशर ऋषि एक चाण्डाल का पुत्र था। अतः उस युग में जात-पाँत दृढ़ न थी परन्तु ऋग्वैदिक काल के पश्चात् यह अधिकाधिक दृढ़ होती गयी। बौद्ध और जैन काल से पूर्व यह अत्यन्त दृढ़ हो गयी थी। रामायण काल में भी आर्यों और दस्यु जातियों का भेद-भाव प्रचलित था। महात्मा बुद्ध के प्रचार के कारण जाति-प्रथा कुछ ढीली पड़ गयी परन्तु मुस्लिम काल में यह अत्यन्त दृढ़ हो गयी। अंग्रेजी काल में अंग्रेजी शिक्षा से यह काफी ढीली पड़ गयी। भारतीय संविधान में छुआछूत को समाप्त कर दिया गया है।

वर्ण-व्यवस्था के लाभ

(१) **वर्ण-व्यवस्था ने हिन्दू संस्कृति की रक्षा की**—वर्ण-व्यवस्था का हमारे देश में कम से कम तीन हजार वर्ष से प्रचलित होना यह प्रमाणित करता है कि इससे प्रत्येक काल में हिन्दुओं को अनेक लाभ हुए हैं। इसी के कारण हिन्दुओं ने बाहरी आक्रान्ताओं से अपना अधिक मेल-जोल नहीं बढ़ाया, फलतः वे सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से बिल्कुल अलग गुट की शक्ल में रहे और अपनी खोई हुई राजनैतिक स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। जब हिन्दुओं ने अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त कर ली तो विदेशी आक्रान्ताओं को नई-नई जातियाँ देकर अपने में खपा लिया। इसी कारण से शक, हूण, ग्रीक, यूचीह आदि आक्रान्ताओं का कोई नाम व निशान नहीं पाया जाता।

(२) **वर्ण-व्यवस्था श्रम-विभाग पर आश्रित है**—वर्ण-व्यवस्था का दूसरा लाभ यह है कि श्रम-विभाग तथा कर्मों की विशिष्टता (Division of Labour and Specialisation of Functions) पर आश्रित है। आरम्भ काल में आर्यों को जब अनार्यों से सामना करना पड़ा, तो उनका सारा समय लड़ाई-झगड़ों में व्यतीत हो जाता था, और वे खेती तथा अन्य उद्योग-धन्धों को फलीभूत नहीं बना सकते थे। अतः आर्यों ने अपने आपको चार विभागों में बाँट दिया, ताकि युद्ध चलता रहे तथा देश की रक्षा होती रहे, पूजा-पाठ के कार्यक्रम में भी रुकावट न आवे, खेती को कोई नुकसान न पहुँचे तथा उद्योग-धन्धों और शिल्प की उन्नति भी मन्द न पड़े। वर्ण-व्यवस्था के कारण ही भारत में कभी शिल्पकारों की कमी नहीं दिखाई पड़ी। जब बाप का पेशा उसके लड़के तथा पौत्र और परपौत्र अपनाते थे तो वे अधिक दक्षता प्राप्त कर लेते थे। रोजगारी की समस्या भी नहीं दिखाई पड़ती थी क्योंकि प्रत्येक

---

perhaps more true of the minor professions, as the hymns refer to father, mother and the son following three different vocations in life, *viz.*, those of a poet, a grinder of a corn and a physician. The heredity of occupation was therefore not yet a recognized principle, far less an accomplished fact. Of the other features of the caste-system *viz.*, prohibition of inter-dining and inter-marriage, no such restriction is ever hinted at in the hymns of Rig Veda."

—Muir—Original Sanskrit Texts, Vol. I, P. 263—4, 280.

बच्चे के लिए उसके बाप का पेशा निश्चित होता था और बाप भी अपने बच्चे को शुरू से ही उस पेशे की तरफ लगाने की कोशिश करता था।

(३) **इससे स्वार्थ-त्याग और बिरादरी की भावना उत्पन्न हुई**—इससे स्वार्थ-त्याग और बिरादरी की भावना भी उत्पन्न हुई। एक जाति के लोग आपस में मिल-जुल कर बैठने लगे और वे अपना सुख-दुःख समान समझने लगे। अतः उनमें एक दूसरे की सहायता का मादा उत्पन्न हुआ। गरीब और दीन-दुःखियों की सेवा होने लगी। जाति के सदस्यों में सामाजिक और आर्थिक अनुशासन भी स्थापित हो जाता है। इन विचारों की एक झलक प्राचीन काल के व्यापारिक और व्यावसायिक संघों में पाई जाती है।

(४) **जाति की शुद्धता की रक्षा हुई**—हिन्दुओं के भिन्न-भिन्न समुदायों में रक्त की शुद्धता का कारण वर्ण-व्यवस्था ही है। विवाह आदि के नियम प्राचीन काल में अत्यन्त कठोर थे, अतः रक्त की शुद्धता बनी रही। बाहरी जातियाँ हिन्दुओं को अपने अन्दर विलीन नहीं कर सकीं।

(५) **जाति-प्रथा से सामाजिक एकता की भावना उत्पन्न हुई**—मिस्र मसानी के कथनानुसार सामाजिक एकता तथा एक जाति का दूसरी पर निर्भर रहना वर्ण-व्यवस्था की जान है। जब एक व्यक्ति अपने वर्ण से उच्च वर्ण में प्रवेश करना चाहता था तो उसको इस नियम के आधार पर कि सब वर्ण ब्रह्म के शरीर से उत्पन्न हुए हैं, आज्ञा दे दी जाती थी। यह बात एकता की द्योतक थी। प्रत्येक व्यक्ति जाति का एक अंग माना जाता था, अतः प्रत्येक मनुष्य को व्यक्तिगत तथा सामाजिक उन्नति के लिए कार्य करना पड़ता था। किसी को भी अभावग्रस्त नहीं रहने दिया जाता था तथा यह प्रत्येक मनुष्य का धर्म समझा जाता था कि वह समाज के लाभ के लिए अधिक से अधिक काम करे। अतः सब जातियों में एक ही प्रकार के समाज-सेवा के भाव उत्पन्न हो गए।[१]

वर्ण-व्यवस्था से हानियाँ

(१) इससे राष्ट्रवाद की भावना को काफी गहरा धक्का पहुँचा और जातीयता की भावना उत्पन्न हुई। इससे देश का संगठन छिन्न-विच्छिन्न हो गया—(१) वर्ण-व्यवस्था का जो आधुनिक स्वरूप दिखाई पड़ता है, वह समाज के लिए अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हुआ है। Sir Henry Maine का विचार था कि "वर्ण-व्यवस्था समाज के लिए बहुत दुःखदायी और विनाशकारी सिद्ध हुई है।" इस व्यवस्था के कारण समाज की सर्वाङ्गीण उन्नति होने में बहुत बाधा उपस्थित हुई। इस जाति-भेद के कारण राष्ट्र की प्रगति रुक गई। जाति-भेद ने समाज में विष की तरह काम किया। इसके कारण हमारे देश की जनता में राष्ट्र का गौरव पूर्ण रूप से उत्पन्न नहीं होने पाया। लोग अपनी जाति पर अधिक गर्व करते थे। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब तुर्कों और मुगलों के आक्रमण हुए और जब हमारे राष्ट्र का अस्तित्व बिल्कुल नष्ट होने वाला था, उस समय भी राजपूत केवल जाति-भेद के

१. डाक्टर महाजन।

कारण एक होकर उनका मुकाबला न कर सके। अठारहवीं शताब्दी में जाति-भेद के कारण ही, मराठे राजपूत और सिख आपस में न मिल सके और अहमदशाह अब्दाली का मुकाबला सफलतापूर्वक न कर सके। अतः इससे हमारी एकता नष्ट हो गई।

(२) **इसके कारण हिन्दुओं का अधिक भाग सैनिक शिक्षा से वंचित रह गया**—वर्ण-व्यवस्था के कारण हिन्दुओं का $\frac{3}{4}$ भाग सैनिक शिक्षा से वंचित रह गया। देश पर जब यूनानियों, हूणों, शकों, तुर्कों और मुगलों के आक्रमण हुए और मातृभूमि पददलित हुई तो उस समय यह आवश्यकता थी कि बच्चा-बच्चा सिपाही बने लेकिन वर्ण-व्यवस्था के कारण क्षत्रियों के अतिरिक्त दूसरी जातियाँ देश-रक्षा की जिम्मेवारी नहीं समझती थीं। आजकल अनिवार्य सैनिक शिक्षा की और भी आवश्यकता है। क्योंकि साम्राज्यवादी देश दूसरों को हड़प करने का यत्न कर रहे हैं। इसलिए अनेक देशों में युद्ध के समय जबर्दस्ती भरती आरम्भ हो जाती है।

(३) **मनुष्य के लिए अपना पेशा या धन्धा तबदील करना कठिन हो गया**—तीसरा वर्ण-व्यवस्था में यह नुक्स है कि एक जाति में उत्पन्न हुए पुरुष के लिए जन्म से ही उसका कर्म निश्चित है, चाहे वह उसको पसन्द करे या न करे। यदि कोई अपना कर्म (profession) बदलना चाहे तो उसको अत्यन्त कठिनाई होती है। शूद्र के घर में उत्पन्न हुए बालक में चाहे कितनी भी योग्यता क्यों न हो उसे उन्नति करने के लिए पूरे अवसर प्राप्त नहीं होते। यद्यपि यह सत्य है कि आजकल पेशा बदलने में कोई दिक्कत पेश नहीं आती क्योंकि वर्ण-व्यवस्था ढीली पड़ गई है परन्तु जब वर्ण-व्यवस्था पूरे जोरों पर थी तो ऐसी कठिनाई अवश्य थी। शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकारी नहीं समझा जाता था।

(४) **इससे घृणा और छुआछूत का जन्म हुआ और प्रेम की भावनाओं पर कुठाराघात हुआ**—वर्ण-व्यवस्था के कारण हिन्दुओं में घृणा और छुआछूत की भावना उत्पन्न हुई। एक जाति का दूसरी जाति के साथ विवाह आदि का सम्बन्ध नहीं हो सकता था। इसी कारण से भोजन आदि के द्वारा भी मेल-मिलाप उत्पन्न होना बन्द हो गया। ब्राह्मण अपने आपको सबसे ऊँचा खयाल करते थे और क्षत्रिय अपने आपको ब्राह्मणों से भी ऊँचा खयाल करते थे। अछूतों को नीच समझा जाता था और उन्नति के तमाम दरवाजे उनके लिए बन्द थे। अछूतों को हिन्दुओं के कुँओं से पानी भरने और मन्दिरों में प्रवेश करने का निषेध था। इसके कारण हिन्दुओं के विचार संकुचित बन गए और उनमें भ्रातृ-भाव उत्पन्न न हो सका।

(५) **इसके कारण विदेशियों से मेल-जोल कम हुआ**—मिस्टर V. A. Smith ने लिखा है कि इसका एक मुख्य दोष यह भी है कि हिन्दुओं ने विदेशियों से मेल-जोल नहीं किया। हिन्दुओं ने विदेशियों से बहुत कम सीखने का प्रयत्न किया। अतः दूसरी जातियों में जो सैनिक आविष्कार होते रहे, हम उन से अनभिज्ञ रहे। हमने विदेशियों की अच्छाइयों को भी अपनाने का यत्न नहीं किया। हमारा दूसरे देशों से सम्पर्क खत्म हो गया और हम कूप-मण्डूक बन गए।

(६) **यह आजकल जन्म के आधार पर मानी जाती है, इससे सामाजिक असमता का जन्म होता है**—गीता के अनुसार जाति-प्रथा कर्म तथा गुण पर आश्रित

होनी चाहिए न कि जन्म पर। जन्म के आधार पर जाति को मानने का अर्थ है सामाजिक असमता को स्वीकार करना। सामाजिक असमता परमेश्वर की दृष्टि में भी अपराध है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति परमेश्वर का उत्पन्न किया हुआ है। जिस प्रकार पिता को सब बच्चे बराबर होते हैं उसी प्रकार परमेश्वर के लिए सब बराबर हैं। यह वर्ण-व्यवस्था प्रजातन्त्र के भी विरुद्ध है क्योंकि यह सामाजिक असमता को जन्म देती है।

सम्पत्ति

निजी सम्पत्ति से हमारा आशय उस सामग्री अथवा भूमि अथवा दोनों से है, जिस पर व्यक्ति का न्यायानुसार पूर्ण अधिकार हो। यह अधिकार प्रायः सारे संसार में मान्य है। अतीत काल में भी यह अधिकार संसार द्वारा स्वीकृत था और अब वर्तमान समय में भी मान्य है।[1]

यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि सम्पत्ति का अधिकार तभी चिरस्थायी रह सकता है जब कि यह समाज द्वारा स्वीकृत हो तथा न्यायपूर्ण हो। इसके अतिरिक्त राज्य का इस अधिकार को स्वीकार करना अत्यन्त आवश्यक है। यदि राज्य इस अधिकार को स्वीकार न करे, तो इस अधिकार की कौन रक्षा करेगा ? यदि राज्य इस अधिकार को स्वीकार न करे, तो सबल व्यक्ति निर्बलों की जायदाद को हडप कर जाए, अतः आदिकाल से ही हमारे देश में राज्य का कर्त्तव्य जीवन, सम्पत्ति तथा स्वतन्त्रता की रक्षा करना रहा है। सम्पत्तिशाली व्यक्ति का भी यह अधिकार है कि वह राज्य से अपनी सम्पत्ति की रक्षा के लिए माँग कर सके। इसके अतिरिक्त उसका परम कर्त्तव्य भी है कि वह सम्पत्ति को देश के हित के लिए प्रयुक्त करे।

सम्पत्ति सार्वजनिक (public) भी हो सकती है और व्यक्तिगत (individual) भी। रेलें नहरें, सड़कें, पुल, दरिया इत्यादि सार्वजनिक सम्पत्ति के उदाहरण हैं और जमीन तथा रुपया-पैसा निजी सम्पत्ति के उदाहरण हैं। यह ध्यान में रखने योग्य बात है कि रूस में कम्युनिस्ट शासक प्रायः व्यक्ति को यह अधिकार देने को तैयार नहीं कि वह चाहे जितने कारखाने चला सके। यदि व्यक्ति केवल अपने परिश्रम से और मजदूरों के शोषण के बिना कुछ रुपया पैसा जमा करना चाहे तो उसे कोई रुकावट नहीं है। समाजवादी और साम्यवादी व्यक्तिगत सम्पत्ति को एक पवित्र और श्रेष्ठ अधिकार मानने को तैयार नहीं क्योंकि उनके कथनानुसार पूँजीपति श्रमिकों का शोषण करते हैं और उनका खून चूस कर अपने विशाल भवनों का निर्माण करते हैं। मिस्टर मिल का विचार था कि राजनैतिक अधिकार केवल उसी व्यक्ति को प्राप्त होने चाहिएँ जो कि कुछ सम्पत्ति का मालिक हो परन्तु बीसवीं शताब्दी में इन विचारों का पूर्ण खण्डन हो चुका है। आज के प्रजातन्त्र के युग में सब वयस्कों को मताधिकार प्राप्त है और राजनैतिक अधिकार सम्पत्ति पर आश्रित नहीं हैं।

निजी सम्पत्ति के लाभ

(i) धन से मनुष्य की इच्छाओं की तृप्ति होती है और वह अधिक परिश्रमी

---

१. डाक्टर बी० डी० महाजन : 'नागरिक शास्त्र', पृष्ठ ६७।

बन जाता है—प्रत्येक मनुष्य में यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि अधिक से अधिक धन कमाये। धन के द्वारा ही उसकी इच्छाएँ सन्तुष्ट हो सकती हैं। धन उत्पन्न करने के लिए वह अधिक से अधिक यत्न करता है, अतः मनुष्य परिश्रमी बन जाता है। यदि मनुष्य के पास निजी सम्पत्ति न हो तो उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़े। निजी सम्पत्ति के भरोसे पर ही वह आने वाले दुःख, सुख की चिन्ता नहीं करता। मनुष्य बुरे दिनों के लिए सम्पत्ति का संग्रह करता है।

(ii) **निजी सम्पत्ति से आत्म-निर्भरता उत्पन्न होती है**—यदि मनुष्य के पास निजी सम्पत्ति न हो तो उसे बार-बार दूसरे व्यक्तियों की सहायता लेनी पड़े। अतः किसी देश में भी ऐसा नहीं किया जाता कि वहाँ व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने की स्वतन्त्रता न हो। रूस में यद्यपि एक मनुष्य दूसरे का शोषण करके धन जमा नहीं कर सकता तथापि अपनी मेहनत से कमाये हुए धन को जमा करने का उसे पूर्ण अवसर प्राप्त है। वहाँ केवल उत्पत्ति के साधनों का राष्ट्रीयकरण (nationalisation) हुआ है।

(iii) **निर्भयता को जन्म देती है**—निजी सम्पत्ति से मनुष्य में निर्भयता उत्पन्न हो जाती है क्योंकि जिस मनुष्य के पास कुछ धन होता है, वह दूसरों की परवाह नहीं करता। गरीब आदमी हर वक्त दूसरों के दबाव में रहता है, जैसे कि एक क्लार्क या मजदूर यदि अपने अफ़सर की झाड़ न सहे, तो उसकी नौकरी छूट जाय। बुढ़ापे की चिन्ता धनवान को नहीं रहती। बीमारी में भी धनवान व्यक्ति निश्चिन्त रहता है क्योंकि वह अच्छी से अच्छी औषधियों का प्रयोग कर सकता है।

(iv) **निजी सम्पत्ति ने सभ्यता तथा संस्कृति को उन्नति प्रदान की**—जिस मनुष्य के पास पर्याप्त धन होता है वह दूसरों की खुशामद में हर वक्त नहीं लगा रहता। उसे हर समय रोटी की चिन्ता नहीं रहती, अतः वह अपना कुछ अवकाश का समय देश की समस्याओं के हल को सोचने में लगाता है। जिस मनुष्य के पास निजी सम्पत्ति होती है, वही अपने बच्चों को शिक्षा दे सकता है तथा समाचार पत्र और ज्ञान की पुस्तकें खरीद सकता है और पढ़ सकता है। उसमें ही राजनीति में भाग लेने की उत्कट इच्छा उत्पन्न होती है। अतः सभ्यता संस्कृति का विकास होता है। संसार में सभ्यता-संस्कृति का विकास उन्हीं पुरुषों द्वारा हुआ है जिन्हें कुछ अवकाश प्राप्त रहा है और रोटी की चिन्ता हर समय नहीं रही है। निजी सम्पत्ति के बिना संसार में सभ्यता का विकास हो ही नहीं सकता। इसके बिना सुन्दर, विशाल तथा शोभायमान भवनों का बनना असम्भव था तथा संगीत-कला, चित्र-कला, नृत्य-कला तथा गृह-निर्माण-कला का भी उदय नहीं हो सकता।

(v) **सम्पत्तिशाली व्यक्ति शान्ति का उपासक होता है और क्रान्ति को रोकने का प्रयत्न करता है**—सम्पत्तिशाली व्यक्ति गम्भीर प्रकृति का होता है। वह क्रान्ति का घोर विरोधी होता है और शान्ति का उपासक, क्योंकि उसे चिन्ता रहती है कि कहीं उसकी सम्पत्ति खतरे में न पड़ जाय। वह अपनी राय (वोट) भी बहुत सोच-समझ कर डालता है क्योंकि उसे टैक्स देना पड़ता है। यदि अयोग्य व्यक्तियों के हाथ में राजनैतिक शक्ति होगी, तो वे जनता के रुपये का अपव्यय करेंगे।

(vi) **सम्पत्तिशाली व्यक्ति भूकम्प, अकाल तथा बाढ़ से पीड़ितों की रक्षा करते हैं**—सम्पत्तिशाली व्यक्तियों के पास इतना धन होता है कि वे दूसरों की सहायता कर सकते हैं। अतः जिस समय देश में भूकम्प, अकाल, बाढ़ या अन्य कोई महामारी पड़ जाये, तो उस समय सम्पत्तिशाली व्यक्ति काफी दान देते हैं ताकि गरीबों की सहायता हो जाय। सम्पत्तिशाली व्यक्ति अनेक पाठशालाओं और अनाथालयों को भी दान देते हैं।

निजी सम्पत्ति की हानियाँ

(१) **सम्पत्ति के द्वारा समाज गरीबों तथा अमीरों में बँट जाता है**—निजी सम्पत्ति के विरुद्ध भी लोग ऐसा कहते हैं कि इसने समाज को दो भागों में बाँट दिया है। एक वर्ग धनवानों का है और दूसरा निर्धनों का। मिस्टर कार्ल मार्क्स का विचार था कि धनवान् सर्वदा निर्धनों का शोषण करते रहते हैं। धनवान् और निर्धनों में सर्वदा एक संघर्ष चलता रहता है। मार्क्स का कहना था कि यह संघर्ष तभी समाप्त होगा जब कि इन दोनों में से एक वर्ग नष्ट हो जायेगा। इस संघर्ष में अन्तिम विजय मजदूरों की होगी और पूँजीवाद का नाश होगा।

(२) **सम्पत्तिशाली गरीबों का शोषण करते हैं। अतः धन इने-गिने पूँजीपतियों के हाथों में केन्द्रित हो जाता है। वे धन का अपव्यय करते हैं**—समाजवादियों का विश्वास था कि पूँजीपति राज्य की शक्ति को सदा अपने लाभ के लिए प्रयुक्त करते हैं। अतः सम्पत्ति का प्रयोग पूँजीपति समाज के लाभ के लिए न करके केवल अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए ही करते हैं। पूँजीवाद का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि सम्पत्ति केवल थोड़े से व्यक्तियों के हाथों में इकट्ठी हो जाती है। जो अमीर हैं अधिक अमीर होते जाते हैं और जो गरीब हैं अधिक गरीब हो जाते हैं। इसका फल यह होता है कि पूँजीपति अपना सारा समय आमोद-प्रमोद में बिताते हैं और शिक्षा ग्रहण करने की ओर कोई ध्यान नहीं देते। उनमें धन के आधिक्य (excess) के कारण अनेक प्रकार के अवगुण या बुराइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। दूसरी तरफ गरीब लोग पैसे-पैसे के लिए तरसते हैं। न उनको पेट भरकर रोटी नसीब होती है और न वे अपने बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध कर सकते हैं।

(३) **सम्पत्तिशाली व्यक्ति गरीबों के वोट खरीद लेते हैं और प्रजातन्त्र को अपने स्वार्थ के लिए प्रयुक्त करते हैं**—सम्पत्ति प्रजातन्त्र के लिए भी एक विशेष खतरा है। पूँजीपति गरीबों के वोट खरीद लेते हैं और संसद् (Parliament) में जाकर अपने लाभ के लिए कानून बनाते हैं। वे समाचार पत्रों, स्कूलों तथा कालेजों और धार्मिक संस्थाओं को चन्दा देकर उन पर अपना पूर्ण अधिकार जमा लेते हैं। अतः सामाजिक संस्थाओं और राज्य पर उनका नियन्त्रण होता है। गरीबों की कोई सुनवाई नहीं होती। सारे टैक्स गरीबों पर ही लगाये जाते हैं। प्रजातन्त्र लोगों का शासन न होकर एक ऐसा शासन बन जाता है जो पूँजीपतियों के इशारों पर नाचता है।

(४) **सम्पत्ति से अनेक झगड़े उत्पन्न होते हैं**—सम्पत्ति के कारण ही भाई-

भाई और बाप-बेटे में लड़ाई-झगड़े चलते हैं। सम्पत्ति घर की तबाही का मूल कारण बन जाती है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि एक भाई दूसरे भाई को कत्ल कर देता है या बेटा बाप को कत्ल कर देता है। सम्पत्ति के कारण ही अधिकतर मुकद्दमेबाजी चलती है।

(५) **राज्य और बीमा कम्पनियाँ आजकल आपत्ति के समय मनुष्य की रक्षा करती हैं, अतः सम्पत्ति का अधिकार व्यर्थ है**—सम्पत्ति के समर्थकों का ऐसा विचार था कि सम्पत्ति बुरे दिनों में मनुष्य की रक्षा करती है परन्तु अब यही काम राज्य या बीमा कम्पनियाँ करती हैं, अतः सम्पत्ति संग्रह की कोई आवश्यकता नहीं है। रूस में प्रत्येक मनुष्य का यह अधिकार है कि सरकार से वह काम की माँग कर सके और सरकार का कर्त्तव्य है कि या तो उसको काम दे वरना उसकी रोटी, कपड़े और मकान का प्रबन्ध करे। इंगलैंड में भी कुछ समय हुआ जब बेरोजगारी को समाप्त करने के लिए राज्य-बीमा योजनाएँ (State Insurance Schemes) निकाली गईं। रूस में प्रत्येक वृद्ध पुरुष को पेन्शन मिलती है।

(६) **सम्पत्ति से गर्व उत्पन्न होता है। यह अमीर आदमी को आलसी बना देती है**—धन से मनुष्य में गर्व उत्पन्न होता है। वह अपने आपको बहुत ऊँचा और दूसरों को नीच समझने लगता है। धन उसकी बुद्धि को नष्ट कर देता है और अनेक प्रकार के व्यसन जैसे मद्यपान, जूआ और वेश्या के साथ सम्भोग इत्यादि उसको घेर लेते हैं। सम्पत्ति का दुरुपयोग होता है। अतः समाज की भलाई इसी में है कि आर्थिक विषमताएँ नष्ट हो जायँ और धन का वितरण न्याय पर आधारित हो। अधिक धन के कारण मनुष्य आलसी भी बन जाता है। यदि एक मनुष्य को बहुत अधिक पैतृक सम्पत्ति प्राप्त हो जाये तो वह प्रायः निकम्मा बैठा रहता है। ऐसे मनुष्य समाज पर बोझ हैं। प्रत्येक मनुष्य को परिश्रम करके खाना चाहिए, तभी जीवन का वास्तविक आनन्द प्राप्त होता है। सम्पत्ति अन्याय का कारण भी बन जाती है क्योंकि मजदूरों को सारे दिन मेहनत करने के बावजूद पेट भर कर रोटी नसीब नहीं होती और पूँजीपतियों को सारे दिन आनन्द-मंगल मनाने पर भी लाखों-करोड़ों रुपयों की आमदनी हो जाती है। यदि एक मनुष्य को पैतृक सम्पत्ति में पन्द्रह-बीस दुकानें या मकान मिल जायँ तो उसे दिल्ली जैसे बड़े शहर में हजारों रुपये मासिक की (बिना किसी काम करने के) आमदनी हो सकती है।

(७) प्रो० लास्की ने सम्पत्ति की त्रुटियाँ बताते हुए कहा है कि "यह मनोविज्ञान के अनुसार ठीक नहीं है क्योंकि भय की भावना को उत्तेजित करके यह उन मानसिक शक्तियों का जिनके द्वारा मनुष्य उत्तम जीवन व्यतीत कर सकता है, ह्रास करती है।"

अन्त में हम कह सकते हैं कि यह संस्था मानव-समाज के लिए उपयोगी है। यदि इसका प्रयोग गरीबों के शोषण के लिए न किया जाय। यदि मनुष्य केवल अपने परिश्रम से कुछ धन कमाता है तो उसको इसे जमा करने का अधिकार अवश्य होना चाहिए ताकि आपत्ति के समय उसे कोई कठिनाई न हो। सम्पत्ति व्यक्तित्व के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यदि सम्पत्ति का प्रयोग लोगों को लूटने के

लिए हो तो इसे नष्ट करना ही उचित होगा। अतः केवल अपने परिश्रम से कमाये हुए धन को अपने या दूसरों के आराम के लिए खर्च करना ही उचित है। उत्पादन (production) का राष्ट्रीयकरण (nationalisation) अवश्य होना चाहिए। धन का जितना सम वितरण (equal distribution) हो उतना ही अच्छा है।

धर्म (Religion)

धर्म की परिभाषा—मनु जी लिखते हैं कि धर्म के दस लक्षण हैं :—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ॥मनुः॥

अर्थात् धर्म का पहला लक्षण धृति; दूसरा, क्षमा; तीसरा, मन को वश में रखना; चौथा, मन और कर्म की पवित्रता; पाँचवाँ, इन्द्रियों को वश में करना; छठा, बुद्धि; सातवाँ, विद्या; आठवाँ, चोरी न करना; नवाँ, सत्य बोलना; दसवाँ, क्रोध न करना है। इसलिए मनु जी के मतानुसार धर्म के ये दस लक्षण हैं।

ऊपर की परिभाषा से पता चलता है कि धर्म का आधार नैतिकता है (Dharma is a code of morality)। डाक्टर राधाकृष्णन् लिखते हैं कि "धर्म कोरे विश्वास का नाम नहीं है बल्कि सच्चरित्र जीवन है। सचमुच जो धर्मात्मा हैं उन्हें दूसरे लोगों के विश्वासों की चिन्ता नहीं रहती।" महात्मा ईसा के कथन पर तो ध्यान दीजिए—"मेरे पास दूसरी भेड़ भी हैं जो इस बाड़े की नहीं हैं।" धर्म और मज़हब में कुछ लोग भेद करते हैं। उनके विचार में धर्म चरित्र पर अधिक ज़ोर देता है और मज़हब सिद्धान्त पर। कर्त्तव्य-पालन धर्म का मुख्य आधार है। इसमें सन्देह नहीं है कि सभी धर्मों या मज़हबों का उद्देश्य लोगों की मानसिक उन्नति करना और उनमें प्रेम उत्पन्न करना है। यह दक्षिण के एक लोक-गीत से भली-भाँति सिद्ध होता है—

अलग-अलग नदियों के उद्गम, अलग-अलग नदियों के नाम,
एक महासागर की गोदी में, पर, पाने को विश्राम
बहती हुई चली जाती हैं गिरिमालाओं से अविराम।
इसी तरह से देश-देश में लोग रहे हैं माथा टेक
एक महाप्रभु के चरणों में, गो हैं उनके नाम अनेक।[1]

धर्म से लाभ

(१) राज्य के विकास में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गेटेल के कथनानुसार "राजनैतिक विकास के आरम्भिक तथा जटिलतम काल में धर्म पालन करना ही क्रूर क्रान्तियों को दबाने में समर्थ हुआ था। धर्म ने लोगों को नियम का पालन करना सिखाया। लोगों को अनुशासन तथा राज्य-सत्ता की आज्ञा का पालन सीखने के लिए हज़ारों वर्ष लगे।"

---

१. गोवर : दि फॉक सौंग्स ऑफ सदर्न इंडिया, पृष्ठ १६५। प्रो० हरिवंसराय 'बच्चन' द्वारा हिन्दी में अनूदित।

(२) धर्म के कारण ही प्राचीन काल में बहुत से कबीले मिलकर एक संगठित राष्ट्र बन गये। सऊदी अरब में हज़रत मुहम्मद साहिब से पहले बहुत से कबीले थे और आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे परन्तु मुहम्मद साहिब ने उन सब को एक धार्मिक सूत्र में बाँध दिया। इस कारण से उनमें एक महान् एकता उत्पन्न हुई। धार्मिक एकता ने राजनैतिक एकता को जन्म दिया और अरब के लोगों ने दूर-दूर के देश विजय किये। पाकिस्तान और इज़राइल के निर्माण में भी धर्म ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

(३) धर्म के कारण अनुशासन उत्पन्न होता है। धर्म बच्चे को माँ-बाप की आज्ञा पालन करना सिखाता है। धर्म ही चोर-डाकुओं को पाप करने से रोकता है और उनको नरक का भय दिखाता है। धर्म के कारण समाज में भाई-भाई का प्रेम उत्पन्न होता है। धर्म हमको प्रेम और कर्त्तव्य की दीक्षा देता है। इसके द्वारा ही मानव-जाति को हम एक कुटुम्ब समझने लगते हैं क्योंकि धर्म यह सिखाता है कि सब मनुष्य ईश्वर की सन्तान हैं।

(४) धर्म ने लोगों को सर्वगुणसम्पन्न करने में काफी भाग लिया है। धर्म के कारण ऊँचे-ऊँचे मन्दिरों, मस्जिदों, गिरजाघरों और विहारों अथवा स्तूपों का जन्म हुआ। ये कला के उच्चतम नमूने हैं। प्राचीन काल में कला धर्म पर ही आधारित थी। धार्मिक ग्रन्थों से साहित्य को अमूल्य सामग्री प्राप्त हुई। वेदों, उपनिषदों, शास्त्रों तथा गीता का हिन्दुओं के जीवन पर ही नहीं बल्कि मानव-जाति पर एक विशेष प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार कुरान, अवेस्ता तथा बाइबल ने भी मानव-जाति को प्रगति की ओर अग्रसर किया। ये धार्मिक पुस्तकें वास्तव में आचार शास्त्र कहे जा सकते हैं।

(५) धर्म के कारण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध भी बढ़े। चीन और भारत की प्राचीन मैत्री बौद्ध धर्म के कारण ही हुई। सहस्रों बौद्ध भिक्षु भारत से अफगानिस्तान, मिस्र, ईरान, अरब, चीन, तुर्किस्तान, बर्मा, मलाया, हिन्द-चीनी तथा लंका और इन्डोनेशिया गये। इसी प्रकार भारत में इन देशों के अनेक यात्री आये। इतना ही नहीं बल्कि इन देशों से और भारत में सांस्कृतिक, राजनैतिक और व्यापारिक सम्बन्ध भी स्थापित हो गए। महाराज हर्ष के समय चीन के राजदूत भारत में आये। इसी प्रकार चीन में भी भारत के राजदूत गये।

(६) प्राचीन और मध्य काल में शिक्षा प्रायः धार्मिक संस्थाओं के हाथों में थी। पादरी, मौलवी और पण्डित ही शिक्षा का दान जनता को दिया करते थे। उस समय शिक्षा इतनी मँहगी न थी जितनी कि आजकल। धार्मिक संस्थाओं ने सर्वदा अनेक शिक्षणालय तथा अनाथालय खोले हैं और पीड़ितों तथा दुःखियों की सहायता की है। धार्मिक संस्थाओं को लोग प्रायः धर्म के नाम पर खूब दान देते हैं। बौद्ध विहारों को राजे-महाराजे बहुत दान देते थे और हजारों विद्यार्थी उनमें मुफ्त शिक्षा ग्रहण करते थे। आजकल भी सनातन धर्म, आर्य समाज तथा रामकृष्ण मिशन बहुत सेवा कर रहे हैं।

(७) धर्म के कारण हम अपने दुःखों और चिन्ताओं को भूल जाते हैं क्योंकि धर्म हमको सुख-दुःख में समान रहने की शिक्षा देता है। हम अपने दुःखों को यह कह कर भूल जाते हैं कि परमेश्वर के सामने किसका बस चलता है, वह जो कुछ करता है, ठीक ही करता है। अतः हम निश्चिन्त हो जाते हैं। चिन्ता ही सब दुःखों का मूल कारण है। यदि चिन्ता न रहे तो दिल की गति बन्द होने की बीमारी (heart attack) और उन्माद का रोग (madness) समीप भी न आयें। इतना ही नहीं धर्म हमको अपने ग्राम, जाति, प्रान्त, देश तथा विश्व की ओर कर्त्तव्य-पालन करना सिखाता है और हम में भ्रातृ-भाव, सहानुभूति, सत्य, अहिंसा तथा परोपकार कूट-कूट कर भरता है। यही हमको क्षमा का पाठ पढ़ाता है। चरित्र-निर्माण में भी इसका विशेष हाथ है। अतः धर्म आदर्श नागरिकता के निर्माण में बहुत सहायक सिद्ध होता है।

धर्म या मज़हब की हानियाँ

धर्म और मज़हब में यद्यपि काफी अन्तर है तथापि बहुत से लोग इसमें कोई अन्तर नहीं समझते। धर्म का अर्थ कई बार नैतिकता और कर्त्तव्य से लिया जाता है परन्तु मज़हब कुछ खास सिद्धान्तों पर आधारित होता है। अतः धर्म से कोई हानि नहीं परन्तु मज़हब में अवश्य कुछ हानियाँ हैं। मज़हब की हानियाँ नीचे लिखी जाती हैं—

(१) मज़हब के नाम पर दुनिया में खून की होली खेली गई। भारत में सन् १६४७ से पूर्व अनेक हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए। मज़हबी झगड़ों के कारण ही भारत और फिलस्तीन का विभाजन हुआ। सन् १६४७ में भारत और पाकिस्तान में सहस्रों निर्दोष हिन्दुओं तथा मुसलमानों का खून बहाया गया। लाखों रुपयों की सम्पत्ति नष्ट हो गई और असंख्य घर उजड़ गए। फिलस्तीन में भी इसी प्रकार मुसलमानों और यहूदियों में घनघोर युद्ध हुए। मध्य युग में जेरुसलम जो कि फिलस्तीन की राजधानी है, अनेक धार्मिक युद्धों (crusades) का केन्द्र बना रहा। मुसलमानों के धार्मिक युद्ध भी इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हैं। इंगलैण्ड में मज़हब के नाम पर हेनरी अष्टम, ब्लडी मेरी तथा एलिज़बेथ ने खून बहाए। मज़हबी झगड़ों के कारण ही इंगलैण्ड में गृह-युद्ध (Civil War) हुए। उन्नीसवीं शताब्दी में टर्की (Turkey) में भी अनेक प्रकार के मज़हबी झगड़े चलते रहे।

(२) साम्यवादियों का विश्वास है कि मज़हब एक प्रकार से अफीम है। मज़हब मज़दूरों में यह भावना उत्पन्न करता है कि उनके कष्टों का कारण पूर्व-जन्म में किए गए दुष्कर्म हैं। अतः मज़दूरों में एक प्रकार का सन्तोष उत्पन्न हो जाता है और वे पूँजीपतियों के द्वारा पैदा की हुई सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों को बदलने के लिए जाग्रत नहीं होते।

(३) मज़हब के नाम पर अनेक प्रकार के भ्रम और पाखण्ड फैलाए जाते हैं। धूर्त और चालाक साधु भोली-भाली जनता को बेवकूफ बनाकर अपना उल्लू सिद्ध करते हैं। इसी प्रकार पण्डे और पुजारी भोली जनता से धर्म के नाम पर अधिक से

अधिक दान माँगते हैं और स्वयं अपना आचरण शुद्ध न रखकर उस पैसे का दुरुपयोग करते हैं और अनेक व्यसनों में फँस जाते हैं।

(४) मज़हब मनुष्य को पुरुषार्थी की अपेक्षा भाग्यवादी बना देता है। लोग यह समझने लगते हैं कि जो कुछ उनके भाग्य में लिखा है, वह अवश्य होकर रहेगा और उनमें यह शक्ति नहीं कि खराब सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों को पलट दें। इस प्रकार की भावना उन्नति में रुकावट डालती है।

(५) मज़हब के कारण लोगों में अन्धविश्वास उत्पन्न होता है क्योंकि किसी भी मज़हब की बुनियाद डालने वाले नेता के अनुयायी यह सोचने लगते हैं कि जो उनके मज़हब के आदि नेता ने कहा था, वही अन्तिम सत्य है। वे वैज्ञानिक सत्य का तिरस्कार करते हैं। इतना ही नहीं बल्कि मज़हबी स्थानों पर घृणा फैलाई जाती है। इससे मानव-जाति की प्रगति को धक्का पहुँचता है।

मज़हब और राज्य (State and Religion)

मज़हब और राज्य में घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्राचीन काल में मज़हब राजनीति का महत्त्वपूर्ण अंग था। मज़हब ने राजनीति को बहुत प्रभावित किया। बहुत से देशों में पुरोहित-राजे (Priest-Kings) हुए हैं। इंगलैंड में हेनरी अष्टम, ब्लडी मेरी तथा एलिज़बेथ ने लोगों के लिए मज़हब निर्माण करने का यत्न किया। भारत में औरंगजेब, सिकन्दर लोदी तथा अन्य बादशाहों ने अपने मज़हब को दूसरे लोगों में फैलाने के लिए भरसक यत्न किये और इसके लिए राज्य के कोष की पूरी सहायता ली गई। सम्राट् अकबर ने भी दीन इलाही चलाया परन्तु उसको इसमें विशेष सफलता प्राप्त न हुई। सम्राट् अशोक ने भी बौद्ध धर्म का प्रचार किया परन्तु उसका प्रचार अधिकतर नैतिकता पर ही आधारित था। उसने इसमें (धर्म में) ऐसे सिद्धान्त सम्मिलित कर लिये थे जो कि सब लोगों को मान्य थे। इंगलैंड में आजकल कैथोलिक सम्प्रदाय के किसी भी व्यक्ति को वहाँ का सम्राट् बनने का अधिकार नहीं है। भारत में अंग्रेजों ने ईसाई धर्म के प्रचार के लिए काफी रुपया पादरियों को दिया। महाराजा रणजीत सिंह ने भी पन्थ के प्रचार के लिए बहुत सा राज्य का धन व्यय किया।

आजकल वास्तव में मज़हब का राज्य पर इतना प्रभाव नहीं रहा। अब मज़हब प्रत्येक व्यक्ति का अपना प्रश्न रह गया है। राज्यों की सरकारें, आजकल अपनी राजनीति मज़हब पर अवलम्बित नहीं करतीं। भारत आजकल एक धर्म-निरपेक्ष राज्य (Secular State) है। इसका अर्थ है कि मज़हब के आधार पर किसी प्रकार का कोई भेद-भाव नहीं होगा। राज्य को चाहिए कि मज़हबी विषयों में दखल न दे और मजहबी संस्थाओं को भी राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए।

सारांश

जाति-प्रथा—जाति-प्रथा कब उत्पन्न हुई, यह कहना बहुत कठिन है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में लिखा है कि ब्रह्मा के मुँह से ब्राह्मण, हाथों से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। बहुत से लेखकों का दूसरा विचार है। उनके विचार में जब आर्यों ने अनार्यों पर विजय प्राप्त करनी आरम्भ कर दी तो पूजा-पाठ

और खेती का काम बिल्कुल अस्त-व्यस्त हो गया, अतः उस कार्य को ठीक चलाने के लिए आर्यों ने अपने आपको चार विभागों में बाँट दिया। भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है कि मैंने गुण और कर्म के आधार पर चार वर्ण पैदा किए। यद्यपि जात-पाँत के उदय का कारण विवादास्पद है तथापि यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है कि ऋग्वैदिक काल में जाति-प्रथा इतनी जटिल नहीं थी जितनी आजकल। ऋग्वैदिक काल के पश्चात् यह दृढ़ होती गई। महात्मा बुद्ध के प्रचार से यह कुछ ढीली हो गई और मुस्लिम काल में यह फिर अत्यन्त जटिल हो गई। अंग्रेजी काल में पाश्चात्य शिक्षा और अनेकों सुधारकों के प्रचार से अब यह इतनी जटिल नहीं रह गई है। जाति-प्रथा का सब से बड़ा गुण यह था कि यह श्रम-विभाजन और कार्य-प्रवीणता (division of labour and specialisation of function) पर आधारित थी परन्तु इसकी सब से बड़ी हानि यह है कि इससे छुआछूत की भावना उत्पन्न होती है।

सम्पत्ति—निजी सम्पत्ति के अधिकार का अर्थ भूमि अथवा सामग्री या दोनों से है जिस पर व्यक्ति का न्यायपूर्ण अधिकार हो। सम्पत्ति का अधिकार राज्य तथा समाज द्वारा स्वीकृत होना चाहिए। रूस में शोषण के द्वारा व्यक्तिगत सम्पत्ति बढ़ाने पर रुकावट है। निजी सम्पत्ति से यह लाभ है कि मनुष्य की धन-सम्बन्धी तृष्णा शान्त होती है और आत्म-निर्भरता तथा निर्भीकता बढ़ जाती है। सभ्यता तथा संस्कृति का विकास होता है। इससे क्रान्ति कुछ हद तक रुक जाती है और शान्ति दृढ़ बनती है। इसी के द्वारा धनाढ्य गरीबों और दीन-दुःखियों की सहायता करते हैं। इससे हानियाँ ये हैं कि समाज मजदूर और पूंजीपति दो वर्गों में बँट जाता है। धनवानों को गरीबों के शोषण का अवसर प्राप्त हो जाता है। इससे सामाजिक और आर्थिक असमता का जन्म भी होता है।

धर्म—धर्म और मज़हब में बहुत अन्तर है। धर्म का आधार नैतिकता है और मज़हब का आधार एक विशेष सिद्धान्त। धर्म की हानि कोई नहीं परन्तु लाभ अनेक हैं, जैसे धर्म ने लोगों में अनुशासन उत्पन्न किया। इसके द्वारा साहित्य को अमूल्य सामग्री प्राप्त हुई। धर्म ने भिन्न-भिन्न कबीलों को एक सूत्र में पिरोया। इसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध भी बढ़े। इससे दुःखों और चिन्ताओं का अन्त भी होता है और मनुष्य में दान और परोपकार की भावना का उदय होता है। मज़हब की अनेक हानियाँ हैं, जैसे मज़हब के नाम पर बेगुनाहों का खून बहाया गया। मज़हब के नाम पर अनेक पाखण्ड फैलाए जाते हैं। यह मनुष्यों को भाग्यवादी बना देता है और उनमें से पुरुषार्थ का भावना खत्म कर देता है। इसके कारण अन्ध-विश्वास उत्पन्न होते हैं।

Questions

1. What do you understand by private property ? Is it a sacred right ? What are the views of Socialists regarding the property ?

2. What is the relation between State and Religion ? Should the State prescribe religion for the people ?

3. Is it wise to grant the political rights on the basis of property ? What are the advantages and disadvantages of the property system ?

4. What do you mean by caste-system ? How and when did it originate ? What are its merits and demerits ?

प्रश्न

१. निजी सम्पत्ति का आरम्भ कब और कैसे हुआ ? इसके लाभ और हानियों का वर्णन कीजिए।

२. समाजवादियों के सम्पत्ति के बारे में विचारों को स्पष्ट कीजिए। क्या सम्पत्ति एक पवित्र (या पुण्य) अधिकार है ?

३. धर्म और मज़हब में क्या भेद है ? क्या राज्य को लोगों के लिए कोई मज़हब निश्चित करना चाहिए ?

४. वर्ण-व्यवस्था का आरम्भ कब और कैसे हुआ ? इसके लाभ और हानियाँ बतलाइये।

बारहवाँ अध्याय

अवकाश तथा आमोद-प्रमोद

(Leisure and Recreation)

"यह सत्य है कि अवकाश के बिना राजनैतिक अधिकार कागजी रह जाते हैं और राजनैतिक जीवन अधूरा रह जाता है।"

—डाक्टर बेनीप्रसाद

अवकाश का अर्थ और महत्त्व

(Meaning and Importance of Leisure)

आजकल मनुष्य के जीवन में अवकाश का बहुत ही अधिक महत्त्व है। मनुष्य जब मानसिक और शारीरिक कार्य के पश्चात् बहुत अधिक थक जाता है तो उसको विश्राम की आवश्यकता होती है। अवकाश का अर्थ है **'परिश्रम से थकने के बाद आराम'**। यदि मनुष्य आराम न करे तो उसका स्वास्थ्य बिल्कुल खराब हो जाय। इसी प्रकार जो मनुष्य अत्यन्त अधिक मानसिक काम करता है और दिमाग को बिल्कुल आराम नहीं देता, अन्त में पागल हो जाता है। अतः स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए अवकाश बहुत जरूरी है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अपनी वृत्ति के लिए धन कमाने के पश्चात् जो समय फालतू बचता है, उसे प्रायः अवकाश कहते हैं। प्रोफेसरों के पास अवकाश बहुत होता है। प्रायः वे उस समय को धन कमाने में न लगा कर नाटक, उपन्यास, काव्य, कहानियाँ तथा समाचार पत्र पढ़ कर ही बिताते हैं। इसी प्रकार बहुत बार देखा गया कि कुछ क्लर्क दफ्तर का काम खत्म करने के बाद अपना फालतू समय मकान के सामने फूल और सब्जी लगाने में व्यतीत करते हैं। अवकाश और आलस्य में बहुत भेद है। अवकाश का अर्थ है कि बहुत परिश्रम के पश्चात् विश्राम किया जाय और आलस्य का अर्थ है कुछ काम न करना और व्यर्थ समय गँवाना (while leisure means rest from hard work, idleness means absence of work)। अवकाश का अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य प्रयास (heavy and dull work) से बच जाए या बड़ी मेहनत का कोई कार्य न करे। प्राचीन कालीन यूनान में दासों (slaves) को बहुत काम करना पड़ता था, उन्हें सवेरे से रात तक बिल्कुल फुरसत न मिलती थी, अतः वहाँ उनके लिए ऐसा अवकाश माँगना उचित था परन्तु अब समय बहुत बदल गया है। आजकल मजदूरों के लिए आठ घण्टे का दिन निश्चित हो चुका है अर्थात् मजदूरों से कारखाने के मालिक आठ घण्टे से अधिक काम नहीं ले सकते। इसी प्रकार अब बैंकों में भी परिस्थिति पहले से अच्छी हो गई है। अब भी संसार में लाखों ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें रात-दिन काम

करना पड़ता है और केवल सोने के लिए कुछ समय कठिनता से मिलता है परन्तु अब मशीनों के प्रचलन ने सख्त काम से लोगों को काफी छुट्टी दे दी है। अतः इसका यह अर्थ नहीं कि लोगों को विश्राम न मिले या लोग सख्त मेहनत का कोई काम न करें बल्कि काफी काम करने के पश्चात् उन्हें विश्राम करने के लिए समय मिलना चाहिए। अन्त में हम कह सकते हैं कि अवकाश सुस्तीपन नहीं।

अवकाश सभी के लिए होना चाहिए। प्राचीन काल में दासों को कोई अवकाश प्राप्त नहीं था परन्तु आजकल हालात कुछ सुधर रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जिस प्रकार प्राचीन यूनान में दासों को बिल्कुल फुरसत नहीं मिलती थी और स्वामियों को बहुत अधिक, उसी प्रकार आजकल मजदूरों को बहुत कम अवकाश प्राप्त होता है और पूंजीपतियों को बहुत अधिक। आशा है कि पूंजीवाद संसार से शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा और मजदूरों की स्थिति प्रतिदिन सुधरेगी। आजकल भी लोगों को बहुत से देशों में बहुत कम अवकाश प्राप्त है, अतः मिस्टर डेविस लिखते हैं—

"What is this life if full of care,
We have no time to stand and stare ?"
"फिक्रों से भरी जिन्दगी क्या जिन्दगी होगी ?
जिससे आजाद खड़े हो देखने को राहत न होगी।"

अवकाश का महत्त्व तथा उपयोगिता—अवकाश का बड़ा भारी महत्त्व है। अवकाश के बिना मानव-सभ्यता तथा संस्कृति की उन्नति हो ही नहीं सकती। प्राचीन कालीन यूनान में स्वामियों (masters) को बहुत अधिक अवकाश प्राप्त था, उन्हें हर वक्त आर्थिक चिन्ताएँ तंग नहीं करती थीं, अतः वे अपना शेष समय साहित्य, इतिहास, कला और विज्ञान के अध्ययन में लगाते थे। दासों को बहुत कम अवकाश प्राप्त होता था, अतः वे अपना पढ़ने-लिखने में बिल्कुल समय न लगाने के कारण असभ्य रह गये। उन्होंने शिल्प और विज्ञान में कोई उन्नति नहीं की। इससे सिद्ध होता है कि सभ्यता तथा संस्कृति की उन्नति अवकाश पर निर्भर है। भारत में भी ऋषियों-मुनियों ने घर का त्याग कर दिया था, अतः उनकी आर्थिक आवश्यकताएँ बहुत कम हो गयी थीं और उन्होंने अपना अवकाश का समय वेदों, शास्त्रों तथा उपनिषदों के पढ़ने में लगाया और भारतीय संस्कृति को उच्च शिखर पर पहुँचा दिया। प्रजातन्त्र में अवकाश का बहुत अधिक महत्त्व है। प्रजातन्त्र सफल ही नहीं हो सकता यदि लोगों को बिल्कुल अवकाश प्राप्त न हो। प्रजातन्त्र का सारा भार लोगों के कन्धों पर है। यदि सारे लोग आर्थिक चिन्ता में ही लगे रहें, तो देश की समस्याओं पर कौन विचार करेगा और उनका कौन हल सोचेगा ? प्रजातन्त्र की उन्नति तभी हो सकती है जब लोगों में बेरोजगारी न हो। जिन लोगों को भूख से मुक्ति प्राप्त न हुई हो, वे इतिहास, साहित्य, कला तथा विज्ञान के बारे में क्या सोचेंगे और उन्हें राजनैतिक समस्याओं में क्या रुचि होगी। इसलिए प्रत्येक देश को अपना आर्थिक स्तर ऊँचा करके गरीब जनता को अवकाश देना चाहिए ताकि संसार में अधिक से अधिक ज्ञान की उन्नति हो।

(१) अवकाश का प्रथम लाभ यह है कि इससे स्वास्थ्य सुधरता है क्योंकि

शरीर एक यन्त्र के समान है और जिस प्रकार यन्त्र को तेल और सफाई की आवश्यकता रहती है, उसी प्रकार थके हुए शरीर की शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए विश्राम की आवश्यकता रहती है। यदि कोई मनुष्य शरीर से बहुत अधिक शारीरिक अथवा मानसिक काम ले और शरीर को आवश्यकतानुसार विश्राम न दे, तो उसका शरीर शीघ्र ही टूट-फूट जायगा।

(२) अवकाश का दूसरा लाभ यह है कि इस से निपुणता में वृद्धि होती है। प्रथम महायुद्ध में इंगलैंड में श्रमिकों से आठ घण्टे से भी बहुत अधिक काम लिया जाता था और उन्हें कोई छुट्टी भी नहीं दी जाती थी, तो पता चला कि उत्पादन-शक्ति में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई; परन्तु जब श्रमिकों को छुट्टी दी जाने लगी और उन से अधिक काम नहीं लिया गया तो उत्पादन-शक्ति भी बढ़ी और उनका स्वास्थ्य भी सुधर गया क्योंकि थके हुए मजदूरों में काम करने की अधिक शक्ति न थी और उन से जबर्दस्ती काम लिया जाता था, अतः अवकाश का विशेष लाभ चारों ओर दिखाई दिया।

(३) अवकाश से तीसरा लाभ यह है कि इससे मानव-जीवन में वृद्धि होती है अर्थात् आयु लम्बी होती है। यदि मनुष्य बहुत सख्त काम करे और आवश्यकतानुसार विश्राम न करे तो स्वास्थ्य खराब हो जाता है और आयु क्षीण होने लगती है। जिस मनुष्य को अवकाश प्राप्त होता है और बेफिक्री की ज़िन्दगी नसीब होती है वह हृष्ट-पुष्ट हो जाता है।

(४) अवकाशहीन पुरुष प्रकृति की शोभा और गृहस्थ के सुखों का क्या आनन्द उठायेगा? जिस पुरुष को अवकाश प्राप्त नहीं होता, वह सदैव निरुत्साह, ढीला तथा उदासीन दिखाई देता है। चिन्ता उसे घेर लेती है और वह शीघ्र ही बूढ़ा हो जाता है।

(५) इसका लाभ यह भी है कि इस से देश उन्नत होता है क्योंकि लोगों को कुछ समय आनन्द भोगने तथा कला, दर्शन और विज्ञान में निपुणता प्राप्त करने के लिए मिल जाता है। अवकाश से सभ्यता और संस्कृति का उदय तथा वृद्धि होती है। प्रजातन्त्र-रूपी पौधा भी सभ्य जातियों में अधिक फलता-फूलता है। प्रजातन्त्र उन्नति ही नहीं कर सकता यदि लोगों को अपने दैनिक काम से फुरसत हासिल न हो। अवकाश के समय ही जनता देश की राजनैतिक समस्याओं पर विचार कर सकती है और भविष्य को उज्ज्वल बनाने के बारे में सोच सकती है।

अवकाश-यापन की विधियाँ (How should Leisure be used)

(१) अवकाश का उपयोग रचनात्मक ढंग से होना चाहिए—अवकाश का प्रयोग ठीक प्रकार से हो, यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है। जब मनुष्य को अपने दैनिक कार्य से कुछ फुरसत मिले तो उसे चाहिए कि इसको व्यर्थ ही गप-शप में न लगा कर किसी रचनात्मक कार्य में लगाए ताकि देश की भलाई हो। जैसा पहले बताया जा चुका है कि अवकाश का अर्थ आलस्य नहीं है। आलसी मनुष्य के मन में अनेक अनुचित बातें आ जाती हैं। इसलिए यह ठीक ही कहा गया है, "आलसी मन शैतान

का कारखाना है"। आलस्य शरारत का मूल कारण है। इसलिए प्रजातन्त्रात्मक सरकारों का कर्त्तव्य है कि वे जनता के लिए ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करें जिस से लोग अपना समय रचनात्मक कार्यों में लगा सकें अर्थात् राज्य को वे सुविधाएँ उत्पन्न करनी चाहिएँ जिससे लोग अपना फालतू समय मनोरंजन, कहानियाँ तथा उपन्यास पढ़ने और किसी अन्य लाभदायक प्रिय-कार्य (hobby) में लगा सकें।

(२) **खेल-कूद**—अवकाश को ठीक प्रकार से बिताने का साधारणतया सब से अच्छा तरीका है कि इसको खेल-कूद में लगाया जाए। खेल दो प्रकार के होते हैं—(क) घर के अन्दर खेले जाने वाले (indoor), और (ख) घर के बाहर खेले जाने वाले (outdoor)। घर के अन्दर खेले जाने वाले खेलों में ताश, शतरंज, कैरम बोर्ड और टेबल टेनिस इत्यादि शामिल हैं। बाहरी खेल हॉकी, फुटबॉल, टेनिस तथा कबड्डी इत्यादि हैं। खेल कूद मनोरञ्जन का बहुत बड़ा साधन है। खेल-कूद से शरीर तथा मन में एक प्रकार की प्रसन्नता उत्पन्न होती है। प्राचीन काल में स्पार्टा में जिमनास्टिक का विशेष महत्त्व था। आजकल भारत में भी प्रत्येक स्कूल तथा कालेज में खेल-कूदों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। प्लेटो ने भी जिमनास्टिक (gymnastics) और म्यूज़िक को अपनी पाठ्यसूची में रखा था।

(३) **यात्रा तथा भ्रमण** (Hiking)—यात्रा तथा भ्रमण भी स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक हैं। शहरों की गन्दी हवा से बाहर निकल कर घूमने-फिरने से मनुष्य में नवजीवन का संचार होता है। वह दूसरों के सम्पर्क में आता है और उसके ज्ञान में वृद्धि होती है। पाश्चात्य देशों में विद्यार्थी प्रायः कुछ कलेवा करके घर से निकल जाते हैं और बाहर जा कर प्रकृति की शोभा निहारते हैं तथा ग्रामीणों के सम्पर्क में आते हैं। वे नये-नये कृषि के ढंग उनको बतलाते हैं तथा स्वयं देखते हैं, अतः वे कूप-मण्डूक (कूएँ का मेण्ढक) नहीं रह जाते। वे होटलों में जगह-जगह ठहर जाते हैं। नगरों के बाहर पैदल सैर करना या पहाड़ियों पर चढ़ना स्वास्थ्य के लिए भी अच्छा सिद्ध होता है और अनेक उद्योग-धन्धों तथा व्यवसायों को देखने से ज्ञान भी बढ़ता है।

(४) **रोचक कार्य** (Hobby)—अवकाश व्यतीत करने का एक उत्तम तरीका है कि मनुष्य अपना फालतू समय टिकट एकत्रित करने, बगीचा लगाने, प्राचीन सिक्के इकट्ठा करने, फोटो खींचने, जिल्द बाँधने तथा संगीत सीखने या कोई सीने-पिरोने का काम करने में लगाये।

(५) **रेडियो, सिनेमा और थियेटर** (Radio, Cinema and Theatre)—अवकाश को बिताने के लिए रेडियो, सिनेमा और थियेटर अच्छे साधन हैं। प्राचीन काल में धनी अधिकतर नाट्यकला में बहुत रुचि रखते थे परन्तु अब सिनेमा ने इस कमी को बहुत हद तक पूरा कर दिया है। सिनेमा मनोरंजन का एक महत्त्वपूर्ण साधन बन गया है। रेडियो के द्वारा भी संगीत, नाटक, गप-शप, कहानियाँ तथा भाषण सुने जा सकते हैं। थियेटर में अनेक अद्भुत कार्यक्रम दिखाये जाते हैं।

(६) **समाचार पत्र तथा मनोरंजक पुस्तकें**—अवकाश व्यतीत करने का यह भी एक उत्तम साधन है कि अवकाश के समय समाचार पत्र तथा उपन्यास और

कहानियों की पुस्तकें पढ़ी जाएँ। इससे व्यक्तियों का ज्ञान भी बढ़ेगा और मनोविनोद भी होगा। लोगों को संसार के उतार-चढ़ाव का ज्ञान होगा तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में कुछ सोचने की आदत पैदा होगी। बुरी पुस्तकें नहीं पढ़नी चाहिएँ परन्तु शिक्षाप्रद पुस्तकें अवश्य पढ़नी चाहिएँ। इन पुस्तकों के पढ़ने से मनुष्य का ध्यान दैनिक चिन्ताओं से हट कर किसी अच्छे कार्य में लग जाता है। हमें समाचार पत्रों की बातों में बह नहीं जाना चाहिए बल्कि उन पर भली प्रकार विचार करना चाहिए।

(७) **समाज-सेवा**—अवकाश का समय जनता की सेवा में बिताया जा सकता है। विनोबा जी ने देश-निर्माण के लिए चार मार्ग दिखाए हैं अर्थात् बुद्धिदान, सम्पत्तिदान, श्रमदान और भूदान। प्रत्येक मनुष्य अवकाश के समय अपनी योग्यतानुसार देश की सेवा कर सकता है। विद्यार्थी-वर्ग विशेषतया बुद्धिदान का कार्य कर सकता है। वे अवकाश के समय निरक्षरों को शिक्षा दे सकते हैं और अनेक प्रकार से हरिजनों की सेवा भी कर सकते हैं।

खेल-कूद का महत्त्व (The importance of games and sports in the life of a citizen)

(१) खेल-कूद का जीवन में विशेष महत्त्व है। मनुष्य का स्वास्थ्य खेलों द्वारा सुधरता है। खिलाड़ी के बदहज़मी, दमा, खून-खराबी तथा तपेदिक जैसे रोग प्रायः उत्पन्न नहीं होते। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन रहता है। चौबीसों घण्टे पढ़ने और बिल्कुल न खेलने से आदमी बुद्धू बन जाता है, अतः अंग्रेजी कहावत ठीक ही है कि बिल्कुल न खेलने और हर समय काम ही काम करने के कारण जैक मन्दबुद्धि बन गया (all work and no play makes Jack a dull boy)। अतः खेलों से शरीर नीरोग तथा हृष्ट-पुष्ट होता है। स्वथ्य शरीर ही अत्यधिक मानसिक काम करने में समर्थ है।

(२) खेलों के मैदान में नागरिकता की शिक्षा मिलती है। खेल में आत्म-विश्वास, सहयोग, आत्म-नियन्त्रण (self-control), त्याग, सहानुभूति तथा दल-भावना (team spirit) उत्पन्न होती है। ये गुण जीवन में अत्यन्त मूल्यवान् हैं। इन्हीं के भरोसे मनुष्य जीवन में अनेक कठिनाइयों को प्रसन्नतापूर्वक सहन कर लेता है।

(३) खेलों के द्वारा अनुशासन उत्पन्न होता है। खिलाड़ी अपने कप्तान (captain) की आज्ञा का पालन करते हैं। सारे मिलकर अपना पूरा जोर लगाते हैं और दूसरी टीम को परास्त करने का भरसक यत्न करते हैं। खेल के द्वारा उनमें चुस्ती, चालाकी पैदा हो जाती है। लार्ड विलिंगटन कहा करता था, "वाटरलू का युद्ध ईटन के खेलों के मैदान में जीता गया।" इसका भाव यह था कि उसने और उसके साथियों ने जो अनुशासन ईटन के स्कूल में सीखा था, उसी के कारण वे नेपोलियन पर विजयी हुए।

(४) खेलों से दृष्टिकोण बहुत विशाल बन जाता है क्योंकि खेलों के बाद

हारी हुई और जीती हुई टीम आपस में हाथ मिलाती हैं। खिलाड़ी हार और जीत को समान समझने लगते हैं क्योंकि जीतने पर वे बहुत खुशी नहीं मनाते और हारने पर दिल में दुःखित नहीं होते।

(५) खेल-कूद से विद्यार्थी सचेत और सक्रिय बन जाते हैं। खिलाड़ी कई बार किताबी कीड़ों से आगे बढ़ जाते हैं। वे जीवन की हर एक कठिकाई को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं।

आमोद-प्रमोद अथवा मनोरंजन (Recreation)

आमोद-प्रमोद उस क्रिया को कहते हैं जिससे शरीर और मन में अत्यधिक आनन्द उत्पन्न हो। इस से शारीरिक और मानसिक थकावट दूर होकर एक ताजगी का अनुभव होता है। शरीर के रोम-रोम में इससे हर्ष उत्पन्न होता है। इसका लक्ष्य धन कमाना न होकर केवल मन तथा शरीर को ताजा करना ही है। आमोद-प्रमोद वही अच्छा है जो मनुष्य को सारी चिन्ताओं से मुक्त करके उसके मन को थोड़ी देर के लिए आनन्द के जगत् में विलीन कर देता है। भारत जैसे निर्धन देश में वही आमोद-प्रमोद अच्छा है जिससे मनुष्य का मानसिक तथा शारीरिक विकास हो और मँहगा न पड़े क्योंकि गरीब जनता में इतनी शक्ति नहीं कि वे आनन्द-प्राप्ति के लिए पसा खर्च सकें। आमोद-प्रमोद मनुष्य अपनी हार्दिक इच्छा से करता है। यह कार्य सामाजिक होता है क्योंकि यह प्रायः मित्र-मण्डली में बैठ कर ही किया जाता है।

मनोरंजन का विशेष महत्त्व है क्योंकि जब मनुष्य दैनिक कार्यक्रम करने के पश्चात् बहुत अधिक थक जाता है और उसके शरीर में बिल्कुल शक्ति नहीं रहती, तो उस समय मनोरंजन के द्वारा ही शरीर में दोबारा जान आती है और शरीर के तमाम अंगों में एक नवीनता का अनुभव होता है। मनोरंजन में चिन्ता भी दूर होती है और शरीर स्वस्थ रहता है। परिवर्तन जीवन को आनन्दमय बना देता है क्योंकि एक ही कार्य को प्रतिदिन करने से मनुष्य के जीवन में कुछ रस नहीं रह जाता। मनोरंजन के कारण मनुष्य का जीवन यान्त्रिक (mechanical) नहीं बन पाता। इतना ही नहीं बल्कि इसके द्वारा मनुष्य की गुप्त शक्तियों का विकास होता है। उदाहरणार्थ, एक मनुष्य यदि संगीत-कला में बहुत निपुण है परन्तु वह किसी कारखाने में नौकर है तो वह वहाँ अपनी कला का प्रदर्शन नहीं कर सकता परन्तु समाज में मनोरंजन के समय वह गाने गाकर लोगों को भी प्रसन्न कर सकता है और अपने आपको भी। अतः इससे मनुष्य को अपने भाव प्रकट करने के लिए शुभावसर प्राप्त हो जाता है।

आमोद-प्रमोद कई प्रकार के होते हैं, जैसे तैरना, शिकार खेलना, मछली पकड़ना, नाटक और नृत्य में हिस्सा लेना, खेल-कूद में विशेष भाग लेना, बगीचा लगाना, मित्र-मण्डली में आनन्द के लिए बाहर घूमना-फिरना, संगीत तथा विनोद-सभाएँ करना।

सारांश

अवकाश क्या है ?—मनुष्य को अपने दैनिक कार्यक्रम से जो फालतू समय

मिलता है, उसमें विश्राम करना अत्यन्त आवश्यक है। अतः अवकाश का अर्थ है परिश्रम के पश्चात् विश्राम। अवकाश तथा आलस्य में बहुत भेद है। जहाँ अवकाश का अर्थ है परिश्रम से थकने के बाद आराम; वहाँ आलस्य का अर्थ है व्यर्थ समय गँवाना। अवकाश का यह अर्थ नहीं कि मनुष्य प्रयास न करे परन्तु आलसी मनुष्य केवल मेहनत से ही दिल नहीं चुराता बल्कि कुछ भी काम नहीं करता और सुस्त बैठा रहता है। प्राचीन काल में स्वामियों को बहुत अवकाश प्राप्त था और दासों को बहुत कम। आजकल पूँजीपतियों को बहुत अवकाश प्राप्त है और श्रमिकों को थोड़ा।

अवकाश का महत्त्व—अवकाश संस्कृति तथा सभ्यता के उदय में सहायक होता है। प्राचीन यूनान में सभ्यता तथा संस्कृति में केवल स्वामियों ने उन्नति की और दास बिल्कुल उन्नति न कर सके। प्रजातन्त्र की उन्नति अवकाश पर निर्भर है। अवकाश से स्वास्थ्य सुधरता है। अवकाश से थके शरीर में नवीनता का संचार होता है। इससे मनुष्यों की शक्ति क्षीण नहीं होती बल्कि यह बढ़ती है। इससे मनुष्य में नया उत्साह उत्पन्न होता है।

अवकाश-यापन की विधियाँ—दैनिक कार्यक्रम के पश्चात् जो फालतू समय बचता है, उसको आराम के अतिरिक्त खेल-कूद, हावी, यात्रा तथा भ्रमण, रेडियो, सिनेमा तथा थियेटर, समाचार पत्र तथा मनोरंजक पुस्तकें और समाज-सेवा इत्यादि रचनात्मक कार्यों में भी लगाया जा सकता है।

खेल-कूद का महत्त्व—स्वास्थ्य सुधरता है। बदन में चुस्ती आती है। शरीर नीरोग रहता है। खेल से नागरिकता की भी शिक्षा मिलती है। बालकों में खेलों से सहयोग, अनुशासन, सहानुभूति इत्यादि उत्पन्न होती है। विद्यार्थियों में सामूहिक भावना उत्पन्न होती है तथा दृष्टिकोण विशाल होता है। खेल के पश्चात् दोनों टीमें आपस में हाथ मिलाती हैं और विजेता तथा विजित एक हो जाते हैं। किसी प्रकार का द्वेष-भाव नहीं रहता।

मनोरंजन—इससे थके शरीर में ताजगी आती है और मन प्रफुल्लित होता है। इससे चिन्ताएँ नष्ट हो जाती हैं। यह अपने हृदय की प्रेरणा से किया जाता है न कि बाहरी दबाव से। यह धन कमाने के लिए नहीं बल्कि आनन्द हेतु किया जाता है। यह सामाजिक होता है। मनोरंजन से जीवन के दैनिक कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन दिखाई पड़ता है। परिवर्तन जीवन का सार है। इसके द्वारा मनुष्य की गुप्त शक्तियों का विकास होता है। मनोरंजन अनेक प्रकार के हैं, जैसे गाना-बजाना, नाचना, नाटक खेलना, शिकार खेलना, मछली पकड़ना, सिनेमा देखना और विनोद-सभाओं में भाग लेना इत्यादि।

Questions

1. What is leisure ? Is it essential for the progress of human race ?

2. How should leisure be used ? Suggest some of the more useful ways of spending leisure.

3. Discuss the importance of games and sports in the life of a citizen.

4. What is recreation ? Discuss the need and importance of recreation in the life of an individual.

प्रश्न

१. अवकाश क्या है ? क्या यह मानव-जाति की उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक है ?

२. अवकाश का उपयोग किस प्रकार होना चाहिए ? अवकास व्यतीत करने की कुछ अधिक उपयोगी रीतियों का सुझाव दीजिये ।

३. नागरिक के जीवन में खेल-कूद का क्या महत्त्व है ?

४. मनोरञ्जन क्या है ? व्यक्ति के जीवन में मनोरञ्जन की आवश्यकता का वर्णन कीजिए ।

तेरहवाँ अध्याय

राज्य का उद्देश्य और कार्य

(Purpose and Functions of State)

"राज्य का चरम लक्ष्य मानवता का पूर्ण विकास करना, उसे सभ्य बनाना, और पृथ्वी पर नैतिकता और सद्गुणों की स्थापना करना है।"—बर्गेस

राज्य का उद्देश्य (End or Purpose of the State)

प्राचीन यहूदी राज्य को ईश्वर-निर्मित मानते थे—यूनानी दार्शनिक राज्य को उच्चतम नैतिक समुदाय समझते थे—प्लेटो के मतानुसार राज्य व्यक्ति का ही विराट् स्वरूप है—राज्य का क्या कर्त्तव्य है ? इस प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर तभी दिया जा सकता है जब कि हमें राज्य के उद्देश्य का भली भाँति ज्ञान प्राप्त हो। राज्य का उद्देश्य क्या होना चाहिए ? इसके बारे में राज्य-विज्ञान के तमाम लेखक आपस में सहमत नहीं हैं। उन सब का एक मत न होकर भिन्न-भिन्न विचार हैं। राज्य साधन (means) है अथवा साध्य (end), इस बारे में भी लेखकों के भिन्न-भिन्न विचार हैं। प्राचीन काल में विचारकों का मत था कि राज्य साधन नहीं है। राज्य से भी किसी ऊँचे उद्देश्य का उन्हें कभी ध्यान नहीं आया। इसका कारण यह था कि राज्य को या तो वे दैवी (Divine) मानते थे या जीवन की सब से ऊँची नैतिक संस्था, जिसके बिना मनुष्य का विकास सम्भव नहीं था। प्राचीन काल में यहूदी राज्य को ईश्वर-निर्मित (Divine) मानते थे, अतः वे समझते थे कि व्यक्ति के प्रत्येक क्षेत्र में राज्य को दखल देने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। प्राचीन यूनानी दार्शनिक (philosophers) राज्य को उच्चतम नैतिक समुदाय (Highest Moral Association) मानते थे। जीवन के किसी भी क्षेत्र में राज्य का हस्तक्षेप हो सकता था। प्लेटो ने कहा कि राज्य व्यक्ति का ही विराट् स्वरूप है। अरस्तू के मतानुसार राज्य एक उच्चतम समुदाय है जिसका उद्देश्य व्यक्ति की अधिक से अधिक भलाई करना है।[1] राज्य के बिना व्यक्ति का हित सम्भव नहीं है। इसीलिए वह राज्य से अलग रहने वाले व्यक्ति को पशु या देवता समझता था।

फासिस्ट तथा आदर्शवादी (Idealists) **राज्य को साध्य मानते थे**—आदर्शवादी राज्य को एक साध्य मानते थे। उनके विचार में मनुष्य राज्य के अन्दर रह कर ही अपनी पूर्ण उन्नति कर सकता था। राज्य मानवीय प्रकृति की प्रकट करने वाली सब से बड़ी संस्था है। अतः जर्मन लेखक हीगेल के मतानुसार राज्य

1. "The State is the supreme association that aims at the supreme good."
—*Aristotle.*

ईश्वर का ही रूप है (State is a march of God upon earth)। अंग्रेज दार्शनिक बोसांके ने भी राज्य को व्यक्ति से बहुत ऊँचा माना है। अतः आदर्शवादियों के अनुसार व्यक्ति की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। व्यक्ति को राज्य की आज्ञा उल्लंघन करने का कोई अधिकार नहीं है। व्यक्ति का पूर्ण कर्त्तव्य है कि राज्य की आज्ञा का बिना किसी हिचकिचाहट के पालन करे क्योंकि राज्य की इच्छा ही व्यक्ति की सत्य तथा वास्तविक इच्छा है। बीसवीं शताब्दी में जर्मनी और इटली में उग्र राष्ट्रवाद (aggressive nationalism) ने जोर पकड़ा। हिटलर और मुसोलिनी राज्य को व्यक्ति से उत्कृष्ट (superior) समुदाय मानते थे। उनके मतानुसार राज्य एक साध्य (end) था, अतः व्यक्ति का कर्त्तव्य था कि पितृ-भूमि की रक्षा और गौरव के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दे।

व्यक्तिवादी राज्य को साधन मानते हैं—व्यक्तिवादियों (individualists) ने राज्य को केवल एक साधन माना है और वे राज्य को साध्य नहीं मानते। वे कहते थे कि राज्य लोगों के लिए है न कि लोग राज्य के लिए। व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर उन्होंने बहुत अधिक बल दिया और राज्य को मनुष्य के निजी विषयों में दखल देने से मना किया। वे राज्य को एक आवश्यक बुराई (necessary evil) समझते थे।

अराजकतावादी राज्य को अनावश्यक बुराई (unnecessary evil) **मानते हैं और इसको समाप्त करना चाहते हैं। बहुवादी राज्य को एक अप्रभु** (non-sovereign) **समुदाय मानते हैं**—अराजकतावादी (anarchists) राज्य को अनावश्यक समझते हैं और वे इसको समाप्त करना चाहते हैं। उन्नीसवीं सदी के उदारवादियों (liberals) ने भी राज्य को साधन ही माना है। उनका विचार था क मनुष्य ने अपनी रक्षा और अधिकारों के उपभोग के लिए ही इस समुदाय को बनाया है। बहुवादी (pluralists) राज्य को सब से ऊँची संस्था मानने को तैयार नहीं, उनके विचार में राज्य अन्य समुदायों की भाँति ही एक समुदाय है। इसलिए वे राज्य को बहुत अधिक महत्त्व नहीं देते। बहुत से मनुष्य राज्य को साधन और साध्य दोनों ही मानते हैं। उनके विचार में राज्य और व्यक्ति के हितों में कोई संघर्ष अथवा विरोध नहीं है। राज्य एक साधन है क्योंकि यह लोगों की भलाई करता है और साध्य भी क्योंकि यह सब से अच्छी और ऊँची संस्था है तथा किसी सम्प्रदाय विशेष को कुछ महत्त्व नहीं देता। ब्लंश्ली तथा विलोबी ने इसी मत को स्वीकार किया है।

राज्य के कार्य-सम्बन्धी भिन्न-भिन्न सिद्धान्त
(Theories of State Functions)

राज्य के क्या कार्य होने चाहिएँ, इस सम्बन्ध में राज्य-विज्ञान के लेखकों के विचार समय के अनुसार बदलते रहते हैं। प्राचीन काल में राज्यों का कार्य टैक्स वसूल करना तथा शान्ति स्थापित करना था और वे बाहरी आक्रमणों से भी देश की रक्षा किया करते थे परन्तु अब समय बहुत बदल गया है। राज्य के कार्य-सम्बन्धी कुछ

सिद्धान्त नीचे लिखे जाते हैं—

व्यक्तिवाद (Individualism)

इस सिद्धान्त के सब से बड़े समर्थक श्री जॉन स्टुअर्ट मिल, हरबर्ट स्पेन्सर तथा स्मिथ हुए हैं। वे व्यक्तिगत (individualistic) स्वतन्त्रता को बहुत अधिक महत्त्व देते थे। उनके विचार में राज्य का हस्तक्षेप चाहे किसी क्षेत्र में भी हो, व्यक्ति की स्वतन्त्रता को नष्ट करता है। वे कहते थे कि व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक और धार्मिक क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए, तभी व्यक्ति का विकास सम्भव है। जब राज्य व्यक्ति के प्रत्येक कार्य में दखल देता है, तो मनुष्य की तरक्की रुक जाती है। अतः वे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के पुजारी थे। उन्होंने अपने मत का प्रचार उन्नीसवीं शताब्दी में किया। इंगलैण्ड में इस सिद्धान्त का विशेष प्रभाव कुछ समय तक रहा।

व्यक्तिवादी उस राज्य को अच्छा समझते हैं जो व्यक्ति के कार्यों में कम से कम दखल दे (The Govt. is the best which governs the least)। वे राज्य को अवांछनीय संस्था (undesirable institution) गिनते हैं परन्तु फिर भी वे समझते हैं कि यह मानव-जाति के लिए आवश्यक है। अतः वे राज्य को एक आवश्यक बुराई समझते हैं। वे राज्य को कल्याणकारी-राज्य न मान कर प्रायः पुलिस-राज्य ही मानते हैं अर्थात् वे कहते हैं कि राज्य को केवल ये तीन कार्य करने चाहिएँ—(१) देश की बाहरी आक्रमणों से रक्षा, (२) समाज में शान्ति और व्यवस्था, और (३) लोगों के जान, माल की रक्षा। उनके विचारानुसार राज्य को इससे अधिक कार्य नहीं करने चाहिएँ। फलतः राज्य को लोक-कल्याण के लिए स्कूल, कालेज, हस्पताल, सड़कें, पुल, डाकखाने, पुस्तकालय, वाचनालय (Reading Rooms) और मनोरञ्जन-केन्द्र (Recreational Centres) नहीं खोलने चाहिएँ। इस सिद्धान्त की पुष्टि में वे कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी भलाई स्वयं समझता है और राज्य केवल मनुष्य की स्वतन्त्रता में रोड़े अटकाता है, अतः राज्य को चाहिए कि जहाँ तक हो सके व्यक्ति को अकेला छोड़ दे अर्थात् उसके कामों में दखल न दे।

यह सिद्धान्त तीन धारणाओं पर अवलम्बित है—(१) नैतिक, (२) वैज्ञानिक, और (३) आर्थिक।

(१) **नैतिक तर्क** (Ethical Basis)—मिस्टर मिल का विचार था कि राज्य को चाहिए कि व्यक्तियों को उस समय तक स्वतन्त्र छोड़ दे जब तक वे दूसरों के कार्यों में दखल न दें। मिस्टर मिल ने मानवीय कार्यों को दो भागों में बाँटा है, (१) व्यक्तिगत और (२) सामाजिक (दूसरों से सम्बन्धित)। उसका विचार था कि व्यक्तिगत कार्यों में राज्य को दखल देने का कोई अधिकार नहीं। राज्य को केवल सामाजिक कार्यों में ही कुछ हद तक दखल देने का अधिकार है। अतः मिस्टर मिल ने अपनी पुस्तक "On Liberty" में लिखा है कि यदि व्यक्ति सरकारी ड्यूटी पर न हो और अपने घर में बैठ कर मद्यपान करे तो सरकार को उसके मार्ग में कोई रुकावट उपस्थित नहीं करनी चाहिए क्योंकि ऐसा करने से व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अपहरण

होता है। मिस्टर मिल का विचार था कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता व्यक्ति के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इससे मनुष्य में आत्म-विश्वास और स्वावलम्बन (self-dependence) उत्पन्न होता है।

(२) **वैज्ञानिक तर्क** (Scientific Basis)—हरबर्ट स्पेन्सर ने व्यक्तिवाद को वैज्ञानिक ढंग से सिद्ध करने का यत्न किया। उसका विश्वास था कि जिस प्रकार वनस्पति-जगत् तथा प्राणि-जगत् में संघर्ष होता है उसी प्रकार मानव-जगत् में भी संघर्ष होना चाहिए। उसका विचार था कि इस संघर्ष में केवल योग्यतम की विजय (survival of the fittest) होती है। राज्य या सरकार दुर्बल, अयोग्य, गरीबों और पीड़ितों की सहायता करके उनको प्रकृति के नियम के विरुद्ध जीवित रखने का यत्न करती है जिस से समाज पतन की ओर जाता है। जो दुर्बल व्यक्ति संघर्ष में जीवित नहीं रह सकते, वे खत्म हो जाएँ तो समाज को अधिक लाभ होगा, ऐसा स्पेन्सर का विचार था।

(३) **आर्थिक तर्क** (Economic Basis)—इस तर्क का पोषक ऐडम स्मिथ था। उसका विचार था कि प्रत्येक मनुष्य अपने स्वार्थों को अच्छी तरह से जानता है, अतः राज्य को चाहिए कि व्यक्ति के आर्थिक मामलों में बिल्कुल दखल न दे। राज्य का व्यक्ति के मामलों में हस्तक्षेप न करने और 'व्यक्ति को अकेला छोड़ देने की नीति' (Laissez Faire) ही व्यक्तिवादियों के मतानुसार प्राकृतिक नियमों के अनुकूल है। फलतः राज्य को गरीबों और मजदूरों के लिए वेतन और काम के घण्टे निश्चित नहीं करने चाहिएँ। व्यापार में स्वतन्त्र प्रतियोगिता (free competition) होनी चाहिए। स्वतन्त्र प्रतियोगिता में चीजें सस्ती हो जायेंगी यदि पूर्ति (supply) माँग (demand) से अधिक है, और यदि माँग पूर्ति से अधिक है तो चीजें मँहगी हो जायेंगी। यदि प्रत्येक आदमी को व्यापार में पूंजी (capital) लगाने का अधिकार प्राप्त हो, तो इस से उत्पादन (production) में वृद्धि होगी। अतः राज्य को चाहिए कि राज्य वाणिज्य-व्यापार और उद्योग-धन्धों पर किसी प्रकार की कोई रुकावट न लगाए क्योंकि ऐसा करने से मनुष्य के आर्थिक हितों को ठेस पहुँचती है। व्यक्तिवादी मजदूरों के लाभ के लिए कानून बनाने के हक़ में नहीं हैं। वे मजदूरों और पूंजीपतियों में स्वतन्त्र प्रतियोगिता चाहते हैं।

आलोचना (Criticism)

(१) राज्य आवश्यक बुराई नहीं है बल्कि एक कल्याणकारी संस्था है। राज्य के बिना समाज में शान्ति और व्यवस्था स्थापित नहीं रह सकती। इतना ही नहीं बल्कि राज्य आजकल लोक-कल्याण के लिए स्कूल, कालेज, अस्पताल, डाकखाने तथा पुस्तकालय और अजायबघर खोल रहा है।

(२) प्रत्येक व्यक्ति अपने हितों को ठीक प्रकार से नहीं जानता। बहुत से मनुष्य शराब और जूए में सब कुछ बर्बाद कर देते हैं। अतः राज्य का नियन्त्रण आवश्यक है। बम्बई में शराब अभी बन्द की गई है।

(३) स्वतन्त्र प्रतियोगिता में बहुत दोष हैं। गरीब मजदूरों और पूंजीपतियों

में भला क्या मुकाबला हो सकता है। इंगलैंड में 'अकेला छोड़ दो' (Laissez Faire or let alone) की नीति से श्रमिकों की बहुत दुर्दशा हुई। राज्य ही चीजों की मँहगाई को रोकता है। राज्य ही पूंजीपतियों पर नियन्त्रण लगा कर गरीब मजदूरों की भलाई करता है।

(४) केवल सब से शक्तिशाली व्यक्ति को ही जीने का अधिकार नहीं, बल्कि सब प्राणियों को जीने का अधिकार है। राज्य का परम कर्तव्य दीन-दुःखियों की सहायता करना है। सबलों को दुर्बलों के खाने का अधिकार नहीं।

(५) राज्य व्यक्ति के विकास में बाधाएँ उपस्थित न करके उसको पूर्ण अवसर देता है। अधिकार केवल राज्य में ही सम्भव हैं और अधिकारों से ही मनुष्य को उन्नति के अवसर प्राप्त होते हैं।

समाजवाद (Socialism)

व्यक्तिवादी राज्य के कर्त्तव्यों के सिद्धान्त के ठीक विपरीत समाजवाद (socialism) का सिद्धान्त है परन्तु इसका यह नाम बहुत उपयुक्त नहीं है। समाजवाद की अनेक परिभाषाएँ हैं। समाजवादी पूंजीवाद को खत्म करके एक नई आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था कायम करना चाहते हैं जिस में उत्पादन-शक्ति के साधन समाज के पास होंगे। एक अन्य लेखक[1] के अनुसार इसका उद्देश्य समाज की उत्पादन-शक्ति पर नियंत्रण रख कर सारे समाज की भलाई के लिए धन वितरण करना है। सभी समाजवादी चाहे किसी मत के हों, नीचे लिखी चार बातों को मानते हैं।

(१) उत्पादन और वितरण के साधनों से व्यक्तिगत प्रभुत्व को हटा कर राज्य का नियंत्रण कायम करना (state and not individual should control the means of production)।

(२) उत्पादन की सीमा का निर्णय लाभ के विचार से नहीं, वरन् सामाजिक आवश्यकता के आधार पर करना (Production should be based on social necessity and not individual profit)।

(३) व्यक्तिगत लाभ की भावना के स्थान पर सामाजिक सेवा के सिद्धान्त को स्थापित करना (Individual profit motive should be replaced by that of social service)।

(४) स्वतन्त्र प्रतियोगिता और मनमाने उत्पादन के स्थान में सहयोग और निश्चित उत्पादन को स्थापित करना[1] (Open competition and arbitrary production should give way to co-operation and definite production)। यह समाजवाद का व्यापक अर्थ है।

समाजवाद का सब से बड़ा लेखक कार्ल मार्क्स था। पहले लिखे हुए इन चार सिद्धान्तों को सभी समाजवादी मानते हैं चाहे वे साम्यवादी (communists) हों

---

१. श्री राजनारायण गुप्त : 'नागरिक शास्त्र के सिद्धान्त'; पृष्ठ २४२।

१. श्री राज नारायण गुप्त।

अथवा सिण्डीकलिस्ट (syndicalists) या राजकीय समाजवादी (state-socialists)। भेद केवल इस बात पर है कि किस ढंग से पूंजीवाद को नाश करके समाजवाद स्थापित किया जाए। राजकीय समाजवादी या समष्टिवादी (state-socialists or collectivists) पूंजीवाद को वैधानिक ढंग (constitutional means) से समाप्त करना चाहते हैं, वे हिंसात्मक या क्रान्तिकारी तरीकों का प्रयोग बिल्कुल नहीं करना चाहते। साम्यवादी और सिण्डीकलिस्ट क्रान्तिकारी तरीकों का प्रयोग करते हैं। समाजवाद का संकीर्ण अर्थ समष्टिवाद से ही लिया जाता है।

प्रो० पीगू अपनी पुस्तक 'पूंजीवाद तथा समाजवाद' में लिखता है कि उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार को पूंजीवाद कहते हैं तथा इन साधनों पर सामाजिक अधिकार को समाजवाद कहते हैं। समाजवाद के अनुसार भूमि, प्राकृतिक साधन, पूंजी और उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार नहीं होना चाहिए। ये सब राज्य के अधिकार में होने चाहिएँ। समाजवाद निजी मुनाफा, ब्याज और किराया जैसे व्यक्तिगत लाभ को नष्ट करना चाहता है। समाजवादी देशों में यह भी नहीं हो सकता कि एक आदमी कोई परिश्रम किये बिना केवल बाप-दादा की जायदाद का लगान या किराया वसूल करके अपना गुजारा चलाता रहे। जो आदमी काम नहीं करता उसको खाने को भी नहीं मिलेगा। मार्क्सवादियों के अनुसार धन का वितरण इस सिद्धान्त के अनुसार होना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार उत्पन्न करे और उसको आवश्यकता के अनुसार मिले। (From each according to one's capacity, to each according to one's need)। साम्यवादियों (communists) का विचार है कि संसार में दो वर्ग हैं, पूंजीपति और श्रमिक। और पूंजीपति श्रमिकों का खून चूसते (शोषण) रहते हैं। अतः वे वर्ग-हीन और राज्य-हीन (stateless and classless) समाज की स्थापना करना चाहते हैं। राजकीय समाजवादी अथवा समष्टिवादी (state-socialists or collectivists) राज्य को एक कल्याणकारी राज्य बनाना चाहते हैं, अतः वे निर्वाचन में जनता के सम्मुख एक समाजवादी प्रोग्राम रखते हैं और लोगों को पूंजीवाद के विरुद्ध भड़का कर उनके अधिक से अधिक वोट हासिल करते हैं। यदि उनके पास इस तरह से राजनैतिक शक्ति आ जाय तो वे पूंजीवाद तथा जमींदारी को कानून के द्वारा समाप्त करने का यत्न करते हैं। बड़े-बड़े उद्योग-धन्धों का वे राष्ट्रीयकरण (nationalisation) करना चाहते हैं। राज्य लोक-कल्याण के लिए सभी क्षेत्रों में देखभाल करेगा और आवश्यकता के अनुसार नियन्त्रण भी रखेगा। राज्य लोगों के लाभ के लिए स्कूल-कालेज और अस्पताल खोलेगा तथा यातायात और मनोरञ्जन के साधन बनायेगा। राज्य का उत्पादन तथा वितरण पर भी पूरा काबू रहेगा। अतः समाजवाद प्राइवेट पूंजी के विरुद्ध है क्योंकि यह गरीबों के खून चूसने के लिए प्रयुक्त की जाती है। समाजवाद निजी सम्पत्ति को जो कि केवल अपने लाभ के लिए हो और जिस से दूसरों का शोषण (exploitation) न हो, रखने की इजाज़त देता है। समाजवादी आर्थिक असमता को समाप्त करना चाहते हैं क्योंकि पूंजीवाद के कारण कुछ तो मजे उड़ाते हैं और लाखों लोग भूखे मरते हैं। अतः पूंजीवाद को समाप्त

करके समाजवाद संसार में आर्थिक समता (economic equality) कायम करना चाहता है तभी राज्य और समाज न्याय पर आधारित होगा और व्यक्ति का पूर्ण विकास सम्भव होगा।

समाजवाद की आलोचना (Criticism of Socialism)—समाजवाद के आलोचक कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य की स्वाभाविक इच्छा है कि वह अधिक से अधिक सम्पत्ति जमा करे। मनुष्य निजी लाभ की प्राप्ति की आशा से प्रत्येक कार्य करता है। यदि उसको किसी काम में निजी लाभ न दिखाई दे तो वह कोई काम क्यों करे। अतः समाजवाद के आलोचकों का कथन है कि देश की उत्पादन शक्ति घट जायेगी। व्यक्तिगत स्फूर्ति (initiative) तथा कार्य-क्षमता (efficiency) भी नष्ट हो जायगी क्योंकि व्यक्ति के पास अपनी योग्यता दिखाने के लिए कोई आर्थिक क्षेत्र नहीं रह जायेगा।

(२) राज्य के कार्य बहुत बढ़ जायेंगे। राज्य इतने भार को सहन नहीं कर सकता और न इतने कार्य ठीक प्रकार से चला सकता है। राज्य के ऊपर किसी व्यापार में लाभ या हानि की सारी जिम्मेवारी आ जायेगी। जब व्यक्तियों को व्यापार और उद्योग-धन्धे चलाने की आज्ञा नहीं होगी तो बेकारी बढ़ेगी और राज्य के लिए तमाम लोगों को नौकरियाँ देना असम्भव हो जायेगा। राज्य एक दम अच्छा शासक, न्यायकर्त्ता, कानून-निर्माता तथा व्यापारिक कैसे बन सकता है (the state cannot become good administrator, judge, legislator and trader at the same time) इसके अलावा समाजवाद में चूंकि राज्य के कार्य बहुत बढ़ जाते हैं, अतः नौकरशाही (bureaucracy) में वृद्धि होती है।

(३) निजी लाभ के भाव से प्रेरित होकर मनुष्य श्रम करता है तथा अनेक प्रकार की खोज और आविष्कार करता है परन्तु इसके अभाव में मनुष्य उत्साह-हीन हो जायेगा। यदि एक मिस्त्री की तनख्वाह एक बहुत ऊँचे विज्ञानवेत्ता के बराबर कर दी जाय, तो विज्ञानवेत्ता को समाज में अधिक कार्य करने के लिए क्या प्रोत्साहन (encouragement) मिलेगा? अतः सामाजिक और आर्थिक समता कैसे कायम हो सकती है जब कि मनुष्यों की योग्यता और बुद्धि में भेद हैं। यदि एक मूर्ख को एक उच्च कोटि के विद्वान् के बराबर कर दिया जाय तो मानव सभ्यता तथा संस्कृति को गहरा धक्का पहुँचेगा।

(४) समाजवाद में यह भी दोष बतलाया जाता है कि इस से व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है। मनुष्य को प्रत्येक कार्य के लिए राज्य पर निर्भर होना पड़ता है। मनुष्य में आत्म-विश्वास तथा आत्म-निर्भरता का अभाव हो जाता है। इसके अलावा समाजवाद में केन्द्रीय सरकार के पास बहुत शक्ति रहने के कारण इसका (शक्ति का) दुरुपयोग सम्भव है।

(५) यह हिंसा को स्थान देता है, विशेषतया साम्यवाद (communism) इस में विश्वास करता है।

(६) इसके द्वारा समाज दो वर्गों में बँट जाता है, अमीर और गरीब।

पूंजीपतियों और मजदूरों में सदैव कलह रहती है, फलतः देश की उत्पादन शक्ति कम हो जाती है। देश की राजनैतिक शक्ति भी क्षीण होती है।

(७) धर्म को समाजवाद में कोई स्थान नहीं। रूस में पहले पादरियों से वोट का अधिकार छीन लिया गया था। परन्तु १९३७ में पुनः दे दिया गया। मार्क्स मजहब को मजदूरों के लिए अफीम मानता था।

आदर्शवादी धारणा (Idealist School of Thought)

आदर्शवादी राज्य को एक साधन न मानकर साध्य मानते हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य की उन्नति केवल राज्य में रहकर ही हो सकती है। राज्य सारे समाज का प्रतिनिधित्व करता है। हीगल राज्य को ईश्वर का अवतरण गिनता था (State was a march of God upon earth)। आदर्शवादी राज्य को आदर्श संस्था या समुदाय मानते हैं। वे राज्य की स्तुति करते हैं और राज्य को सर्वशक्तिमान् तथा सब से ऊँचा समुदाय मानते हैं। व्यक्ति का परम कर्त्तव्य है कि राज्य की आज्ञा का (बिना किसी हिचकिचाहट के) पालन करे क्योंकि राज्य देव-तुल्य है और उसकी इच्छा ही वास्तव में व्यक्ति की यथार्थ इच्छा है। राज्य ही सभ्यता तथा प्रगति का एक मात्र स्रोत है। "इसी सिद्धान्त का कुछ और विकास करके नीत्शे (Neitzsche) ने लिखा कि राज्य एक शक्ति है। युद्ध आवश्यक तथा वांछनीय है तथा राज्य किन्हीं ऐसे नियमों से बन्धा हुआ नहीं है जो इसकी शक्ति एवं प्रसार पर रुकावट डालें। राज्य-कार्य की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती तथा प्रत्येक श्रेष्ठ राष्ट्र का यह कर्त्तव्य है कि वह कमजोर एवं निम्न जातियों पर अपनी संस्कृति का प्रसार करे।"[१]

इस सिद्धान्त में यह दोष है कि राज्य को सर्वशक्तिमान् माना गया है तथा राज्यों के कार्यों की कोई सीमा निश्चित नहीं की गई है। व्यक्ति की स्वतन्त्रता और अस्तित्व खत्म हो जाते हैं यदि उसको सदैव बिना किसी हिचकिचाहट के राज्य की आज्ञा माननी पड़े। राज्य को अपनी शक्ति को निम्न प्रजातियों (low races) पर भी फैलाने का कोई अधिकार नहीं। राज्य की शक्ति असीमित नहीं।

गांधीवाद (Gandhism)

महात्मा गांधी ने वास्तव में कोई वाद नहीं चलाया। उन्होंने राजनीति, धर्म, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था के विषय में अपने विचारों को समय-समय पर प्रकट किया। उन्हीं विचारों को इकट्ठा करके लोगों ने गांधीवाद का नाम दे दिया है। गाँधीजी के जीवन पर जैन साधु बिचार जी, बम्बई के व्यापारी राजचन्द्र, रूसी तत्त्ववेत्ता टाल्स्टाय और रस्किन का विशेष प्रभाव पड़ा परन्तु सब से अधिक प्रभाव श्रीमद् भगवद्गीता का पड़ा। वे निष्काम कर्मयोग में बहुत विश्वास रखते थे अर्थात् मनुष्य फल की इच्छा के बिना कर्म करे।

गांधीजी का धर्म में बहुत विश्वास था। वे सब धर्मों और मतमतान्तरों को मान की दृष्टि से देखते थे और सब धर्मों को बराबर समझते थे। वे धर्म और

१. गेटेल—'राजनीति शास्त्र', पृष्ठ १२०।

राजनीति को एक ही समझते थे। उनके विचार में बिना धर्म के राजनीति हो ही नहीं सकती थी। धर्म एक नैतिकता प्रदान करता है। धर्म ही हमको सत्य, अहिंसा, सहानुभूति और त्याग का पाठ पढ़ाता है। गांधीजी मज़हबी झगड़ों को बिल्कुल पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने अपनी सारी जिन्दगी हिन्दू-मुस्लिम संगठन में लगा दी। वे स्वयं सत्य और अहिंसा के पुजारी थे। वे सामाजिक क्षेत्र में सबको बराबर गिनते थे, अतः उन्होंने समाज में से छुआछूत और गोरे-काले का भेद दूर करने का भरसक यत्न किया। दक्षिणी अफ्रीका में उन्होंने सरकार की काले और गोरे में भेद-भाव की नीति का घोर विरोध किया। भारत में से अनेक प्रकार की सामाजिक कुरीतियाँ जैसे अस्पृश्यता (untouchability), जबर्दस्ती औरतों से वैधव्य (widow-hood) पालन कराना (अर्थात् विधवा औरतों को पुनर्विवाह से रोकना), दरिद्रता और पराधीनता आदि दूर करने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया क्योंकि वे इनको आध्यात्मिक उन्नति में एक प्रकार की रुकावट मानते थे। इसलिए धर्म ने उन्हें राजनीति में धकेल दिया। गांधीजी धर्म को अपनी प्राण-वायु गिनते थे। वे यहाँ तक कहा करते थे कि मैं जल और वायु के बिना जीवित रह सकता हूँ परन्तु भगवान् के बिना नहीं। उनके धर्म का अर्थ बहुत व्यापक था। वे धर्म का अर्थ हिन्दू धर्म, इस्लाम और ईसाई धर्म से न लेकर मानव-धर्म से लेते थे। धर्म मनुष्य की प्रकृति बदल देता है और दूसरों के प्रति सहानुभूति, त्याग और सेवा सिखाता है तथा सत्य और अहिंसा सिखाकर आत्मा की शुद्धि करता है और आत्मा तथा स्रष्टा में अभेद्य मेल पैदा करता है। वे स्वयं पक्के हिन्दू होते हुए भी ईसाई धर्म तथा इस्लाम का बहुत आदर करते थे।

आर्थिक क्षेत्र में गांधीजी किसी प्रकार का दोहन या शोषण (exploitation) बुरा समझते थे। वे बड़े पैमाने पर कार्य करने वाले कारखानों को बन्द करने और उनके स्थान पर कुटीर-उद्योगों को स्थापित करने के पक्ष में थे। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या गांधीजी बड़े-बड़े कारखानों को बिल्कुल समाप्त कर देना चाहते थे? यदि बड़े-बड़े कारखाने खत्म कर दिये जाएँ तो रेल, जहाज कैसे बनेंगे और बिजली कैसे पैदा होगी। गाँधीजी वास्तव में इन चीजों की कोई अधिक चिन्ता नहीं करते थे, अतः उनके आदर्श समाज में इनकी कोई आवश्यकता नहीं होगी। परन्तु फिर भी रेल और जहाज के कारखानों या अन्य बड़े कारखानों को उन्हें रखने में कोई दिक्कत नहीं थी यदि नागरिक उद्योगवाद की बुराइयों से बचे रहें। वे कृषि और उद्योग का विकेन्द्रीकरण (decentralisation) करना चाहते थे। यदि उद्योग-धन्धे एक स्थान पर केन्द्रित न होवें और माल के उत्पादन का विकेन्द्रीकरण हो जाय तो न कोई मशीनों का मालिक रहेगा और न कोई दास। उन्होंने कुटीर-उद्योगों (cottage industries) को पुनर्जीवित करने पर बहुत बल दिया। वे उद्योग-धन्धे सहकारिकता के आधार (co-operative basis) पर भी आवश्यकतानुसार चलाना चाहते थे। वे आर्थिक व्यवस्था को बदलने के लिए रक्तपात के विरुद्ध थे। यहीं वे मार्क्सवादियों या कम्यूनिस्टों से विचारधारा में भेद रखते थे। वे यह भी चाहते थे कि यदि बड़े-बड़े कारखाने चलाये जाएँ तो वे कुटीर-उद्योगों का मुकाबला करने के लिए

न चलाए जाएँ बल्कि उनको लाभ पहुँचायें। वे चर्खा और खादी में बहुत विश्वास रखते थे।

गांधीजी जमींदारों और पूंजीपतियों को खत्म नहीं करना चाहते थे बल्कि उनकी वृत्ति या स्वभाव बदलना चाहते थे। वे चाहते थे कि प्रत्येक मनुष्य अपनी आवश्यकताएँ बहुत सीमित रखे और अत्यन्त सादा जीवन बितायें। पूंजीपति बहुत थोड़ी और उचित सम्पत्ति रखें। गांधीजी का आदेश था कि मिल मालिक, साहूकार तथा जमींदार अपने आपको निक्षेपाधिकारी (trustee) समझें अर्थात् वे समझें कि उचित सम्पत्ति को छोड़ कर शेष सम्पत्ति समाज की है और वह उनके पास अमानत है जिसको खर्च करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं, तथा समाज से आर्थिक असमता (economic inequality) दूर करने का यत्न करें और किसानों तथा मजदूरों का ठीक रूप से नेतृत्व करें। यदि जमींदार तथा पूंजीपति अपने कर्त्तव्य का पालन न करें तो मजदूरों को चाहिए कि वे उनको किसी प्रकार का कोई सहयोग न दें ताकि उनका (अर्थात् मजदूरों का) शोषण न हो। यदि मजदूर और पूंजीपति आपस में मिलकर निक्षेपाधिकारी के रूप में काम नहीं करते और उपभोक्ता (consumer) के हितों का ध्यान नहीं रखते तो गांधीजी उद्योग-धन्धों पर राज्य का स्वामित्व (State ownership of industries) चाहते थे। राज्य को लोगों के लाभ के लिए ही उद्योग-धन्धे चलाने चाहिएँ न कि मुनाफे के लिए।

गांधीजी राज्य का आधार हिंसा मानते थे, अतः वे समझते थे कि राज्य की शक्तियों में वृद्धि होने से मनुष्य के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास न हो सकेगा। अहिंसात्मक समाज में कोई राज्य नहीं होगा बल्कि ऐसे गाँव होंगे जिनका कामकाज और शासन स्वयं गाँव वाले चलाते हों। ऐसे गाँवों का एक ऐच्छिक संघ (voluntary union) होगा। गाँव वालों को अपने उद्योग-धन्धे चलाने और बन्दोबस्त करने के लिए अधिक से अधिक स्वतन्त्रता होगी। अहिंसात्मक समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपना शासक होगा और दूसरों के कार्यों में बाधक सिद्ध न होगा। गांधीजी एक सेवा-राज्य (Service State) उत्पन्न करना चाहते थे और राज्य को कम से कम अधिकार देना चाहते थे ताकि व्यक्ति को अधिक से अधिक नैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो। यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि गांधीजी इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हिंसात्मक तरीकों का प्रयोग नहीं करना चाहते थे। उनके विचार में एक अच्छे उद्देश्य की पूर्ति के लिए अच्छे साधन भी अवश्य चाहिएँ। यही कारण है कि उन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिए सत्याग्रह इत्यादि का ही प्रयोग किया।

कल्याण-राज्य का सिद्धान्त
(The Modern Theory of Welfare State or Service State)

आधुनिक युग में राज्य एक कल्याणकारी समुदाय बन गया है। उन्नीसवीं सदी में व्यक्तिवादियों ने पुलिस-राज्य का विचार प्रचलित किया। व्यक्तिवादियों की यह धारणा थी कि राज्य को केवल तीन कार्य अर्थात् बाहरी आक्रमणों से देश की रक्षा, आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था तथा न्याय (अर्थात् जान, माल की रक्षा

करना और अपराधी को दण्ड देना) करने चाहिएँ। इसलिए राज्य को व्यापार और वाणिज्य, शिक्षा और स्वास्थ्य सम्बन्धी कोई कानून नहीं बनाने चाहिएँ। राज्य को गरीबों की सहायता के लिए औषधालय नहीं खोलने चाहिएं और न ही मुफ्त शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए। इसके विरुद्ध समाजवाद की विचारधारा चली। समाजवादी प्रत्येक क्षेत्र में राज्य या समाज का अधिक से अधिक नियन्त्रण चाहते थे। आर्थिक क्षेत्र में समाजवादी विशेषतया राज्य या समाज का अधिकार मानते हैं। रूस और चीन में सारी व्यवस्था को समाजवाद के अनुसार चलाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि पुलिस-राज्य के दिन अब समाप्त हो चुके हैं। जिन देशों में समाजवाद पनप नहीं पाया है वहाँ भी राज्य को सेवा-राज्य माना जाने लगा है। इंगलैंड, अमरीका तथा भारत में भी इसी प्रकार की विचार-धारा प्रचलित है। इंगलैंड, अमरीका तथा भारत में प्रजातन्त्र की स्थापना हो चुकी है और प्रजातन्त्रात्मक राज्य या लोकतन्त्रात्मक राज्य का मुख्य उद्देश्य लोक-सेवा ही है। आधुनिक सेवा-राज्यों में व्यक्तिवाद की इस बात को मान लिया गया है कि व्यक्ति के मूल अधिकारों में राज्य की ओर से कोई हस्तक्षेप न हो; उदाहरणार्थ, भारत और अमरीका तथा फ्रांस में लोगों को कुछ मूल अधिकार प्राप्त हैं और राज्य उनमें किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। राज्य शान्ति, रक्षा और न्याय भी कायम करता है परन्तु इसके अतिरिक्त व्यक्तिवाद की ओर किसी बात को नहीं अप-नाया गया है। राज्य आजकल अशिक्षा, गरीबी, बीमारी, शराबखोरी इत्यादि बुराइयों को दूर करना अपना कर्त्तव्य समझता है। इतना ही नहीं बल्कि राज्य आजकल प्रत्येक क्षेत्र का नियमन (regulation) करता है अर्थात् यह व्यापार और वाणिज्य के सम्बन्ध में कानून बनाता है, टैक्स लगाता है और उत्पादन तथा वितरण को काबू में रखता है। विवाह, छुआछूत, जायदाद इत्यादि के सम्बन्ध में भी राज्य कानून बनाता है। इसलिए राज्य के कार्यों का क्षेत्र अब बहुत बहुत बढ़ गया है।

आधुनिक राज्यों के कर्त्तव्यों का वर्गीकरण (Classification of Functions of Modern States)

मिस्टर बर्न्स कहते हैं कि राज्य को राष्ट्रीय जीवन को पूर्ण बनाने और राष्ट्र (nation) का स्वास्थ्य, हित, नैतिकता और बुद्धि को उन्नत करने के लिए पूरी सहायता देनी चाहिए।[1] राज्य के कार्य दो भागों में बांटे जा सकते हैं (१) आवश्यक या अनिवार्य (२) ऐच्छिक। अमेरिकन लेखक विल्सन राज्य के कर्त्तव्यों को आवश्यक तथा ऐच्छिक ऐसे दो भागों में बांटता है। उसके अनुसार राज्य के आवश्यक कर्त्तव्य निम्नलिखित हैं:—

(१) कानून और व्यवस्था को बनाये रखना तथा जीवन और सम्पत्ति की चोरी और हिंसा से रक्षा करना।

---

1. The State must make the fullest possible contribution "to the perfection of national life, to the development of the nation's health and well-being, its mor-ality and its intelligeuce"—*Burns.*

(२) मर्द और औरत तथा बच्चों और उसके माता-पिता के बीच में कानूनी सम्बन्ध कायम रखना।

(३) सम्पत्ति-सम्बन्धी नियमों को बनाना।

(४) व्यक्तियों के बीच समझौते द्वारा उत्पन्न हुए अधिकारों का फैसला करना।

(५) अपराधों को निश्चित करना तथा सज़ा देना।

(६) दीवानी मामलों में इन्साफ करना।

(७) नागरिकों के आपसी सम्बन्ध तथा उनके अधिकार और कर्त्तव्य निश्चित करना।

(८) विदेशी राज्यों के साथ व्यवहार और बाहरी हमलों से बचाव।

अतः राज्य के अनिवार्य कार्य (compulsory functions) में राज्य के पुलिस कार्य (police functions) शामिल हैं अर्थात् राज्य का परमावश्यक कार्य आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था (internal law and order), बाहरी आक्रमणों से देश की रक्षा और न्याय-व्यवस्था कायम रखना है। बाहरी आक्रमणों से देश की रक्षा राज्य का प्रमुख कार्य है। इसके लिए राज्य एक स्थल सेना (land army), वायु सेना (air force) और नौ-सेना (navy) रखता है। कोई भी देश केवल अहिंसा के बल पर दूसरे देश की फौजों का मुकाबला नहीं कर सकता। अतः भारत में भी सभी प्रकार की सेना विद्यमान है। फ्रान्स ने १८७०, १९१४, १९४० ईस्वी में जर्मनी से हार खाई क्योंकि उसके पास पर्याप्त फौजें नहीं थीं। दूसरे, राज्य का कार्य आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था कायम करना है। इसके लिए राज्य पुलिस रखता है। पुलिस की सहायता के बिना शान्ति और व्यवस्था कायम नहीं रह सकती। चोर और डाकू गरीबों को तंग करते हैं और केवल पुलिस उनका दमन करके गरीबों को सुरक्षित रखती है। आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था के बिना समाज का कल्याण नहीं हो सकता और न ही सभ्यता तथा संस्कृति का उदय सम्भव है। आन्तरिक शान्ति के बिना हमारा जीवन सदा खतरे में रहेगा। राज्य का तीसरा कार्य न्याय-व्यवस्था कायम रखना है। किसी सरकार की योग्यता वहाँ का न्याय-पद्धति से ही देखी जाती है। इसके लिए राज्य न्यायालयों को खोलता है। न्याय गरीब, अमीर सब के लिए जरूरी है। प्रत्येक व्यक्ति का न्यायालय से कभी न कभी सम्बन्ध आ जाता है। दीवानी और फौजदारी तथा माली अदालतों के बिना किसी भी व्यक्ति की जान और माल सुरक्षित नहीं रहेगा। यदि मनुष्य आपस में किये हुए संविदा या समझौते का पालन न करें, तो सारे समाज में अशान्ति फैल जाय। इसलिए राज्य समझौते का पालन करवाता है। राज्य का यह परम कर्त्तव्य है कि ईमानदार तथा निष्पक्ष अदालत कायम करे।

बहुत से लेखक राज्यों के अनिवार्य कार्यों में कर लगाना, सिक्के सम्बन्धी कानून बनाना, भूमि जंगल तथा पब्लिक प्रोपर्टी की रक्षा करना, तार और रेल कायम करना, माता-पिता और बच्चों में कानूनी सम्बन्ध निश्चित करना और व्यक्तियों के आपसी सम्बन्ध निश्चित करना इत्यादि शामिल कर लेते हैं।

राज्य के ऐच्छिक कार्य (Optional Functions)—मिस्टर विल्सन राज्य के ऐच्छिक कार्यों में निम्नलिखित बातें शामिज करते हैं:—

(१) व्यापार तथा उद्योग-धन्धों के सम्बन्ध में नियम बनाना।
(२) मजदूरों के लिए नियम बनाना।
(३) आयात और निर्यात (import and export) की वस्तुओं का प्रबन्ध और उस सम्बन्ध में कानून बनाना।
(४) डाक और तार का इन्तज़ाम करना।
(५) सड़कों और रास्तों को बनाना।
(६) पानी, गैस आदि का प्रबन्ध।
(७) स्वास्थ्य और सफाई का प्रबन्ध।
(८) गरीबों और अपाहिजों की देखभाल।
(९) जंगल लगवाना तथा उसकी पैदावार की रक्षा और नदियों में मछली बढ़ाना।
(१०) निषेधात्मक कानून (prohibition laws) जैसे शराब का बन्द करना।
(११) शिक्षा।

आधुनिक लेखकों के मतानुसार राज्य के मुख्य ऐच्छिक कर्त्तव्य निम्मलिखित होने चाहिएँ :—

राज्य को लोगों की भलाई के लिए **उद्योग और व्यापार** को इस ढंग से चलाना चाहिए जिससे सब का लाभ हो। राज्य को पूंजीपतियों का पक्षपात नहीं करना चाहिए और न ही मजदूरों की अनुचित माँगें स्वीकार करनी चाहिएँ। राज्य को मजदूरों के लिए कम से कम वेतन (minimum wages) निश्चित करना चाहिए। मजदूरों के लिए ज्यादा से ज्यादा काम के घण्टे (maximum hours of work) निश्चित करने चाहिएँ। इन दोनों बातों से यह लाभ होगा कि पूंजीपति मजदूरों को सरकार द्वारा निश्चित किये हुए वेतन से कम नहीं दे सकेंगे और निश्चित घण्टों से अधिक काम नहीं ले सकेंगे। उन्हें श्रमिकों का शोषण करने की इजाज़त नहीं मिलनी चाहिए। यदि मजदूरों और पूंजीपतियों में झगड़ा उत्पन्न हो जाय तो राज्य को फैसला करना चाहिए। इसके लिए राज्य को चाहिए कि एक उद्योग-न्यायालय (Industrial Court) स्थापित करे जिसमें मजदूरों, पूंजीपतियों और सरकार के प्रतिनिधि सम्मिलित हों और उसका फैसला सब मानें। इसके अतिरिक्त आधुनिक राज्य अपने उद्योग-धन्धों की रक्षा करते हैं और उनको रुपया पैसा देकर (तथा विदेशी वस्तुओं पर अधिक टैक्स लगा कर) प्रोत्साहित करते हैं। विदेशी वस्तुओं पर अधिक टैक्स इस वास्ते लगाये जाते हैं ताकि मँहगी होने के कारण वे कम बिकें। इसके अतिरिक्त सरकार का नियन्त्रण मुद्रा और नोटों (coinage and currency) तथा बैंकों पर होता है। इसके द्वारा भी वह उद्योग-धन्धों और व्यापार तथा वाणिज्य का नियमन (regulation) करती है। समाजवादी देशों में राज्य का उत्पादन तथा वितरण पर पूरा काबू होता है।

राज्य का दूसरा ऐच्छिक कार्य (optional function) **शिक्षा** फैलाना है।

शिक्षा के बिना मनुष्य की पूर्ण उन्नति सम्भव नहीं है। आजकल यह स्वीकार कर लिया गया है कि राज्य का कर्त्तव्य शिक्षा फैलाना है। आधुनिक राज्य स्कूल और कालेज खोलता है। प्रजातन्त्र शिक्षा के बिना सफल ही नहीं हो सकता। अंग्रेजी काल में भारतीयों की शिक्षा की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया परन्तु अब भारत स्वतन्त्र है। भारतीय संविधान में लिखा हुआ है कि राज्य चौदह वर्ष तक की आयु के बालकों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा देने का यत्न करेगा। राज्य का यह भी कर्त्तव्य है कि लोगों के लाभ के लिए अजायबघर, वाचनालय, पुस्तकालय, बाग और चिड़िया-घर खोले।

तीसरे, राज्य को लोगों के **स्वास्थ्य** को सुधारने के लिए विशेष ध्यान देना चाहिए। इसके लिए इसे अस्पताल खोलने चाहिएँ जहाँ से गरीबों को दवाई मुफ्त मिल सके। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य विभाग (health deptt.) का काम बीमारी को फैलने से रोकना होना चाहिए। इसके लिए नगर अथवा गाँव में सफाई की ओर विशेष ध्यान दिया जाय और चेचक तथा हैजे के टीके लगाये जाएँ जब कि बीमारी फैलने का भय हो। इतना ही नहीं बल्कि राज्य का यह भी कार्य है कि लोगों को हवादार मकान, अच्छा दूध, घी और पानी सस्ते भाव पर देवे।

चौथे, राज्य **गरीबी** को दूर करे। इसके लिए राज्य लोगों को शिक्षा दे और कुछ हाथ का काम सिखाये ताकि कोई भूखा न मरे और सब रोटी कमा कर खाएँ। राज्य का यह भी कर्त्तव्य है कि यह बेकारी या बेरोज़गारी को दूर करे और लोगों को कुछ काम दे तथा लोगों का आर्थिक स्तर (economic standard) ऊँचा करे। यह तभी हो सकता है जब कि राज्य का उत्पादन और वितरण पर अधिकार हो। जिनका शरीर बुढ़ापे, बीमारी या किसी दुर्घटना के कारण अयोग्य हो गया है, उनकी रोटी का राज्य प्रबन्ध करे और भिखारियों को भी काम दे या उनके लिए मुफ्त भोजन का प्रबन्ध करे। यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि राज्य का कर्त्तव्य मुफ्त भोजन देना केवल ऐसे भिखारियों तक ही सीमित है जिनका शरीर किसी कारण से जर्जर हो गया हो। जिन भिखारियों का शरीर ठीक है उनसे काम लेना चाहिए।

पाँचवें, राज्य को **सामाजिक और नैतिक सुधार** की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। आधुनिक काल में राज्य शराब और अफीम का इस्तेमाल बन्द कर रहा है क्योंकि इससे लोगों का स्वास्थ्य खराब होता है। भारत में बम्बई सरकार ने बम्बई राज्य में शराब बनाना बन्द कर दिया है और बाहर से लाने पर भी बहुत रुकावट लगा दी है। चीन में भी अफीम का प्रयोग पहले से बहुत कम हो गया है क्योंकि राज्य ने इस पर बहुत पाबन्दी लगा दी है। राज्य आजकल विवाह-सम्बन्धी कानून भी बनाता है। भारत में बाल-विवाह, छुआछूत और सती को कानून द्वारा ही खत्म किया गया।

इसके अतिरिक्त राज्य का कर्त्तव्य **यातायात के साधनों** (means of communication) की उन्नति करना है। राज्य को चाहिए कि सड़कें, रेलें, डाकखाने, रेडियो और तार घर आदि खोले। प्रत्येक राज्य में ये कार्य सरकार द्वारा

ही होने चाहिएँ। एक व्यक्ति इनको ठीक प्रकार से नहीं कर सकता। व्यक्ति के पास इन कामों को करने के लिए न तो पैसा होता है और न योग्यता। ये काम ऐसे हैं जो कि पूंजीपति की दया पर नहीं छोड़े जा सकते। अतः राज्य का कर्त्तव्य है कि इन कामों को भली-भाँति चलाये।

राज्य द्वारा जो काम नहीं होने चाहिएँ
(Functions which should not be performed by State)

यद्यपि बीसवीं शताब्दी में राज्य के कार्यों में बहुत वृद्धि हो गई है तथापि लोग एकाधिनायक सरकार (totalitarian state) को अच्छा नहीं समझते हैं। आधुनिक युग में भी बहुत से ऐसे काम हैं जो राज्य को नहीं करने चाहिएँ। राज्य को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में बहुत अधिक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त राज्य को अपने कर्त्तव्य इस प्रकार से पालन करने चाहिएँ जिस से लोगों को अपने शारीरिक और मानसिक विकास के लिए अधिक से अधिक अवसर प्राप्त हों।

राज्य को लोकमत पर विशेष पाबन्दी नहीं लगानी चाहिए बल्कि लोकमत निर्माण करने वाले साधनों को अधिक से अधिक स्वतन्त्रता देनी चाहिए। उदाहरण-स्वरूप, भाषण तथा लेखन की स्वतन्त्रता, समाचार-पत्रों को आलोचना की स्वतन्त्रता, समुदाय बनाने की स्वतन्त्रता इत्यादि किसी भी राज्य में अधिक से अधिक होनी चाहिए। इसी प्रकार राज्य को लोगों के नैतिक विश्वासों में दखल नहीं देना चाहिए। इतना ही नहीं बल्कि राज्य को लोगों के धार्मिक विश्वासों, रूढ़ियों, रीति-रिवाजों और धार्मिक जीवन के विरुद्ध कोई काम नहीं करना चाहिए। राज्य को लोगों के लिए कोई पोशाक निर्माण नहीं करनी चाहिए (the state should not prescribe dress or fashion for the people)। अमीर अमानुल्लाह, अफ़गान सम्राट् ने लोगों को दाढ़ी कटवाने का हुक्म दिया और अन्य प्रकार से ऐसे सुधार करने का आदेश दिया जिस से लोग उसके विरुद्ध हो गए। वह अपने देश में पाश्चात्य सभ्यता फैलाना चाहता था। अन्त में उसे तख्त छोड़ कर भागना पड़ा।

सामाजिक सेवाएँ (Social Services)

"the aim of the state should be the development to the highest possible pitch of all the powers and faculties of citizen".—*Mazzini*

["नागरिक की सारी शक्तियों और योग्यताओं का पूरा-पूरा विकास होने में सहायता देना ही राज्य का लक्ष्य होना चाहिए"—मेज़िनी]

आजकल राज्य एक सेवा-राज्य बन गया है, अतः उसके कार्य और जिम्मेवारियाँ पहले से बहुत बढ़ गई हैं। मध्य युग में बहुत से कार्य जैसे शिक्षा, गरीबों की सहायता इत्यादि धार्मिक समुदायों द्वारा किये जाते थे परन्तु अब ये कार्य राज्य द्वारा किये जाते हैं। इसलिए सामाजिक सेवाओं का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। सामाजिक सेवाओं से अभिप्राय ऐसे कार्यों से है जिनका ध्येय नागरिकों की नैतिक, मानसिक और भौतिक उन्नति करना है (social services promote the material,

moral and mental development of man)। सामाजिक सेवाओं का लक्ष्य गरीबी, अज्ञान, निरक्षरता और बीमारियों को मिटा कर और लोगों के लिए अधिक से अधिक सुविधाएँ उत्पन्न करके उनके जीवन को शान्तिमय, पूर्ण तथा आनन्दमय बनाना है। यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि सामाजिक सेवाएँ वैयक्तिक सेवाएँ (personal services) हैं जो कि सार्वजनिक लाभ की सेवाओं (public utility services) से भिन्न हैं। सामाजिक सेवाओं में शिक्षा, स्वास्थ्य, बेरोजगारी, रोग और बुढ़ापा आदि की समस्याओं पर विचार किया जाता है और इन क्षेत्रों में व्यक्ति की अधिक से अधिक सेवा करने के लिए मार्ग सोचे और अपनाये जाते हैं। सार्वजनिक लाभ की सेवाओं में सड़कों, रेल, तार, डाकखानों इत्यादि की व्यवस्था शामिल है।

सामाजिक सेवाओं के प्रकार (Types of the Social Services)

सामाजिक सेवाओं (social services) को हम चार भागों में बाँट सकते हैं—

(१) **ऐच्छिक सामाजिक सेवा** (Voluntary Social Service) उसे कहते हैं जिसका संचालन गैर-सरकारी उपक्रम के द्वारा होता है (a voluntary social service is that which is run entirely by private enterprise)। इसका यह अर्थ है कि कोई काम जिसे लोग अपने धन के द्वारा चलाते हों और जिसका वे स्वयं प्रबन्ध करते हों, उसे ऐच्छिक सामाजिक सेवा कहा जाता है। उदाहरणस्वरूप, हमारे देश में बहुत से धनवान् व्यक्तियों ने अपने पैसे से बहुत से अनाथालय और अस्पताल खोले हुए हैं और उनका प्रबन्ध भी वे स्वयं ही करते हैं। सरकार का उनके मामलों में बिलकुल दखल नहीं है।

(२) **राज्य-सहायता प्राप्त करने वाली सामाजिक सेवाएँ** (State-aided Social Services)—राज्य-सहायता-प्राप्त सामाजिक सेवाएँ वे हैं जिनका प्रबन्ध गैर-सरकारी हाथों में होता है और सरकार से जिनको कुछ आर्थिक सहायता मिलती है। हमारे देश में अनेक स्कूल तथा कालेज धार्मिक समुदायों जैसे सनातन धर्म, आर्यसमाज, जैन, सिक्ख और मुस्लिम सभाओं द्वारा चलाए जा रहे हैं। काफी रुपया इन संस्थाओं के संचालन में उनको खर्च करना पड़ता है परन्तु उनको कुछ आर्थिक सहायता सरकार द्वारा अवश्य मिलती है और इसलिए विश्वविद्यालय के कुछ नियमों का भी पालन करना पड़ता है।

(३) **राज्य-नियन्त्रित सामाजिक सेवाएँ** (State-controlled Social Services)—वे सामाजिक सेवाएँ जिन्हें सरकार रुपया दे या न दे परन्तु उन पर काफी नियन्त्रण रखती है। इस श्रेणी में बैंक और बिजली की कम्पनियाँ शामिल हैं।

(४) **राज्य-संचालित सामाजिक सेवाएँ** (State-managed Social Services)—वे सेवाएँ जिनका खर्चा भी सरकार स्वयं करती है और जिनका प्रबन्ध भी सरकार द्वारा किया जाता है, उनको राज्य-संचालित सामाजिक सेवाएँ कहा जाता है। उदाहरणार्थ, रेलवे, डाक-तार आदि इसी श्रेणी में शामिल हैं।

राज्य तथा सामाजिक सेवाएँ (State and Social Services)

सामाजिक सेवाओं का उद्देश्य निर्धनता, अज्ञान और बीमारियों को नष्ट करना है क्योंकि निरक्षरता और गरीबी मानव-जाति के सब से बड़े शत्रु हैं। निरक्षरता और निर्धनता समाप्त हो जाने पर बीमारियाँ भी कुछ कम हो जायेंगी। कोई ज़माना था जब कि लोगों के विचार बड़े संकुचित थे और कहते थे कि सामाजिक भलाई के लिए यदि राज्य की शक्तियाँ बढ़ाई गईं तो उससे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नष्ट हो जाएगी। उन्नीसवीं शताब्दी में व्यक्तिवादियों के भी ऐसे ही विचार थे। मिस्टर जान स्टुअर्ट मिल राज्य के कार्य बढ़ाने के पक्ष में नहीं थे और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के बड़े भारी पुजारी थे। व्यक्तिवादियों का विश्वास था कि राज्य को केवल तीन कार्य करने चाहिएँ अर्थात् देश की बाहरी आक्रमणों से रक्षा, आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था तथा न्याय; इसके अतिरिक्त राज्य को लोक-सेवा के लिए कोई कार्य नहीं करना चाहिए। फलतः राज्य को स्कूल, कालेज, अस्पताल, अनाथालय इत्यादि नहीं खोलने चाहिएँ और न ही उद्योग-धन्धे चलाने चाहिएँ तथा मजदूरों की भलाई के लिए पूंजीपतियों से कुछ नियम नहीं मनवाने चाहिएँ परन्तु ये विचार अब सबको मान्य नहीं हैं। जब विज्ञान की वृद्धि हुई, और लोगों में जाग्रति उत्पन्न हुई और उद्योग-धन्धों की उन्नति हुई, तो लोगों के राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में विचार बदलने लगे। समाजवाद का जन्म आर्थिक क्षेत्र में व्यक्तिवाद की बुराइयाँ दूर करने के लिए हुआ। समाजवादी देशों, जैसे रूस और चीन में राज्य का नियन्त्रण उत्पादन और वितरण (Production and Distribution) पर होता है। वहाँ पर राज्य जनता को अधिक से अधिक शिक्षा और चिकित्सा-सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करने की कोशिश करता है तथा उसका आर्थिक स्तर ऊँचा करता है। इसलिए समाजवादी राज्य केवल लोगों की बाहरी हमलों से रक्षा तथा आन्तरिक शान्ति ही कायम नहीं करता बल्कि उत्पादन और वितरण पर काबू रखता है, तथा एक शिक्षक, वैद्य और लोगों के लिए एक प्रकार से मनोरंजक के रूप में भी काम करता है। बहुत से देशों में जहाँ समाजवाद अभी विजयी नहीं हुआ है, वहाँ भी राज्य पुलिस-राज्य न होकर सेवा-राज्य बन गया है। इंगलैण्ड, भारत और संयुक्त राष्ट्र अमरीका में भी राज्य के कार्य बहुत बढ़ गए हैं और इन देशों में सरकार जनता के लिए अनेक प्रकार के लाभदायक काम करती है। राज्य स्कूल, कालेज, चिकित्सालय (hospitals) आदि खोलता है, लोगों के लिए सस्ते मकान बनाता है और मजदूरों के लाभ के लिए अनेक कानून बनाता है तथा पूंजीपतियों पर काफी नियन्त्रण रखता है। राज्य का ध्येय लोगों की भौतिक, नैतिक और बौद्धिक उन्नति करना है। अतः राज्य का कर्त्तव्य है कि लोगों के नैतिक स्तर को ऊँचा करे तथा सामाजिक बुराइयों को दूर करे।

शिक्षा (Education)

शिक्षा का बड़ा भारी महत्त्व है। शिक्षा से ही मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति होती है। शिक्षा के बिना मनुष्य में ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता। ज्ञान के बिना राज्य और समाज की और नागरिक अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं कर सकता और न वह

अपने अधिकारों को सुरक्षित रख सकता है। मध्ययुग में शिक्षा अधिकतर धार्मिक संस्थाओं द्वारा दी जाती थी। व्यक्तिवादियों का विचार था कि शिक्षा देना राज्य का कार्य नहीं है बल्कि एक व्यक्तिगत चीज़ है। उन्नीसवीं शताब्दी में हरबर्ट स्पेन्सर का विचार था कि यदि राज्य स्कूल और कालेज चलाये और माँ-बाप को मजबूर करे कि वे अपने बच्चे वहाँ पढ़ायें तो वह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर आक्रमण होगा। आजकल व्यक्तिवादियों के इस मत को कोई भी स्वीकार नहीं करता। समाजवाद ने व्यक्तिवादियों के इस मत का बहुत खण्डन किया और ज्यों-ज्यों विज्ञान तथा प्रजातन्त्र की उन्नति होती गई, त्यों-त्यों शिक्षा की आवश्यकता अधिक से अधिक अनुभव होने लगी। आजकल नागरिकों को शिक्षा देना राज्य अपना परम कर्त्तव्य समझता है। शिक्षा के बिना आदर्श नागरिकता का निर्माण हो ही नहीं सकता। शिक्षा के बिना प्रजातन्त्र सफल नहीं हो सकता। इसलिए शिक्षा की जिम्मेवारी आधुनिक युग में राज्य ने ले ली है। प्रोफेसर लास्की कहता है कि नागरिकों की शिक्षा आधुनिक राज्य का दिल है (The education of the citizens is the heart of the modern state)। भारत में निरक्षरता बहुत अधिक संख्या में होने के कारण इसका विशेष महत्त्व है। भारत के संविधान में लिखा है कि राज्य प्रत्येक चौदह वर्ष तक के बालक को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रयत्न करेगा। इंगलैण्ड और अमरीका में सरकार ने अनेक स्कूल, कालेज, टेक्नीकल इन्स्टीच्यूट, व्यावसायिक केन्द्र (Vocational Centres), अजायबघर और पुस्तकालय खोले हैं। भारत सरकार भी अनेकों स्कूल तथा कालेज खोल रही है। दूसरी पंचवर्षीय योजना में शिक्षा-प्रसार की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। नारियों और बालिगों की शिक्षा की ओर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है। प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा में विशेष प्रगति हो रही है। टैक्नीकल और व्यावसायिक स्कूल और कालेज भी अधिक से अधिक खोले जा रहे हैं।

सार्वजनिक स्वास्थ्य और चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता
(Public Health and Medical Relief)

स्वास्थ्य और प्रसन्नता का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रह सकता है। प्राचीन काल में पुलिस-राज्य की सरकार समझती थी कि स्वास्थ्य को ठीक रखना व्यक्ति का निजी काम है परन्तु अब व्यक्तिवाद की भावनाओं का अन्त हो चुका है। राज्य अब एक सेवा-राज्य बन गया है। प्राचीन काल में राज्य की उदासीनता के कारण सार्वजनिक स्वास्थ्य की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया, फलतः नगर सड़ गए, बीमारियाँ बहुत फैलने लगीं और अनेक स्त्री-पुरुष काल का ग्रास बनने लगे। आजकल राज्य समझता है कि नागरिकों के स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान देना है। आजकल राज्य या सरकार लोगों के लिए ऐसी सुविधाएँ प्रदान करती है जिसके कारण बीमारियों से बचाव हो सके। बीमारियाँ प्रायः गन्दे पानी पीने, गली सड़ी वस्तुएँ प्रयोग करने, गन्दे मकानों में रहने और शहरों में काफी सफाई न होने के कारण फैलती हैं। इसके अतिरिक्त रोग आवश्यकता से अधिक भोजन खाने, आवश्यकतानुसार भोजन न मिलने, और ब्रह्मचर्य का पालन न करने तथा ठीक मात्रा में

कसरत न करने के कारण भी हो जाते हैं। राज्य बीमारियों से बचाव के लिए आजकल लोगों का नैतिक और आर्थिक स्तर ऊँचा करना अपना परम कर्त्तव्य समझता है। इसके अतिरिक्त राज्य खाने-पीने की वस्तुओं में मिलावट को रोकने, अच्छे मकान और सफाई का भी प्रबन्ध करता है। बीमारी फैलने पर चेचक, हैजे और तपेदिक के टीके भी स्वास्थ्य विभाग द्वारा लगाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त सरकार ने अस्पताल खोले हुए हैं जहाँ गरीबों को मुफ़्त दवा मिलती है।

सार्वजनिक लाभ की सेवाएँ (Public Utility Services)

ऐसी सेवाएँ जिनसे देश की आर्थिक उन्नति होती है और जो कि नागरिकों के आराम और संस्कृति के स्तर को ऊँचा करती हैं, उन्हें सार्वजनिक लाभ की सेवाएँ कहा जाता है। इनमें रेल, सड़क, डाक-तार, टेलीफोन, ट्रामवे, बिजली, गैस और पानी पहुँचाना इत्यादि शामिल हैं। इस से हमारी हजारों दैनिक आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। यातायात के साधनों की उन्नति से कृषि, उद्योग-धन्धे तथा तिजारत की भी बहुत वेग से प्रगति होती है और अकाल की कम सम्भावना हो जाती है। सस्ती और काफी बिजली से उद्योग-धन्धों की उन्नति होती है और जीवन भी सुविधाजनक बन जाता है। शुद्ध पानी का लोगों को मिलना अत्यन्त आवश्यक है ताकि लोगों का स्वास्थ्य अच्छा रहे। इसलिए सार्वजनिक लाभ की सेवाओं से सांस्कृतिक तथा भौतिक उन्नति होती है। सार्वजनिक लाभ की सेवाएँ नागरिकों द्वारा नहीं चलाई जा सकतीं क्योंकि इन में करोड़ों रुपये खर्च करने पड़ते हैं और इनसे एक दम लाभ होने वाला नहीं है। पूंजीपति तत्काल लाभ की आशा करते हैं। अतः राज्य ही ऐसे कार्यों को चलाता है क्योंकि इन में पहले करोड़ों रुपये खर्च करने पड़ते हैं और कई वर्षों बाद कुछ लाभ की आशा दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त इनको व्यक्तिगत भरोसे पर छोड़ना ठीक नहीं क्योंकि व्यक्ति इनको निजी हित के लिए चलाता है न कि सार्वजनिक हित के लिए। वैयक्तिक प्रबन्ध द्वारा चलाए हुए इन कार्यों का सन्तोषजनक प्रबन्ध भी नहीं होता।

सामाजिक सुरक्षा (Social Security)

पहले राज्य यह समझते थे कि सामाजिक सुरक्षा से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है परन्तु अब व्यक्तिवाद का प्रभाव समाप्त हो चुका है। समाजवाद के कारण यह भावना उत्पन्न हुई कि राज्य का कर्त्तव्य है कि वह लोगों को रोज़गार दे तथा बुढ़ापे और बीमारी में उनकी रक्षा करे। आजकल राज्य एक सेवा-राज्य बन गया है, अतः सामाजिक सुरक्षा उसका विशेष कर्त्तव्य हो गया है। सामाजिक सुरक्षा का अर्थ है कि बुढ़ापे, दुर्घटना, रोग और बेकारी से पीड़ित होने पर प्रत्येक नागरिक के लिए कुछ सुरक्षा की व्यवस्था की जाय (By social security is meant protection against hardships caused by poverty, old age, unemployment or inability to work due to sickness, accident etc.) बहुत थोड़े राज्यों ने इस काम को अपने कन्धों पर उठाया है। रूस में बुढ़ापे में पेन्शन भी दी जाती है और प्रत्येक बेकार को काम दिया जाता है। यदि राज्य किसी आदमी को कोई काम नहीं दे सकता, तो

वहाँ पर सरकार का यह कर्त्तव्य है कि उस व्यक्ति के भोजन, मकान और कपड़े का प्रबन्ध करे। हमारे देश में सरकार ने उद्योग-धन्धों में काम करने वाले मजदूरों के लिए बीमे की योजना चलाई है। सरकारी कर्मचारियों के लिए भी राज्य के द्वारा बीमे की योजना चलाई गई है। हमारे देश में सरकारी नौकरों को रिटायर होने के पश्चात् पेन्शन मिलती है। जहाँ पर पेन्शन का प्रबन्ध नहीं है वहाँ उपदान मिलता है, जैसे भारतीय रेलवे के मज़दूरों को। इसी प्रकार अन्य गैर-सरकारी नौकरियों में भविष्य-निधि (Provident Fund) की प्रथा प्रचलित है, वहाँ पर प्रायः कुछ निश्चित भाग कर्मचारियों की तनख्वाह से कटता है और कुछ भाग उद्योगपति (employer) उसमें जमा करता है। नौकरी छोड़ते समय या रिटायर होते समय वह पैसा कर्मचारी को मिल जाता है। यदि एक सिपाही युद्ध में लड़ता हुआ मारा जाय तो उसकी विधवा को पेन्शन दी जाती है। हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों को भी रिटायर होने के पश्चात् पेन्शन मिलती है। बहुत से देशों में स्वास्थ्य बीमा (Health Insurance), दुर्घटना और बीमारी का बीमा (Insurance against Accident and Disease) तथा बेरोजगारी के विरुद्ध बीमा (Unemployment Insurance) इत्यादि योजनाएँ चलाई गई हैं। इसी प्रकार बहुत से देशों में बूढ़ों, अनाथों और विधवाओं को पेन्शन मिलती है। सरकार का फर्ज है कि जो आदमी काम करने के योग्य हैं, उनको काम दे और जो आदमी काम करने के योग्य नहीं हैं उनके गुज़ारे के लिए दरिद्र-गृह (poor houses) खोले। बहुत से देशों में भीख माँगना जुर्म है।

सामाजिक सुधार (Social Reform)

पहले बहुत से व्यक्ति समझते थे कि राज्य का काम सामाजिक सुधार नहीं है। उनके विचार में यह व्यक्तिगत कार्य था परन्तु आजकल इसको कोई मानने के लिए तैयार नहीं, क्योंकि राज्य अब सेवा-राज्य (Welfare State) बन गया है। अतः राज्य के कार्य अब बहुत बढ़ गए हैं। समाज में अनेक कुरीतियाँ हैं। यदि राज्य इन बुराइयों को दूर न करे तो सारा देश अधोगति की ओर चला जाय। हमारे देश में संविधान द्वारा छुआछूत को समाप्त कर दिया गया है। इसी प्रकार बाल-विवाह तथा सती की कुप्रथाओं को भी राज्य के कानूनों द्वारा समाप्त किया गया है। बम्बई सरकार मद्यपान के विरुद्ध आन्दोलन कर रही है और शराब का राज्य में लाना गर-कानूनी घोषित कर दिया गया है।

राज्य और उद्योग-धन्धे (State and Industries)

व्यक्तिवादियों के मतानुसार राज्य को व्यक्ति को आर्थिक क्षेत्र में अकेला छोड़ देना चाहिए—प्राचीन काल में राज्य प्रायः उद्योग-धन्धों में बहुत कम दखल देता था। औद्योगिक क्रान्ति (industrial revolution) से पहले बड़े-बड़े कारखाने न होते थे बल्कि अधिकतर गृह-उद्योग (cottage industries) ही होते थे। स्वामी और मज़दूर में यदि कोई झगड़ा हो जाता था और उन में से कोई आपस में किये हुए समझौते का पालन नहीं करता था, तो सरकार उस झगड़े का निर्णय करती थी। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में व्यक्तिवादियों ने

लिखा कि राज्य का व्यक्ति के आर्थिक मामलों में बिल्कुल दखल नहीं देना चाहिए और उसको अकेला छोड़ देना चाहिए (The individualists advocated the theory of 'Laissez Faire' in the latter half of the 18th century and in the former half of the 19th century)। मिस्टर एडम स्मिथ इस मत के विशेष समर्थक थे। व्यक्तिवादियों का विचार था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने हितों को अच्छी तरह समझता है। प्रत्येक मनुष्य आर्थिक क्षेत्र में सब से पहले अपने स्वार्थों को सोचता है और फिर उसके पश्चात् पूंजी को लगाता है। यदि व्यक्तियों में खुला मुकाबला (free competition) होगा, तो समाज को लाभ होगा। पूंजी और श्रम मांग तथा पूर्त्ति के प्राकृतिक नियम के अनुसार काम करेगा अर्थात् पूर्त्ति (supply) के मांग (demand) से अधिक होने पर चीजें सस्ती हो जायेंगी और यदि मांग पूर्त्ति से अधिक है तो चीजें मँहगी हो जायेंगी। राज्य इस प्राकृतिक नियम में दखल देकर लोगों की आर्थिक स्वतन्त्रता का अपहरण करता है। प्रतियोगिता (competition) में पूंजीपति सस्ते से सस्ते मज़दूर हासिल करने की कोशिश करेंगे और मज़दूर अधिक से अधिक वेतन। इसलिए सबको लाभ होगा।

राज्य के 'व्यक्ति को अकेला छोड़ देने' (Laissez Faire) की नीति से इंगलैंड में बड़े भयानक परिणाम निकले। पूंजीपतियों ने मज़दूरों का शोषण (exploitation) आरम्भ कर दिया। पूंजीपति अधिक से अधिक अमीर होने लगे और मज़दूर अधिक से अधिक गरीब। धन थोड़े से मनुष्यों के हाथों में इकट्टा होने लगा। मज़दूरों की दुर्दशा हो गई। राज्य ने उनके लाभ के लिए पूंजीपतियों पर किसी प्रकार का नियंत्रण लगाना उचित न समझा। आखिरकार लोगों के मन में व्यक्तिवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया (reaction) आरम्भ हुई। समाजवाद का जन्म हुआ। कार्ल मार्क्स को जर्मनी के मजदूरों की शोचनीय दशा देखकर अत्यन्त दुःख हुआ। मार्क्स ने ही समाजवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। समाजवादी व्यक्तिगत पूंजी (private capital) का अन्त करके उत्पादन और वितरण पर समाज का नियंत्रण चाहते थे। रूस और चीन में समाजवादी राज्य कायम हो गया है। भारत में यद्यपि समाजवादी राज्य स्थापित नहीं हुआ है परन्तु कल्याण-राज्य (Welfare State) अवश्य कायम हो गया है। भारत में कुछ धन्धे तो केवल सरकारी पूंजी द्वारा चलाये जाते हैं और उन पर सरकारी नियंत्रण होता है। भारत सरकार ने कुछ वर्ष पूर्व बी० बी० एण्ड० सी० आई० रेलवे को कम्पनी के हाथों से ले लिया और अब सब रेलों पर सरकारी नियंत्रण है। इसी प्रकार सरकार ने इंजन बनाने के लिए चितरंजन में फैक्टरी खोली है जिसको चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स कहते हैं। भारत सरकार ने रेल के डिब्बे बनाने के लिए पिराम्बूर में फैक्टरी खोली है। इसी प्रकार भारत सरकार ने अपनी पूंजी से कुछ इस्पात (steel) के कारखाने खोले हैं और भिलाई (मध्य प्रदेश) में रूसी इन्जीनियरों, दुर्गापुर (पश्चिमी बंगाल) में अंग्रेजी इन्जीनियरों और रोरकेला में जर्मन फर्म डेमाग एण्ड क्रुप्स (Demag and Krups) की काफी सहायता ली है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अनुसार तीन नये इस्पात के कारखाने दक्षिण में खोले जायेंगे। इसके अतिरिक्त सरकारी पूंजी द्वारा इण्डियन

स्टील कम्पनी कलकत्ते में स्थापित की गई है। गोला-बारूद के कारखाने भी सरकार द्वारा अपनी पूंजी से चलाये जाते हैं। एयरवेज़ (Airways) का भी राष्ट्रीयकरण (nationalisation) हो गया है। सरकारी कारखानों में जहाज़ भी बनते हैं, जैसे विशाखापटनम् का शिपयार्ड। दूसरे, कुछ उद्योग-धन्धे राज्य पूंजीपतियों के साथ मिलकर चलाता है। तीसरे, कुछ उद्योग-धन्धे ऐसे हैं जो पूंजीपतियों द्वारा चलाये जाते हैं। वहाँ पर सरकार मजदूरों और पूंजीपतियों के सम्बन्धों को ठीक प्रकार चलाने के लिए वेतन और काम करने के घण्टे (minimum wages and maximum hours of work) निश्चित करती है और झगड़ों को निपटाती भी है। सरकार मजदूरों की भलाई के लिए अनेक प्रकार के कानून बनाती है और पूंजीपतियों से अनुरोध करती है कि वे मज़दूरों को शिक्षा, चिकित्सा तथा मनोविनोद-सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करें और इसके अलावा बीमा इत्यादि की योजनाएँ भी चलाएँ। भारत सरकार घरेलू उद्योग-धन्धों (cottage industries) को भी बहुत प्रोत्साहित कर रही है। अम्बर चर्खा सूत कातने के लिए गाँव में अधिक से अधिक प्रयुक्त किया जा रहा है। कश्मीर और कुल्लू में शाल-दोशाले, लुधियाने में स्वेटर तथा जुराबें इत्यादि बनाई जाती हैं। भारत में हज़ारों स्थानों पर कपड़ा बुनने, कढ़ाई और बुनाई के घरेलू उद्योग-धन्धे प्रचलित हैं। अखिल भारतीय खादी बोर्ड भी खादी के बनाने और इसको लोकप्रिय बनाने में विशेष सहायता देता है।

राज्य और व्यापार-वाणिज्य (State and Trade-Commerce)

राज्य व्यापार और वाणिज्य का नियमन (regulation) भी करता है। सरकार व्यापारिक वस्तुओं पर अनेक प्रकार के टैक्स लगाती है, ठीक तोलने और मापने के यन्त्र भी निश्चित करती है और विषैली चीजों (poisonous drugs) के लाइसन्स भी देती है। इसी प्रकार सरकार व्यापारियों को माल लादने, एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने और बैंकों से रुपया-पैसा लेने की भी सुविधाएँ प्रदान करती है। चोरबाज़ारी करने वालों को सरकार द्वारा दण्ड दिया जाता है। सरकार का मुद्रा और नोटों (coinage and currency) पर भी पूरा नियन्त्रण होता है। सरकार ने रिजर्व बैंक का भी राष्ट्रीयकरण कर लिया है।

राज्य तथा कृषि (State and Agriculture)

राज्य कृषि का भी नियमन (regulation) करता है। सरकार जमींदारी को खत्म कर रही है और किसानों को ज़मीन का मालिक बना रही है। सरकार ने पहली पंचवर्षीय योजना में कृषि का बहुत ध्यान रखा है और कृषि की बहुत उन्नति भी हुई है। सरकार ने देश में बिजली पैदा करने, किसानों को खेती के वास्ते पानी देने और बाढ़ को रोकने के लिए अनेक परियोजनाएँ (projects) चलायी हैं, जैसे दामोदर वैली प्रोजैक्ट, भाखड़ा नांगल डाम, हीराकुंड और नागार्जुन सागर इत्यादि। उत्तर प्रदेश सरकार रिहन्द बाँध मिर्जापुर में बाँध रही है, इसमें ३ लाख किलोवाट बिजली पैदा होगी और १६ लाख एकड़ भूमि उत्तर-प्रदेश में और ४½ लाख एकड़ भूमि बिहार में सींची जायगी। इससे दस्तकारियों और कृषि की बहुत उन्नति

होगी। कृषि को उन्नत करने के लिए सरकार ने सिन्द्री में खाद बनाने की बड़ी भारी फैक्ट्री खोली है। पंजाब सरकार ने अभी चकबन्दी (consolidation of landholdings) को पूरा किया है और सहकारी समितियाँ (co-operative societies) बना रही है ताकि किसानों को थोड़े सूद पर कर्जा मिल सके और सामूहिक कृषि को प्रोत्साहन मिले। किसानों को ट्रैक्टर, खाद, बीज इत्यादि के प्रयोग के सम्बन्ध में वैज्ञानिक ढंग सिखाये जा रहे हैं। उन्हें कृषि-प्रदर्शिनी (agricultural exhibition) भी दिखाई जाती है। सरकार किसानों को तकावी देती है और बहुत अधिक अन्न उत्पन्न करने पर इनाम भी। जहाँ नहरें नहीं हैं, वहाँ पर कृषकों को कुएँ खुदवाने के लिए कर्जा भी दिया जाता है। बैलों की नस्लों को ठीक करने और किसानों को दिखाने के लिए आदर्श क्षेत्र (model farms) खोले जा रहे हैं। बंजर भूमि पर हल चलाये जा रहे हैं। बिहार में कोसी की बाढ़ों को रोकने के लिए लाखों रुपये लगाकर सरकार प्रोजैक्ट तैयार कर रही है। राजस्थान की मरुभूमि को उपजाऊ बनाने के लिए सतलुज से राजस्थान नहर निकाली जा रही है जो राजस्थान का नक्शा बदल देगी। जमींदारी को खत्म किया गया है ताकि किसानों की हालत अच्छी हो। गाँव में कर्जदारी को भी खत्म किया जा रहा है।

सारांश

राज्य का उद्देश्य—प्राचीन यहूदी राज्य को ईश्वर-निर्मित मानते थे। प्राचीन यूनानी दार्शनिक राज्य को उच्चतम नैतिक समुदाय समझते थे। प्लेटो के मतानुसार राज्य व्यक्ति का ही विराट् स्वरूप है। फासिस्ट तथा आदर्शवादी राज्य को साध्य मानते थे। व्यक्तिवादी राज्य को साधन मानते हैं। अराजकतावादी इसको अनावश्यक बुराई समझते थे और इसको खत्म करना चाहते थे। बहुवादी (Pluralists) राज्य को एक अप्रभु समुदाय मानते हैं।

राज्य के कार्य-सम्बन्धी सिद्धान्त—व्यक्तिवादी मनुष्य के व्यक्तिगत कार्यों में किसी प्रकार का राज्य द्वारा हस्तक्षेप नहीं चाहते। व्यक्तिवादी राज्य को आवश्यक बुराई मानते हैं। वे पुलिस-राज्य में विश्वास रखते हैं। वे एक कल्याणकारी राज्य में विश्वास नहीं रखते। श्री जॉन स्टुअर्ट मिल व्यक्ति को उसके निजी कार्यों में पूर्ण स्वतन्त्रता देना चाहते थे ताकि मनुष्य के विकास में राज्य के कारण किसी प्रकार की रुकावट पैदा न हो। हरबर्ट स्पेन्सर योग्यतम की विजय में विश्वास रखते थे और ऐडम स्मिथ भी आर्थिक मामलों में राज्य का दखल बिल्कुल नहीं चाहते थे। समाजवाद पूंजीवाद को समाप्त करके उत्पादन के साधनों पर समाज का अधिकार करना चाहता है। समष्टिवादी राज्य के कार्यों को प्रत्येक क्षेत्र में फैलाना चाहते हैं। आजकल राज्य एक सेवा-राज्य बन गया है, अतः उसका कर्त्तव्य केवल समाज में शान्ति कायम करना ही नहीं बल्कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्रदान करना तथा अधिक से अधिक सेवा करना है।

Important Questions

1. What are the ends of the State ? (*P. U. Sept.* 1951)

2. Describe the various social service organisations in your state. Should such services be voluntary or state-controlled ? (*P. U. Sept.* 1953)

3. Enunciate some of the functions of a modern govt. (*P. U Apr.* 1954)

4. What is social security ? Is it duty of the state to provide relief to the unemployed and the poor ?

5. By some state is considered as an evil. Do you agree ? (*P U April.* 1955)

6. "Not command but service is the prominent characteristic of the state." Discuss in the light of this statement, the functions of the state. (*C. U.* 1944)

7. What do you understand by Socialism ? How for has socialist theory influenced the activities of modern state. (*U. P.* 1953)

8. Why should the state support education and protect and promote Public Health ? Do you think the state should encourage the fine arts, literature and sciences etc. ? (*U. P.* 1950)

9. How far is the state justified in removing social evils like drink and early marraige by legislation ? (*U. P.* 1930)

प्रश्न

१. आपके खयाल में वे प्रधान कर्त्तव्य कौन से हैं जिन्हें प्रत्येक शासन को करना चाहिए ? (यू० पी० १९२८, १९४०, १९४२, १९४७)

२. व्यक्तिवादियों और समाजवादियों के राज्य के कर्त्तव्य-सम्बन्ध विचारों का वर्णन कीजिए।

३. क्या आप शिक्षा को निःशुल्क और अनिवार्य बनाना और स्वास्थ्य, सफाई का कानून द्वारा बन्धन करना राज्य का आवश्यक कर्त्तव्य समझते हैं ?

४. राज्य सामाजिक बुराइयों जैसे शराबखोरी और बाल-विवाह को कानून द्वारा हटाने में कहाँ तक न्यायसंगत माना जा सकता है ? (यू० पी० १९३०)

५. राज्य को गरीबों की रक्षा क्यों करनी चाहिए ? क्या यह न्याय-संगत बात है कि एक मनुष्य के बच्चे को मुफ्त शिक्षा देने के लिए दूसरे आदमी पर कर लगाया जाय ? (यू० पी० १९४५)

६. राज्य का उद्देश्य क्या है ? राज्य किन साधनों द्वारा अपने उद्देश्य की पूर्ति करता है ? (यू० पी० १९३३)

चौदहवाँ अध्याय

सरकार और उसके अंग

(The Government and its Organs)

"राज्य की इच्छा की पूर्ति, उसके प्रशासन और निर्माण का कार्य जिस संगठन, अभिकरण या दण्ड-व्यवस्था द्वारा होता है उसी का सामूहिक नाम सरकार है।" —गार्नर

सरकार की परिभाषा (Definition of Government)—बर्क के शब्दों में सरकार मानव-बुद्धि का एक आविष्कार है जिसके द्वारा मानवी इच्छाएँ पूर्ण की जाती हैं। सरकार वास्तव में राज्य की एक मशीन है जिसके द्वारा उसकी (अर्थात् राज्य की) इच्छाओं को निर्मित, प्रदर्शित और लागू किया जाता है (Government is the agency or machinery through which the will of the state is formulated, expressed and executed)। सरकार वास्तव में वह संस्था है जिसके द्वारा लोकेच्छा (public wishes) को कार्य-रूप में परिणत किया जाता है। सरकार के द्वारा ही देश में शासन चलाया जाता है। सरकार कानून बनाती है और उसको देश में लागू करती है तथा शान्ति भंग करने वालों को दण्ड देती है। सरकार के द्वारा ही शासक तथा शासित (governor and the governed) का सम्बन्ध स्थापित होता है।

सरकार के अंग (Organs of Government)—सरकार के मुख्य तीन अंग हैं—(१) विधानमण्डल अथवा व्यवस्थापिका (legislature); (२) कार्यपालिका, कार्यकारिणी (executive); और (३) न्यायपालिका (judiciary)। अमेरिकन विद्वान् बिलोबी ने राज्य के पाँच अंग माने हैं—निर्वाचक-गण (electorate); शासन-प्रबन्ध करने वाला (administration or administrator); व्यवस्थापिका; कार्यकारिणी तथा न्यायपालिका। निर्वाचक को सरकार का एक अलग अंग मानना उचित नहीं। शासन-विभाग कार्यकारिणी का ही हिस्सा है।

व्यवस्थापिका या विधानमण्डल के कार्य

(Functions of Legislature)

व्यवस्थापिका सरकार का सब से महत्त्वपूर्ण अंग है क्योंकि इसमें जनता के प्रतिनिधि बैठते हैं और कानून बनाते हैं। प्रजातन्त्र में तो व्यवस्थापिका लोगों की जान है। यही लोकमत का दर्पण है। यही अंग सबसे शक्तिशाली होता है। तानाशाही (dictatorship) में कार्यकारिणी का आवश्यकता से अधिक महत्त्व है। वहाँ पर कार्यकारिणी का व्यवस्थापिका पर काफी नियन्त्रण रहता है परन्तु प्रजातन्त्र में

व्यवस्थापिका कार्यकारिणी से अधिक शक्तिशाली रहती है। प्राचीन यूनान में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र (direct democracy) था। नागरिक एक स्थान पर इकट्ठे होकर कानून बनाते थे परन्तु आजकल यह सम्भव नहीं है क्योंकि बहुत बड़े-बड़े राज्यों का निर्माण हो गया है। अतः आजकल लोग अपने प्रतिनिधि भेजते हैं—

व्यवस्थापिका के निम्नलिखित कार्य हैं :—

(१) **कानून बनाना** (Lew-making)—व्यवस्थापिका का सब से पहला कार्य कानून बनाना है। पहले शासक की इच्छा ही कानून होती थी परन्तु आजकल समय बहुत बदल गया है। प्रजातन्त्र में लोगों के प्रतिनिधि ही कानून बनाते हैं। वे ही समाज की इच्छाओं को कार्य-रूप में लाते हैं। व्यवस्थापिका में कई बार सरकार बहुत अधिक सदस्य नामज़द कर देती है। यह प्रथा प्रजातन्त्र के सर्वथा प्रतिकूल है। व्यवस्थापिका में बोलने की पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि कोई किसी को गाली-गलौच दे। व्यवस्थापिका का यह भी कार्य है कि वह नये कानून बनाये और आवश्यकता पड़ने पर पुराने कानूनों को रद्द कर दे या उनमें संशोधन (amendment) करे। अंग्रेजी पार्लियामेंट के हाथ में राजसत्ता है, इसलिए वह साधारण तथा संवैधानिक (constitutional) कानून पास कर सकती है परन्तु भारतीय संसद् केवल साधारण कानून ही पास कर सकती है क्योंकि यह अप्रभु (non-sovereign) है और संवैधानिक कानून को पास करने के लिए एक खास तरीका है (Indian parliament is non-sovereign as there is a special procedure for the amendment of the constitution)।

(२) **बजट या आय-व्यय पर अधिकार** (Control of National Finances)—व्यवस्थापिका का सरकार के आय-व्यय पर भी पूरा नियन्त्रण रहता है। सरकार को अपने वार्षिक आय-व्यय का ब्योरा (particulars about annual income and expenditure) लोगों के सामने रखना पड़ता है जिसको आमतौर पर बजट कहा जाता है। वित्त मन्त्री (Finance Minister) पार्लियामेंट के सामने बजट पेश करता है और उसे हर एक माँग की संसद् से स्वीकृति लेनी पड़ती है। बिना संसद् की आज्ञा के सरकार देश पर न कोई टैक्स लगा सकती है और न कोई रुपया-पैसा खर्च कर सकती है।

(३) **कार्यकारिणी पर अधिकार** (Control of the Executive)—व्यवस्थापिका कार्यकारिणी पर अपना पूर्ण नियन्त्रण रखती है। हमारे देश में संसदीय शासन (parliamentary government) है, इसलिए मन्त्रिमण्डल लोकसभा (House of People) के प्रति उत्तरदायी (responsible) है अर्थात् लोकसभा मन्त्रिमण्डल को अविश्वास प्रस्ताव (no-confidence motion) द्वारा हटाने का अधिकार रखती है। संसद् के सदस्यों को मन्त्रियों से प्रश्न पूछने का भी अधिकार है। इसके अतिरिक्त और भी कई अन्य ढंग हैं जिनके द्वारा संसद् का कार्यकारिणी पर पूर्ण नियन्त्रण रहता है। उदाहरणार्थ, वह स्थगन-प्रस्ताव (adjournment motion) पास कर सकती है। संसद सरकार के किसी भी कार्य की जाँच-पड़ताल करने के लिए **जाँच कमीशन** नियत कर सकती है। अध्यक्षात्मक पद्धति (presidential type of

government) में कार्यकारिणी पर व्यवस्थापिका का पूर्ण नियन्त्रण नहीं होता, वहाँ पर कार्यकारिणी स्वतन्त्र होती है। केवल कुछ मामलों में कार्यकारिणी को व्यवस्थापिका से पूछना पड़ता है, जैसे अमरीका में सिनेट (Upper House of American Legislature) राष्ट्रपति द्वारा की हुई नियुक्तियों का अनुसमर्थन (confirmation) करती है। भारत में कार्यकारिणी को रुपये-पैसे खर्चने के लिए भी संसद् (parliament) की स्वीकृति लेनी पड़ती है। विदेश-नीति तथा किसी देश से किये हुए अहदनामे या सन्धियाँ (चाहे वे सैनिक और व्यापारिक हों अथवा राजनैतिक) संसद् के अधीन हैं। मन्त्रिमण्डल को इन मामलों में संसद् की स्वीकृति लेनी पड़ती है।

(४) **संविधान में संशोधन** (Amendment of the Constitution)—संविधान में संशोधन करना भी बहुत से देशों में पार्लियामेंट के हाथों में होता है। इंगलैंड में पार्लियामेंट संप्रभु (sovereign) है। इसलिए वहाँ की पार्लियामेंट को यह अधिकार है कि वह संवैधानिक तथा साधारण कानून दोनों बना सकती है, उनमें कोई तबदीली कर सकती है अथवा उनको आवश्यकता पड़ने पर रद्द भी कर सकती है। भारत और अमरीका जैसे संघात्मक (federal) देशों में व्यवस्थापिकाएँ संप्रभु नहीं हैं क्योंकि उनको साधारण कानून को बनाने, तबदील करने और खत्म करने का अधिकार होता है परन्तु संविधान (constitution) को संशोधन करने के लिए विशेष बहुमत (special majority) की आवश्यकता होती है और कई बार उप-राज्यों (units) के विधानमण्डलों (legislatures) द्वारा भी स्वीकृति लेनी पड़ती है। स्विट्ज़रलैंड में केन्द्रीय व्यवस्थापिका द्वारा जो संविधान में संशोधन किया जाता है उसे उप-राज्यों की व्यवस्थापिकाओं (legislatures of cantons) और मतदाताओं के बहुमत से पक्का कराना पड़ता है।

(५) **निर्वाचन सम्बन्धी** (To Elect the Executive or the Judges)—कई देशों में व्यवस्थापिकाओं को कार्यकारिणी और न्यायाधीशों के चुनने का अधिकार होता है। इसमें उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश सुप्रीम सोवियत (Supreme Soviet) द्वारा चुने जाते हैं। सुप्रीम सोवियत के द्वारा ही मन्त्रियों का चुनाव होता है। स्विट्ज़रलैंड में भी सर्वोच्च कार्यपालिका के सदस्यों की नियुक्ति व्यवस्थापिका सभा द्वारा ही होती है (Members of the Federal Council are elected by the two houses of the federal legislature at a joint sitting)। भारत में राष्ट्रपति के चुनाव में संसद् और विधान सभा के चुने हुए सदस्य भाग लेते हैं। फ्रांस में भी राष्ट्रपति केन्द्रीय व्यवस्थापिका द्वारा ही चुना जाता है।

(६) **न्यायिक** (Judicial)—कई देशों में व्यवस्थापिका न्याय-सम्बन्धी कार्य भी करती है। हाऊस ऑफ लार्ड्स इंगलैंड में अपील भी सुनता है। यह वहाँ पर अपील के लिए अन्तिम न्यायालय (final court of appeal) गिना जाता है। भारत और अमरीका में केन्द्रीय व्यवस्थापिका को राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग (impeachment) चलाने का भी अधिकार है।

व्यवस्थापिका की बनावट (Organization of Legislature)

संसार के तमाम सभ्य देशों में प्राय: व्यवस्थापिकाएँ हैं। प्रजातन्त्र में व्यवस्थापिका का महत्त्व और भी अधिक है। भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रयोग (experiments) हुए हैं। बहुत से देशों में एक सदन है और दूसरे देशों में दो सदन। पहले सदन को निम्न सदन (Lower House) और दूसरे को उपरि सदन (Upper House) भी कहते हैं। अब यह देखना है कि एक सदन होना चाहिए अथवा दो। इस विषय में राजनीतिज्ञों का एक मत नहीं है। कुछ एक सदन के पक्ष में और दूसरे दो सदन के पक्ष में हैं। सब से पहले हम दो सदन के पक्ष में तर्क करेंगे।

उपरि सदन या दूसरे सदन के पक्ष में तर्क (Arguments in Favour of Second Chamber)

(१) **स्वेच्छाचारिता को रोकता है** (Safeguards against despotism of one House)—दूसरा सदन (second chamber) पहले सदन की स्वेच्छाचारिता को रोकता है। यदि देश में एक ही सदन हो तो वह मनमानी करने की कोशिश करेगा। प्राय: ऐसा देखा गया है कि पहले सदन में जोशीले और क्रान्तिकारी लोग भरे रहते हैं। इसलिए यदि वे सरकारी पार्टी से सम्बन्धित हों, तो ऐसे कानून पास कराने की कोशिश करेंगे जो उनकी इच्छा की सन्तुष्टि करते हों चाहे वे अल्पमत को मान्य न हों। जिस पार्टी का बहुमत होता है वह बिना किसी रोक-टोक के कानून पास करवाती है और सब बातों में मनचाही करती है, इसलिए शासक दल (Govt. party) की एक प्रकार से तानाशाही (dictatorship) कायम हो जाती है। मिस्टर लेकी कहते हैं, 'सरकार के सारे रूपों में से जो कि मानव-जाति में सम्भव हो सकते हैं, कोई ऐसा नहीं है जो कि एक सर्वशक्ति-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक सदन से बुरा हो।'[1] यदि एक ही सदन हो तो वह गैर-जिम्मेवार हो जाता है। जब एक ही पार्टी के हाथ में पहले सदन में काफी बहुमत हो तो वह मदान्ध हो जाती है। इसलिए दूसरा सदन होना आवश्यक है ताकि यह पहले सदन की स्वेच्छाचारिता को रोक सके। मिस्टर जॉन स्टुअर्ट मिल भी अविभाजित सत्ता के दूषित प्रभाव को रोकने के लिए दूसरे सदन का समर्थक था।[2]

(२) **उतावलेपन को रोकता है और अशुद्धियों को दूर करता है** (It Prevents Hasty and Ill-considered Legislation)—दूसरे सदन का यह भी

---

1. Lecky says, "There is none which is likely to be worse than the Govt. of a single omnipotent democratic chamber ; it is at least as much susceptible (liable) as an individual despot to the temptations that grow out of the possession of uncontrolled power and it is likely to act with much less sense of risponsibility and much less real deliberation."

2. Mill said, "The same reason which induced the Romans to have two consuls makes it desirable that there should be two chambers, so that neither of them may be exposed to the corrupting influence of undivided power, even for the space of a single year."

लाभ है कि यह ऐसे कानूनों को जो शीघ्रता में बिना सोचे-विचारे एक सदन में पास हो जायें रोकता है। पहले सदन में अधिकतर लोग उग्र प्रवृत्ति के होते हैं और वे विधेयकों (bills) पर ठीक प्रकार से विचार नहीं करते। बहुत से प्रतिनिधि जनमत की लहरों में बह जाते हैं या कूटनीतिज्ञों (diplomats) के जोशीले भाषणों से प्रभावित हो जाते हैं और शीघ्रता से बिना सोचे-विचारे बिल पास कर देते हैं। इस तरह बने हुए कानून जन-कल्याण नहीं कर सकते। दूसरे सदन का यह विशेष लाभ है कि वह पूरी तरह हर एक समस्या पर विचार करता है क्योंकि इसमें अनुदार तथा अत्यन्त योग्य मनुष्य होते हैं और वे पहले सदन के सामने कई अच्छे सुझाव पेश करते हैं। इसके अतिरिक्त यदि किसी बिल की अशुद्धि की ओर पहले सदन का ध्यान न गया हो, तो वह दूसरे में ठीक हो जाती है। लैकी के शब्दों में "नियन्त्रण करने, संशोधन करने तथा रुकावट लगाने में जो काम द्वितीय सदन करता है उससे उसकी आवश्यकता स्वयंसिद्ध है।" इतना ही नहीं बल्कि आजकल पहले सदनों के पास कार्य-भार बहुत होता है और दूसरी सभाओं के पास कम, इसलिए दूसरी सभाएँ अपना फालतू समय कानून को ठीक तरह सोचने में लगाती हैं और पहले सदन के भार को हलका करती हैं।

(३) **विशेष हितों को प्रतिनिधित्व देता है** (For Representation of Interests and Minorities)—दूसरे सदन का यह दावा है कि इसमें विशेष हितों और अल्पमतों को प्रतिनिधित्व मिल जाता है। आजकल के युग में एक वर्ग दूसरे वर्ग के विरुद्ध है, अतः इसमें जमींदारों, पूंजीपतियों तथा अनुदार पुरुषों को अपना मत प्रकट करने के लिए एक सुन्दर स्थान प्राप्त हो जाता है, जैसे इंगलैंड में हाऊस ऑफ लार्ड्स में बहुत धनाढ्य पुरुष, अत्यन्त प्रसिद्ध सेनानायक और उच्च कोटि के राजनीतिज्ञों को सम्राट् प्रतिनिधित्व दे देता है (परन्तु प्रधान मन्त्री की सलाह से ही प्रायः ऐसा होता है)। इसके अतिरिक्त उपरि सदन (Upper House) में बहुत उच्च कोटि के विद्वानों, वैज्ञानिकों, साहित्याचार्यों तथा धर्माचार्यों को भी प्रतिनिधित्व दिया जा सकता है। भारत में भी राष्ट्रपति को ऐसे ही बारह पुरुषों को राज्य सभा (Council of States) में नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त है। देश ऐसे व्यक्तियों के अनुभव से लाभ उठा सकता है। इसके अतिरिक्त धनवान् क्रान्तिकारियों के हानिकारक कानूनों की बहुत आलोचना करते हैं। अतः दूसरे सदन के कारण एकदम क्रान्तिकारी कानून पास नहीं होने पाते बल्कि उनकी अच्छी तरह छानबीन होती है।

(४) **संघीय राज्यों में उप-राज्यों का प्रतिनिधित्व करता है** (Second Chamber gives Representation to Units in Federation)—दूसरे सदन में संघ के उप-राज्यों अथवा इकाइयों (units) को बराबरी का प्रतिनिधित्व दिया जाता है। पहला सदन (Lower House) आम तौर पर जनसंख्या के आधार पर चुना जाता है, अतः संघ (federation) में बड़े उप-राज्यों को अधिक प्रतिनिधित्व मिल जाता है। बड़े उप-राज्यों के दबाव से बचाने के लिए छोटे उप-राज्यों को दूसरे सदन में बराबरी का प्रतिनिधित्व दिया जाता है। उदाहरणस्वरूप अमरीका में ४८ उप-राज्य हैं परन्तु प्रत्येक उप-राज्य को सिनेट में दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है।

(५) **चिरस्थायी** (The Upper or 2nd Chamber is More Permanent than the Lower House)—दूसरा सदन पहले सदन की अपेक्षा अधिक चिरस्थायी होता है। अतः अनुभवी लोग वहाँ अधिक मिल सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में निम्न सदन अर्थात् हाऊस ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव (House of Representatives) दो वर्ष के लिए चुना जाता है और उच्च सदन अर्थात् सिनेट (senate) छः वर्षों के लिए। बहुत से देशों में निम्न सदन पाँच वर्षों के लिए चुना जाता है परन्तु राष्ट्रपति पाँच वर्ष से पूर्व भी (प्रधान मन्त्री के कहने पर) इसका विघटन (dissolution) कर सकता है। दोनों सदन मिलकर जनता की इच्छा के और भी अधिक ठीक दर्पण (mirror of public opinion) बन सकते हैं क्योंकि यह सम्भव हो सकता है कि पहला सदन या निम्न सदन (Lower House) जो कि पाँच वर्ष पूर्व चुना गया था लोकमत के साथ सही कदम न रख सके परन्तु उपरि सदन (Upper House) में सदा दो वर्ष के बाद सदस्य सेवा-निवृत्त (retire) हो जाते हैं और नये आते हैं। इसलिए जनता का नया दृष्टिकोण सदनों को पता चलता रहता है।

(६) **दो सभाएँ एक दूसरे पर नियन्त्रण रख कर कार्यकारिणी को अधिक स्वतन्त्रता प्रदान करती हैं** (The Two Houses Better Promote the Independence of the Executive)—गैटल का कहना है कि दो सदन एक दूसरे पर रुकावट का काम करके कार्यपालिका को अधिक स्वतन्त्रता देते हैं और अन्त में इससे दोनों विभागों के सर्वोत्कृष्ट हितों की बढ़ोतरी होती है। कई बार मन्त्रियों को ठीक नीति के लिए भी प्रथम सदन में काफी सहारा नहीं मिलता। यदि उनको अपनी नीति के लिए काफी समर्थन दूसरे सदन से मिल जाय तो उनके हाथ मजबूत हो जाते हैं और निम्न सदन भी उनकी कड़ी आलोचना नहीं करता।

(७) **ऐतिहासिक अनुभव** (Historical Experience)—अन्त में मिस्टर मैरियट लिखते हैं कि इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि विभिन्न राज्यों के अनुभव दूसरे सदन के हक में हैं। चाहे किसी देश में किसी प्रकार का शासन हो परन्तु वहाँ पर प्रायः दो सदन ही मिलते हैं। इंगलैंड, रूस, फ्रान्स, अमरीका, स्विट्ज़रलैंड, जापान, आस्ट्रेलिया और भारत में दो सदन हैं। लीकॉक के अनुसार इकहरी सभा के सिद्धान्त की परीक्षा हुई और वह त्रुटिपूर्ण निकली।

दूसरे सदन के विपक्ष में तर्क और एक सदन की प्रणाली का समर्थन (Arguments against Bi-cameralism or 2nd Chamber)

दूसरे सदन के विरुद्ध निम्नलिखित युक्तियाँ प्रायः दी जाती हैं—

(१) **अबेसियेस के मतानुसार लोकमत का प्रतिनिधित्व केवल पहला सदन ही कर सकता है** (If 2nd Chamber agrees with the 1st, it is superfluous, otherwise it is Mischievous)—प्रसिद्ध फ्रान्सीसी लेखक अबेसियेस ने लिखा है कि किसी भी विषय पर लोकमत (public opinion) एक ही हो सकता है दो नहीं, इसलिए जनता की इच्छा का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक ही सदन होना चाहिए, दूसरे सदन की कोई आवश्यकता नहीं। यदि दूसरा सदन पहले सदन

का विरोध करता है तो दुष्ट है और यदि सहमत हो जाता है तो व्यर्थ है।

(२) **दो सदनों में झगड़े पैदा होंगे। दूसरे सदन के कारण अपव्यय** (Deadlocks. 2nd Chambers also too much Expensive)—यदि दो सदन होंगे तो उनमें झगड़े पैदा होंगे और कानून के पास होने में देरी लगेगी। इसके अलावा दूसरे सदन के लिए रुपया भी बहुत खर्च करना पड़ता है, इसलिए एक सदन के होने से काफी बचत रहेगी।

(३) **दूसरे सदन के संगठन में कठिनता** (Difficulties in Organising a 2nd Chamber)—दूसरे सदन के निर्माण करने में बड़ी कठिनता का सामना करना पड़ता है। वंशानुक्रम के सिद्धान्त (hereditary basis) पर इंगलैंड में हाऊस ऑफ लार्ड्स का संगठन हुआ परन्तु आजकल यह सिद्धान्त जनता को मान्य नहीं है क्योंकि ऐसे आधार पर बनाया हुआ सदन अनुदार (conservatives) लोगों का गढ़ बन जाता है। अनुदार पुरुष प्रगतिशील कानून (progressive legislation) में अनेक प्रकार के रोड़े अटकाते हैं। इंगलैंड में हाऊस ऑफ लार्ड्स ने ऐसा ही किया, अतः उसकी शक्तियाँ सन् १९११ के अधिनियम (act) के अनुसार कम की गयीं। पुर्तगाल और आस्ट्रिया-हंगरी में जो परम्परागत (hereditary) उच्च सदन थे, वे अब खत्म हो चुके हैं। दूसरे सदन को संगठित करने के लिए यह आधार अप्रजातन्त्रीय (undemocratic) भी है। दूसरा सदन ऐसा होना चाहिए जो कि लोकमत का निरादर न करे और न ही निम्न सदन का मुकाबला करे बल्कि उसमें देश के योग्यतम आदमियों को प्रतिनिधित्व मिले ताकि पूँजीपति और अनुदार पुरुषों का यह गढ़ भी न बने। ऐसे सिद्धान्तों का सम्मिश्रण करना बहुत कठिन है। इसलिए इसके निर्माण करने के लिए सन्तोषजनक आधार नहीं मिलता।

(४) **संघीय राज्यों में भी द्वितीय सदन अनावश्यक क्योंकि राज्य पार्टी-पद्धति पर निर्भर** (2nd House not needed even for Federal States as Votes given not on state but party-lines)—बहुत से लोग कहते हैं कि संघीय राज्यों में भी द्वितीय सदन की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि दोनों सदनों में किसी बिल पर वोट पार्टी के आधार पर ही दिए जाते हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे सदन की शक्तियाँ प्रायः बहुत कम होती हैं। इसलिए सारी शक्ति निम्न सदन में होने के कारण दूसरे सदन में यदि छोटे और बड़े उप-राज्यों को समान प्रतिनिधित्व दे भी दिया जाए तो उससे कोई लाभ होने वाला नहीं। भारत में राज्य-सभा (Council of States) का आधार भी उपराज्यों की समता नहीं है।

(५) **कोई विधेयक उतावलेपन में पास नहीं होता क्योंकि इस पर कई बार विचार किया जाता है** (No Hasty and ill-considered Legislation even in one House)—लास्की कहता है कि दूसरा सदन व्यर्थ है क्योंकि प्रथम सदन में कई बार एक बिल पर विचार होता है। प्रत्येक बिल एक विशेष कमेटी के पास भी जाता है और फिर राष्ट्रपति को भी अभिषेध (veto) का अधिकार होता है (अर्थात् वह व्यवस्थापिका द्वारा पास किए हुए बिल पर दोबारा विचार करवा सकता है)। इसलिए यह कथन कि प्रथम सदन में बिल जल्दी में पास हो जाते हैं, ठीक नहीं।

(६) **द्वितीय सदन की शक्तियाँ निश्चित करना कठिन** (Difficulty in defining the Powers of 2nd Chamber)—यदि दो सदन हों तो उनकी शक्तियों को निश्चित करने में दिक्कत पड़ेगी। अमरीका में सिनेट की शक्तियाँ हाऊस ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव से बहुत बढ़ गई है, इसलिए वहाँ हाऊस ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव लोकमत का प्रतीक नहीं रहा है। अतः प्रथम सदन शक्तिशाली न हो तो उसमें उत्तरदायित्व, हीनता (lack of responsibility) की भावना उत्पन्न हो जाती है।

निष्कर्ष—यद्यपि एक सदन के पक्ष में युक्तियाँ काफी न्यायसंगत हैं तथापि दो सदन ही बड़े-बड़े राष्ट्रों के लिए अधिक उपयोगी हैं। संघात्मक देशों (federal countries) में तो दोनों सदनों की बहुत ही आवश्यकता है। इसलिए रूस जैसे समाजवादी देशों ने दो सदनों की पद्धति को ही अपनाया है। भारत, इंगलैण्ड तथा अमरीका (U.S.A.) में भी दो ही सदन हैं।

दो सभाओं का आपस में सम्बन्ध (Relation between two Houses)—पहले प्रायः सब देशों में दोनों सदनों की शक्तियाँ बराबर हुआ करती थीं। केवल आर्थिक मामलों में निचले सदन की शक्तियाँ अधिक होती थीं। फ्रान्स में पहले मन्त्रि-मण्डल दोनों सदनों के प्रति उत्तरदायी था परन्तु अब केवल निचले सदन के प्रति है। भारत में मन्त्रिमण्डल लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है परन्तु आर्थिक मामलों को छोड़ कर, लोकसभा तथा राज्य-सभा की शक्तियाँ बराबर हैं। इंगलैण्ड में आर्थिक मामलों में हाऊस आफ कामन्स के हाथ में ही सारी शक्तियाँ हैं और मन्त्रिमण्डल भी उसी के प्रति उत्तरदायी है। इंगलैण्ड में दूसरे मामलों में भी अब हाऊस ऑफ लार्ड्स की शक्तियाँ बहुत कम कर दी गई हैं। यदि कोई साधारण बिल हाऊस ऑफ कामन्स में पेश किया जाता है तो उसको पास करने में दूसरा सदन अधिक से अधिक एक वर्ष तक का विलम्ब कर सकता है। आजकल संसार के सारे देशों में दूसरे सदन (2nd chamber) की शक्तियों को कम किया जा रहा है और प्रथम सदन की शक्तियों को बढ़ाया जा रहा है। केवल अमरीका के सिनेट की शक्तियाँ नहीं घट रही हैं।

यदि दोनों सभाओं में झगड़ा पैदा हो जाए तो चार तरीकों से निपटाया जाता है—(१) झगड़े वाले विधेयक को समाप्त कर देना अर्थात् कानून न बनाना; (२) फ्रान्स और अमरीका में फैसले के लिए दोनों सभाओं के सदस्यों की छोटी-सी कमेटी बना देते हैं जिनका फैसला मानने को दोनों सभाएँ तैयार हों; (३) भारत और आस्ट्रेलिया में दोनों सदनों का सम्मिलित अधिवेशन बुलाकर बहुमत से निर्णय हो जाता है; और (४) इंगलैण्ड में हाऊस ऑफ कामन्स एक निश्चित अवधि के बाद बिल को दोबारा पास कर देता है और हाऊस ऑफ लार्ड्स कुछ नहीं कर सकता।

अवधि (Term of the Legislature)—यह न बहुत लम्बी होनी चाहिए और न बहुत छोटी। भारत में लोकसभा की अवधि पाँच और राज्य-सभा की छः वर्ष है। अमरीका में सिनेट की अवधि ६ वर्ष और हाऊस ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव की २ वर्ष है।

कार्यकारिणी अथवा कार्यपालिका (Executive)

कार्यकारिणी की परिभाषा—सरकार के उस अंग को कार्यकारिणी कहा जाता है जो कि व्यवस्थापिका के द्वारा बनाए हुए कानूनों को लोगों पर लागू करती है और देश में शासन चलाती है। सरकार के द्वारा ही राज्य की इच्छा कार्यान्वित की जाती है (बहुधा जनता कार्यकारिणी को ही सरकार कहती है)। सरकार के तीनों अंगों में से यह काफी महत्त्वपूर्ण है। कार्यकारिणी शब्द प्रायः दो अर्थों में प्रयुक्त होता है—एक व्यापक और दूसरा संकुचित। व्यापक अर्थ में कार्यकारिणी में राज्य के मुख्य पदाधिकारी तथा मन्त्रिमण्डल और सभी राज्य-कर्मचारी चाहे वे बड़े हों अथवा छोटे, जो शासन का कार्य करते हैं, सम्मिलित हैं। संकुचित अर्थ में कार्यकारिणी का तात्पर्य सर्वोच्च शासक (राजा या राष्ट्रपति) और उसके मन्त्रिमण्डल से है।

कार्यकारिणी के रूप (Types of the Executive)

निम्नलिखित कार्यकारिणी के रूप हैं :

(१) **यथार्थ तथा नाम-मात्र कार्यकारिणी** (Real and Nominal)—बहुत से देशों में राज्य के मुखिया के पास नाममात्र की शक्तियाँ होती हैं और वह केवल शोभा के लिए होता है। उदाहरणस्वरूप, इंगलैण्ड में सम्राट् तथा फ्रान्स में राष्ट्रपति (President) के पास कुछ शक्तियाँ नहीं हैं यद्यपि वहाँ पर देश का सारा काम उनके नाम पर चलाया जाता है। अतः इन देशों में सम्राट् अथवा अध्यक्ष को नाम मात्र की कार्यकारिणी कह सकते हैं। वहाँ पर वास्तविक शक्ति मन्त्रिमण्डल के पास होती है जिसको यथार्थ कार्यकारिणी समझा जाता है। अमरीका के राष्ट्रपति के पास भी बहुत शक्तियाँ हैं, अतः वह कार्यकारिणी की यथार्थ शक्ति समझा जाता है।

(२) **अकेली और बहुत व्यक्तियों वाली कार्यकारिणी** (Single and Plural Types of Executive)—अकेली कार्यकारिणी उसको कहते हैं जहाँ पर कार्यकारिणी की सारी शक्ति एक मुखिया के हाथों में होती है। अमेरिका में राष्ट्रपति के हाथों में कार्यकारिणी की अन्तिम शक्ति है अर्थात उसके हाथों में सारी शक्ति है और मन्त्रियों को उसकी आज्ञानुसार कार्य चलाना पड़ता है। इगलैण्ड में भी प्रधान मन्त्री के हाथों में सारी शक्ति होती है। यद्यपि एक मन्त्रिमण्डल उसकी सहायता के लिए होता है तथापि यदि वह चाहे तो मन्त्रिमण्डल की किसी बात को न मानने और किसी भी मन्त्री को त्याग-पत्र देने को कह सकता है। स्विटज़रलैंड में बहुत व्यक्तियों वाली कार्यकारिणी है अर्थात् वहाँ पर कार्यकारिणी की शक्ति एक सभापति (chairman) में न रहकर सब सदस्यों में बँटी हुई है। स्विटज़रलैण्ड में फैडरल कौंसिल के ७ सदस्य होते हैं और सब के हाथों में बराबर शक्ति रहती है।

(३) **संसदीय तथा अध्यक्षात्मक कार्यकारिणी** (Parliamentary and Presidential Types of Executive)—बहुत से देशों में संसदीय कार्यकारिणी है अर्थात् वहाँ पर मन्त्रिमण्डल निचले सदन या प्रथम सदन के प्रति उत्तरदायी (responsible to the lower house) होता है और मन्त्रिमण्डल के हाथ में वास्तविक शक्तियाँ होती हैं और राज्य के मुखिया के पास केवल नाम मात्र शक्ति रहती है। यह

भी बात याद रखनी चाहिए कि संसदीय शासन में कार्यकारिणी व्यवस्थापिका से स्वतन्त्र नहीं होती बल्कि नियन्त्रित रहती है। इस प्रकार का शासन भारत, इंगलैण्ड और फ्रान्स में है। संयुक्त राज्य अमेरिका में कार्यकारिणी व्यवस्थापिका से स्वतन्त्र है। व्यवस्थापिका को अविश्वास प्रस्ताव के द्वारा कार्यकारिणी को हटाने की शक्ति नहीं है। अमेरिका में अध्यक्षात्मक शासन (presidential type) प्रचलित है। वहाँ पर कार्यकारिणी की सारी शक्ति राष्ट्रपति के हाथों में रहती है और मन्त्रिमण्डल राष्ट्रपति के सामने अशक्त है। राष्ट्रपति व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी भी नहीं है।

(४) **पैतृक तथा निर्वाचित कार्यकारिणी** (Hereditary and Elected Executives)—पैतृक कार्यकारिणी उन्हीं देशों में सम्भव है जहाँ कि राजतन्त्र (monarchy) होता है। वहाँ पर राजा के मरने के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र गद्दी पर बैठता है। यदि राजा पुत्रहीन हो तो उसका कोई निकट सम्बन्धी गद्दी पर बैठता है। बहुत से देशों में औरतों को गद्दी पर बैठने का अधिकार नहीं है। इंगलैण्ड में राजा के मरने के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र गद्दी पर बैठता है। पीरू और चिली में जो कि दक्षिणी अमरीका के प्रसिद्ध देश हैं, राष्ट्रपति लोगों द्वारा चुना जाता है। भारत में राष्ट्रपति संसद् तथ विधान-सभाओं के चुने हुए सदस्यों द्वारा चुना जाता है।

(५) **तानाशाह**—कुछ देशों में बड़े-बड़े फौजी अफसर सेना की सहायता से क्रान्ति मचाते हैं और राजनैतिक शक्ति पर काबू पा लेते हैं। वे सेना की ही सहायता से शासन चलाते हैं। शक्ति प्राप्त करने का यह संवैधानिक (constitutional) ढंग नहीं है। तानाशाह के हाथों में सरकार की सारी शक्तियाँ केन्द्रित होती हैं।

कार्यकारिणी के कार्य (Functions of the Executive)

कार्यकारिणी के निम्नलिखित कृत्य हैं :

(१) **प्रशासकीय** (Administrative)—कार्यकारिणी का प्रथम कर्त्तव्य है कि वह व्यवस्थापिका द्वारा बनाए हुए कानूनों को देश में लागू करे और शासन चलाए। प्रत्येक मन्त्री के पास एक विभाग या कुछ विभाग होते हैं जिनका शासन चलाना उसकी जिम्मेवारी है। संसदीय शासनों (parliamentary govts.) में मन्त्रियों को अपने विभाग की कार्रवाइयों के लिए पार्लियामेन्ट में जवाब देना पड़ता है। अमरीका व भारत में राष्ट्रपति को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश (judges of the supreme court), फौज के सेनापति, राजदूत इत्यादि नियुक्त करने का भी अधिकार है। हमारा राष्ट्रपति देश की सेवा करने वालों को पारितोषिक अथवा पदक भी दे सकता है।

(२) **विधायी** (Legislative)—प्रत्येक देश में कार्यकारिणी कानून बनाने में कुछ न कुछ हाथ रखती है। कार्यकारिणी का किसी न किसी अंश में कानून पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। संसदीय शासनों में अधिकतर महत्त्वपूर्ण विधेयक (bills) मन्त्रियों द्वारा पेश किये जाते हैं और वे उन बिलों पर पार्लियामेंट में बहस करते हैं तथा उनके पक्ष में अनेक प्रकार की युक्तियाँ देते हैं। सब तरह से वे प्रयत्न करते हैं कि उनके द्वारा रखे हुए बिल अवश्य पास हो जायँ। उनके समर्थन के लिए वहाँ

उनकी पार्टी होती है। राष्ट्रपति को भारत में अध्यादेश (Ordinances) जारी करने का भी अधिकार है। इसके अतिरिक्त वह संसद् के सत्र (session) बुलाने, समाप्त करने और प्रथम सदन को विघटित करने का भी अधिकार रखता है (the president can summon and prorogue both the houses of parliament but he can dissolve only the Lower House *i.e.*, House of People)। अमरीका में भी राष्ट्रपति व्यवस्थापिका सभा को सन्देश भेज सकता है यद्यपि वहाँ उसे निम्न सदन (Lower House) को विघटित करने का अधिकार नहीं है। भारत और अमरीका में राष्ट्रपति को अभिषेध (veto) का भी अधिकार है।

(३) **सैनिक** (Military)—हमारे देश में राष्ट्रपति सेनाओं का सर्वोच्च (supreme) सेनापति है। यह सब कुछ संवैधानिक दृष्टि से ही है अर्थात् यह सब कुछ सैद्धान्तिक (theoretical) है। सेना का वास्तविक कार्य चलाने के लिए राष्ट्रपति जल, थल और नभ सेनाओं के कमाण्डर-इन-चीफ या प्रधान सेनापतियों की नियुक्ति करता है। कार्यपालिका के हाथों में ही फौज की कमान (command) रहती है और वह ही सारी सैनिक नीति निश्चित करती है। कार्यपालिका का कार्य देश में शान्ति और व्यवस्था रखना ही नहीं है बल्कि देश की बाहरी आक्रमणों से रक्षा करना भी है। इसी कारण से कार्यपालिका पुलिस और फौज रखती है।

(४) **विदेश सम्बन्धी** (Diplomatic)—कार्यपालिका विदेशों से भी हमारे सम्बन्ध स्थापित करती है। कार्यपालिका या कार्यकारिणी ही दूसरे देशों में राजदूत भेजती है और आवश्यकता के अनुसार सन्धि तथा युद्ध करती है।

(५) **न्यायिक** (Judicial)—कार्यपालिका को कई देशों में सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश नियुक्त करने का भी अधिकार है। भारत, इंगलैंड और संयुक्त राज्य अमरीका में ऐसा ही है। इसके अतिरिक्त हमारे राष्ट्रपति को घोर अपराधों से दण्डित व्यक्ति को क्षमा करने, अथवा दण्ड को कम या स्थगित करने का भी अधिकार है।

कार्यपालिका के आवश्यक गुण—कार्यपालिका के ऊपर देश की बड़ी भारी जिम्मेवारी है। देश में अच्छा शासन चलाने के लिए इसमें निम्नलिखित गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक है—

(१) किसी बात का फैसला करने में आवश्यकता से अधिक देरी न लगाना अर्थात् आपात (emergency) के समय शीघ्र फैसले करना।

(२) गुप्त रहस्यता (secrecy)।

(३) कार्य में ढीलापन न आने देना और शीघ्र निपटाना।

(४) कर्त्तव्य-परायणता।

कार्यपालिका के अध्यक्ष की नियुक्ति तथा अवधि (Appointment and Term of the Chief Executive)—बहुत से देशों में कार्यपालिका का अध्यक्ष वंशानुगत (hereditary) होता है। इंगलैंड, अफगानिस्तान, नेपाल तथा कुछ अन्य देशों में जहाँ राजतन्त्र कायम हैं, वहाँ सम्राट् वंशानुगत है अर्थात् बाप के मरने के बाद बेटा गद्दी पर बैठता है। दूसरे बहुत से देशों में अध्यक्ष नामज़द (nominated)

होता है, जैसे कैनेडा, दक्षिणी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया आदि अधिराज्यों (dominions) में ब्रिटिश सम्राट् गवर्नर-जनरल को नियुक्त करता है। तीसरे, बहुत से देशों में अध्यक्ष या तो सीधा नागरिकों द्वारा चुना जाता है या अप्रत्यक्ष रूप से किसी व्यवस्थापिका द्वारा। चिली में राष्ट्रपति नागरिकों द्वारा सीधे मतदान से चुना जाता है (the President in Chile is elected directly by a popular vote)। अमरीका में मतदाता एक निर्वाचकमण्डल (electoral college) चुनते हैं और यह निर्वाचकमण्डल राष्ट्रपति को चुनता है। फ्रांस में दोनों सभाएँ मिलकर राष्ट्रपति को चुनती हैं। भारत में राष्ट्रपति विधान-सभाओं और संसद् के चुने हुए सदस्यों द्वारा एकल संक्रमणीय मत (single transferable vote) और गुप्त मतदान (secret ballot) की पद्धति से चुना जाता है।

ससार के सभी देशों में अध्यक्ष की अवधि भिन्न-भिन्न है। वंशानुगत पद्धति में सम्राट् जीवन भर के लिए होता है। भारत में राष्ट्रपति पाँच वर्ष के लिए चुना जाता है। अमरीका में अध्यक्ष की अवधि केवल चार वर्ष है। स्विट्ज़रलैंड में अध्यक्ष फैडरल असेम्बली के द्वारा एक साल के लिए निर्वाचित होता है।

न्यायपालिका (Judiciary)

न्यायपालिका का महत्त्व (Importance of Judiciary)—सरकार का तीसरा महत्त्वपूर्ण अंग न्यायपालिका है। न्यायपालिका का विशेष महत्त्व है क्योंकि यह व्यवस्थापिका द्वारा बनाये हुए कानूनों के तोडने वालों को दण्ड देती है तथा यह संविधान की संरक्षक (guardian) है। किसी व्यक्ति के अधिकारों को जब कोई अन्य व्यक्ति, व्यवस्थापिका अथवा कार्यकारिणी पददलित करती है, तो यह उसके साथ न्याय करती है और उसके अधिकारों को पादाक्रान्त नहीं होने देती। राज्य में कोई गरीब हो अथवा अमीर, प्रत्येक के साथ न्याय होना चाहिए। ब्राइस ने कहा है कि किसी शासन की श्रेष्ठता जाँचने के लिए उसकी न्याय-व्यवस्था की निपुणता से बढ़कर और कोई अच्छी कसौटी नहीं है क्योंकि किसी और चीज से नागरिक की सुरक्षा और हितों पर इतना असर नहीं पड़ता जितना उसके इस ज्ञान से कि वह एक निश्चित, शीघ्र तथा अपक्षपाती न्याय-शासन पर निर्भर रह सकता है।[1] मैरियट लिखता है कि अगर न्याय करने में कोई त्रुटि हो या देर लगती हो तो व्यक्ति के जान-माल की रक्षा सम्भव नहीं है। इसी प्रकार मिस्टर गार्नर लिखता है कि एक सभ्य राज्य की न्याय-विभाग के बिना कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसलिए न्यायपालिका की भी बहुत आवश्यकता है। न्यायपालिका के द्वारा ही देश में न्याय कायम रह सकता है। न्यायपालिका के अभाव में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत सत्य सिद्ध हो जायेगी। इसी के कारण दुर्बलों की रक्षा होती है और चोर-डाकुओं को दण्ड मिलता है।

---

1. "There is no better test of the excellence of a Govt. than the efficiency of its Judicial System for nothing more nearly touches the welfare and security of the citizen, than his knowledge that he can rely on the certain, prompt and impartial administration of justice."—*Bryce.*

न्यायपालिका के कार्य (Functions of Judiciary)

न्यायपालिका के निम्नलिखित कार्य हैं—

(१) **निर्वचन** (Interpretation)—न्यायपालिका का सब से मुख्य कर्त्तव्य यह है कि जो भी मुकद्दमे इसके पास आएँ, उनका यह निष्पक्ष होकर फैसला करे। अतः प्रत्येक मुकद्दमे में न्यायाधीशों को कानून की व्याख्या करनी पड़ती है और उसके अनुसार हर एक मुकद्दमे को निपटाना पड़ता है।

(२) **कानूनों का निर्माण** (It also Creates Law)—यह कानून का स्पष्टीकरण भी करती है। न्यायाधीशों का काम कानून बनाना नहीं है, परन्तु कई बार उनके सामने ऐसे मुकद्दमे आ जाते हैं जिनमें कानून स्पष्ट नहीं होते। वहाँ पर प्रत्येक पार्टी के वकील एक अस्पष्ट कानून का मतलब अपने हक में निकालते हैं। उस समय न्यायाधीश अपने फैसले देते हैं, उनको नजीरें (precedents) कहते हैं। कानून का स्पष्टीकरण करते समय वे कानून का विस्तार करते हैं। कई बार न्यायाधीशों के सामने ऐसे मुकद्दमे आते हैं जिनमें कानून बिल्कुल मौन (silent) होता है, वहाँ पर न्यायाधीश नैतिक न्याय (equity) या शुद्ध अन्तःकरण के अनुसार मुकद्दमों का फैसला करते हैं। इस तरह वे नये कानूनों का निर्माण करते हैं।

(३) **यह मनुष्य के नागरिक अधिकारों और कानूनों की रक्षा करती है**—(It Protects Civil Rights and Law)—यह नागरिकों के अधिकारों और कानून की रक्षा करती है। यदि कोई नागरिक अथवा सरकार उनको पादाक्रान्त करना चाहे, तो यह उनका संरक्षण करती है; यह दीवानी और फौजदारी मुकद्दमों का भी फैसला करती है। अभियुक्तों के लिए दण्ड निश्चित करती है।

(४) **मूल अधिकारों तथा संविधान का संरक्षण** (It Safeguards the Constitution and Fundamental Rights)—संघात्मक राज्यों में सुप्रीम कोर्ट का विशेष महत्त्व रहता है क्योंकि यह संविधान की संरक्षक (guardian of the constitution) के रूप में काम करती है। यदि कुछ राज्यों में और केन्द्रीय सरकार में क्षेत्राधिकार (jurisdiction) के बारे में झगड़ा पैदा हो जाय और उस झगड़े में संविधान की व्याख्या की आवश्यकता पड़े तो उस समय सुप्रीम कोर्ट का फैसला आखिरी होता है (the judiciary also decides disputes over jurisdiction between the Federal Govt. and the Govts. of the Units)। सुप्रीम कोर्ट को यह भी शक्ति हासिल है कि सरकार या व्यवस्थापिका द्वारा संविधान के विरुद्ध बनाये हुए कानूनों को अवैध (illegal) घोषित कर दे।

(५) **अन्य कार्य**—इसके अतिरिक्त न्यायपालिका नाबालिगों की जायदाद के प्रबन्ध के लिए निक्षेपाधिकारी (trustee) नियुक्त करती है और स्त्रियों तथा उन्मत्त पुरुषों के संरक्षक नियत करती है। मृत पुरुषों की जायदाद का प्रबन्ध करती है। दिवालियों की सम्पत्ति के लिए रिसीवर (receiver) निश्चित करती है।

(६) यदि राष्ट्रपति किसी संवैधानिक मामले में परामर्श करे तो यह उसको उचित सलाह दे सकती है।

(७) न्यायालय को विशेष परिस्थितियों में या मामलों में निषेधादेश जारी करने का भी अधिकार है जिससे होने वाली हानि रुक जाती है।

न्यायपालिका की स्वतन्त्रता
(How the Judiciary can be made Independent)

न्यायपालिका की स्वतन्त्रता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि स्वतन्त्र न्यायालय ही देश में से अन्याय को समाप्त कर सकता है। इसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि न्यायाधीश बहुत चरित्रवान् होना चाहिए। उसे रिश्वत के नज़दीक भी नहीं जाना चाहिए। न्यायाधीशों को स्वतन्त्र, निष्पक्ष, ईमानदार तथा कानून से भली भाँति परिचित होना चाहिए, तभी वे पाशविक शक्ति के राज्य को समाप्त करके गरीबों, निर्बलों और पीड़ितों तक न्याय पहुँचा सकते हैं। इसके लिए पहले यह आवश्यक है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति किसी उत्तम ढंग से हो ताकि स्वतन्त्र, निष्पक्ष, ईमानदार और कानून के बड़े भारी पण्डित मिल सकें। दूसरे, उनको अच्छी तनख्वाहें मिलनी चाहिएँ ताकि वे रिश्वत के समीप भी न जाएँ। तीसरे, वे कार्यकारिणी के अधीन न हों। चौथे, उनकी नौकरी सुरक्षित रहनी चाहिए ताकि यदि वे सरकार के विरुद्ध कोई फैसला दे दें तो उनको नौकरी से हाथ न धोने पड़ें। पाँचवें, उनकी तनख्वाह, भत्ता (allowance), छुट्टी और पेन्शन इत्यादि भी सुरक्षित रहनी चाहिएँ। अब हम उन पर बारी-बारी से विचार करेंगे।

(१) **नियुक्ति** (Mode of Appointment of Judges)—न्यायाधीशों की नियुक्ति के तीन तरीके हैं—(क) व्यवस्थापिका के द्वारा निर्वाचन (election by legislature) (ख) जनता के द्वारा निर्वाचन (popular election), (ग) कार्यकारिणी के द्वारा नियुक्ति। व्यवस्थापिका के द्वारा निर्वाचन की पद्धति स्विटज़रलैंड और सोवियत संघ में प्रचलित है। स्विटज़रलैंड में व्यवस्थापिका के दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में संघीय न्यायालय (federal judiciary) के न्यायाधीशों का निर्वाचन होता है। रूस में सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश सुप्रीम सोवियत के द्वारा पाँच वर्ष के लिए चुने जाते हैं। कार्यकारिणी के भय और लोक-निर्वाचन (popular election) में अविश्वास होने के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ राज्यों में भी न्यायाधीशों का निर्वाचन व्यवस्थापिका द्वारा रखा गया। अमेरिका में इस पद्धति को अधिक सफलता नहीं मिली और अब यह केवल चार उप-राज्यों में बाकी है। इस प्रणाली में कई दोष हैं। पहला दोष तो यह है कि यह शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त (theory of separation of powers) के विरुद्ध है क्योंकि इसमें न्यायाधीश व्यवस्थापिका के अधीन हो जाते हैं। दूसरे, व्यवस्थापिका के द्वारा निर्वाचन एक पार्टी-निर्वाचन (party-election) बन जाता है जिसके कारण निष्पक्ष और स्वतन्त्र न्यायाधीश नहीं आने पाते। न्यायाधीशों को चुनने के लिए राजनैतिक आधार नहीं होना चाहिए बल्कि न्यायाधीश की योग्यता और निष्पक्षता ही आधार होना चाहिए। न्यायाधीशों को नियुक्त करने का दूसरा तरीका लोक-निर्वाचन की प्रथा संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ राज्यों और स्विटज़रलैंड की कुछ इकाइयों (Cantons) में प्रचलित

है। यह प्रथा भी बहुत दूषित प्रथा है क्योंकि जनता न तो न्यायाधीश के गुणों का अच्छी तरह से ध्यान रख सकती है और न योग्य आदमियों को चुन ही सकती है। लोक-निर्वाचन भी दलों के उम्मीदवारों का निर्वाचन बन जाता है। लोगों द्वारा दलबन्दी के आधार पर चुना हुआ व्यक्ति स्वतन्त्र और निष्पक्ष नहीं रह सकता। प्रसिद्ध लेखक गार्नर लिखता है कि इस प्रणाली से न्यायाधीशों का चरित्र गिर जाता है और वह न्यायाधीश की जगह राजनीतिज्ञ बन जाता है। न्यायपालिका शक्तिहीन हो जाती है और उसमें स्वतन्त्रता नहीं रहती। तीसरे, न्यायाधीशों को कार्यकारिणी द्वारा नियुक्त किया जाता है। इंगलैंड, फ्रांस, अमरीका, कैनेडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका और भारत में न्यायाधीशों की नियुक्ति इसी प्रकार से होती है। यह पद्धति आदर्श नहीं कही जा सकती परन्तु और सब से अच्छी है। बहुत सी आधुनिक सरकारें इस पद्धति की त्रुटियों को हटाने के लिए न्यायाधीशों की नियुक्तियाँ किसी परामर्शदात्री समिति (Advisory Council) या लोक-सेवा-आयोग (Public Service Commission) की सिफारिशों के अनुसार करती हैं। लोक-सेवा-आयोग द्वारा हमारे देश में प्रतियोगिता-परीक्षाएँ (competitive examinations) ली जाती हैं, और उनके आधार पर वे सरकार से सिफारिशें करते हैं, और सरकार उनका सिफारिशों के अनुसार अधीन न्यायालयों (subordinate courts) के न्यायाधीशों की नियुक्तियाँ करती है। उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय (high courts and supreme court) के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए राष्ट्रपति को अधिकार है परन्तु वह सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधिपति (Chief Justice) की नियुक्ति के लिए उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से परामर्श करता है और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त करने के लिए वह भारत के मुख्य न्यायाधिपति से सलाह लेता है। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए वह भारत के मुख्य न्यायाधीश तथा राज्यपाल (Governor) अथवा राज-प्रमुख से सलाह करता है।

(२) **अच्छी तनख्वाह** (Good Salary)—न्यायाधीश को अच्छी तनख्वाह (salary) मिलनी चाहिए। थोड़ा वेतन पाने वाले न्यायाधीश को रिश्वत का बड़ा भारी प्रलोभन होता है, इसलिए वह अपना सच्चरित्र कायम नहीं रख सकता। यदि हम न्यायाधीशों से यह आशा करें कि वे अपने कार्य को ठीक प्रकार से करें, तो उनको बहुत काफी तनख्वाह मिलनी चाहिए और वह बिल्कुल सुरक्षित रहनी चाहिए अर्थात् पार्लियामेंट और मन्त्रियों को शक्ति नहीं होनी चाहिए कि वे उस वेतन को कम या ज्यादा कर सकें। यदि कोई न्यायाधीश सरकार के विरुद्ध कोई फैसला दे और उसे यह डर हो कि कार्यकारिणी कहीं उसकी तनख्वाह न घटा दे तो वह निर्भीकतापूर्वक अपने कार्य को कैसे करेगा। भारत में हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों की तनख्वाहें संचित निधि या कनसोलीडेटिड फंड से वसूल की जाती हैं अर्थात् पार्लियामेंट और विधान-सभाओं को उन पर बहस करने का अधिकार है परन्तु कटौती करने का अधिकार नहीं। वे न्यायाधीशों की तनख्वाहों को घटा नहीं सकतीं।

(३) **न्यायालय और कार्यकारिणी का पृथक्करण** (Separation of Execu-

tive and Judiciary)—हमारे संविधान में लिखा है कि राज्य न्यायालय को कार्यकरिणी से अलग करने की कोशिश करेगा। आजकल बहुत से स्थानों में न्यायालय और कार्यकारिणी को अलग कर दिया गया है अर्थात् पहले डिप्टी कमिश्नर के पास कार्यकारिणी और न्याय-सम्बन्धी दोनों शक्तियाँ थीं परन्तु अब उससे न्याय-सम्बन्धी शक्तियाँ ले ली गयी हैं और वे ज्युडीशियल आफिसर या ए०डी०एम० को दे दी गयी हैं। ज्युडीशियल आफिसर हाई कोर्ट के अधीन कर दिया गया है और डिप्टी कमिश्नर के पास कार्यकारिणी सम्बन्धी शक्तियाँ तथा शान्ति और व्यवस्था कायम रखने के लिए अन्य आवश्यक शक्तियाँ छोड़ दी गई हैं।

(४) **न्यायाधीशों का हटाया जाना** (Removal of Judges)—न्यायालय को स्वतन्त्र बनाने के लिए यह भी आवश्यक है कि न्यायाधीशों की नौकरी सुरक्षित रहे अर्थात् न्यायाधीशों को हटाना अत्यन्त कठिन हो परन्तु असम्भव न हो। यदि एक न्यायाधीश को सरकार के विरुद्ध कोई फैसला दे देने पर नौकरी से हटा दिया जाय, तो अन्य न्यायाधीश निष्पक्ष फैसले कैसे देंगे, अतः यही ठीक है कि न्यायकर्त्ता की अवधि उसके श्रेष्ठ चरित्र पर निर्भर हो और जब तक उस पर कोई विशेष लाञ्छन न आ जाय तब तक उसे काम करने दिया जाय। चाहे न्यायाधीश सरकार के विरुद्ध भी कोई निष्पक्ष फैसला कर दें परन्तु उन्हें पदच्युत होने (dismissal), प्रलम्बित या मुअत्तल होने (suspend) और अवनत होने (demotion) का भय बिल्कुल नहीं होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब कि कार्यकारिणी के पास उन्हें हटाने की शक्ति न हो। हमारे देश में न्यायाधीशों को हटाने के लिए दोनों सदनों को उन पर सिद्ध कदाचार (proved misbehaviour) अथवा असमर्थता (incapacity) का आरोप लगा कर समस्त सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों में से कम से कम दो-तिहाई के बहुमत द्वारा प्रस्ताव पास करके आवेदन रूप में राष्ट्रपति के पास भेजना आवश्यक है।[1] सं० रा० अमरीका में न्यायाधीशों को काँग्रेस महाभियोग की कार्रवाई द्वारा हटा सकती है। ब्रिटेन में किसी न्यायाधीश को पार्लियामेंट के संयुक्त आवेदन पर जिसमें उसके ऊपर भ्रष्ट या अयोग्य होने अथवा नैतिक पतन का आरोप लगाया गया हो, राजा द्वारा हटाया जा सकता है।

(५) **अवधि** (Tenure)—जितना न्यायाधीश की नियुक्ति का तरीका महत्त्वपूर्ण है उतना ही उसकी अवधि आवश्यक है। यदि एक मनुष्य कुछ ही साल के लिए न्यायाधीश चुना जाय तो वह अधिक से अधिक पैसा बटोरने का कोशिश करता है। स्विटज़रलैंड, सोवियत संघ तथा संयुक्त राज्य अमरीका के उप-राज्यों

1. A Judge of the Supreme Court shall not be removed from his office except by an order of the President passed after an address by each House of Parliament supported by a majority of the total membership of that House and by a majority of not less than two-thirds of the members of that House present and voting has been presented to the President in the same session for such removal on the ground of proved misbehaviour or incapacity.

(*Article 124. clause 4*).

में न्यायाधीश व्यवस्थापिका या जनता द्वारा चुने जाते हैं अत उनकी अवधि कुछ वर्ष की ही होती है। यह थोड़ी अवधि की पद्धति दोषपूर्ण है। न्यायाधीश कुछ समय के पश्चात् ही अपने पुनर्निर्वाचन के बारे में सोचना शुरू कर देते हैं। इसलिए रिटायर होने तक श्रेष्ठ आचरण पद-अवधि (tenure during good behaviour) अच्छी मानी जाती है। भारत में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवा-निवृत्ति (retirement) ६५ वर्ष की आयु में होती है और उच्च-न्यायालयों (high courts) के न्यायाधीशों की ६० वर्ष में।

(६) इन बातों के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति के पश्चात् उनकी हानि के लिए पेन्शन, भत्ता और छुट्टियों के नियमों में कोई तबदीली न की जाय।

(७) **अर्हताएँ** (Qualifications of Judges)—न्यायाधीशों के लिए यह भी आवश्यक होना चाहिए कि उनको कानून का पूर्ण ज्ञान हो। इसके लिए उनको कुछ अनुभव होना चाहिए। भारत में उच्चतम न्यायाधीशों की नियुक्ति के समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाता है—(क) वह भारत का नागरिक होना चाहिए, (ख) वह पाँच वर्ष तक उच्च न्यायालय (high court) का न्यायाधीश (judge) रहा हो, (ग) किसी उच्च न्यायालय का, अथवा ऐसे दो या अधिक न्यायालयों का, लगातार कम से कम दस वर्ष तक अधिवक्ता (advocate) रहा हो, (घ) राष्ट्रपति की राय में पारंगत विधि-वेत्ता (distinguished jurist) हो।

न्याय-विभाग का संगठन—हमारे देश में माली, दीवानी और फौजदारी अदालतें हैं। गाँव में पंचायतें कायम हैं। तहसीलों, जिलों और राज्यों (states) में भी अदालतें हैं। तमाम भारत के लिए सुप्रीम कोर्ट है। फौजदारी अदालतों में ऑनरेरी बेंच, मैजिस्ट्रेट तृतीय श्रेणी, मैजिस्ट्रेट द्वितीय श्रेणी, मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, सेशन्स कोर्ट, हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट शामिल हैं। दीवानी अदालतों में खफीफा अदालत, मुन्सिफ की अदालत, सिविल जज की अदालत, डिस्ट्रिक्ट जज की अदालत, हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट शामिल हैं। माल की अदालतों में नायब तहसीलदार, तहसीलदार, डिप्टी कलेक्टर, कलेक्टर, कमिश्नर की अदालतें, बोर्ड ऑफ रेवेन्यू आदि शामिल हैं।

शक्तियों के पृथक्करण या विभाजन का सिद्धान्त
(Theory of Separation of Powers)

सरकार के तीन अंग हैं—व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी तथा न्यायपालिका। बहुत से देशों में कार्यकारिणी के अधीन व्यवस्थापिका होती है और कई देशों में व्यवस्थापिका को यह अधिकार होता है कि वह कार्यकारिणी को हटा सके। इसी प्रकार कई देशों में न्यायपालिका को व्यवस्थापिका द्वारा बनाये हुए कानूनों को अवैध (illegal) घोषित करने का अधिकार है। इस से पता चलता है कि सरकार के इन तीन अंगों में कुछ मेल-जोल अवश्य है परन्तु शक्ति के विभाजन-सिद्धान्त को मानने वालों का विचार है कि ये सारी शक्तियाँ एक ही अंग के पास केन्द्रित नहीं होनी

चाहिएँ वरना स्वतन्त्रता नष्ट हो जायेगी। उनके विचार में व्यवस्थापिका का काम कानून बनाना होना चाहिए, कार्यकारिणी उन कानूनों को देश में लागू करे और उनके अनुसार शासन चलाए तथा न्यायपालिका उन कानूनों के अनुसार फैसले करे। मॉण्टेस्क्यू ने इस बात पर विशेष जोर दिया कि सरकार के प्रत्येक अंग को अपने-अपने कार्य-क्षेत्र तक ही सीमित रहना चाहिए और एक अंग को दूसरे अंग पर किसी प्रकार का नियन्त्रण (control) नहीं रखना चाहिए। किसी अंग को दूसरे अंग में न कोई दखल देना चाहिए और न ही प्रभावित करना चाहिए। प्रत्येक विभाग अथवा अंग अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र होना चाहिए।

मॉण्टेस्क्यू से पहले भी राजनीति-विशारदों ने सरकार के तीन अंग माने हैं और उनके कार्य-क्षेत्र भी निर्धारित किये हैं। अरस्तू ने सरकार के विभागों का वर्गीकरण किया और उसने सरकार के तीन विभाग (अंग)—व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी और न्यायपालिका माने हैं (Aristotle classified the Deptts. of the Govt. as the Deliberative, Magisterial and Judicial)। रोमन लेखक सिसरो और पोलीबियस ने रोमन संविधान की बहुत स्तुति की है और इसकी सफलता का कारण सरकार के तीन अंगों में नियन्त्रण और सन्तुलन की व्यवस्था (System of Checks and Balances) मानी है। सोलहवीं शताब्दी में बोदां (Bodin) ने कहा कि न्याय-शक्ति राजा के हाथों में न रहकर स्वतन्त्र अधिकारियों के हाथों में रहनी चाहिए। इस सिद्धान्त का सब से अधिक सुन्दर वर्णन मॉण्टेस्क्यू ने अपनी पुस्तक 'Spirit of the Laws, 1758' में किया। ब्लैकस्टोन तथा अन्य लेखकों ने इसका समर्थन किया। मॉण्टेस्क्यू इंगलैंड में रहा और उसने वहाँ के संविधान को देखा। उसके विचार में इंगलैंड में लोगों को पूर्ण स्वतन्त्रता थी और इसका कारण सरकार के तीनों मुख्य विभागों में पृथकता (separation) थी। फ्रांस में उस समय कोई स्वतन्त्रता न थी, अतः वह शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त का अनुयायी बन गया।

मॉण्टेस्क्यू के विचार (Montesquieu's Theory)—माण्टेस्क्यू ने लिखा है कि यदि व्यवस्थापिका और कार्यपालिका की शक्तियाँ एक ही मनुष्य या मनुष्यों के समूह के हाथों में इकट्ठी हो जाएँ तो कोई स्वतन्त्रता नहीं रह सकती क्योंकि भय उत्पन्न हो जाता है कि कहीं वह राजा या सिनेट (व्यवस्थापिका) अत्याचारी कानून न बनाये और अत्याचारी ढंग से ही पालन न करवाये। यदि न्याय-शक्ति व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका से अलग न की गई, तो कोई स्वतन्त्रता नहीं रह सकती। अगर इसको व्यवस्थापिका के साथ मिला दिया गया, तो लोगों के जीवन और स्वतन्त्रता पर निरंकुश नियन्त्रण हो जायेगा क्योंकि न्यायाधीश कानून-निर्माता बन जायगा। यदि इसको (न्याय-शक्ति को) कार्यपालिका के साथ मिला दिया गया, तो यह सम्भव है कि न्यायाधीश हिंसात्मक और अत्याचारपूर्ण व्यवहार करे। यदि एक ही व्यक्ति, या समुदाय चाहे वह लोगों का हो, अथवा राजन्यों (nobles) का हो, तीनों काम करने लगे अर्थात् कानून बनाये, सार्वजनिक प्रस्तावों को लागू करे और मुकद्दमों का फैसला करने लगे, तो सब चीजों का अन्त हो जायेगा, अर्थात् स्वतन्त्रता बिल्कुल नष्ट

हो जायेगी और स्वेच्छाचारी (arbitrary) राज्य कायम होगा।[1]

मेडिसन तथा ब्लैकस्टोन के विचार— १७ वर्ष के पश्चात् ब्लैकस्टोन ने जो कि प्रसिद्ध अंग्रेजी विधिवेत्ता (jurist) हुआ है, अपने भावों में मॉण्टेस्क्यू के सिद्धान्तों का समर्थन किया। उन्होंने लिखा कि तमाम अत्याचारी शासनों में कानून बनाने और उसको लागू करने का काम एक ही व्यक्ति या समुदाय के हाथों में रहता है, और जब कभी भी ये दोनों शक्तियाँ एक ही हाथों में इकट्ठी हो जाती हैं तो कोई स्वतन्त्रता नहीं रह सकती। ब्लैकस्टोन और मॉण्टेस्क्यू के विचारों का अमेरिका के विधान-निर्माताओं पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। मेडिसन ने कहा कि व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी और न्यायपालिका सम्बन्धी सारी शक्तियों का एक ही हाथों में केन्द्रित होना, चाहे वह एक व्यक्ति हो, थोड़े हों अथवा ज्यादा, और स्वयं-नियुक्त हों, वंशानुगत अथवा चुने हुए हों, अत्याचार की परिभाषा है (The accumulation of all powers, legislative, executive and judicial, in the same hands, whether of one, a few or many, and whether hereditary, self-appointed or elective may justly be pronounced the very definition of tyranny.)।

अमरीकन स्टेट मैसाचूसेट्स के संविधान में यह घोषणा की गई कि "इस प्रजातन्त्र सरकार में व्यवस्थापिका कभी कार्यकारिणी और न्यायपालिका की शक्तियाँ अपने हाथ में नहीं लेगी। न ही न्यायपालिका व्यवस्थापिका और कार्यकारिणी की शक्तियाँ धारण करेगी ताकि यह (सरकार) कानूनों के अनुसार चले न कि मनुष्यों की स्वेच्छा (arbitrary will) से। कुछ समय पश्चात् इस सिद्धान्त की घोषणा करते हुए अमरीकन सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि अमरीकन संविधान की यह विशेषता है कि जो भी शक्तियाँ संघीय सरकार (Federal Govt. or Central Govt.) अथवा उपराज्यों की सरकारों (Govts. of the States in U. S. A.) को दी गई हैं, वे व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी और न्यायपालिका इन तीन मुख्य विभागों में बाँटी गयी हैं। अरजण्टाइना, ब्राज़ील, मैक्सीको और चिली इत्यादि देशों के संविधानों में भी इस सिद्धान्त को काफी हद तक अपनाया गया है। अमरीकन संविधान में भी इसको अपनाया गया है क्योंकि राष्ट्रपति व्यवस्थापिका (काँग्रेस) के अधीन नहीं है और काँग्रेस (central legislature) राष्ट्रपति के अधीन नहीं तथा सुप्रीम कोर्ट भी स्वतन्त्र है।

---

1. "When the legislative and executive powers are united in the same person or in the same body of magistrates, there can be no liberty because apprehensions may arise, lest the same, monarch or Senate should enact tyrannical laws to execute them in a tyrannical manner...Again there is no liberty; if the powers of judging be not sparated from the legislative and executive powers. Were it subject with the legislative, the life and liberty of the subject would be exposed to atbitrary control; for the judge would then be the legislator. Were it joined to the executive power, the judge might behave with violence and oppression. There would be an end of everything were the same man or same body, whether of the nobles or of the people, is to exercise those three powers of enacting laws, of executing public resolutions and of judging the crimes or differences of individuals."—*Montesquieu.*

फ्रान्स में १८८९ में जब क्रान्ति हुई तो उस समय मानव-अधिकारों की घोषणा (French Declaration of the Rights of Man) में लिखा गया कि प्रत्येक समाज जिसमें शक्तियों का पृथक्करण निश्चित नहीं है, कोई संविधान नहीं रखता।

आलोचना (Criticism of the Theory of Separation)

(१) सरकार शरीर की भाँति एक पूर्ण वस्तु है, अतः इसके अंगों को बिल्कुल अलग-अलग करना सर्वथा अनुचित है—अंगों में एक दूसरे पर निर्भरता अनिवार्य है (Govt. an organic whole, so no absolute separation possible)—इस सिद्धान्त की कड़ी आलोचना की गई है। कहा जाता है कि सरकार एक पूर्ण वस्तु है। उसके विभागों को एक दूसरे से बिल्कुल स्वतन्त्र करना उचित नहीं है। इंगलैण्ड के संविधान को मॉण्टेस्क्यू ने आदर्श माना परन्तु वहाँ पर भी पूर्ण रूप से पृथक्ता नहीं है क्योंकि मन्त्रिमण्डल पार्लियामेण्ट में से चुना जाता है और मन्त्रिमण्डल पार्लियामेण्ट के अधीन है। यद्यपि हाऊस ऑफ लार्ड्स व्यवस्थापिका का अंग है तथापि यह सर्वोच्च न्यायालय (Final Court of Appeal) के रूप में भी काम करता है। लार्ड चान्सलर यद्यपि हाऊस ऑफ लार्ड्स का प्रधान है, तथापि वह मन्त्रिमण्डल का सदस्य होता है और न्यायपालिका में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अमरीका में भी इस सिद्धान्त को काफी हद तक अपनाया गया है लेकिन पूर्ण रूप से नहीं अपनाया गया। अमरीका के प्रधान को बड़ी-बड़ी नियुक्तियाँ (appointments) करने का अधिकार है परन्तु उनको सिनेट से अनुमोदित (confirm) कराना पड़ता है और प्रधान को भी अभिषेध (veto) का अधिकार है (अर्थात् वह कानूनों पर पुनः विचार करा सकता है या कुछ खास हालतों में अस्वीकार कर सकता है)। युद्ध की घोषणा करने के लिए भी प्रधान को अमरीका में काँग्रेस (व्यवस्थापिका) की स्वीकृति लेनी पड़ती है। इसलिए गार्नर का कथन उचित ही प्रतीत होता है कि "बुद्धि तथा अनुभव दोनों यह दिखलाते हैं कि कोई भी सरकार तीनों विभागों—कार्यकारिणी, व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका—के पूर्ण पृथक्करण (complete separation) पर नहीं चल सकती। संसार में कभी भी ऐसा संविधान (constitution) नहीं रहा है और न इस समय है जिसमें इन तीनों विभागों में कुछ न कुछ सम्बन्ध न रहा हो।" सरकार एक संगठित शरीर की तरह है जिसके हिस्से अलग नहीं किए जा सकते। मिस्टर मिल का विचार था कि सरकार के तीनों विभागों में पूर्ण पृथक्ता से अयोग्यता उत्पन्न होगी।

(२) सारे अंग बराबर नहीं हैं बल्कि व्यवस्थापिका अधिक महत्त्वपूर्ण है (Legislature more powerful than other organs)—ब्लंशली का विचार था कि यह सिद्धान्त हमें गलत नतीजे पर ले जाता है क्योंकि यह बतलाता है कि सब अंग बराबर हैं और अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र हैं। उसके विचार के अनुसार व्यवस्थापिका बाकी दो अंगों से अधिक महत्त्वपूर्ण तथा शक्तिशाली है क्योंकि यह लोगों का प्रतिनिधित्व करती है।

(३) पृथक्करण के बिना भी स्वतन्त्रता की रक्षा सम्भव (Liberty possible without Separation of Powers)—आलोचकों का कहना है कि यह

आवश्यक नहीं कि पृथक्करण के अपनाने से ही स्वतन्त्रता की रक्षा हो सकती है। इंगलैण्ड में पृथक्करण का सिद्धान्त न होते हुए भी वहाँ अमरीका से कम स्वतन्त्रता नहीं है।

(४) **दलबन्दी के कारण पृथक्करण के सिद्धान्त का महत्त्व समाप्त** (Party-system negatives the theory of separation of powers)—आजकल के जमाने में पृथक्करण के सिद्धान्त का कोई मूल्य नहीं रहा है क्योंकि दलबन्दी (Party-system) की भावना ने मन्त्रिमण्डल और व्यवस्थापिका को जोड़ दिया है। अमरीका में भी ऐसा ही हुआ है। वहाँ जिस पार्टी का व्यवस्थापिका में बहुमत होता है, उसी पार्टी का उम्मीदवार प्रायः प्रधान के पद को प्राप्त करने में सफल हो जाता है।

(५) **विलोबी के मतानुसार सरकार के तीन की बजाए पाँच अंग** (Willoughby advocates five organs instead of three)—बहुत से लेखक सरकार के केवल तीन अंग मानने को तैयार नहीं हैं, जैसे अमरीकन विद्वान् विलोबी सरकार के पाँच अंग बतलाता है—निर्वाचक (electorate), शासन प्रबन्ध करने वाला (administrative), व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी और न्यायपालिका।

लास्की के मतानुसार इस सिद्धान्त में केवल यह सत्यता है कि स्वतन्त्रता वहीं रहती है जहाँ न्यायपालिका स्वाधीन हो। पूर्ण रूप से सरकार के अंगों को अलग नहीं किया जा सकता, केवल कुछ हद तक ही स्वतन्त्र किया जा सकता है। शायद यह ही मॉण्टेस्क्यू का अभिप्राय भी हो क्योंकि उसने अंग्रेजी संविधान को आदर्श माना है। भारत में भी उच्चतम न्यायालय को अपने कार्य-क्षेत्र में बहुत अधिक स्वतन्त्रता दी गई है।

सारांश

द्वितीय सदन के पक्ष और विपक्ष में तर्क—सरकार राज्य की एक एजेन्सी है जिसके द्वारा उसकी इच्छाओं को निर्मित, प्रदर्शित और लागू किया जाता है। (Govt. is the agency or machinery through which the will of the State is formulated, expressed and executed)। सरकार के तीन अंग हैं, व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी और न्यायपालिका। व्यवस्थापिका का कार्य कानून बनाना, बजट पास करना, कार्यकारिणी पर नियन्त्रण रखना, संविधान में संशोधन करना, कार्यकारिणी अथवा न्यायाधीशों को नियुक्त करना तथा कार्यकारिणी द्वारा की हुई नियुक्तियों का समर्थन करना है। बहुत से देशों में व्यवस्थापिका के दो सदन हैं और बहुत से देशों में एक। इस बारे में राजनीति के लेखकों में एक मत (unanimity of opinion) नहीं है। द्वितीय सदन के समर्थक ऐसा कहते हैं कि यह अत्यन्त लाभदायक है। उनके विचार में यह स्वेच्छाचारिता को रोकता है, किसी विधेयक (Bill) को शीघ्रता में पास नहीं होने देता, अशुद्धियों को दूर करता है, अल्पमतों और अन्य विशेष हितों को प्रतिनिधित्व देता है, संघीय राज्यों में उप-राज्यों का प्रतिनिधित्व करता है, पहले सदन पर नियन्त्रण रखकर कार्यकारिणी को अधिक स्वतन्त्रता प्रदान करता है और योग्य आदमियों के अनुभवों से देश को अधिक लाभ पहुँचाता है। दूसरे सदन के विरोधियों का विचार है कि यह (दूसरा सदन) अत्यन्त

हानिकारक है। उनके विचार में केवल पहला सदन ही लोकमत का प्रतिनिधित्व कर सकता है और दूसरे सदन के कारण व्यर्थ में झगड़े पैदा होते हैं। संघीय राज्यों में भी यह अनावश्यक है क्योंकि वोट पार्टी के आधार पर ही दिये जाते हैं। द्वितीय सदन की बनावट और शक्तियों के निर्धारण में भी काफी कठिनता पेश आयेगी। दोनों के पक्ष और विपक्ष में विचार करके हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि भविष्य द्वितीय सदन के साथ है।

न्यायपालिका की स्वतन्त्रता—कार्यकारिणी कई प्रकार की हो सकती है। कार्यकारिणी का यद्यपि मुख्य कार्य प्रशासन-सम्बन्धी है तथापि यह कुछ सैनिक, कानून और न्याय-सम्बन्धी कार्यों को भी करती है। सरकार का तीसरा महत्त्वपूर्ण अंग न्यायपालिका है। न्यायपालिका का मुख्य कार्य कानूनों की व्याख्या करना तथा संविधान और लोगों के मौलिक अधिकारों (fundamental rights) की रक्षा करना है। इस कार्य की पूर्ति के लिए न्यायपालिका को स्वतन्त्र बनाना अत्यन्त आवश्यक है। यह तभी हो सकता है जब कि न्यायाधीशों की नियुक्ति का अच्छा ढंग हो। न्यायाधीशों का निर्वाचन (election) चाहे व्यवस्थापिका द्वारा हो अथवा नागरिकों द्वारा, उचित नहीं है। उनकी नियुक्ति कार्यकारिणी द्वारा किसी निष्पक्ष परामर्श देने वाली कौन्सिल (Impartial Advisory Council) की सिफारिश के अनुसार ही होनी चाहिए ताकि चरित्रवान् व्यक्ति मिल सकें। इसके अतिरिक्त उनको अच्छा वेतन मिलना चाहिए ताकि रिश्वत लेने का प्रलोभन उन्हें न सतावे। न्यायाधीश कार्यकारिणी के अधीन भी नहीं होने चाहिएँ वरना स्वतन्त्रतापूर्वक वे अपने कार्यों का पालन नहीं कर सकते। न्यायाधीशों का हटाया जाना भी अत्यन्त कठिन होना चाहिए। न्यायाधीशों को हटाने की शक्ति कार्यकारिणी के हाथ में न होकर केवल व्यवस्थापिका के पास होनी चाहिए वरना न्यायाधीश नौकरी से बरखास्त होने के भय से कोई फैसला सरकार के विरुद्ध नहीं दे सकेंगे। उनकी नौकरी की अवधि भी ६५ वर्ष की आयु तक होनी चाहिए।

शक्तियों के पृथक्करण या विभाजन का सिद्धान्त—जैसा पहले बताया जा चुका है सरकार के तीन मुख्य अंग व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी तथा न्यायपालिका हैं। मॉण्टेस्क्यू का विचार था कि इन तीनों अंगों की शक्तियाँ एक ही हाथों में केन्द्रित नहीं होनी चाहिएँ वरना लोगों की स्वतन्त्रता नष्ट हो जायगी। मॉण्टेस्क्यू से पूर्व अरस्तू, सिसरो, पोलिबियस और बोदां ने भी इस सिद्धान्त का समर्थन किया था परन्तु मॉण्टेस्क्यू के ही विचार विशेष महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। उसका विचार था कि यदि व्यवस्थापिका और कार्यपालिका की शक्तियाँ एक ही मनुष्य या मनुष्यों के समूह के हाथों में इकट्ठी हो जाएँ तो कोई स्वतन्त्रता नहीं रह सकती क्योंकि भय उत्पन्न हो जाता है कि कहीं वह राजा या सीनेट (senate) अत्याचारी कानून न बनाये और अत्याचारी ढंग से ही पालन न करवाये। न्याय-शक्ति तथा व्यवस्थापिका का भी अलग-अलग होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि ये दोनों शक्तियाँ एक ही आदमी को सौंप दी जाएँ तो न्यायाधीश कानून-निर्माता बन जाएगा और लोगों के जीवन तथा स्वतन्त्रता पर निरंकुश नियन्त्रण हो जायगा। इसी प्रकार से यदि

कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्ति को इकट्ठा कर दिया जाय, तो यह सम्भव है कि न्यायाधीश हिंसात्मक और अत्याचारपूर्ण व्यवहार करे। कुछ समय पश्चात् ब्लैकस्टोन और मेडिसन ने भी ऐसे ही विचार प्रकट किये। इन विचारों का संयुक्त राज्य अमरीका तथा दक्षिणी अमरीका के बहुत से राज्यों पर गहरा प्रभाव पड़ा और उनके संविधानों में इस सिद्धान्त को काफी अपनाया गया।

इस सिद्धान्त में अनेक त्रुटियाँ हैं। यह सिद्धान्त सरकार के तीन अंगों को बिल्कुल अलग-अलग कर देता है परन्तु शरीर की तरह सरकार भी एक सावयव (organism) है। इसलिए सरकार के अंग अलग-अलग नहीं किये जा सकते। ब्लंशली के विचार में सारे अंग बराबर नहीं हैं बल्कि व्यवस्थापिका अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त पृथक्करण के बिना भी स्वतन्त्रता सम्भव है, जैसे इंगलैंड में है।

Important Questions

1. What are the chief organs of Government ? Describe their respective functions. (*P. U.* 1948, 1951, 1953; *U. P.* 1942; *C. U.* 1937)

2. What is meant by 'Separation of Powers' ? Why is an independent judiciary necessary in a civilised state ? (*P. U.* 1952)

3. Describe the functions of the judiciary in a democratic state. How should the judiciary be constituted ? What should be its powers ? (*P. U.* 1953)

4. The Judiciary is regarded as the guardian of the liberties of the citizens. Why ? How can the independence of the judiciary be ensured ? (*P. U.* 1954, *Raj.Uni.* 1955)

5. State and criticize the Theory of Separation of Powers. (*P. U.* 1954)

6. Discuss the reasons for the existence of a bi-cameral legislature. Give reasons for your preference.

7. What should be the essential qualities of a good executive ? Point out its functions. (*Raj. Uni.* 1949)

8. Describe the Theory of Separation of Powers. Do you hold that absolute separation is practicable, desirable and necessary to safeguard liberty ? (*Raj. Uni.* 1950)

प्रश्न

१. "एक ही व्यक्ति के हाथों में व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी और न्यायालय सम्बन्धी शक्तियों का एकीकरण निरंकुश शासन की पूरी-पूरी परिभाषा है।" क्या आप इस सम्मति से सहमत हैं ? (उ० प्र० १९५०)

२. राज्याधिकारों के विभाजन-सिद्धान्त पर विवाद कीजिए। क्या उसे भारत में लागू करना उचित होगा ? (सागर १९५०)

३. आधुनिक राज्य में न्याय-विभाग का महत्त्व समझाइये। न्यायाधीश के लिए आप किन-किन योग्यताओं की आवश्यकता समझते हैं ? (उ० प्र० १९५२)

४. राजनैतिक और स्थायी कार्यकारिणी का धारासभा से सम्बन्ध बतलाइये।

५. द्विसदनात्मक व्यवस्थापिकाओं के लाभ और हानि पर प्रकाश डालिये। (यू० पी० १९४१)

६. नागरिक स्वतन्त्रता के लिए न्याय-विभाग का कार्यकारिणी से स्वतन्त्र होना क्यों आवश्यक है ? (यू० पी० १९३९, १९४२)

पंद्रहवाँ अध्याय

सरकार तथा उसके विविध रूप (Forms of Govt.)

For forms of Govt.
Let fools contest;
Whatever is best
Administered is best.—*Pope.*

राज्यों का वर्गीकरण (Classification of States)

बहुत से लेखकों का विचार है कि राज्यों का वर्गीकरण नहीं हो सकता क्योंकि प्रत्येक राज्य, चाहे वह छोटा हो अथवा बड़ा, चार तत्त्वों से मिलकर बनता है। जनसंख्या, प्रदेश (territory), सरकार और राजसत्ता ये चारों तत्त्व हर एक राज्य में ही पाये जाते हैं। इसलिए अमेरिकन विद्वान् विलोबी का मत है कि राज्यों का वर्गीकरण नहीं हो सकता। केवल राज्यों का शासन के आधार पर ही वर्गीकरण किया जा सकता है। वास्तव में शासनों का वर्गीकरण ही एक प्रकार से राज्यों का वर्गीकरण है। राज्य अपनी इच्छा सरकार के द्वारा ही प्रकट कर सकता है। लीकॉक और गिलक्राइस्ट भी यही मानते हैं कि शासनों का वर्गीकरण होना चाहिए।

प्लेटो के मतानुसार सरकारों का वर्गीकरण (Classification of Govts. according to Plato)—प्लेटो के मतानुसार वर्गीकरण के दो आधार हैं—पहला तो यह है कि शासक-वर्ग पूर्ण ज्ञानी है अथवा नहीं। दूसरा आधार शासकों की संख्या है। पहले आधार के अनुसार तीन श्रेणियाँ हैं (१) पूर्ण राज्य, (२) अपूर्ण राज्य, तथा (३) अज्ञानमय राज्य। पूर्ण राज्य दार्शनिक राजाओं (Philosopher-King) द्वारा चलाये जाते हैं। इस शासन में कानूनों के लिए कोई स्थान नहीं है क्योंकि राजा सब विद्याओं में पारंगत होता है और वह राज्य का प्रत्येक कार्य अपनी बुद्धि और न्याय से चलाता है। प्लेटो का विचार था कि इस प्रकार का राजा पृथ्वी पर उपलब्ध नहीं, अतः यह केवल कल्पना है। दूसरे, अपूर्ण राज्य में लोगों का कानून के प्रति आदर होता है। तीसरे, अज्ञानियों या मूर्खों का राज्य होता है, उसमें कोई कानून और व्यवस्था नहीं होती।

दूसरा सिद्धान्त, जिसके अनुसार प्लेटो ने सरकारों का वर्गीकरण किया, शासकों की संख्या है। इस आधार के अनुसार तीन अच्छे रूप हैं—राजतन्त्र (Monarchy), कुलीनतन्त्र (Aristocracy) तथा प्रजातन्त्र (Moderate Democracy)। तीन विकृत रूप हैं—स्वेच्छाचारी राज्य (Tyranny), अल्प जनतन्त्र (Oligarchy) तथा समूह-राज्य (Extreme Democracy)।

अरस्तू का वर्गीकरण (Aristotle's Classification)

अरस्तू का सरकारों का वर्गीकरण दो सिद्धान्तों पर आश्रित है—(१) राज्य

में शासकों की संख्या क्या है, (२) इन शासकों का लक्ष्य क्या है, अपना हित या लोक-हित। अरस्तू का मत था कि जब शासकों का लक्ष्य जन-हित हो तो उसको प्राकृतिक या विशुद्ध रूप कहा जायगा। यदि शासकों का ध्येय केवल अपनी स्वार्थ-सिद्धि हो तो उसको विकृत रूप (perverted) कहा जायेगा। अरस्तू की शासन-पद्धति का निम्नलिखित वर्गीकरण है—

शासकों की संख्या	प्राकृतिक रूप (Normal forms in which the rulers seek common welfare)	विकृत रूप (Perverted form in which the rulers seek their own ends)
एक व्यक्ति (Rule of One)	राजतन्त्र (Monarchy)	अन्यायी शासन (Tyranny)
अल्प व्यक्ति (Rule of few)	कुलीनतन्त्र (Aristocracy)	अल्प जनतन्त्र (Oligarchy)
समस्त व्यक्ति (Rule of Many)	लोक-राज्य या बहुतन्त्र (Polity)	जनतन्त्र (Democracy)

अरस्तू के वर्गीकरण की आलोचना—गार्नर तथा दूसरे लेखकों ने अरस्तू की आलोचना करते हुए लिखा है कि यह वर्गीकरण संविधानों तथा शासनों का है, राज्यों का नहीं। इसको राज्यों का वर्गीकरण मानने का अर्थ यह होगा कि शासन और राज्य में कोई भेद नहीं। इसका कारण यह है कि यूनान में उस समय राज्य और सरकार में भेद नहीं माना जाता था। यह भेद बाद में प्रचलित हुआ। दूसरे, प्रोफेसर सीले के मतानुसार अरस्तू का वर्गीकरण आधुनिक राज्यों पर लागू नहीं हो सकता क्योंकि आजकल कुलीनतन्त्र, राजतन्त्र तथा बहुतन्त्र जैसा भेद नहीं पाया जाता। इंगलैंड में इन तीनों ही प्रकार के शासनों का सम्मिश्रण है। इसके अतिरिक्त अरस्तू के वर्गीकरण में सीमित राजतन्त्र (Limited Monarchy), अध्यक्षात्मक तथा संसदीय शासन (Presidential and Parliamentary Govts.) और एकात्मक (Unitary Form of Govt.) तथा संघात्मक (Federal Govt.) शासन आदि के लिए कोई जगह नहीं है। तीसरे, यह वर्गीकरण अधिकतर संख्या के आधार पर किया गया है। आजकल राजसत्ता एक या थोड़े पुरुषों में नहीं बल्कि जनता में रहती है। शासन के वर्गीकरण में आजकल संख्या विशेष महत्त्व नहीं रखती। इसके अतिरिक्त अरस्तू ने प्रजातन्त्र या जनतन्त्र शब्द का प्रयोग बुरे अर्थ में किया है, उस से उसका अभिप्राय भीड़तन्त्र (ochlocracy) था। आजकल जिस अर्थ में हम प्रजातन्त्र का प्रयोग करते हैं उसके लिए वह पॉलिटी (polity) शब्द का प्रयोग करता है।

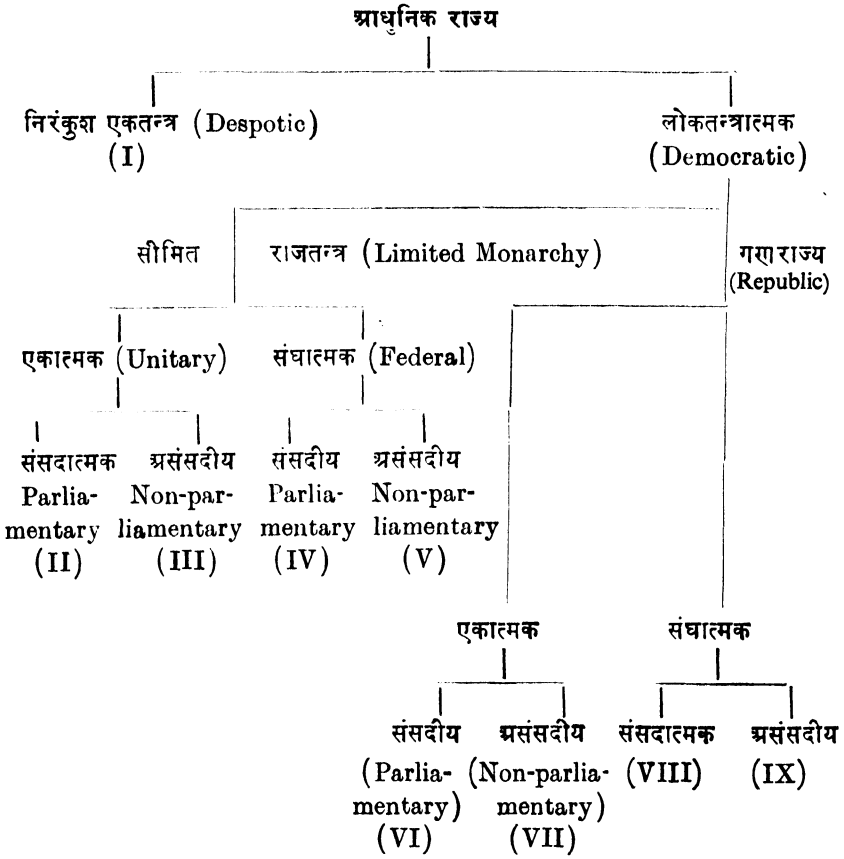
अन्य वर्गीकरण—अरस्तू के पश्चात् मैक्यावली, लॉक, बोदां (Bodin), रूसो मॉण्टेस्क्यू इत्यादि लेखकों ने भी अरस्तू से कुछ मिलता-जुलता वर्गीकरण किया। परन्तु ये राज्यों के वर्गीकरण आधुनिक राज्यों पर लागू नहीं किये जा सकते। मेरियट का वर्गीकरण बहुत उत्तम है। उसके मतानुसार निम्नलिखित वर्गीकरण है—

(i) एकात्मक (unitary) और संघात्मक (federal)

(ii) लचीला (flexible) और कठोर (rigid)

(iii) राजतन्त्रात्मक (monarchical), अध्यक्षात्मक (presidential form of govt.), संसदीय (parliamentary form of govt.)

लीकॉक का वर्गीकरण सर्वश्रेष्ठ है। वह आधुनिक राज्यों को दो भागों में बाँटता है—निरंकुश एकतन्त्र तथा लोकतन्त्र। लोकतन्त्र को वह दो भागों में बाँटता है —सीमित राजतन्त्र तथा गणराज्य। सीमित राजतन्त्र तथा गणराज्यों को वह दो भागों में बाँटता है—एकात्मक और संघात्मक। फिर एकात्मक सीमित राजतन्त्र और संघात्मक गणराज्य, एकात्मक गणराज्य तथा संघात्मक सीमित राजतन्त्र को वह संसदात्मक और असंसदीय में बाँट देता है। निम्नलिखित लीकॉक का वर्गीकरण है।



लीकॉक के मतानुसार प्रत्येक प्रकार के शासन आजकल विद्यमान हैं या पहले थे, जसे —

(१) निरंकुश एकतन्त्र में शासक स्वेच्छाचारी होता है और वह जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं होता अर्थात् वह अपनी मनमानी कर सकता है। इस प्रकार के शासन बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में रूस, टर्की, ईरान, अफगानिस्तान, ऐबेसीनिया और मोनेको इत्यादि देशों में थे।

(२) **सीमित राजतन्त्र, एकात्मक तथा संसदीय शासन** में राजा होता है परन्तु उसकी शक्तियाँ सीमित होती हैं। मन्त्रिमण्डल के हाथ में कार्यपालिका की सारी शक्ति रहती है और केन्द्र तथा प्रान्तों में शक्ति का विभाजन नहीं होता। केन्द्रीय सरकार (Central Govt.) पूर्ण शक्तिशाली होती है और प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार की एजेन्ट के रूप में कार्य करती हैं या तमाम देश एक इकाई समझा जाता है और शासन चलाने के लिए देश को कुछ विभागों में बाँट दिया जाता है। ऐसे सीमित राजतन्त्र, एकात्मक तथा संसदीय शासन इंगलैंड, डेन्मार्क, यूनान, जापान, नार्वे इत्यादि देशों में मिलते हैं।

(३) **सीमित राजतन्त्र, एकात्मक तथा असंसदीय शासन** लक्सम्बर्ग, प्रशा (Prussia) और दूसरे जर्मन राजतन्त्रों में १९१४ से पूर्व, और सर्बिया में भी १९१४ से पूर्व ही था।

(४) **सीमित राजतन्त्र, संघात्मक तथा संसदीय शासन** आस्ट्रेलिया और कैनेडा में है क्योंकि वे अंग्रेजी सम्राट के प्रति भक्ति की शपथ लेते हैं।

(५) **सीमित राजतन्त्र, संघात्मक और असंसदीय शासन** जर्मन, आस्ट्रिया और हंगरी के साम्राज्यों में १९१४ से पूर्व था।

(६) **गणराज्य, एकात्मक तथा संसदीय शासन** फ्रांस में है।

(७) **गणराज्य, एकात्मक तथा असंसदीय शासन** बोलेविया, चिली, क्यूबा, कोस्टा रीका, होन्डूरस, पानामा, हेटी में है।

(८) **गणराज्य, संघात्मक और संसदात्मक शासन** भारत में है।

(९) **गणतन्त्रात्मक, संघात्मक तथा असंसदीय** शासन अमरीका, ब्राजील, मैक्सीको में है।

राजतन्त्र (Monarchy)

राजतन्त्र में अन्तिम शक्ति एक आदमी के हाथ में रहती है। राजतन्त्र में पैतृक उत्तराधिकार होता है (Monarch is generally hereditary and has the last say in administration)—जहाँ पर राज्य की सर्वोच्च या परम शक्ति एक व्यक्ति के हाथों में रहती है, उस प्रणाली को राजतन्त्र कहते हैं। राजतन्त्र में अधिकार प्रायः वंशानुक्रम (hereditary) उत्तराधिकार (succession) में प्राप्त होते हैं अर्थात् अधिकार पैतृक होते हैं। मिस्टर गेटेल का विचार है कि "ऐसी सरकार जिसमें सर्वोपरि (supreme) तथा अन्तिम सत्ता (final power) एक ही व्यक्ति के हाथ में हो तो वह राजतन्त्र ही होगा चाहे उस पद की प्राप्ति अपहरण (usurpation), निर्वाचन या वंशानुक्रम उत्तराधिकार (hereditary succession) के द्वारा हुई हो।" जहाँ पर राजा नाममात्र (nominal) हो और सारी शक्तियों का वास्तविक प्रयोग कुछ अन्य व्यक्ति करते हों तो ऐसी सरकार को प्रजातन्त्र या कुलीनतन्त्र (परिस्थिति के अनुसार) कहेंगे। राजतन्त्र तो उस स्थान पर ही हो सकता है जहाँ पर राजा की सम्मति अत्यन्त प्रभावशाली रहती हो और सरकार की अन्तिम शक्ति उसी के पास हो। अरस्तू राजतन्त्र को सर्वश्रेष्ठ प्रणाली गिनता था। मिल का विचार था कि

असभ्य और अर्द्ध-सभ्य (half-civilised) मनुष्यों के लिए यह प्रणाली उचित ही है, केवल इसका ध्येय उनका हित होना चाहिए।

निर्वाचित और वंशानुगत राजतन्त्र (Elective and Hereditary Monarchy)—निर्वाचित राजतन्त्र में राजा लोगों द्वारा, सभा या मन्त्रि-परिषद् द्वारा चुना जाता है। यह प्रथा पोलैंड और रोम में प्रचलित थी। भारत में भी कहीं-कहीं पर अलग-अलग समयों में यह प्रचलित रहा है। महाराज हर्षवर्धन मन्त्रि-परिषद् द्वारा चुने गये। नवमी शताब्दी में बंगाल में गोपाल लोगों द्वारा राजा चुना गया। वंशानुगत या पैतृक राजतन्त्र इंगलैंड, अफगानिस्तान, नेपाल, फ़ारस और सऊदी अरब में है। निर्वाचित राजतन्त्र (elective monarchy) में यह गुण है कि राजा प्रजा के हितों के विरुद्ध काम करने की हिम्मत नहीं करता परन्तु दुर्गुण यह है कि वह लोगों के हाथों में कठपुतली बन जाता है। वंशानुगत राजतन्त्र में लाभ यह है कि राजा की मृत्यु के पश्चात् गद्दी के लिए झगड़ा पैदा नहीं होता परन्तु नुक्स यह है कि अच्छे राजा के कई बार अच्छे लड़के नहीं होते।

निरंकुश तथा वैधानिक एकतन्त्र (Absolute and Limited or Constitutional Monarchy)—बहुत से लोग राजतन्त्र को दो भागों में बाँटते हैं—निरंकुश तथा वैधानिक राजतन्त्र। निरंकुश राजतन्त्र में राजा के हाथ में सारी शक्तियाँ रहती हैं। रूस में १९१७ से पूर्व निरंकुश राजा था। इंगलैंड में भी ट्यूडर राजे काफी हद तक निरंकुश थे। टर्की, जर्मनी और आस्ट्रिया में भी उन्नीसवीं शताब्दी में निरंकुश राजे थे। इंगलैंड में वैधानिक राजतन्त्र है। सम्राट् को मन्त्रिमण्डल की इच्छानुसार ही काम करना पड़ता है। निरंकुश राजतन्त्र से लोगों की स्वतन्त्रता का अपहरण होता है।

राजतन्त्र से लाभ और हानियां (Advantages and Disadvantages of Absolute Monarchy)—सीमित राजतन्त्र वास्तव में प्रजातन्त्र की ही एक शक्ति है। निरंकुश राज्य में एक व्यक्ति के हाथों में अन्तिम शक्ति होती है। अरस्तू इसको सब से उत्तम सरकार का रूप गिनते थे। मिस्टर ह्यूम लिखते हैं कि अच्छे राजतन्त्र में सम्पत्ति सुरक्षित रहती है, उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन मिलता है, कला की उन्नति होती है और राजा प्रजा में इस तरह रहता है जैसे बाप अपने बच्चों में। यदि राजा अच्छा हो तो लोगों के लाभ के लिए बहुत कुछ कर सकता है।

लाभ (Advantages)

अन्तिम शक्ति एक मनुष्य में होने के कारण शक्तिशाली शासन रहता है—फैसले शीघ्र होते हैं—विभाजित मन्त्रणा नहीं होने पाती—एक अच्छा और अनुभवी राजा लोगों की बहुत सेवा कर सकता है और देश को ऊँचा ले जाता है—राजतन्त्र में फैसले शीघ्रता से लिये जा सकते हैं और उन पर मज़बूती से टिका जा सकता है। चूँकि अन्तिम शक्ति एक आदमी के हाथ में रहती है, इसलिए राजनीति में विभाजित मन्त्रणा (divided counsel) नहीं होती। इसके अतिरिक्त राजा एक जैसी नीति का काफी समय तक अनुसरण कर सकता है। राजा कई बार काफी समय तक तख्त

पर रहता है और उसको काफी अनुभव हो जाता है। इस से देश में मजबूत शासन रहता है। अशोक, अकबर और एलिजाबेथ के उदाहरण यह स्पष्ट करते हैं कि एक अच्छा निरंकुश राजा लोगों की आन्तरिक और बाहरी रक्षा कर सकता है अर्थात् वह लोगों में अन्दरूनी शान्ति रखता है और बाहरी आक्रमणों से रक्षा करता है। जब देश में किसी मजबूत राजा का राज्य हो, तो बाहरी देशों में भी इसका मान बढ़ जाता है। निरंकुश राजा ईमानदार मन्त्रियों और अफसरों को नियुक्त कर सकता है। वह शासन को बिना किसी रुकावट के चला सकता है क्योंकि उसे चुनाव की चिन्ता नहीं रहती।

हानियाँ (Disadvantages)

अयोग्य और निरंकुश राजा देश को अवनति के गढ़े में डाल देता है—लोक-स्वतन्त्रता प्रायः नष्ट हो जाती है। जनता का शासन में कम श्रेय (contribution) रहता है—निरंकुश राजतन्त्र से हानियाँ भी हैं। कई बार राजा अत्यन्त विद्वान् और राजनीति में निपुण नहीं होता, तो सारे देश को गिरावट की तरफ ले जा सकता है। उदाहरणार्थ, जर्मन-सम्राट् विलियम द्वितीय राजनीति में निपुण नहीं था और उसने बिस्मार्क जैसे उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ को प्रधान मन्त्री के पद से हटा दिया और आखिरकार ऐसे हालात पैदा कर लिये जिसके कारण उसको प्रथम महायुद्ध में शामिल होना पड़ा और हार खाकर देश से भागना पड़ा। यह जरूरी नहीं कि योग्य बाप के बहुत योग्य लड़का उत्पन्न हो बल्कि प्रायः ऐसा देखा जाता है कि योग्य बाप के अत्यन्त निकम्मा लड़का पैदा होता है जो अपने पद का दुरुपयोग करता है और देश पर तबाही लाता है। शक्ति हर एक को भ्रष्ट कर देती है। ऐसे राज्य में आदर्श नागरिकता उत्पन्न नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त यदि राजा का राज्य अच्छा भी हो तो भी वह स्व-शासन (Self-Govt.) का स्थान नहीं ले सकता। राजा के वंशानुगत होने की प्रथा न्यायसंगत नहीं है। ऐसे शासनों में व्यक्ति और समाचारपत्रों को पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं मिलती, संसद् (Parliament) भी शक्तिहीन रहती है और राजा हर एक मामले में अपनी मनमानी करता है।

कुलीनतन्त्र (Aristocracy)

कुलीनतन्त्र समाज में सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों का शासन है—इसका आधार धन, बुद्धि और जन्म या कुल हो सकता है (Aristocracy is the Govt. by the few best)—कुलीनतन्त्र ऐसे शासन को कहा जाता है जिसका संचालन थोड़े व्यक्तियों द्वारा होता है। ये समाज में श्रेष्ठ व्यक्ति होते हैं और ऊँचे सिद्धान्तों से प्रेरित होकर वे लोक-सेवा करते हैं। ग्रीक भाषा में 'एरिस्टोस' का मतलब है श्रेष्ठ और 'क्रेटोस' का अर्थ है शक्ति। अतः एरिस्टोक्रेसी ग्रीक दार्शनिकों के मतानुसार ऐसी सरकार को कहा जाता है जो कि सबसे अच्छी हो। अरस्तू ने कुलीनतन्त्र का अर्थ ऐसे शासन से लिया है जहाँ पर इसे समाज के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति चलाते हों। कुलीनतन्त्र में कई प्रकार के श्रेष्ठ व्यक्ति हो सकते हैं—सब से धनवान्, सब से कुलीन, सब से बुद्धिमान्, आचारवान् या शक्तिशाली (Aristocracy can be based on wealth,

intellect or birth)। प्लेटो से लेकर अब तक बहुत से लेखकों ने इसको आदर्श सरकार का रूप माना है परन्तु यह सरकार व्यवहार में बहुत कम सम्भव रही है। आम तौर पर थोड़े से बुद्धिमान पुरुषों का शासन समाज में नहीं रहता। कुछ धनी लोग सरकार की शक्ति को अपने पैसे के बल से काबू में कर लेते हैं। धनी पुरुषों का राज्य अच्छा नहीं होता क्योंकि वे चरित्र से बहुधा भ्रष्ट हो जाते हैं और अनेक प्रकार के छल-कपट से पैसा जमा करते हैं। इसलिए एरिस्टोक्रेसी एक विकृत रूप धारण कर लेती है जिसको हम अल्प-जनतन्त्र (Oligarchy) कहते हैं। आजकल इस प्रणाली को संसार से खत्म किया जा रहा है। कहीं-कहीं पर दूसरे सदन में धनी पुरुषों को कुछ प्रतिनिधित्व मिल जाता है, जैसे इंगलैंड में हाऊस आफ लार्ड्स। कुलीनतन्त्र में सब से बड़ी भारी दिक्कत यह है कि अच्छे आदमियों का चुनाव कैसे हो।

कुलीनतन्त्र के गुण

यह योग्य पुरुषों का शासन है। इसमें गुणों का विशेष महत्त्व और संख्या का कम होता है। यह भीड़तन्त्र नहीं बनने पाता (It is Govt. by few best. It lays emphasis on quality instead of quantity)—कुलीनतन्त्र में कई गुण हैं—(क) यह गुणों के महत्त्व पर अधिक ज़ोर देता है और संख्या पर कम। (२) इसमें योग्य आदमियों के हाथ में शासन होता है। (३) कुलीनतन्त्र में शासक रूढ़िवाद में बहुत विश्वास करते हैं। इससे क्रान्ति का कम भय रहता है। प्रजातन्त्र में सरकार के ऊपर लोगों का बहुत दबाव होता है परन्तु इसमें ऐसे भीड़तन्त्र (Mobocracy) की सम्भावना नहीं, अतः ऐसा शासन अधिक स्थायी होता है। सभ्यता और संस्कृति कायम रखने के लिए रूढ़िवाद कुछ हद तक आवश्यक भी है। (४) इस प्रकार के शासन में राजतन्त्र और प्रजातन्त्र दोनों के दोषों को दूर कर दिया जाता है। (५) यह शासन उन लोगों द्वारा चलाया जाता है जिनका समाज में धन, चरित्र या कुल अथवा सैनिक सेवा के कारण विशेष मान-सम्मान रहता है।

कुलीनतन्त्र के दोष

यह जनता का शासन न होकर वर्ग-विशेष का शासन है। यह बुद्धि का शासन न रहकर धनवानों का शासन बन जाता है। इसमें अधिकार पैतृक होते हैं (It degenerates into a Govt. by the few rich. It is also against democratic trend)—(१) इनमें सब से बड़ा दोष यह है कि जब कुछ लोगों के हाथ में शासन आ जाता है तो वे अपनी ही भलाई सोचते हैं और जनता का कुछ भी ध्यान नहीं करते। (२) कुलीनतन्त्र में बुद्धि का राज्य बहुत-थोड़ा रहता है और बहुत शीघ्र ही इसका विकृत रूप प्रकट हो जाता है अर्थात् धनवान् या जमींदार अपना राज्य अथवा सरकार पर कब्जा जमा लेते हैं। (३) कुछ समय के पश्चात् यह बुद्धि और ज्ञान का राज्य न रहकर एक पैतृक राज्य बन जाता है। (४) अन्त में हम कह सकते हैं कि इस प्रथा से अधिक तरक्की की आशा नहीं क्योंकि यह प्रगतिशील नहीं है और इसमें रूढ़िवाद का बहुत जोर है। (५) यह प्रणाली जनतन्त्र के विरुद्ध है।

लोकतन्त्र (Democracy)

लोकतन्त्र जनता का, जनता के लिए और जनता द्वारा शासन है (It is the Govt. of the people, for the people and by the people)—लोकतन्त्र को अंग्रेजी में डिमोक्रेसी कहते हैं। डिमोक्रेसी ग्रीक भाषा के दो शब्दों डैमोस और क्रेतिया (cratia) से मिलकर बना है। 'डैमोस' (demos) का अर्थ लोक है और 'क्रेतिया' का अर्थ है शक्ति या सत्ता। इसलिए डिमोक्रेसी का अर्थ है लोगों का शासन। मिस्टर अब्राहम लिंकन का विचार था कि लोकतन्त्र जनता का, जनता के लिए तथा जनता द्वारा शासन है (Govt. of the people, for the people and by the people)। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ ब्राइस का कथन है कि प्रजातन्त्र शासन का वह रूप है जिसमें राज्याधिकार किसी विशेष श्रेणी के लोगों को नहीं वरन् समूचे समाज के लोगों को प्रदान किये जाते हैं।[1] मिस्टर सीले के मतानुसार लोकतन्त्र उस शासन को कहते हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का भाग है।[2] मिस्टर गेटेल के मतानुसार "प्रजातन्त्र उस शासन-व्यवस्था को कहते हैं जिसमें सर्वोच्च सत्ता के प्रयोग में भाग लेने का अधिकार जनता को प्राप्त है।" प्लेटो और अरस्तू कहते थे कि प्रजातन्त्र राज्य के बहुसंख्यक वर्ग का शासन है। डायसी के मतानुसार प्रजातन्त्र उसे कहते हैं जहाँ शासक-वर्ग सारे राष्ट्र की जनता का एक बड़ा अंश हो अर्थात् यह ऐसी सरकार है जिसमें जनता के एक बड़े भाग के हाथ में शासनाधिकार रहता है। जॉन स्टुअर्ट मिल के मतानुसार लोकतन्त्र ऐसा शासन है जिसमें सम्पूर्ण राष्ट्र अथवा उसका कोई बहुसंख्यक अंश (majority) समय-समय पर अपने से निर्वाचित (elected) कार्य-कर्त्ताओं द्वारा शासन करते हैं।

प्रजातन्त्र शासन और स्वतन्त्रता एवं समानता का सिद्धान्त (Economic and Social Democracy)

प्रजातन्त्र एक शासन का ही रूप नहीं है बल्कि समाज में आर्थिक समानता और स्वतन्त्रता तथा सामाजिक बराबरी का भी द्योतक है। राजनैतिक क्षेत्र में यह लोगों को शासन चलाने में अधिक से अधिक अवसर प्रदान करता है। यही इसका व्यापक अर्थ है। एक अन्य लेखक के मतानुसार सच्चे प्रजातन्त्र का अर्थ इन तीन वस्तुओं से होता है—(१) विशेष सुविधाओं का उन्मूलन (Absence of any Privilege), (२) सब को समान अवसर (Equality of Opportunities), और (३) योग्यताओं का उपयोगीकरण (Using the Talents)। प्रजातन्त्र वास्तव में तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि आर्थिक समानता समाज में उत्पन्न न हो और लिंग (sex), जाति, धर्म, वंश तथा सम्पत्ति का भेद-भाव पूरे तौर पर नष्ट न हो जाय। समाज में समान अवसर तभी प्राप्त हो सकते हैं जब कि आर्थिक समानता

1. "That form of Govt. in which the ruling power of a state is legally vested, not in any particuler class or classes, but in the members of the community as a whole."—*Bryce*

2. "A Govt. in which everybody has a share."—*Seeley.*

Note—लोकतन्त्र को प्रजातन्त्र या जनतन्त्र भी कहते हैं।

और स्वतन्त्रता स्थापित हो जाय और ऊँच-नीच का कोई भेद-भाव न रहे। यह तभी हो सकता है जब कि पूंजीवाद (capitalism) का नाश हो तथा समाज के नियन्त्रण में उद्योग-धन्धे चलाए जायें। जर्मन दार्शनिक काण्ट इस विषय में लिखता है, "कोई भी व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति की सुख-सुविधा या कल्याण का साधन-मात्र न समझा जाकर स्वयं ही अपना साध्य माना जाय।[1] समाज का उत्पादन और वितरण पर पूरा काबू होना चाहिए। शिक्षा के भी समान अवसर प्राप्त होने चाहिएँ। प्रजातन्त्र में व्यक्ति को समाज के हित में ही अपना हित समझना चाहिए क्योंकि समाज और व्यक्ति के हितों में कोई विरोध नहीं है।

लोकतन्त्र के प्रकार (Kinds of Democracy)

लोकतन्त्र दो प्रकार का होता है, (१) प्रत्यक्ष (direct) और (२) अप्रत्यक्ष या परोक्ष (indirect)। प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र में नागरिक इकट्ठे हो जाते हैं और स्वयं अपने लिए कानून बनाते हैं तथा अफसर नियुक्त करते हैं। प्राचीन यूनान के नगर-राज्यों में ऐसा ही था। यह प्रणाली आजकल लुप्त-प्राय होती जा रही है क्योंकि आधुनिक युग में बहुत बड़े-बड़े राज्यों का निर्माण हो गया है। प्रत्यक्ष लोकतन्त्र भारत और स० रा० अमरीका जैसे देशों में सफल नहीं हो सकता। इन देशों का क्षेत्रफल लाखों वर्गमील है। अतः इन देशों में अप्रत्यक्ष या प्रतिनिध्यात्मक लोकतन्त्र (indirect or representative type of democracy) प्रचलित है। जनता चार या पाँच वर्ष के पश्चात् जिस समय चुनाव (निर्वाचन) होता है, अपनी राय दे देती है। जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि लोकमत के अनुसार कानून बनाते हैं तथा देश का शासन चलाते हैं। आज भी स्विटज़रलैण्ड के कुछ कैन्टनों (Cantons) या उपराज्यों में प्रत्यक्ष लोकतन्त्र की प्रथा प्रचलित है। स्विटज़रलैण्ड के उन उपराज्यों में सारी वयस्क जनता (औरतों को छोड़कर) किसी स्थान पर इकट्ठी होती है और बजट पास करती है तथा अनेक अधिकारियों की नियुक्ति करती है। स्विटज़रलैण्ड में अभी औरतों को वोट देने का अधिकार नहीं है। भारत में पंचायतों की प्रथा है। प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के कुछ आधुनिक रूप संसार के उन्नतिशील देशों में देखने को मिलते हैं, जैसे प्रस्वाधिकार (initiative), जनमत-संग्रह (referendum), प्रत्यावर्तन (recall) तथा लोकमत-संग्रह (plebiscite) इत्यादि।

(१) **प्रस्वाधिकार** (Initiative)—स्विटज़रलैण्ड में ५०,००० नागरिक (मतदाता) हस्ताक्षर करके एक आवेदन-पत्र संविधान में तब्दीली के लिए केन्द्रीय व्यवस्थापिका (Federal Assembly) के पास भेजते हैं। यदि फैडरल असेम्बली उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है तो वह उसको बिल की शक्ल में एकदम तब्दील करना शुरू कर देती है। यदि फैडरल असेम्बली उसको पसन्द न करे और अस्वीकार कर दे तो इस पर जनमत-संग्रह (referendum) होता है अर्थात् नागरिकों की वोटें ली जाती हैं और यदि नागरिक उसको स्वीकार कर लें तो फ़ैडरल असेम्बली का यह कर्त्तव्य है कि उसको बिल की शक्ल में तब्दील करे और फिर दोबारा उस पर लोगों

1. "Everyman is an end in himself."—*Kant*.

और उप-राज्यों (Cantons) की स्वीकृति ले । यदि वोटरों और उप-राज्यों का बहुमत उसे स्वीकार कर ले तो वह संविधान का संशोधन समझा जाएगा ।

(२) **जनमत-संग्रह** (Referendum)—स्विटज़रलैण्ड में दो प्रकार का जनमत-संग्रह है—एक ऐच्छिक या वैकल्पिक (optional or facultative) और दूसरा अनिवार्य (obligatory) । यदि वहाँ संविधान में फैडरल असेम्बली तब्दीली या संशोधन (amendment) करना चाहे तो उसके लिए अनिवार्य रूप से (compulsorily) जनमत-संग्रह करना पड़ेगा । यदि नागरिकों और राज्यों का बहुमत उसे पास कर दे तो वह संविधान में संशोधन समझा जाएगा । इसके अतिरिक्त ऐसे कानूनों पर जिनको फैडरल असेम्बली बहुत आवश्यक घोषित नहीं कर देती है, ३०,००० नागरिकों या आठ राज्यों (Cantons) द्वारा जनमत-संग्रह की माँग की जा सकती है । पन्द्रह वर्ष या अनिश्चित अवधि के लिए की गई सन्धियों पर भी इसी प्रकार जनमत-संग्रह की माँग की जा सकती है । यदि उपराज्यों और नागरिकों का बहुमत उसे स्वीकार कर ले, तो यह देश पर लागू होगा वरना नहीं ।

(३) **प्रत्यावर्तन** (Recall)—इस अधिकार का भी यही अर्थ है कि जनता को अपने द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों को अवधि के समाप्त होने से पहले ही बुलाने का अधिकार है । यदि जनता को उन पर विश्वास न हो तो मतदाताओं की एक निश्चित संख्या को आवेदन-पत्र देना पड़ता है, और या तो वह प्रतिनिधि (चाहे वह अफसर हो, न्यायाधीश अथवा कानून-निर्माता) तुरन्त अपना त्याग-पत्र दे देता है, वरना उस पर जनमत लिया जाता है और जनमत में निश्चित बहुमत उसके विरुद्ध होने पर उसको उस पद से हटा दिया जाता है । इस प्रकार का रिवाज अमरीका के कई उपराज्यों विशेषतया ओरीगोन में है । पहले जर्मनी और लटविया में इस प्रकार की पद्धति थी । स्विटज़रलैण्ड के आठ राज्यों (Cantons) में लोग एक निश्चित बहुमत से वहाँ की व्यवस्थापिका (Cantonal Legislature) के विघटन (dissolution) की माँग कर सकते हैं । इस पद्धति में बहुत सी बुराइयाँ हैं ।

(४) **लोकमत-संग्रह** (Plebiscite)—जनमत-संग्रह (referendum) और लोकमत-संग्रह में यह भेद है कि जनमत-संग्रह तो कानूनों पर लिया जाता है और लोकमत-संग्रह किसी राजनैतिक प्रश्न पर होता है । काश्मीर का भविष्य लोकमत संग्रह द्वारा तय किया जाएगा । १९३५ में सॉर (Saar) में लोकमत-संग्रह इस बात पर किया गया कि यह भाग जर्मनी में मिलना चाहिए या नहीं । लोगों ने जर्मनी के पक्ष में निर्णय किया, इसलिए सॉर को जर्मनी में मिला दिया गया ।

लोकतन्त्र के गुण (Merits of Democracy)

कोई सरकार की पद्धति पूर्ण नहीं है परन्तु लोकतन्त्र में गुण अधिक हैं और दोष थोड़े । जार्ज बानक्राफ्ट के समान कुछ प्रजातन्त्रवादी तो इसको आदर्श तथा दैवी सिद्धान्त मानते हैं । इसी प्रकार जॉन स्टुअर्ट मिल ने लोकतन्त्र का बहुत जोरदार शब्दों में समर्थन किया है । उसके अनुसार लोकतन्त्र का बहुत बड़ा गुण यह है कि राष्ट्रीय चरित्र का विकास अन्य प्रत्येक प्रकार के शासन की अपेक्षा बहुत ऊँचे और

अच्छे ढंग से करता है। इसके अन्य गुण नीचे लिखे जाते हैं—

(१) **यह समानता के सिद्धान्त पर स्थित है** (It is Based on Equality)—लोकतन्त्र का आधार राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक समानता है। अन्य बहुत से व्यक्ति जैसे फ़ासिज़्म और कुलीनतन्त्र के समर्थक इस सिद्धान्त को नहीं मानते (फ़ासिज़्म इटली में दूसरे महायुद्ध १९३९-१९४५ से पूर्व प्रचलित था और इसका सबसे बड़ा समर्थक मुसोलिनी था)। लोकतन्त्र का लक्ष्य अमीर-गरीब, काले-गोरे, ऊँच-नीच, शिक्षित-अशिक्षित तथा मर्द-औरत के भेद-भाव को प्रत्येक क्षेत्र में से समाप्त करना है। हमारे देश में सब धर्मों को समानता दी गई है और छुआछूत खत्म कर दी गई है। यह इस सिद्धान्त को नहीं मानता कि कुछ मनुष्य जन्म से ही शासक और दूसरे शासित उत्पन्न हुए हैं। अतः यह जन्म (या कुल) और धन पर पनपने वाले कुलीनतन्त्र का खण्डन करता है। यह फैसिज़्म के सिद्धान्त का भी घोर विरोध करता है। अतः इसमें कुलीनतन्त्र और निरंकुशता का भय नहीं रहता।

(२) **यह स्वतन्त्रता और बन्धुता का समर्थक है** (It Upholds Liberty and Fraternity)—लोकतन्त्र का दूसरा आधार स्वतन्त्रता और बन्धुता है। लोकतन्त्र में लोगों को सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक विचार प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है।

लोकतन्त्र मनुष्यों में सब भेद-भाव खत्म करके उनमें प्रेम उत्पन्न कराना चाहता है। लोकतन्त्र में लोगों को समुदाय बनाने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। समाचार-पत्रों को भी बहुत स्वतन्त्रता होती है। भारत, अमरीका और इंगलैंड जैसे प्रजातन्त्रात्मक देशों में जितनी स्वतन्त्रता लोगों और समाचार पत्रों को अपने विचार प्रकट करने के लिए है, उतनी भला रूस, चीन तथा अन्य साम्यवादी देशों में कहाँ ? हिटलर के समय जर्मनी और मुसोलिनी के समय इटली में भी बहुत ही कम स्वतन्त्रता थी। आज भी रूस में केवल एक ही राजनैतिक दल है। भारत जैसे देश में किसी को अपने राजनैतिक विचारों के प्रचार के लिए पार्टी बनाने की मनाही नहीं है।

(३) **यह जनमत पर अवलम्बित है** (It is Based on Public Opinion)—लोकतन्त्र जनमत पर अवलम्बित होता है। यह लोगों को स्वशासन (self-government) के अधिक से अधिक अवसर प्रदान करता है। इसमें लोगों के प्रतिनिधि स्वयं शासन चलाते हैं। लोकतन्त्रात्मक व्यवस्थापिका लोकमत का दर्पण होती है। व्यवस्थापिका प्रायः लोकेच्छा (public wishes) के अनुसार कानून बनाती है। मन्त्रिमण्डल भी लोगों के प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी होता है। लोकतन्त्रात्मक सरकार लोगों के हितों की ओर विशेष ध्यान देती है। लॉवेल के मतानुसार पूर्ण-प्रजातन्त्र में किसी को भी यह शिकायत नहीं हो सकती कि उसकी सुनी नहीं गई।

(४) **यह सब वर्गों की उन्नति करना है** (It Promotes the Interests of All Classes)—प्रजातन्त्र सब लोगों की उन्नति की ओर ध्यान देता है क्योंकि यह किसी वर्ग का शासन न होकर जनता का ही शासन है। यह प्रत्येक नागरिक को समान अवसर देता है। कुलीनतन्त्र केवल थोड़े से आदमियों का शासन है, अतः उसमें जनता की सर्वांगीण उन्नति की तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। प्रजातन्त्र में

लिंग, जाति, धर्म आदि का भेद-भाव नष्ट करके सब को समान राजनैतिक अधिकार दिये जाते हैं और किसी को बड़े से बड़ा पद प्राप्त करने की कोई रुकावट नहीं होती। हमारे देश में प्रत्येक २१ वर्ष के मर्द और औरत को वोट देने का अधिकार है, अस्पृश्यता का नाश कर दिया गया है और हरिजनों तथा आदिवासियों की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। लोकतन्त्र में लोगों में राजनैतिक चेतना उत्पन्न होती है और वे देश-भक्त बन जाते हैं। देश पर जब आपत्ति आती है तो वे उदासीन न रहकर अपना सर्वस्व मातृ-भूमि के चरणों में बलिदान कर देते हैं। इसके अलावा अल्प-संख्यक जातियों को अपना मत प्रकट करने तथा अपने-अपने अधिकारों की रक्षा के लिए पूर्ण अवसर प्राप्त होते हैं।

(५) **लोकतन्त्र में क्रान्ति का भय अधिक नहीं रहता** (It is Stable as it is Less Subject to Revolutions)—लोकतन्त्रात्मक सरकार अधिक चिरस्थायी रहती है क्योंकि इसको बदलने का केवल एक मार्ग क्रान्ति न हो कर अन्य शान्तिमय उपाय हैं। लोकतन्त्र में सब वर्गों को प्रतिनिधित्व मिलता है और सबको शासन में भाग लेने की आज्ञा है, अतः लोगों को दूसरी प्रकार की सरकारों की अपेक्षा शिकायत का कम मौका मिलता है। लोकतन्त्र में जितनी भी समस्याएँ हैं, उनको लोग शान्तिमय ढंगों से ही हल करते हैं। डिक्टेटरशिप या तानाशाही को बदलने का तरीका केवल क्रान्ति है परन्तु लोकतन्त्रात्मक देशों में चार या पाँच वर्ष के पश्चात् निर्वाचन होता है। यदि लोग एक सरकार की नीति को पसन्द नहीं करते तो इसको वोट नहीं देते। इस तरह से सरकार बदल जाती है। इसलिए लोकतन्त्रात्मक सरकार अधिक चिरस्थायी होती है और इसमें क्रान्ति तथा विप्लवों का भय बहुत कम रहता है।

(६) **इससे नैतिक स्तर ऊँचा होता है**—लोकतन्त्र से मनुष्यों का नैतिक स्तर ऊँचा होता है। वे समझने लगते हैं कि सरकार और उनमें कोई भेद नहीं। शासन में भाग लेने से उनमें उदासीनता नष्ट हो जाती है। इसमें गरीब से गरीब और क्षुद्र से क्षुद्र व्यक्ति को पूर्ण उन्नति के अवसर प्राप्त होते हैं। चूंकि यह समानता के भावों पर आधारित है अतः इसमें सहयोग, प्रेम, मेल-जोल, सेवा, सहिष्णुता, सहानुभूति और परोपकार की भावनाओं का उदय होता है।

(७) **राजनैतिक शिक्षा मिलती है**—इस से नागरिकों को बहुत भारी राजनैतिक शिक्षा प्राप्त होती है। उन्हें शासन-सम्बन्धी समस्याओं को समझने और सुलझाने का पता चलता है। उन्हें स्वशासन (self-government) सम्बन्धी कला में निपुणता प्राप्त होती है।

लोकतन्त्र के दोष (Demerits of Democracy)

लोकतन्त्र के निम्नलिखित दोष हैं—

(१) **लोकतन्त्र अयोग्य व्यक्तियों की पूजा है** (It is a Cult of Incompetence)—लोकतन्त्र के विरुद्ध यह बड़ा भारी आरोप लगाया जाता है कि यह अयोग्य व्यक्तियों का शासन है। बहुत से विद्वान् कहते हैं कि प्रजातन्त्र अशिक्षित और अनुत्तरदायी (irresponsible) लोगों का शासन है। लेकी, हेनरी मेन और ली बोन

आदि इस पद्धति की बहुत कड़ी आलोचना करते हैं। अरस्तू और प्लेटो ने प्रजातन्त्र को बहुत नीचा स्थान दिया है और इसको भीड़तन्त्र के समान माना है। सर हेनरी मेन इसे अज्ञानी तथा बुद्धिहीन व्यक्तियों द्वारा शासन बतलाते हैं और कहते हैं कि यह शासन बौद्धिक प्रगति तथा वैज्ञानिक सत्य की प्रगति के प्रतिकूल है।[1] लेकी ने प्रजातन्त्र की परिभाषा करते हुए कहा है कि यह सब से गरीब, सब से अज्ञानी और सब से अयोग्य व्यक्तियों द्वारा शासन है, जो आवश्यक रूप से संख्या में सब से अधिक होते हैं। लेकी का विचार है कि प्रजातन्त्र से न अच्छा शासन सुनिश्चित हो सकता है और न व्यक्तियों की स्वतन्त्रता की रक्षा क्योंकि यह अज्ञानी लोगों के हाथों में सत्ता दे देता है जो इन चीजों की परवाह नहीं करते।[2] प्रो० बार्कर का यह मत है कि प्रजातन्त्र से कार्यकुशलता की बड़ी क्षति होती है और इसमें इसके सिवाय कुछ भी नहीं है कि थोड़े से चतुर व्यक्ति जो अपने पक्ष में मतों का संग्रह बड़ी सफलता के साथ कर लेते हैं, शासन करते हैं।

(२) **लोकतन्त्र में संख्या का अधिक महत्त्व और गुणों का कम** (Votes are Counted and not Weighed)—प्रजातन्त्र के विरुद्ध दूसरा आरोप यह लगाया जाता है कि इसमें संख्या को अधिक महत्त्व दिया जाता है और गुणों को बहुत कम (Democracy counts hands and not heads)। इसमें बहुत ऊँची चोटी के विद्वान् की भी उतनी राय होती है जितनी मूर्ख की। यह प्रजातन्त्र में दोष अवश्य है परन्तु शिक्षा के प्रचार से कुछ कम हो सकता है।

(३) **कानून बनाने के लिए शिक्षण, अनुभव तथा ज्ञान की आवश्यकता—मतदाताओं की ऐसे योग्य व्यक्ति अथवा कानून निर्माता चुनने की अक्षमता** (Voters' Incapacity or Inaptitude to choose Right Legislators)—बहुत से आलोचक कहते हैं कि कानून बनाना कोई आसान काम नहीं है बल्कि यह बहुत जटिल काम है। यदि हम किसी डाक्टर से इलाज कराना चाहें तो हम उसकी योग्यता और कार्यकुशलता का प्रमाण-पत्र देखते हैं या उसके सम्बन्ध में कुछ पता चलाते हैं (सरकार भी बिना डिग्री के किसी डाक्टर को लोगों के इलाज करने की आज्ञा नहीं देती है) परन्तु हम वोटरों या मतदाताओं से कोई ज्ञान, अनुभव, या शिक्षण की आशा नहीं करते। शासन चलाना एक बड़ी भारी कुशलता का काम है, अतः उसके लिए अनेकों गुण होने चाहिएँ। कानून बनाना प्राविधिक विशेषज्ञों (technical experts) का काम है परन्तु कई बार उम्मीदवारों के लिए भी कोई अर्हता (qualification) नहीं रखी जाती है। इसलिए प्रत्येक कानून को बहुमत से तय करना विवेक-बुद्धि के विरुद्ध है क्योंकि बिना सोचे-समझे अनेक कानून बना दिये जाते हैं।

1. Sir Henry Maine says, "Experience tends to show that popular government is characterised by great fragility and that since its appearance, all forms of government have become more insecure than they were before. The doctrine of liberty being irreconciliable with that of equality again adds to the weakness and paves the way for the domination and operations of wire-pullers."

2. Lecky says, "A decision upon the basis of a popular vote is ultimately the rule of ignorance. History shows that intelligence resides with the few and not with the many. Where ignorance rules, liberty is curtailed. Democracies are unfavourable to intellectual progress and the advance of scientific truth."

(४) **लोकतन्त्र संस्कृति और सभ्यता में बाधक** (Hinders the Progress of Civilisation and Culture)—मेन, लेकी तथा ट्रीटस्के लोकतन्त्र पर यह आरोप लगाते हैं कि यह संस्कृति या सभ्यता की उन्नति में बाधक है। उनके विचार में मनुष्य की उन्नति केवल कुलीनतन्त्र में ही हो सकती है क्योंकि जनता रूढ़िवाद में विश्वास रखती है और नये-नये प्रगतिशील कानूनों को पसन्द नहीं करती। इसलिए हेनरी मेन कहते हैं कि यदि गत चार सौ वर्षों में कोई वयस्क मताधिकार (adult franchise) होता तो कोई धर्म में सुधार न होता, न कोई मतभेद सहन किया जाता और न ही कोई ठीक कैलन्डर होता, और सारी वैज्ञानिक उन्नति रुक जाती।[1]

(५) **राजनैतिक दलों का अनैतिक प्रभाव, रिश्वतखोरी की भरमार** (Corrupting Influence of Political Parties)—लोकतन्त्र में राजनैतिक दलों का लोगों के नैतिक स्तर पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। राजनैतिक दल चुनाव के समय अनेक प्रकार की झूठी बातें फैला देते हैं और देश के नाम पर लोगों का शोषण (exploitation) करते हैं। राजनैतिक दलों के नेता अपने कार्यकर्त्ताओं से पार्टी की तरफ भक्ति रखने की अपील करते रहते हैं और देश के हितों को भूल जाते हैं। पार्लियामेंट में देश के हितों का चिन्तन न करके प्रत्येक दल अपने स्वार्थों की ही चिन्ता करता है। इसलिए पार्टियाँ देश को दो विरोधी भागों में बाँट देती हैं। प्रत्येक पार्टी राजनैतिक शक्ति को प्राप्त करने की चिन्ता में व्यस्त रहती है साधारण व्यक्ति के हितों की तनिक भी चिन्ता नहीं करती और केवल जोशीले भाषणों से वोट प्राप्त करने की कोशिश करती है।

(६) **लोकतन्त्र में केवल पूंजीपतियों को स्वतन्त्रता** (No Economic Freedom for the Workers in a Capitalist Democracy)—बहुत से आलोचक कहते हैं कि स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र में कोई सम्बन्ध नहीं। लोकतन्त्र में वास्तविक स्वतन्त्रता नहीं होती। सुकरात को लोकतन्त्र में ही विष दिया गया। आजकल भी सं० रा० अमरीका में साम्यवादी साहित्य (Communist literature) जलाया जा रहा है। बहुत से मार्क्सवादी (Marxists) या साम्यवादी लोकतन्त्र के विरुद्ध यह आरोप लगाते हैं कि इसमें असली आजादी केवल पूंजीपतियों के लिए ही है। मजदूरों के लिए कोई आर्थिक स्वतन्त्रता नहीं।

(७) **लोकतन्त्र बहुत खर्चीला शासन होता है** (Costly Administration)—यह शासन बहुत खर्चीला है। मन्त्री अन्धाधुन्ध खर्च करते हैं। उनके यात्रा सम्बन्धी बिल उनकी तनख्वाहों से भी अधिक हो जाते हैं। सरकार की कड़ी आलोचना करने वाले को झटपट मन्त्री बना लिया जाता है। विभाजन से पहले पंजाब में पाँच मन्त्री थे और आज छः-सात से अधिक। चुनाव में उम्मीदवारों को हजारों रुपये खर्च करने

1. Maine says, "It seems quite certain that if for four centuries there had been a very widely extended franchise there would have been no reformation of religion, no change of dynasty, no toleration of dissent, not even an accurate calendar. The thrashing machine, the power loom, the spinning jenny and possibly the steam-engine would have been prohibited."

पड़ते हैं। अमरीका में राष्ट्रपति के चुनाव पर लाखों रुपये खर्च आते हैं। गरीब आदमी चुनाव में खड़ा नहीं हो सकता क्योंकि उसके पास इतना पैसा नहीं होता। प्रजातन्त्र शासन में प्रत्येक बिल को पास करने में महीनों लग जाते हैं और इस हेतु पार्लियामेंट का अधिवेशन चलता रहता है। इस में बहुत खर्च आता है। यह काम व्यक्तिगत शासन में बहुत कम खर्चे से हो जाता है।

(८) **लोकतन्त्र केवल एक कल्पना है और व्यवहार में असम्भव है** (Democracy is an Impossibility)—बहुत से लेखक जैसे बर्क, राबर्ट मिचल्स और ओसवल्ड स्पेंगलर कहते हैं कि लोकतन्त्र वास्तव में एक कल्पना है।[1] यह मिथ्या है क्योंकि साधारण पुरुष में इतनी योग्यता नहीं हो सकती कि वह शासन-सम्बन्धी जटिल समस्याओं को समझ सके और उसके अनुसार अत्यन्त योग्य शासकों को निष्पक्ष भाव से चुन सके। लोकतन्त्र में भी छोटा-सा गुट ही देश में शासन करता है। इंगलैंड में मन्त्रिमण्डल ही सब कुछ काम करता है और पार्लियामेंट तो उसके अधीन हो गई है, जैसा कि रैम्जे म्योर कहता है कि इंगलैंड में मन्त्रिमण्डल की तानाशाही (dictatorship) है। बर्क का विचार था कि प्रजातन्त्रात्मक समानता एक भयंकर प्रपंच है।[2]

(९) जहाँ दो से अधिक पार्टियाँ होती हैं वहाँ सरकार बहुत शीघ्र बदलती रहती है, जैसे फ्रांस में। मन्त्री अधिक ध्यान प्रशासन (administration) की ओर न देकर राजनैतिक बातों पर देते हैं। इस से देश की सेवा नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त यह शासन बहुत निर्बल और धीमा है। इसमें प्रायः शीघ्र निर्णय नहीं किये जा सकते। जर्मनी में हिटलर ने युद्ध की घोषणा का बहुत शीघ्र निश्चय कर लिया था परन्तु चैम्बरलेन का मन्त्रिमण्डल बहुत समय तक कुछ भी निश्चय न कर सका।

निष्कर्ष—प्रजातन्त्र के गुण और दोषों पर दृष्टिपात करने के पश्चात् हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि कोई प्रणाली पूर्ण नहीं है परन्तु इस पद्धति में दोष थोड़े हैं और गुण बहुत अधिक। शासन में भाग लेने का अधिकार सब को मिलना चाहिए। जिन लोगों को शासन में भाग लेने का अधिकार नहीं होता, कोई भी सरकार उनके हितों की परवाह नहीं करती। यह राजतन्त्र और कुलीनतन्त्र से अच्छी सरकार है। प्रजातन्त्र में जो मन्त्रिमण्डल के सदस्य होते हैं वे लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं और ऐसा न करने पर हटाये भी जा सकते हैं। शक्ति प्रत्येक को भ्रष्ट कर देती है, अतः गैर-जिम्मेदार सरकार से जिम्मेदार सरकार फिर भी बहुत अच्छी है और सुशासन स्वशासन का स्थान नहीं ले सकता (Good government is no substitute for self-government)। ब्राइस लिखता है कि किसी सरकार की कसौटी लोगों की भलाई है और वह सरकार अधिक अच्छी है जिसमें व्यक्तियों को अपने भाव प्रकट करने के लिए पूरे अवसर तथा प्रोत्साहन मिलता है।[3] इसके

1. "Govt. by the people is a sheer impossibility."—*Oswald Spangler.*
2. "Democratic equality is a monstrous fiction."—*Burke.*
3. "The test of the governments is the welfare of the people and that form of Government is to be preferred which gives human tendencies the fullest scope and most constant stimulation."—*Bryce.*

अतिरिक्त ब्राइस प्रजातन्त्र में छः दोष बतलाता है[1]—"(१) धनिक अपनी शक्ति से शासन या कानून को विकृत (pervert) करने का यत्न करते हैं, (२) राजनीति को व्यवसाय बनाने की तरफ झुकाव और सेवा के लिए नहीं बल्कि लाभ के लिए उसमें प्रवेश, (३) फिजूलखर्ची, (४) शासन में प्रवीण पुरुषों (skilled persons) का मूल्य न समझना, (५) समानता के सिद्धान्त का दुरुपयोग, और (६) दल-बन्दी की भावना और राजनीतिज्ञों के वोट लेने के लिए हथकंडे (अर्थात् राय लेने के लिए रोचक कानून बनाना)। ब्राइस लिखता है कि ये पहले तीन दोष तो प्रायः सभी शासनों में पाये जाते हैं परन्तु आखिरी तीन केवल लोकतन्त्र में अधिक पाये जाते हैं परन्तु फिर भी ऐसे नहीं हैं जिन पर काबू नहीं पाया जा सके। इससे प्रतीत होता है कि लोकतन्त्र में कुछ बुराइयाँ अवश्य हैं परन्तु अन्य प्रकार के शासनों से कम हैं और जो बुराइयाँ इसमें हैं, वे भी यत्न करने पर दूर की जा सकती हैं। अतः यह शासन सब से अच्छा है।

लोकतन्त्र को सफल बनाने के लिए आवश्यक बातें
(Conditions Necessary for the Success of Democracy)

सचेत नागरिकता (Enlightened Citizenship)—इसमें सन्देह नहीं कि लोकतन्त्र सब से कठिन शासन है। इसमें लोगों पर बड़ी भारी जिम्मेदारी है। प्रजातन्त्र प्रत्येक देश में फल-फूल नहीं सकता क्योंकि इसकी कामयाबी के लिए कुछ आवश्यक बातें हैं। यदि वे बातें किसी देश में हों तो यह सफल होगा वरना नहीं। पहली आवश्यक बात यह है कि नागरिकों में राजनैतिक जाग्रति हो, वे अपने अधिकारों के बारे में पूर्ण सचेत रहें और कर्त्तव्यों के पालन में कोई कसर न छोड़ें। दूसरे, उनमें शिक्षा होनी चाहिए क्योंकि निरक्षरता स्वराज्य की शत्रु है। शिक्षा से ही ज्ञान उत्पन्न होता है और अनेक प्रकार की समस्याओं को समझने की क्षमता आती है। तीसरे, स्थानीय स्वशासन (local self-government) भी लोकतन्त्र के लिए आवश्यक सीढ़ी है। पंचायतों, नगरपालिकाओं और जिला-बोर्डों में जब लोगों को काफी शिक्षा मिल जाती है तो वे देश के लिए भी कुछ अच्छा कार्य अपने अनुभव की बिना पर कर सकते हैं। इन संस्थाओं के बिना देश की स्वतन्त्रता भी सुरक्षित नहीं रह सकती। चौथे, देश में समाचार पत्रों को काफी स्वतन्त्रता होनी चाहिए ताकि वे सरकार की आलोचना कर सकें, लोगों की इच्छाओं को सरकार के सामने अच्छे ढंग से रख सकें,

1. Bryce enumerates six evils of democracy.
   (i) The power of money interests to pervert administration or legislation.
   (ii) The tendency to make politics a gainful profession.
   (iii) Extravagance in administration.
   (iv) The abuse of the doctrine of equality and failure to appreciate the value of administrative skill.
   (v) The undue power of party organisations.
   (vi) The tendency of legislators and political officials to play for vote in the passing of laws and in tolerating breaches of order.
   (*Modern Democracies* Vol. II, p. 504)

और सरकार का दृष्टिकोण लोगों तक ठीक तरीके से पहुँचा सकें। समाचार पत्रों को अपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए और लोगों में धार्मिक घृणा नहीं फैलानी चाहिए। उनका यह कर्त्तव्य भी है कि वे सरकार की खण्डनात्मक आलोचना (destructive criticism) न करके रचनात्मक आलोचना (constructive criticism) ही करें। पाँचवें, आर्थिक सुरक्षा (economic security) अवश्य होनी चाहिए। जहाँ पर अधिकतर जनता भूख से पीड़ित है और सवेरे रोटी मिल जाती है तो शाम की आशा नहीं, वहाँ लोकतन्त्र कदापि सफल नहीं हो सकता। इसलिए लोकतन्त्र को सफल बनाने के लिए आर्थिक स्तर भी बहुत ऊँचा होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब कि बेरोजगारी न हो और छोटे-बड़े की तनख्वाह या आमदनी में जमीन-आसमान का भेद न हो। इसलिए समाज का उत्पादन और वितरण पर अधिकार होना चाहिए। छठे, परम्पराएँ (traditions) भी प्रजातन्त्र के अनुकूल होनी चाहिएँ। लोगों में न्याय, बलिदान, अहिंसा, सहयोग, प्रेम और भ्रातृ-भाव होना अत्यन्त आवश्यक है। जो लोग नग्न शक्ति (brute force) में विश्वास करते हैं वे शान्तिपूर्वक समस्याएँ क्या सुलझायेंगे? सातवें, लोकतन्त्र की सफलता के लिए शान्ति और सुव्यवस्था रहनी चाहिए। युद्ध से लोकतन्त्र को बड़ा धक्का पहुँचता है।

भारत और लोकतन्त्र (India and Democracy)

गलत शिक्षा, शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी, निरक्षरता, निर्धनता, छुआछूत, प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता, आर्थिक असमानता, राजनैतिक उदासीनता, स्वार्थ और बहुदलबन्दी प्रथा (Multiple Party System) **लोकतन्त्र के मार्ग में बड़ी भारी रुकावटें हैं परन्तु फिर भी भारत में लोकतन्त्र का भविष्य उज्ज्वल—अनेक आर्थिक और शैक्षणिक योजनाएँ** (Illiteracy, poverty, ignorance, disease, communalism and provincialism darken the sky of democracy but 2nd five year plan and leadership of Mr. Nehru are the shining lines)—भारत में २६ जनवरी १९५० को सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न गणराज्य की स्थापना हो गई। १९४७ ईस्वी से पूर्व भी भारत में लोकतन्त्र आंशिक रूप से चलता रहा। लार्ड रिपन ने स्थानीय स्वशासन के बारे में कुछ योजनाएँ बनाईं और उनको देश में लागू किया। सन् १९०९, १९१९, १९३५ के अधिनियमों (Acts) के अनुसार भी उत्तरदायी शासन की तरफ कुछ कदम उठाया गया परन्तु १९४७ के पश्चात् ही इस दिशा में विशेष उन्नति हुई। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे देश ने इन गत वर्षों में बहुत उन्नति कर ली है परन्तु फिर भी लोकतन्त्र के सामने निरक्षरता और गरीबी जैसी अनेक समस्याएँ हैं। लोकतन्त्र की सफलता इस बात पर निर्भर है कि कहाँ तक यह उन समस्याओं को सुलझा सकता है। जैसे पहले बताया जा चुका है कि सब से महत्त्वपूर्ण समस्या निरक्षरता की है। निरक्षरता को समाप्त करने के लिए यत्न किया जा रहा है परन्तु अब भी निरक्षरता बहुत बाकी है। दूसरी समस्या निर्धनता है। निरक्षरता और निर्धनता स्वराज्य के शत्रु हैं। छुआछूत संविधान में दूर कर दी गई है परन्तु लोगों के दिलों से नहीं गयी है। इसके अतिरिक्त देश में साम्प्रदायिकता और प्रान्तीयता

का विष कूट-कूट कर भरा हुआ है। लोगों में स्वार्थ का बोलबाला है, देश-भक्ति का अभाव है और राजनैतिक उदासीनता वर्तमान है। आर्थिक असमानता बहुत अधिक है और नैतिक स्तर गिर चुका है। जात-पाँत की भावना भी अभी नष्ट नहीं हुई है। अनेकों राजनैतिक पार्टियाँ स्वार्थ-सिद्धि के लिए खड़ी हो गई हैं। कुल ३० या ४० वर्ष से कुछ अनुभव भारतीयों को स्वशासन में हुआ है वरना कई शताब्दियों से राजतन्त्र चलता रहा है। आशा है कि ये रुकावटें आहिस्ता-आहिस्ता खत्म हो जायेंगी। पहली पंचवर्षीय योजना के कारण देश के प्रत्येक क्षेत्र, विशेषतया कृषि में बहुत उन्नति हुई है। देश अन्न की दृष्टि से काफी आत्म-निर्भर बन गया है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भारी उद्योगों (heavy industries) और शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। अनेकों राज्यों में बिजली पैदा करने के लिए प्रोजैक्ट शुरू किये गए हैं। अतः ये सब समस्याएँ समाप्त हो जायेंगी और लोकतन्त्र अपना मस्तक ऊँचा रख सकेगा।

तानाशाही या अधिनायकतन्त्र (Dictatorship)

तानाशाही में अन्तिम शक्ति एक आदमी के हाथ में रहती है परन्तु इसमें अधिकार पैतृक नहीं होते बल्कि तानाशाह एक पार्टी का नेता होता है जो निर्वाचन या पार्टी के सैनिक-बल से सरकार पर अधिकार जमा लेता है (Dictator is the Leader of a Party and Attains Power by means of Force or Election but retains that Power with force)—तानाशाही को अधिनायकतन्त्र या अनन्य शासन भी कहा जाता है। तानाशाही का जन्म प्रथम महायुद्ध के पश्चात् जर्मनी और इटली में हुआ। तानाशाही में अन्तिम शक्ति एक मनुष्य के हाथ में रहती है परन्तु राजतन्त्र से यह सर्वथा भिन्न है। राजतन्त्र में राजनैतिक शक्ति वंशानुगत (hereditary) होती है परन्तु इसमें यह एक पार्टी के नेता द्वारा अपनी पार्टी की सैनिक शक्ति अथवा निर्वाचन के आधार पर प्राप्त की जाती है। अतः डिक्टेटर के पास एक बहुत बड़ी और संगठित पार्टी होती है, वह पार्टी के द्वारा अपने विचारों का अधिक से अधिक प्रचार करता है और जनता के विचारों को अपनी ओर आकृष्ट करने का भरसक प्रयत्न करता है। कई बार ऐसा भी हो जाता है कि किसी भयानक परिस्थिति में किसी नेता को सुरक्षा कायम करने के लिए विशेष अधिकार दे दिये जाते हैं और फिर वह अपने अधिकारों को शक्ति के भरोसे पर कायम रखता है। वास्तव में तानाशाह की इच्छा ही कानून होती है और शक्ति के सहारे ही वह जीवित रहता है। यह सम्भव है कि कभी लोकमत के साथ तानाशाह हो और कभी विरुद्ध। तानाशाह के शासन की कोई अवधि निश्चित नहीं है। तानाशाह प्रायः स्वेच्छाचारी होता है। यह जरूरी नहीं कि तानाशाह स्वार्थी ही हो, बल्कि प्रायः ऐसा देखा जाता है कि वह राष्ट्र-हितों को अधिक से अधिक ध्यान में रखता है और उनका मजदूरों और पूंजीपतियों को निरादर नहीं करने देता तथा वह अपने देश का अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में मान बढ़ाता है। सारा देश उसकी शक्ति का लोहा मानता है। हिटलर और मुसोलिनी ऐसे ही बड़े भारी नेता थे।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् इटली में फ़ासिज़्म (Fascism) और जर्मनी में नात्सीवाद (Nazism) का प्रादुर्भाव हुआ। सन् १९१९ के पश्चात् इटली में आर्थिक संकट था और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इटली का कोई मान नहीं था। इटली मित्रराष्ट्रों की ओर से जर्मनी के विरुद्ध लड़ा था परन्तु इसे कुछ भी नहीं मिला था। इसलिए इटली में बड़ी बेचैनी थी। जर्मनी में भी बड़ा भारी आर्थिक संकट था और पराजय के कारण उसका राष्ट्रीय मान लुप्त-प्राय हो चुका था। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जर्मनी का कोई महत्त्व नहीं रह गया था। हिटलर और मुसोलिनी ने अपने-अपने देशों में इस बेचैनी का पूरा-पूरा फायदा उठाया और उन्होंने राजनैतिक शक्ति प्राप्त कर ली। रूस में बोलशेविज़्म तथा साम्यवाद का उदय हुआ और लेनिन तथा स्टालिन उसके प्रसिद्ध कर्णधार बन गए।

अधिनायक लोकतन्त्र में बिल्कुल विश्वास नहीं रखता। वह सर्वशक्तिमान राज्य में विश्वास करता है। समता, बन्धुता और स्वतन्त्रता की अपेक्षा अनुशासन, एक नेता की आज्ञा-पालन और जिम्मेदारी पर बहुत जोर दिया जाता है (Dictators believe in Totalitarian State)—अधिनायक (dictator) लोकतन्त्रात्मक शासन में विश्वास नहीं करता बल्कि सर्वस्वायत्तवादी राज्य (totalitarian state) में विश्वास करता है। अधिनायकतन्त्र में लोकतन्त्र की तीन मुख्य बातों, स्वतन्त्रता, समता और बन्धुता को तिलाञ्जलि दे दी जाती है और उनके स्थान पर तीन अन्य बातें, अनुशासन, एक नेता की आज्ञा-पालन और जिम्मेवारी अपनायी जाती है। मुसोलिनी कहता था कि फ़ासिज़्म का आधार वास्तविकता है और बोलशेविज़्म का आधार सिद्धान्त है। फ़ासिस्ट किसी वाद-विवाद में विश्वास नहीं करते थे। मुसोलिनी कहता था कि मेरा प्रोग्राम कार्य करना है न कि बातें बनाना (My programme is action and not talk)। फ़ासिस्ट कहते थे कि स्वतन्त्रता लोगों का अधिकार नहीं बल्कि राज्य की कृपा है। उनके विचार में राष्ट्र व्यक्ति की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण था, इसलिए व्यक्ति को आवश्यकता पड़ने पर अपना सर्वस्व राष्ट्र के चरणों में समर्पित कर देना चाहिए। मुसोलिनी का दावा था कि सब राज्य के भीतर हैं, राज्य के बाहर कोई भी नहीं है और राज्य के विरुद्ध भी कोई नहीं है (Nothing against the State, everything for the State, nothing outside the State)। राज-सत्ता व्यक्तियों में न रह कर केवल राष्ट्र-राज्य (nation-state) में ही रहती है। फ़ासिस्ट कहते थे कि जनता राष्ट्र का नेतृत्व करने में असमर्थ है, केवल कुछ व्यक्ति ही राष्ट्र-राज्य (nation-state) की समस्याओं को समझ सकते हैं और केवल नेता ही मार्ग-दर्शन कर सकता है। ऐसे राज्य में व्यक्तियों के लिए नागरिक स्वतन्त्रता तथा समाचार पत्रों के लिए लेखन की स्वतन्त्रता कदापि नहीं रह सकती। रूस में आज भी भाषण और लेखन की पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं है। कोई अन्य पार्टी जो कि साम्यवाद के विरुद्ध हो नहीं बनाई जा सकती। हिटलर और मुसोलिनी के समय जर्मनी और इटली में भी ऐसी ही हालत थी। अधिनायक शक्ति में विश्वास करते हैं और लोगों की आँखें चौंधियाने के लिए नने-नये देश फतह करते रहते हैं। जर्मनी में प्रजातीयता (racialism) का बोलबाला था। यहूदियों को

जर्मनी से निकाल दिया गया। लोकमत के तमाम साधनों जैसे रेडियो, सिनेमा, शिक्षा देने वाली संस्थाओं और समाचार पत्रों पर सरकार का कड़ा नियन्त्रण रखा गया। फ़ासिस्ट भी निरंकुश राष्ट्र-राज्य की स्थापना में विश्वास करते थे।

तानाशाही के गुण और दोष
(Merits and Demerits of Dictatorship)

इसमें गुण यह है कि सरकार शक्तिशाली होती है जो राष्ट्र को बलशाली बनाती है और अन्तर्राष्ट्रीय मान बढ़ाती है परन्तु इसमें बड़ा भारी दोष यह है कि इसमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को कोई स्थान नहीं—तानाशाही के गुण ये हैं कि सरकार शक्तिशाली बन जाती है, शासन में कार्यकुशलता आ जाती है और सारा देश एक नेता की आज्ञा का पालन करता है, अतः अन्दरूनी झगड़े खत्म होकर एक सुदृढ़ और संगठित राष्ट्र का उदय होता है। अन्तर्राष्ट्रीय मान बढ़ता है क्योंकि सारा राष्ट्र एक नेता के इशारे पर मर मिटने को तैयार रहता है। इसके दोष ये हैं कि इसमें व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन हो जाता है और आत्म-निर्भरता तथा आत्म-सम्मान नष्ट हो जाता है। यह शक्ति पर आधारित है, अतः स्थायी (permanent) नहीं है। इससे सांसारिक शान्ति भी नष्ट होने का भय रहता है।

आधुनिक सरकारों के स्वरूप
एकात्मक तथा संघात्मक
(Unitary and Federal Governments)

एकात्मक सरकार में सारी शक्तियां केन्द्र के पास रहती हैं और प्रान्तीय सरकारें केवल केन्द्रीय सरकार की एजेन्ट रहती हैं (In Unitary Governments the Centre is all-powerful and the Provincial Governments occupy the status of mere agents)—**एकात्मक सरकार** (unitary government) में सारे देश के लिए एक केन्द्रीय सरकार होती है। परन्तु शासन को सुगमतापूर्वक चलाने के लिए सारे देश को प्रान्तों में बाँटा जाता है। जहाँ पर संविधान द्वारा सारी शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार को दे दी जाती हैं, उसको एकात्मक सरकार कहते हैं, तथा जहाँ पर संविधान द्वारा केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों में शक्तियों का विभाजन किया जाता है उसको संघीय या संघात्मक सरकार कहते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि **एकात्मक सरकार में शक्तियों का केन्द्रीकरण होता है और संघात्मक में विभाजन।** शासन के एकात्मक और संघात्मक स्वरूपों का आधार क्षेत्रिक विभाजन (territorial division) है।

फाइनर एकात्मक सरकार की परिभाषा इन शब्दों में करता है कि "इसमें सब शक्तियाँ केन्द्र के पास इकट्ठी रहती हैं और इसकी इच्छा तथा कर्मचारी सारे देश में शक्तिशाली होते हैं।" श्री गार्नर लिखते हैं कि "जहाँ पर संविधान द्वारा सारी शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार को दे दी जाती हैं और जिससे स्थानीय सरकारें अपने अधिकार अथवा स्वायत्तता (autonomy) ही नहीं (जो कि उनके पास है) बल्कि

वास्तव में अपना अस्तित्व ही लेती हैं, वहाँ पर एकात्मक सरकार होती है।[1] इसलिए एकात्मक सरकार में केन्द्र के पास सारी शक्तियाँ रहती हैं और वह अपनी इच्छा से चाहे जो ताकतें प्रान्तों को दे दे और चाहे जो ले ले। प्रान्तीय सरकारें, केन्द्रीय सरकार के अधीन होती हैं। वे केवल शासन चलाने के लिए केन्द्रीय सरकार की एजेन्ट हैं। इस प्रकार का शासन इंगलैंड और फ्रांस में है। वहाँ पर सारी शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार को प्राप्त हैं। शासन चलाने के लिए सारे इंगलैंड को काउन्टीज़ में बाँटा गया है और इसी प्रकार फ्रांस को डिपार्टमेंट्स में बाँटा गया है। भारत में भी सन् १९३५ से पूर्व एकात्मक शासन था। एकात्मक शासन में सारे देश के लिए एक ही संसद्, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका रहती है। यह प्रणाली हालैंड, बैल्जियम, तुर्की तथा जापान में भी विद्यमान है।

एकात्मक शासन के गुण (Merits of Unitary Govt.)

(१) **सरकार शक्तिशाली होती है** (Central Govt. more Powerful in Unitary system than Federal one)—एकात्मक सरकार संघात्मक सरकार की अपेक्षा बहुत शक्तिशाली होती है क्योंकि संघात्मक सरकार में केन्द्र और इकाइयों (units) के बीच में झगड़े की गुँजाइश रहती है परन्तु एकात्मक सरकार में शक्तियों का केन्द्रीकरण (centralisation) होने के कारण ऐसा सम्भव नहीं है।

(२) **एकरूपता रहती है** (Uniformity)—एकात्मक सरकार में संघात्मक सरकार की अपेक्षा अधिक एकरूपता होती है क्योंकि प्रान्तीय सरकारें किसी भी मामले में केन्द्र की अवज्ञा करने का साहस नहीं कर सकतीं। संघात्मक सरकार में भिन्न-भिन्न क्षेत्राधिकार (jurisdiction) होते हैं और केन्द्र तथा प्रान्त एक दूसरे के मामलों में दखल नहीं दे सकते। एकात्मक सरकार में एक ही प्रकार के कायदे-कानूनों का पालन करना पड़ता है परन्तु संघात्मक शासन में प्रायः ऐसा नहीं होता।

(३) **इकहरी नागरिकता** (Single Citizenship)—एकात्मक सरकार में दोहरी नागरिकता (double citizenship) नहीं होती जैसे कि संघात्मक देशों में होता है। उदाहरणस्वरूप अमरीका (U. S. A.) में दोहरी नागरिकता है परन्तु इंगलैण्ड और फ्रांस जैसे देशों में जहाँ एकात्मक शासन-व्यवस्था है, वहाँ ऐसा नहीं है। दोहरी नागरिकता में विभाजित भक्ति (divided loyalty) होती है क्योंकि एक मनुष्य उपराज्य तथा केन्द्र दोनों का नागरिक होता है। उदाहरणार्थ, अमरीका में एक ही व्यक्ति न्यूयार्क और संयुक्त राज्य अमरीका दोनों का नागरिक होता है।

---

1. "Where the whole power of government is conferred by the constitution upon a single central organ or organs, from which the local governments derive whatever authority or autonomy they may possess and indeed their very existence, we have a system of Unitary Government."—*Garner.*

Strong says, "A Unitary State is one organised under a single Central Government, that is to say, whatever powers are possessed by the various districts within the area administered as a whole by the Central Government are held at the discretion of that government, and the Central power is supreme over the whole without any restrictions imposed by any law granting special power to its parts."

(४) **इसमें कम खर्चीला शासन सम्भव है** (Administration Less Expensive)—एकात्मक शासन संघात्मक शासन की अपेक्षा कम खर्चीला होता है क्योंकि तमाम देश के लिए एक ही कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका होती है परन्तु संघात्मक देशों में ये उपराज्यों और केन्द्र के लिए अलग-अलग होती हैं। भारत में ही लीजिए, संघीय सरकार में अलग कार्यपालिका, सुप्रीम कोर्ट और संसद् है तथा राज्यों के लिए अलग हाई कोर्ट, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका है।

(५) **शीघ्र निर्णय सम्भव** (Prompt Decisions)—एकात्मक सरकार में हर एक कार्य बहुत शीघ्रता से हो जाता है। आपात (emergency) के समय शीघ्र निर्णय किए जा सकते हैं। युद्ध घोषणा करने और सुरक्षा करने में भी अधिक सुविधा रहती है।

एकात्मक शासन के दोष
(Demerits of Unitary System of Govt.)

(१) **स्वेच्छाचारी केन्द्र का भय** (Central Govt. might become Despotic)—एकात्मक शासन में केन्द्र स्वेच्छाचारी या निरंकुश (despotic) हो जाता है क्योंकि सारी शक्तियाँ उसके पास होती हैं और स्थानीय सरकारें उसकी दया पर जीवित रहती हैं।

(२) **प्रशासनीय दक्षता का अभाव** (Lack of Administrative Efficiency)—एकात्मक प्रणाली में प्रशासनीय दक्षता (administrative efficiency) नहीं रहती क्योंकि केन्द्र पर सारे देश के लिए कानून बनाने तथा उसको पालन करवाने का बोझ आ पड़ता है। संघात्मक शासन में यह बोझ आसानी से बँट जाता है। बहुत सा काम केन्द्र के लिए करना उपयोगी नहीं होता है, वह काम उपराज्यों की सरकारें आसानी और अधिक योग्यता से कर सकती हैं। बहुत विस्तृत देश के लिए बिल्कुल एक जैसे कायदे-कानून लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकते क्योंकि उसमें भिन्न-भिन्न जातियाँ, धर्म तथा भाषाएँ वर्तमान रहती हैं, इसलिए हर एक प्रान्त की आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। इसके अलावा एकात्मक शासन में प्रत्येक कार्य के लिए स्थानीय अफसरों को आज्ञा लेने में बड़ी देर लग जाती है।

(३) **स्थानीय स्वायत्तता का नाश** (Blow to Local Autonomy)—एकात्मक प्रणाली से स्थानीय स्वायत्तता (local autonomy) या स्थानीय स्व-शासन (local self-government) को बड़ा भारी धक्का पहुँचता है। स्थानीय सरकारें केन्द्रीय सरकार की केवल एजेण्ट रहती हैं और उनके क्षेत्राधिकार अलग नहीं होते, अतः उनके मामलों में केन्द्रीय सरकार किसी समय भी अवाञ्छनीय हस्तक्षेप (undesirable interference) कर सकती है। फ्रांस में ऐसा ही है।

(४) **नौकरशाही का प्रभाव** (Influence of Bureaucracy)—इसमें नौकरशाही (bureaucracy) का अधिक प्रभाव रहता है क्योंकि प्रान्तों में जिम्मेदार सरकार नहीं रहती है और वहाँ पर केन्द्रीय सरकार के नियुक्त अफसर ही काम चलाते हैं। भारत में सन् १९१९ से पूर्व ऐसा ही था। गवर्नर के हाथ में प्रान्त की सारी

प्रशासनीय शक्तियाँ हुआ करती थीं और वह जनता के प्रति जिम्मेदार न होकर केवल गवर्नर-जनरल के प्रति ही उत्तरदायी था।

(५) **नागरिकों की सार्वजनिक कार्यों में अरुचि** (Breeds Indifference towards Local Affairs)—नागरिक स्वतन्त्रता के लिए यह प्रणाली उपयुक्त नहीं है। इससे लोगों की सार्वजनिक कार्यों में रुचि खत्म हो जाती है। यह प्रणाली उस देश में कम सफल होती है जहाँ क्षेत्रफल बहुत अधिक हो और लोग प्रायः स्थानीय स्वतन्त्रता-प्रेमी हों।

संघात्मक सरकार (Federal Government)

संघ बनाने के लिए हालात (Conditions for the Establishment of Federation)—इसमें सरकार की तमाम शक्तियों को राष्ट्रीय संविधान द्वारा या ऐसी संसद् के अधिनियम द्वारा जिसने संविधान बनाया हो, केन्द्रीय और संघ के राज्यों की सरकारों में विभाजित किया जाता है।[1] **हैमिल्टन के विचार के अनुसार इसमें कुछ स्वतन्त्र राज्यों के संघ से एक नए राज्य का निर्माण होता है।**[2] संघात्मक सरकार प्रायः उन देशों में बनती है जहाँ पर लोग एकता न चाहकर राज्यों का एक संघ चाहते हैं (Where the people desire union and not unity)। यह परिस्थिति उन देशों में उत्पन्न होती है जहाँ पर स्वतन्त्र राज्य अपनी स्थानीय स्वायत्तता (local autonomy) ज्यों की त्यों रखना चाहें और कुछ सामान्य हितों (common interests) की पूर्ति के लिए एक संघीय शासन निर्माण करना चाहें। इसलिए इसमें स्वतन्त्र राज्य कुछ शक्ति अपने पास रखते हैं तथा कुछ सामान्य हितों की पूर्ति के लिए केन्द्र को दे देते हैं। यह याद रखना चाहिए कि यह एकात्मक सरकार से अच्छी नहीं है परन्तु जहाँ पर एकात्मक सरकार सम्भव नहीं, वहाँ पर समूचे देश को एक सूत्र में बाँधने के लिए यही एक उपाय है और यदि ऐसे देशों में यह प्रणाली न अपनायी जाय तो शायद वहाँ पर किसी प्रकार का राजनैतिक संगठन सम्भव न हो। अमरीका में संघ या संधान (federation) की स्थापना इसी प्रकार हुई। वहाँ पर पहले कुछ स्वतन्त्र राज्य अंग्रेजों के आक्रमण के विरुद्ध मिल गए और एक प्रकार का प्रसंधान (confederation) बनाया परन्तु उसके हाथ में बहुत कम शक्तियाँ दीं अतः वह प्रसंधान अशक्त रहा। आखिरकार एक संधान (संघ) बनाया गया। आज उसमें ४८ राज्य सम्मिलित हैं। दूसरे, कई बार किसी एकात्मक राज्य को स्वायत्तशील या स्व-प्रबन्धी (autonomous) उपराज्यों में बाँटा जाता है। कैनेडा और भारत में ऐसा करने का यत्न किया गया। इस तरह भी संधान या संघ की नींव पड़ जाती है।

संघ (Federation) **के आवश्यक तत्त्व-शक्तियों का विभाजन, संविधान की**

---

1. "Federal Govt. is a system in which the totality of governmental power is divided and distributed by the national constitution or the organic act of Parliament creating it, between a central government, and the government of the individual states or other territorial sub-divisions of which the federation is composed."—*Garner*.

2. "Federation." according to Hamilton, "is an association of states that form a new one."

परमता और उच्चतम न्यायालय द्वारा केन्द्र और इकाइयों में फैसले करना है (Essentials of Federation—Division of Powers, Supremacy of Constitution and Supreme Court)—संधान अथवा संघ (federation) के आवश्यक तत्त्व (essentials) ये हैं—(१) लिखित तथा दुष्परिवर्तनीय संविधान (Written and Rigid Constitution), (२) शक्तियों का विभाजन (Distribution of Powers), (३) उच्चतम न्यायालय (Supreme Court)। पहले, संधान या संघ बनाने के लिए आवश्यक है कि वहाँ पर लिखित तथा दुष्परिवर्तनीय संविधान कायम किया जाए अर्थात् केन्द्र तथा उपराज्यों की शक्तियाँ संविधान में लिखी जाएँ और संविधान ऐसा होना चाहिए जो आसानी से बदला न जा सके। यदि शक्तियाँ न लिखी जाएँ तो भविष्य में झगड़ा पैदा होने का भय होगा। इसी प्रकार यदि संविधान आसानी से बदला जाए तो केन्द्र या उपराज्य उसको अपने हितों के लिए तोड़ने-मरोड़ने की कोशिश करेंगे। इसलिए संविधान को सर्वोच्च (supreme) माना जाता है। संघात्मक देशों में प्रभुता (sovereignty) संविधान में ही रहती है। केन्द्र तथा उपराज्य दोनों ही संविधान का पूर्ण आदर करते हैं और किसी झगड़े के उत्पन्न होने पर उसको अन्तिम प्रमाण मानते हैं। दूसरे, संघात्मक सरकार में केन्द्र तथा इकाइयों में शक्तियों का विभाजन होता है। यह विभाजन ऐसे होता है कि जो तमाम देश के लिए महत्त्व-पूर्ण विषय हैं, जैसे वैदेशिक नीति (Foreign Relations), सेना अथवा प्रतिरक्षा (Defence), संचार या यातायात के साधन (Means of Communications) और नोट तथा मुद्रा (Currency and Coinage) इत्यादि वे केन्द्रीय सरकार को दे दिए जाते हैं, और ऐसे विषय जो केवल उपराज्यों अथवा इकाइयों के लिए महत्त्व-पूर्ण हैं वे उन्हें सौंप दिए जाते हैं जैसे पुलिस, जेल, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्थानीय स्वशासन (Local Self-Govt.) इत्यादि। इसके अतिरिक्त शेष या अवशिष्ट शक्तियाँ (residuary powers) दोनों में से किसी को दे दी जाती हैं। भारत और कैनेडा में अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र के पास हैं और सं० रा० अमरीका में वे राज्यों के पास हैं। तीसरे, संघ में उच्चतम न्यायालय का होना भी अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि यदि संविधान के निर्वचन या व्याख्या (interpretation) के बारे में या क्षेत्राधिकार (jurisdiction) के सम्बन्ध में दोनों केन्द्र और उपराज्यों की सरकारों में मत-भेद या वाद-विवाद उत्पन्न हो जाए, तो उस समय उस उच्चतम न्यायालय का निर्णय अन्तिम होगा। यह बात याद रखने योग्य है कि न तो केन्द्र उपराज्यों की (संविधान में लिखी हुई) शक्तियों में हस्तक्षेप कर सकता है और न ही उपराज्य केन्द्र की शक्तियों का अपहरण करने में समर्थ हैं। यह पहले ही बताया जा चुका है कि दोनों की शक्तियाँ संविधान द्वारा निश्चित होती हैं। संविधान का संरक्षक उच्चतम न्यायालय को नियत किया जाता है। इसलिए उच्चतम न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त होती है कि यदि केन्द्र या उपराज्यों की सरकारें कोई कानून संविधान की धाराओं के विरुद्ध बनाएँ तो उसको अवैध (illegal) घोषित कर दे।

संघात्मक सरकार के गुण (Merits of Federal Govt.)

संघात्मक सरकार के निम्नलिखित गुण हैं—

(१) **यह स्थानीय स्वराज्य और राष्ट्रीय एकता की समस्या को हल कर देती है** (Reconciliation of Local Autonomy and National Unity)—संघात्मक शासन का बड़ा भारी गुण यह है कि जिस देश में अनेक स्वतन्त्र राज्य विद्यमान हों और जहाँ पर एकात्मक शासन सम्भव न हो, वहाँ पर संघात्मक राज्य के द्वारा देश में ऐक्य कायम हो जाता है। इसलिए डायसी के मतानुसार संघ राष्ट्रीय एकता और शक्ति तथा राज्यों के अधिकारों में सन्धि स्थापित करने का एक राजनैतिक उपाय है।[1] इसलिए विभिन्नता में एकता (unity in diversity) का यह बड़ा भारी प्रदर्शन है। दूसरे शब्दों में स्थानीय स्वराज्य और राष्ट्रीय एकता की समस्या हल हो जाती है।

(२) **केन्द्र और उप-राज्यों में शक्ति-विभाजन से प्रशासनीय दक्षता** (Administrative Efficiency) **आ जाती है**—इसके द्वारा केन्द्रीय सरकार का बोझ हल्का होता है क्योंकि स्थानीय मामलों का प्रशासन उप-राज्यों द्वारा चलाया जाता है और तमाम देश भर के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य केन्द्र द्वारा प्रशासित किये जाते हैं। इस में प्रशासन में कुछ दक्षता भी उत्पन्न हो जाती है क्योंकि स्थानीय मामलों को उप-राज्यों की सरकारें अधिक सफलता से सुलझा सकती हैं।

(३) **उप-राज्य की नागरिकता की अपेक्षा संघ की नागरिकता अधिक सम्मान-प्रद है** (Citizenship of Federal Govt. is more Dignified than that of its Units)—यह नागरिकों को गौरव भी प्रदान करती है क्योंकि एक छोटे से राज्य की अपेक्षा एक बड़े भारी देश का नागरिक होना अधिक सम्मानप्रद है। यदि हम किसी दूसरे देश में आसाम या मद्रास के नागरिक अपने आपको कहें तो यह इतना गौरव-पूर्ण प्रतीत नहीं होगा जितना कि जब हम अपने आपको भारतीय कहें। इसी प्रकार न्यूयार्क की नागरिकता की अपेक्षा संयुक्त राज्य अमरीका की नागरिकता अधिक महत्त्वपूर्ण है।

(४) **स्थानीय मामलों में रुचि बढ़ाती है** (Creates Interest in Local Affairs)—सार्वजनिक कार्यों के प्रति उदासीनता उत्पन्न नहीं होने पाती। लोगों की स्थानीय मामलों में अधिक से अधिक रुचि बढ़ती है जब उनको स्वयं स्थानीय विषयों का संचालन करना पड़ता है। इससे उनकी सुप्त शक्तियों का भी विकास होता है।

(५) **छोटे-छोटे राज्यों के लिए यह प्रणाली अधिक लाभप्रद है क्योंकि वे अलग रह कर साम्राज्यवादी देशों से अपनी रक्षा नहीं कर सकते** (Beneficial to Smaller States as it enables them to unite for Common Defence Without Loss of Local Autonomy)—छोटे-छोटे राज्यों के लिए यह प्रणाली अधिक लाभदायक होती है क्योंकि वे अकेले रह कर उग्र राष्ट्रवाद (aggressive nationalism) तथा साम्राज्यवाद से अपनी रक्षा नहीं कर सकते। छोटे-छोटे राज्य

1. "A Federal State is nothing but a political contrivance intended to reconcile national unity with the maintenance of State rights."—*Dicey.*

बहुत बड़े-बड़े राष्ट्रों की कृपा पर जीते हैं। इसके अतिरिक्त छोटे राज्य अपने लिए अलग-अलग बहुत बड़ी नौ सेना (navy), स्थल सेना (land army) और वायु सेना (air force) नहीं रख सकते। इसी प्रकार विदेश विभाग रखने में बड़ा भारी खर्चा पड़ता है। ये सब कार्य संघात्मक शासन में बहुत बचत से हो जाते हैं और उप-राज्यों को नहीं करने पड़ते।

(६) **यह भिन्नता में एकता स्थापित करती है** (It Creates Unity in Diversity)—यह प्रणाली उन देशों के लिए विशेष लाभदायक है जिनका क्षेत्रफल बहुत बड़ा हो और जहाँ भाषा, धर्म, जाति और रंग की बहुत अधिक भिन्नता हो। वहाँ पर इसके द्वारा एकता निर्माण की जाती है। इसी कारण से इसको भारत, सोवियत संघ, अमरीका, कैनेडा और आस्ट्रेलिया जैसे बड़े देशों ने अपनाया है। इस से वहाँ बड़े बलशाली राष्ट्र का उदय हुआ है क्योंकि भिन्नता को राष्ट्र की उन्नति में रोड़े नहीं अटकाने दिया गया।

(७) **इसमें संघीय सरकार निरंकुश नहीं होने पाती** (It Prevents the Central Govt. from being Despotic)—इसमें प्रान्तीय अथवा संघीय सरकार (Central Govt.) निरंकुश नहीं होने पाती क्योंकि प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार के मामलों में दखल नहीं दे सकतीं और न ही केन्द्र प्रान्तीय सरकारों के मामलों में ऐसा कर सकता है। प्रत्येक का क्षेत्राधिकार सीमित है। अमरीकी संघ में नियंत्रण और सन्तुलन की प्रणाली (system of checks and balances) भी शक्तियों के विभाजन के अतिरिक्त अपनायी गयी है, उससे भी निरंकुशता रुकती है।

(८) **विश्व-संघ के लिए संधान एक बड़ा कदम है** (Federation is a Great March towards World-federation)—संघीय शासन विश्व-संघ (world-federation) की तरफ बड़ा भारी संकेत है। संघीय शासन विश्व-संघ के लिए मार्ग-दर्शन कर सकता है। बहुत से राजनीतिज्ञों का विचार है कि संसार को युद्धों की महाज्वालाओं से बचाने का विश्व-संघ ही एकमात्र उपाय है।

संघात्मक शासन के दोष
(Demerits of Federal form of Govt.)

(१) **दोहरी नागरिकता** (Double Citizenship)—इसमें प्रायः दोहरी नागरिकता होती है जिससे विभाजित राज-भक्ति (divided loyalty) का जन्म होता है। एक मनुष्य को अमरीका में एक उपराज्य (जैसे न्यूयार्क) और इसके अतिरिक्त तमाम देश का भी नागरिक होना पड़ता है। एक मनुष्य दो स्वामियों की भक्ति भलीभाँति नहीं कर सकता।

(२) **अनुरूपता की कमी** (Lack of Uniformity)—संघीय शासन में अनुरूपता (uniformity) की बड़ी भारी कमी होती है। कई बार केन्द्र में एक पार्टी का शासन होता है और उप-राज्यों में दूसरी का। वहाँ पर उप-राज्यों की नीति कई मामलों में केन्द्रीय सरकार से भिन्न होती है। बहुत से विषयों पर केन्द्र और उप-राज्य, दोनों को कानून बनाने का अधिकार होता है, जैसे शादी, विवाह-विच्छेद

(divorce), बीमा, दीवानी और फौजदारी कानून इत्यादि। ऐसे विषयों पर केन्द्रीय संसद् (parliament) कुछ कानून बनाती है और विधान-सभाएँ कुछ और। ऐसी दशा में जब दो विरोधी कानून देश में पास हो जाते हैं तो बहुत भ्रान्ति उत्पन्न होती है।

(३) **शक्ति-विभाजन के कारण केन्द्र और उप-राज्यों की सरकारों में गतिरोध उत्पन्न हो जाता है** (Distribution of Powers between Central and States Govts. Leads to Many Conflicts)—संघात्मक सरकार में लड़ाई-झगड़े की बड़ी गुँजाइश रहती है क्योंकि प्रत्येक का क्षेत्राधिकार दूसरे से अलग रहता है। उप-राज्यों की सरकारों तथा केन्द्र की सरकार में झगड़ा पैदा होने के कारण कई मामलों में गतिरोध (deadlock) उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि झगड़े का फैसला करने के लिए सुप्रीम कोर्ट होती है, तो भी सहयोग आपस में नहीं रह पाता क्योंकि हर एक मामला सुप्रीम कोर्ट में नहीं लाया जा सकता।

(४) **एकात्मक सरकार की अपेक्षा संघीय सरकार दुर्बल होती है** (Federal Govt. is Weak in comparison with Unitary Govt.)—संघात्मक सरकार एकात्मक सरकार की अपेक्षा काफी कमजोर होती है क्योंकि इसमें शक्तियों का विभाजन रहता है। जो एकात्मक सरकार में शक्तियों के केन्द्रीकरण के कारण शीघ्र निर्णय, एकरूपता, दृढता और सुचारुता, तथा उद्देश्य की एकता सम्भव है, वह संघात्मक सरकार में लुप्तप्राय हो जाती है। फलतः आन्तरिक शासन में दुर्बलता आ जाती है और वैदेशिक नीति में मजबूती नहीं रहती।

(५) **संघीय सरकार एकात्मक सरकार की अपेक्षा अधिक मँहगी है** (Federal Govt. is more Expensive than Unitary Govt. because it has a Double Set of Legislatures and a Double System of Administration)—संघीय सरकार में केन्द्र के लिए अलग कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा व्यवस्थापिका होती है और उप-राज्यों के लिए अलग। इससे धन का बहुत अपव्यय होता है। इतना ही नहीं बल्कि हर एक काम में विलम्ब की सम्भावना रहती है और अनुत्तरदायित्व बढ़ता है।

(६) **संघात्मक प्रणाली में प्रान्तीय भावनाएँ बहुत उग्र होती हैं** (Acute Porvincialism exists in Federal Types of Govt.)—कई बार संघात्मक शासन में उपराज्यों की सरकारों की आपस में प्रतिस्पर्द्धा, द्वेष और वैर-भाव चलता है। भारत में ही प्रत्येक उप-राज्य की सरकार चाहती है कि उसके उप-राज्य में केन्द्र अधिक से अधिक कारखाने खोले तथा अन्य प्राजेक्ट शुरू करे। राज्यों के पुनर्गठन के कारण भी बहुत अशान्ति उत्पन्न हुई और झगड़े चले। इस से देश का संगठन अस्त-व्यस्त हो जाता है।

(७) **संघ के भंग होने का भय** (Danger of Secession)—संघ के भंग होने का भय रहता है। सोवियत संघ में एक उप-राज्य को केन्द्र से अलग होने का भी अधिकार है। उप-राज्यों की सरकारों को काफी शक्ति प्राप्त होती है, अतः कभी भी स्वार्थ-भावना से वह केन्द्र के विरुद्ध विप्लव कर सकते हैं। अमरीका में दक्षिणी

प्रान्तों ने उत्तरी प्रान्तों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था, यद्यपि उसमें उनको सफलता नहीं मिली।

सांसद तथा अध्यक्षात्मक शासन-पद्धतियाँ
(Parliamentary and Presidential Govts.)

सांसद पद्धति को संसदीय या संसदात्मक भी कहते हैं। शासनों को इस आधार पर भी बाँटा गया है कि कार्यपालिका का व्यवस्थापिका से क्या सम्बन्ध है। जहाँ पर कार्यपालिका व्यवस्थापिका के अधीन होती है उसको हम सांसद या मन्त्रिमण्डलात्मक अथवा उत्तरदायी सरकार (Parliamentary, Cabinet or Responsible type of Govt.) कहते हैं। जहाँ शक्तियों का पृथक्करण (separation of powers) होता है, वहाँ कार्यपालिका व्यवस्थापिका से स्वतन्त्र होती है। उस पद्धति को हम अध्यक्षात्मक (Presidential) कहते हैं। वास्तव में शासन की ये दो प्रणालियाँ कार्यपालिका के ही दो प्रमुख भेद हैं। फ्रांस, इंगलैंड और भारत में सांसद पद्धति अपनायी गई है और संयुक्त राज्य अमरीका तथा दक्षिणी अमरीका के कुछ देशों में अध्यक्षात्मक सरकार प्रचलित है।

सांसद सरकार के मुख्य लक्षण
(Main Features of Parliamentary Govt.)

मन्त्रिमण्डल का निम्न सदन के प्रति उत्तरदायित्व—राज्य का मुखिया नाममात्र सत्ताधारी—अवधि की अनिश्चितता (Joint Responsibility of Cabinet to the Lower House of Parliament—Head of the State Nominal—Indefinite Term of Cabinet)—डाक्टर गार्नर के मतानुसार सांसद या मन्त्रिमण्डलात्मक सरकार उस पद्धति को कहते हैं जिसमें यथार्थ कार्यपालिका अर्थात् मंत्रिमण्डल या मंत्रि-परिषद् को अपने कानून या प्रशासन-सम्बन्धी कार्यों के लिए व्यवस्थापिका या इसकी एक शाखा (प्रायः अधिक लोकप्रिय सभा या निम्न सदन) की ओर तात्कालिक और वैधानिक उत्तरदायित्व या जिम्मेवारी होती है, और राजनैतिक रूप से जिम्मेवारी निर्वाचकगण (electorate) की तरफ होती है, जबकि नाममात्र कार्यपालिका अर्थात् राज्य का मुखिया अनुत्तरदायी होता है।[1] इसलिए इस परिभाषा से ज्ञात होता है कि मंत्रिमण्डलात्मक सरकार में मंत्रिमंडल के पास यथार्थ शक्तियाँ रहती हैं और वह अपने शासन-सम्बन्धी कार्यों के लिए प्रथम सदन या निम्न-सदन (Lower House) के प्रति उत्तरदायी (responsible) होता है अर्थात् वह तब तक शासन कर सकता है जब तक उसमें व्यवस्थापिका का विश्वास हो। इसलिए इस

1. "Cabinet Govt. is that system in which the real executive – the Cabinet or Ministry—immediately and legally responsible to the legislature of one branch of it (usully the more popular chamber) for its legislative and administrative acts, and immediately or politically responsible to the electorate, while the titular or nominal executive—the chief of State—occupies a position of irresponsibility." —*Garner.*

पद्धति में कार्यपालिका या मन्त्रिमण्डल व्यवस्थापिका के अधीन रहता है और व्यवस्थापिका का नियन्त्रण कार्यपालिका के ऊपर कई प्रकार से लागू किया जाता है। उदाहरणस्वरूप, हमारे देश में संसद् के प्रथम सदन अर्थात् लोकसभा को अविश्वास प्रस्ताव (no-confidence motion) द्वारा मन्त्रिमण्डल को हटाने का पूर्ण अधिकार है। अगर लोकसभा सरकार के किसी महत्त्वपूर्ण विधेयक (bill) को पास न करे तो भी सरकार को त्याग-पत्र देना पड़ता है या प्रधान मन्त्री राष्ट्रपति से लोकसभा के विघटन (dissolution) के लिए प्रार्थना करता है। यदि राष्ट्रपति लोकसभा का विघटन कर दे, तो नये चुनाव होते हैं। इसके अतिरिक्त व्यवस्थापिका या संसद् मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध स्थगन प्रस्ताव (adjournment motion) और निन्दा प्रस्ताव (censure motion) पास कर सकती है तथा सरकार के कामों की जाँच-पड़ताल के लिए अनुसंधान आयोग (investigation commissions) नियुक्त कर सकती है। संसद् के सदस्यों को मन्त्रियों से प्रश्न और सहायक प्रश्न (questions and supplementary questions) पूछने का भी अधिकार होता है। दूसरे, इस पद्धति में राष्ट्रपति (President) की शक्तियाँ नाम-मात्र की होती हैं। वह केवल राज्य का संवैधानिक मुखिया (constitutional head) होता है। यदि उसका प्रधान मन्त्री से किसी प्रशासन-सम्बन्धी मामले में मतभेद हो जाय तो उसको प्रधान मन्त्री की बात माननी पड़ेगी। भारत में राष्ट्रपति पाँच वर्ष के लिए चुना जाता है और संसद् के प्रति अनुत्तरदायी होता है। अमरीका में राष्ट्रपति केवल चार वर्ष के लिए चुना जाता है। (अमरीका और भारत के राष्ट्रपतियों की शक्तियों में बहुत भिन्नता है) तीसरे, इस पद्धति में शक्तियों का पृथक्करण नहीं रहता है, क्योंकि कार्यपालिका व्यवस्थापिका के अधीन होती है।

मन्त्रिमण्डल और संसद् का संयोग—प्रधान-मन्त्री दोनों का नेता—सामूहिक उत्तरदायित्व—मन्त्रिमण्डल की एकता (Cabinet Govt. based on the Negation Theory of Separation of Powers—Harmony between Cabinet and Parliament as Prime Minister is a link between the two—Solidarity of Cabinet)—मन्त्रिमण्डलात्मक या सांसद सरकार में प्रधान मन्त्री सरकार का नेता समझा जाता है। वह मन्त्रिमण्डल का भी नेता होता है और इसकी बैठकों में सभापतित्व (preside) करता है। प्रधान मन्त्री को किसी मन्त्री को हटाने और उसके स्थान पर नये आदमी को नियुक्त करने का भी अधिकार होता है। मन्त्रिमण्डल का लोकसभा के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व (collective responsibility) रहता है। मन्त्रियों की संख्या निश्चित नहीं होती, आवश्यकता के अनुसार घटाई-बढ़ाई जा सकती है। प्रधान मन्त्री के कहने पर ही राष्ट्रपति मन्त्रियों में विभागों का वितरण (distribution of portfolios) करता है। इसके अलावा मन्त्रिमण्डल की बैठक (meeting) में लिये गये निर्णयों का सभी मन्त्रियों को पालन करना पड़ता है चाहे वे उस फैसले से सहमत हों या न हों। कार्यपालिका कोई भी टैक्स संसद् की मंजूरी के बिना नहीं लगा सकती। मन्त्रिमण्डल के सदस्य संसद् के भी सदस्य होते हैं और वे संसद् में से ही लिये जाते हैं। वे संसद् की बैठकों में भाग लेते हैं।

संसदात्मक पद्धति के गुण (Merits of Parliamentary Govt.)

(१) संसदात्मक प्रणाली अधिक लोकतन्त्रात्मक होती है (It is More Democratic)—संसदात्मक या सांसद प्रणाली का सब से बड़ा गुण यह है कि इसमें मन्त्रिमण्डल संसद् के प्रथम सदन के प्रति उत्तरदायी रहता है। इसलिए लोकप्रिय सदन (popular chamber) जो कि राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, मन्त्रिमण्डल पर अपना पूरा नियन्त्रण रखता है। मन्त्रिमण्डल लोकमत के अनुसार कार्य चलाने का यत्न करता है क्योंकि वरना अविश्वास प्रस्ताव (no-confidence motion) के द्वारा इसे हटा दिया जाता है। इसलिए इसमें निरंकुशता कायम नहीं हो सकती। अध्यक्षात्मक पद्धति में राष्ट्रपति चार वर्ष से पूर्व प्रायः हटाया नहीं जा सकता, इसलिए यह पद्धति इतनी लोकतन्त्रात्मक नहीं जितनी कि संसदात्मक।

(२) इस पद्धति में मन्त्रिमण्डल और संसद् में गतिरोध पैदा नहीं होता (Harmony between Executive and Legislature)—इसमें मन्त्रिमण्डल और संसद् में गतिरोध होने की आशा नहीं क्योंकि यह पद्धति मन्त्रिमण्डल और संसद् के घनिष्ठ सम्बन्ध पर आधारित है। मन्त्रिमण्डल संसद् के अधीन रहता है। उसको हटाने का संसद् को पूर्ण अधिकार है। इसी प्रकार प्रधान मन्त्री के परामर्श से राष्ट्रपति निम्न सदन का विघटन (dissolution) कर सकता है। प्रधान मन्त्री मन्त्रिमण्डल और संसद् में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी (link) है क्योंकि वह संसद् में बहुमत दल (majority party) का नेता होता है और मन्त्रिमण्डल का भी कर्णधार। प्रधान मन्त्री अपने पद पर तभी रह सकता है जब कि उसको संसद् के बहुमत का विश्वास प्राप्त है, वरना उसे त्याग-पत्र देना पड़ेगा और विरोधी दल का नेता प्रधान मन्त्री बनेगा। इस प्रकार दोनों अंगों में आपस में मेल-मिलाप कायम रहता है।

(३) प्रधान मन्त्री अपनी नीति का दृढ़तापूर्वक पालन करवा सकता है (Prime Minister can carry on Govt. with Confidence due to the Majority at his Disposal)—इस पद्धति में प्रधान मन्त्री अपनी नीति का दृढ़तापूर्वक पालन करवा सकता है क्योंकि उसके पक्ष में संसद् का बहुमत होता है।

(४) राष्ट्रपति निष्पक्ष अनुमति देता है (The President being a Non-party man gives Valuable Advice)—इसका एक लाभ यह है कि राष्ट्रपति किसी राजनीति में भाग नहीं लेता और तटस्थ रहता है। उसकी अनुमति का दोनों—सरकारी दल तथा विरोधी दल—बहुत आदर करते हैं। उसके परामर्श के कारण राजनीति में सन्तुलन कायम रहता है।

(५) समय के अनुसार परिवर्त्तनशील (Adjustable according to Changing Times)—यह सरकार समय के अनुसार बदली जा सकती है। इसलिए लचीलापन (flexibility) इसका बड़ा भारी गुण है। दूसरे महायुद्ध में अंग्रेजों ने हिटलर के हमलों से उत्पन्न आकस्मिक परिस्थिति का मुकाबला करने के लिए चैम्बरलेन की अपेक्षा चर्चिल सरकार को अधिक पुष्टि दी।

(६) यह अधिक शिक्षाप्रद है (It is More Educative)—यह पद्धति

अधिक शिक्षाप्रद है क्योंकि यह दलबन्दी की भावना पर आधारित है। दलबन्दी (party system) में बड़े भारी संगठन की आवश्यकता होती है और इसके द्वारा देश के सामने एक प्रोग्राम रखा जाता है। चुनाव के दिनों में राजनैतिक दल जनता की उदासीनता दूर करते हैं, उन्हें ओजस्वी भाषणों के द्वारा राजनैतिक समस्याओं को समझने के लिए प्रोत्साहित करते हैं और मत देने के लिए नियुक्त स्थान पर आने के लिए विवश करते हैं।

(७) **इस पद्धति में मन्त्रियों को अपनी योग्यता प्रदर्शित करने के लिए अधिक अवसर प्राप्त होते हैं** (Ministers get the Chance to Show their Ability more in Parliamentary Govt. than Presidential one)—यह अध्यक्षात्मक पद्धति की अपेक्षा अधिक योग्य व्यक्तियों को जन्म देती है क्योंकि इसमें लोग जब तक अपनी विशेष योग्यता का दिग्दर्शन न करा दें, तब तक वे मन्त्रिमण्डल के सदस्य की पदवी तक ऊँचे नहीं उठ सकते। प्रधान मन्त्री को तो बहुत ही बुद्धिमान् और कार्य-कुशल होने की आवश्यकता है। इसमें मन्त्रियों को अपनी असाधारण योग्यता का प्रदर्शन करने के लिए भी अधिक अवसर प्राप्त होते हैं। भारत में सरदार बल्लभ भाई पटेल और श्री रफी अहमद किदवई ने अपनी अद्वितीय योग्यता का ज्वलन्त उदाहरण देश के सामने प्रस्तुत किया। अध्यक्षात्मक पद्धति में एक मन्त्री या सचिव कितना भी योग्य क्यों न हो, वह राष्ट्रपति (president) के संकेतों पर नाचता है। अमरीका में युद्धकालीन अवस्था को छोड़ कर राष्ट्रपति को काँग्रेस (American Legislature) का सामना करना पड़ता है।

संसदात्मक पद्धति के दोष (Demerits of Parliamentary Govt.)

इस प्रणाली में दोष यह है कि इसमें मन्त्रिमण्डल की तानाशाही स्थापित हो जाती है। यह शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त के विरुद्ध है। इस से शासन में दक्षता नहीं रहती क्योंकि मन्त्री राजनैतिक कार्यों में व्यस्त रहते हैं। कई बार ऐसी सरकार मन्त्रिमण्डल में भिन्न-भिन्न मत होने के कारण किसी भयानक परिस्थिति का मज़बूती से मुकाबला नहीं कर पाती।

अध्यक्षात्मक पद्धति (Presidential System of Govt.)

विधानमण्डल और कार्यपालिका की पृथक्ता—अनुत्तरदायित्व का अस्तित्व (Separation of Executive and Legislature—Absence of Responsibility)—डाक्टर गार्नर के मतानुसार, "अध्यक्षात्मक शासन-पद्धति (presidential Govt.) की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें राज्य का प्रमुख तथा उसके मन्त्री पार्लियामेंट से सर्वथा स्वतन्त्र होते हैं और वे अपनी अवधि तथा अपनी राजकीय नीतियों के लिए उसके प्रति उत्तरदायी नहीं होते।"[1] राष्ट्रपति अमरीका में व्यवस्थापिका का सदस्य नहीं होता और न ही उसके सचिव (secretaries) किसी कार्य के

1. "Presidential Govt.....is that form in which the Executive is constitutionally independent of the Legislature as regards his tenure and to a large extent also as regards his policies and acts."—*Garner.*

लिए कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी होते हैं। और वे कांग्रेस (व्यवस्थापिका) के सदस्य भी नहीं होते हैं इसलिए अध्यक्षात्मक शासन शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त (separation of powers) पर आधारित है। राष्ट्रपति केवल कांग्रेस से महाभियोग (impeachment) द्वारा हटाया जा सकता है।

राष्ट्रपति की प्रधानता और सचिवों की आवश्यकता (Minister is the shadow of his chief)—राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल का प्रमुख होता है, वह मन्त्रियों को अपनी इच्छानुसार नियुक्त कर सकता है और हटा सकता है। मन्त्री या सचिव वास्तव में राष्ट्रपति के सेवक होते हैं न कि धारा सभा के। राष्ट्रपति मन्त्रियों से परामर्श कर सकता है परन्तु उनके परामर्श से बँधा हुआ नहीं है। वास्तविक शक्तियाँ राष्ट्रपति के पास होती हैं और सचिव उसके संकेतों के अनुसार कार्य करते हैं। इसलिए इस पद्धति में राष्ट्रपति की सत्ता नाम-मात्र की नहीं होती बल्कि वह शासन और राज्य का मुखिया होता है और संविधान द्वारा दी गयी सभी शक्तियों का प्रयोग करता है।

निश्चित अवधि—राष्ट्रपति निश्चित अवधि के लिए चुना जाता है। अमरीका में राष्ट्रपति केवल चार साल के लिए चुना जाता है और वह इस से पहले केवल गम्भीर अपराधों के लिए ही हटाया जा सकता है वरना वह साधारणतया अपनी अवधि से पूर्व नहीं हटाया जा सकता। अमरीका में अब तक कोई भी राष्ट्रपति कांग्रेस द्वारा महाभियोग के कारण नहीं हटाया गया है। व्यवस्थापिका कार्यपालिका के कार्यों की चाहे जितनी निन्दा करे, वह उसे त्याग-पत्र देने के लिए बाध्य नहीं कर सकती। कार्यकारिणी के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव भी पास नहीं किया जा सकता। राष्ट्रपति भी कांग्रेस का विघटन (dissolution) नहीं कर सकता।

इस प्रणाली के गुण (Merits of Presidential System of Govt.)

इस प्रणाली के निम्नलिखित गुण हैं—

(१) **सरकार में स्थायित्व आ जाता है** (Executive becomes More Stable due to Fixed Terms of President)—इस प्रणाली में सब से बड़ा गुण यह है कि इसमें राष्ट्रपति की निश्चित अवधि होती है। वह अपने समय से पूर्व कांग्रेस द्वारा नहीं हटाया जा सकता। इससे कार्यपालिका स्थिर रहती है और उसे व्यवस्थापिका से हटाए जाने का भय नहीं रहता। इसलिए स्वतन्त्र कार्यपालिका को व्यवस्थापिका के प्रसन्न करने की चिन्ता नहीं रहती और वह एक स्वतन्त्र गृह तथा वैदेशिक नीति का अनुसरण कर सकती है। कार्यपालिका की नीति में स्थायित्व (permanence) और एकरूपता (uniformity) आ जाती है।

(२) **मन्त्रियों को अपना समय राजनैतिक झगड़ों में नहीं लगाना पड़ता, अतः प्रशासनीय दक्षता का निर्माण** (Ministers have not to Waste Time in Political matters and that leads to Administrative Efficiency)—मन्त्रियों या सचिवों (secretaries) को राजनैतिक मामलों में नहीं फँसना पड़ता। उनको कांग्रेस में बहुमत प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती और न ही उन्हें

काँग्रेस में कोई शासन के सम्बन्ध में उत्तर देना पड़ता है अर्थात् उन्हें काँग्रेस के प्रति उत्तरदायी नहीं होना पड़ता। वे काँग्रेस के सदस्य भी नहीं होते। राष्ट्रपति उन्हें राजनैतिक आधार पर नहीं बल्कि किसी खास क्षेत्र में प्रवीणता के कारण ही चुनता है। उन से आशा की जाती है कि वे अपना सारा समय शासन-सम्बन्धी कार्यों में लगावें। अतः वे अच्छी से अच्छी योजना तैयार करने में व्यस्त रहते हैं।

(३) **यह संकट-काल में मजबूती से खड़ी रहती है** (Does Not Tumble Down in Crisis)—इस पद्धति में शासन की बागडोर एक व्यक्ति के हाथ में रहती है। संकट-काल में इस प्रणाली का विशेष लाभ दिखाई देता है। अमरीका में कई राष्ट्रपति लगातार दस या बारह साल तक रहे हैं। यद्यपि अमरीका में राष्ट्रपति केवल दो बार चुनाव के लिए खड़ा हो सकता है परन्तु कई बार इस परिपाटी को तोड़ा भी गया है; उदाहरणार्थ श्री रूजवेल्ट आठ वर्ष से अधिक राष्ट्रपति के पद पर आसीन रहे। युद्ध या किसी आर्थिक संकट के समय संयुक्त राज्य अमरीका में राष्ट्रपति एक प्रकार से अधिनायक (dictator) हो जाता है और काँग्रेस उसको सारी शक्तियाँ सौंप देती है। राष्ट्रपति शीघ्र निर्णय ले सकता है और इससे शासन की कार्यक्षमता (efficiency) भी बढ़ जाती है।

(४) **दलबन्दी का कम प्रभाव**—इसमें दलबन्दी का इतना प्रभाव नहीं रहता जितना कि सांसद प्रणाली में। इसमें विपक्षी दल की सरकार को हटा कर उसके स्थान में स्वयं पद ग्रहण करने का लालच नहीं रहता।

(५) **शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त पर आश्रित**—प्रधानात्मक शासन शक्तियो के पृथक्करण पर आधारित है और अमरीकनों द्वारा यह सिद्धान्त स्वातन्त्र्य के लिए बहुत जरूरी समझा जाता है।

अध्यक्षात्मक शासन के दोष
(Demerits of Presidential System of Govt.)

(१) **गतिरोध** (Deadlocks)—कार्यपालिका को व्यवस्थापिका से स्वतन्त्र बनाना उचित नहीं है क्योंकि सरकार के भिन्न-भिन्न विभागों में इसी प्रकार एकता है जैसे कि शरीर के बहुत से भागों में। जहाँ पर कार्यपालिका एक पार्टी की होती है और व्यवस्थापिका दूसरी की, वहाँ पर गतिरोध (deadlock) उत्पन्न होने की पूर्ण आशा रहती है। इस गतिरोध को हल करने का कोई उपाय नहीं है। १९१९ ईस्वी में प्रेजीडेण्ट विल्सन के साथ ऐसा ही हुआ। वार्साई की सन्धि (Treaty of Versailles) को सिनेट ने रद्द कर दिया क्योंकि काँग्रेस में दूसरी पार्टी का प्रभुत्व कायम हो गया था। फलतः अमरीका राष्ट्र-संघ (League of Nations) का सदस्य नहीं बन सका। इसलिए कार्यकुशलता में कमी आ जाती है। इस प्रणाली का इसलिए यह बड़ा भारी दोष है कि स्वाभाविक रूप से परस्पर सम्बद्ध दोनों विभागों को जबर्दस्ती अलग कर देती है।

(२) **यह प्रणाली लचीली नहीं है** (It is Generally Rigid)—यह प्रणाली लचीली नहीं है अर्थात् समयानुकूल बदली नहीं जा सकती। यदि आप राष्ट्र-

पति या व्यवस्थापिका को बदलना चाहें तो इस प्रणाली में ऐसा नहीं कर सकते क्योंकि राष्ट्रपति एक निश्चित अवधि के लिए चुना जाता है। व्यवस्थापिका भी अवधि से पहले समाप्त नहीं की जा सकती। बेजहोट लिखता है कि "आप पहले से ही अपने शासन को स्थिर कर लेते हैं और चाहे वह अनुकूल हो या न हो, चाहे वह ठीक प्रकार से काम करे या न करे, चाहे आप उसे चाहें या न चाहें, कानून के अनुसार आपको उसे कायम रखना होगा।" इसके विरुद्ध संसदात्मक प्रणाली लचीली है।

(३) **मन्त्रिमण्डल गैर-जिम्मेवार** (No Responsibility of Ministers)—इस में नियन्त्रण और सन्तुलन (checks and balances) की प्रथा है। राष्ट्रपति काँग्रेस पर कानून आदि के सम्बन्ध में नियन्त्रण रखता है और काँग्रेस की स्वीकृति राष्ट्रपति को महत्त्वपूर्ण नियुक्तियों में लेनी पड़ती है। गलती होने पर राष्ट्रपति काँग्रेस पर दोषारोपण करता है और काँग्रेस राष्ट्रपति पर। मन्त्रिमण्डल में जिम्मेवारी केन्द्रित है परन्तु इसमें वैसा नहीं है।

(४) **राष्ट्रपति स्वेच्छाचारी बन सकता है** (President might become Despotic)—राष्ट्रपति स्वेच्छाचारी तथा अनुत्तरदायी हो सकता है।

सारांश

पोप ने ठीक ही कहा है कि मूर्ख सरकार के रूपों के बारे में व्यर्थ झगड़ते हैं; जिस रूप से प्रशासन सर्वश्रेष्ठ हो, सरकार का वही रूप सर्वश्रेष्ठ है। **अरस्तू ने सरकार का वर्गीकरण** संख्या और लक्ष्य (end and number) के आधार पर किया है। उसके विचार में यदि शासन एक आदमी द्वारा लोक-हित के लिए चलाया जाय तो यह राजतन्त्र होगा। यदि यह कुछ व्यक्तियों द्वारा चलाया जाय तो कुलीनतन्त्र होगा और इसी प्रकार लोक-कल्याण के लिए बहुत से आदमियों द्वारा चलाया हुआ शासन बहुतन्त्र कहलाएगा। यह शासन का प्राकृतिक रूप है। इसके विरुद्ध अरस्तू ने शासनों का विकृत रूप भी दिया है। यदि शासन स्वार्थ-सिद्धि के लिए चलाया जाय तो एक मनुष्य का शासन अन्यायी शासन (tyranny), कुछ व्यक्तियों का शासन अल्प-जनतन्त्र और बहुत से व्यक्तियों का शासन जनतन्त्र कहलाएगा। अरस्तू के इस वर्गीकरण की कड़ी आलोचना की गई है। आलोचकों का मत है कि यह वर्गीकरण आधुनिक राज्यों पर लागू नहीं किया जा सकता। आधुनिक राज्यों में लोकतन्त्र, राजतन्त्र और एकात्मक शासन इकट्ठा मिल जाता है, जैसे इंगलैण्ड में।

राजतन्त्र और कुलीनतन्त्र—राजतन्त्र में अन्तिम शक्ति एक आदमी के हाथों में रहती है और उसके राजनैतिक अधिकार पैतृक होते हैं। राजतन्त्र निर्वाचित (elective) भी हो सकता है और वंशागत (hereditary) भी। पोलैण्ड और रोम में निर्वाचित राजतन्त्र (elective monarchy) प्रचलित था। भारत में भी कहीं-कहीं पर यह प्रथा विद्यमान थी। वंशानुगत राजतन्त्र अफगानिस्तान, ईरान, जापान और इंगलैण्ड इत्यादि देशों में प्रचलित है। निरंकुश राजतन्त्र से यह लाभ है कि इसमें शासन शक्तिशाली होता है, फैसले शीघ्र होते हैं, विभाजित मन्त्रणा नहीं होने पाती और मन्त्री चुनाव की चिन्ता किए बिना शासन-कार्य ठीक ढंग से चला सकते हैं। इस

से हानि यह है कि कई बार योग्य व्यक्तियों के हाथ में शासन नहीं रहता और वे देश पर तबाही व बरबादी लाते हैं तथा जनता की स्वतन्त्रता को बिल्कुल नष्ट कर देते हैं।

कुलीनतन्त्र समाज में सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों का शासन है परन्तु बुद्धि का शासन समाज में चिरस्थायी नहीं होता। बहुत शीघ्र ही बुद्धि का शासन धनवान् व्यक्तियों का शासन बन जाता है। धनवान् व्यक्तियों का शासन अच्छा नहीं होता। इसमें इसके अतिरिक्त यह भी दोष है कि इसमें राजनैतिक अधिकार पैतृक होते हैं और यह एक वर्ग-विशेष का शासन बन जाता है परन्तु इसमें सब से बड़ा गुण यह है कि इसमें संख्या की अपेक्षा गुणों पर अधिक जोर दिया जाता है और समाज में सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों का शासन रहता है।

लोकतन्त्र—लोकतन्त्र जनता का, जनता के लिए और जनता द्वारा शासन है। ब्राइस का कथन है कि प्रजातन्त्र एक ऐसी शासन-प्रणाली है जिसमें राज्य की शासन-सत्ता (ruling power of a state) समस्त समाज के पास होती है न कि विशेष समुदाय या वर्ग के हाथ में। प्रजातन्त्र का लक्ष्य समाज में आर्थिक और सामाजिक समानता कायम करना है। इसीलिए जर्मन लेखक काँट (Kant) लिखता है कि कोई भी व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के सुख-सुविधा या कल्याण का साधन-मात्र न समझा जाकर स्वयं ही अपना साध्य माना जाय। लोकतन्त्र दो प्रकार का होता है—प्रत्यक्ष (direct) और अप्रत्यक्ष (indirect)। प्राचीन यूनान में प्रत्यक्ष लोकतन्त्र था क्योंकि नागरिक व्यवस्थापिका में जाकर स्वयं कानून बनाते थे परन्तु आजकल भारत, इंगलैण्ड और अमरीका जैसे देशों में अप्रत्यक्ष प्रजातन्त्र (indirect democracy) प्रचलित है क्योंकि नागरिक कानून बनाने के लिए अपने प्रतिनिधि चुनते हैं। लोकतन्त्र के गुण ये हैं कि यह समानता के सिद्धान्त पर स्थिर है, स्वतन्त्रता और बन्धुता का समर्थक है, जनमत पर अवलम्बित है तथा सब वर्गों की उन्नति करता है। इसके अतिरिक्त लोकतन्त्र में क्रान्ति का भय नहीं रहता। इस प्रणाली से नैतिक स्तर ऊँचा होता है और राजनैतिक शिक्षा भी मिलती है। लोकतन्त्र के अनेक दोष भी हैं, जैसे यह अयोग्य व्यक्तियों की पूजा है, इसमें संख्या का अधिक महत्त्व और गुणों का कम है। कानून बनाने के लिए अत्यन्त योग्य व्यक्तियों की आवश्यकता है परन्तु लोकतन्त्र में मतदाता योग्य व्यक्ति चुनने में असमर्थ होते हैं। बहुत से कानून केवल बहुमत के आधार पर पास कर दिए जाते हैं। मेन तथा लेकी का विचार था कि लोकतन्त्र संस्कृति और सभ्यता में बाधक सिद्ध होता है। लोकतन्त्र में राजनैतिक दलों का अनैतिक प्रभाव होता है और रिश्वतखोरों की भरमार रहती है। मार्क्सवादियों का विचार है कि लोकतन्त्र में केवल पूँजीपतियों को स्वतन्त्रता होती है। इन आरोपों के अतिरिक्त लोकतन्त्र के विरुद्ध यह भी आरोप लगाया जाता है कि यह बहुत खर्चीला शासन होता है और कार्यरूप में असम्भव है।

एकात्मक और संघात्मक शासन में यह भेद होता है कि एकात्मक सरकार में केन्द्र पूर्ण शक्तिशाली होता है और प्रान्तीय सरकारें केवल केन्द्रीय सरकार की एजेण्ट रहती हैं, परन्तु संघात्मक सरकार में केन्द्र और प्रान्तों में शक्ति का विभाजन रहता

है। इसके अतिरिक्त संघात्मक सरकार की अन्य विशेषता यह है कि इसमें संविधान सर्वोपरि (supreme) माना जाता है और एक उच्चतम न्यायालय होता है जो केन्द्र और उपराज्यों की सरकारों में संविधान सम्बन्धी किसी भी वाद-विवाद का निर्णय करता है। एकात्मक सरकार में अनेक गुण हैं, जैसे सरकार शक्तिशाली होती है, शासन में एकरूपता विद्यमान रहती है और यह कम खर्चीला होता है। इसमें शीघ्र निर्णय सम्भव हैं और देश में एकता की भावना वर्तमान रहती है। एकात्मक शासन में अनेक दोष भी हैं, जैसे केन्द्र का स्वेच्छाचारी बन जाने का भय सर्वदा उपस्थित रहता है और प्रशासनीय दक्षता खत्म होने की सदा आशंका रहती है। इसके अलावा इसमें स्थानीय स्वायत्तता का नाश हो जाता है और नौकरशाही का प्रभाव बढ़ता है। संघात्मक सरकार में बड़ा भारी गुण यह है कि इसमें स्थानीय स्वराज्य और राष्ट्रीय एकता की बड़ी भारी गुत्थी आसानी से सुलझ जाती है। शक्ति-विभाजन से केन्द्र का बोझ हलका पड़ जाता है और प्रशासनीय दक्षता आ जाती है। छोटे-छोटे देश इस पद्धति के अनुसार मिलकर अपनी एक साँझी प्रतिरक्षा (joint defence) कायम करते हैं। बड़े-बड़े देशों के लिए भी यह प्रणाली लाभदायक है क्योंकि यह भिन्नता में एकता स्थापित करती है। इसमें केन्द्रीय सरकार निरंकुश नहीं होने पाती। यह विश्व संघ के लिए बड़ा भारी कदम है। संघात्मक शासन में बड़ा भारी दोष यह है कि शक्ति-विभाजन के कारण केन्द्र और उपराज्यों की सरकारों में झगड़ा पैदा हो जाता है, इसलिए इसमें दुर्बलता आ जाती है और अनुरूपता नहीं रहती।

सांसद तथा अध्यक्षात्मक शासन—सांसद (parliamentary) तथा अध्यक्षात्मक (presidential) शासन-पद्धतियों में बड़ा भारी अन्तर है। सांसद सरकार में मन्त्रिमण्डल प्रथम सदन (lower house) के प्रति उत्तरदायी होता है। मन्त्रिमण्डल के पास सारी शक्तियाँ रहती हैं और राज्य के प्रमुख (Head of the State) के पास केवल नाम-मात्र शक्तियाँ रहती हैं। इसमें शक्तियों का पृथक्करण सिद्धान्त नहीं अपनाया जाता। मन्त्री संसद् (parliament) की बैठकों में भाग लेते हैं और प्रश्नों का उत्तर देते हैं। अध्यक्षात्मक सरकार में राष्ट्रपति के हाथ में प्रशासन-सम्बन्धी सारी वास्तविक शक्तियाँ रहती हैं। उसकी शक्तियाँ केवल संविधान द्वारा सीमित होती हैं। इस पद्धति में मन्त्रिमण्डल बिल्कुल अशक्त होता है और राष्ट्रपति के संकेतों के अनुसार कार्य करता है। राष्ट्रपति अथवा मन्त्रिमण्डल अपने-अपने शासन-सम्बन्धी कार्यों के लिए व्यवस्थापिका (Legislature or Congress in America) के प्रति जिम्मेवार भी नहीं होते। इसमें शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त को अपनाया जाता है। संसदात्मक प्रणाली में अनेक गुण हैं। यह अधिक लोकतन्त्रात्मक होती है और इसमें मन्त्रिमण्डल तथा संसद् में गतिरोध उत्पन्न होने की आशंका या सम्भावना नहीं रहती। इसमें प्रधान मन्त्री दृढ़तापूर्वक अपनी नीति का पालन करवा सकता है क्योंकि वह बहुमत दलीय नेता (majority party leader) होता है। यह अधिक शिक्षाप्रद है क्योंकि इसमें मन्त्रियों को अपनी योग्यता दिखाने के लिए अधिक अवसर प्राप्त हो जाते हैं। यह समय के अनुसार बदली भी जा सकती है। इसमें अनेक दोष भी हैं जैसे मन्त्रिमण्डल की तानाशाही कायम हो जाती है, प्रशासनीय दक्षता (adminis-

trative efficiency) नहीं रहती क्योंकि मन्त्रिमण्डल के सदस्य अधिक समय राजनैतिक कार्यों में लगाते हैं। मन्त्रिमण्डल में बहुत वाद-विवाद के कारण किसी भयानक परिस्थिति का मुकाबला करने में कठिनता पेश आती है। यह शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त के भी विरुद्ध है।

अध्यक्षात्मक पद्धति में यह बड़ा भारी गुण है कि इस में स्थायित्व आ जाता है क्योंकि राष्ट्रपति की अवधि चार वर्ष निश्चित है। मन्त्री अपने काम में लगे रहते हैं, अतः प्रशासनीय दक्षता आ जाती है। उनको अपना समय राजनैतिक झगड़ों में खराब करने की आवश्यकता नहीं होती। संकट-काल में यह शासन अत्यन्त मजबूत रहता है। यह शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें बड़ा भारी दोष यह है कि कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका में गतिरोध हो जाता है। राष्ट्रपति संसद् के प्रति गैर-जिम्मेवार होता है तथा मन्त्रियों को पद-च्युत करने का अधिकार रखता है, अतः वह स्वेच्छाचारी बन सकता है।

Questions

1. Discuss the merits and demerits of a Democratic form of Govt. (*P. U. April* 1951)

2. What are the conditions necessary for the success of democracy ? (*P. U. Sept.* 1951)

3. Discuss the chief features of a Parliamentary form of Govt. (*P. U. Sept.* 1952)

4. Distinguish between Unitary and Federal Governments. (*P. U.* 1953)

5. What are the merits and demerits of a Representative Democracy ? (*P. U. April* 1954)

6. Explain the term Direct Democracy. Explain some institutions of Direct Democracy, quoting examples, if possible. (*P. U.* 1955)

7. Discuss Aristotle's Classification of States. Is it applicable to modern States ?

8. What are the advantages and disadvantages of monarchy as a form of Govt. ?

9. What is meant by Aristocracy ? Discuss the merits and demerits of this form of government.

10. What do you mean by Dictatorship ? Distinguish it from Despotism or Absolute Monarchy. Is it more successful than democracy ?

11. Distinguish between Parliamentary and Presidential type of Govts. Describe the merits and demerits of each. Which of them would you like for your country ?

12. Compare the advantages and disadvantages of the Unitary and Federal forms of Govts. (*C. U.* 1945, 1948)

प्रश्न

१. अरस्तू का राज्यों का वर्गीकरण बतलाइये। आधुनिक वर्गीकरण के क्या-क्या सिद्धान्त हैं? आप उनमें से कौनसा अच्छा समझते हैं?

२. निरंकुश राजतन्त्र और सीमित राजतन्त्र में क्या भेद है? निरंकुश राजतन्त्र के गुणों और दोषों का वर्णन कीजिए।

३. कुलीनतन्त्र और अल्पतन्त्र में क्या भेद है? उनके गुणों और दोषों का वर्णन कीजिए।

४. प्रजातन्त्र की व्याख्या कीजिए। इसके दोषों और गुणों का वर्णन कीजिए।

५. प्रजातन्त्र और तानाशाही सरकारों के लाभ और हानियाँ अच्छी प्रकार से बताइये।
(उत्तर प्रदेश १९४४)

६. संघीय और एकात्मक विधानों की तुलना कीजिए। भारत के लिए आप कौनसा तरीका पसन्द करेंगे और क्यों? (यू० पी० १९४८)

७. मन्त्रिमण्डलात्मक और अध्यक्षात्मक शासन के भेद बताइये। इस के गुणों और दोषों पर प्रकाश डालिए। इन में से किस प्रकार के शासन को आप अच्छा समझते हैं?
(यू० पी० १९४३, १९४७)

८. आप प्रस्वाधिकार, जनमत-संग्रह, प्रत्यावर्त्तन तथा लोकमत-संग्रह से क्या समझते हैं? स्पष्ट रूप में बताइये।

९. प्रजातन्त्रात्मक विधान के सफलतापूर्वक काम करने के लिए कौनसी शर्तें जरूरी हैं? ये शर्तें हिन्दुस्तान में कहाँ तक पाई जाती हैं?
(यू० पी० १९३०, १९३३, १९३४, १९३८)

१०. प्रजातन्त्र का क्या अर्थ है? इसके गुणों और दोषों पर प्रकाश डालिए।
(यू० पी० १९३१, १९३७, १९३९, १९४२, १९४४)

११. "अशिक्षित लोक-सत्ता निकृष्ट प्रकार की शासन-व्यवस्था है।" इस कथन की विवेचना कीजिए। (यू० पी० १९५१)

सोलहवाँ अध्याय

राज्य का संविधान (Constitution of the State)

संविधान का अर्थ—एरिस्टोटल ने इसकी परिभाषा करते हुए लिखा है कि यह राज्य के कार्य तथा नागरिकों के अधिकारों को निश्चित करता है।[1] डायसी संविधान की परिभाषा करते हुए कहता है—"संविधान का अभिप्राय उन सब नियमों से है जो प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से राज्य की सार्वभौमिक शक्तियों के वितरण और प्रयोग को निर्धारित करते हैं।"[2] प्रसिद्ध अंग्रेज़ लेखक ल्यूइस कहता है कि संविधान से अभिप्राय राज्य के ढाँचे से अथवा राज्य में राजसत्ता के प्रबन्ध तथा वितरण से है।[3] ब्राइस के मतानुसार शासन संविधान उन नियमों को कहते हैं जो सरकार के आकार का निर्णय और उसके प्रति नागरिकों के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों को निश्चित करते हैं।[4] लीकॉक के मतानुसार किसी राज्य के ढाँचे को उसका शासन-विधान कहा जाता है।[5] आस्टिन के मतानुसार संविधान वह है जो सर्वोच्च शासन की रचना को निर्धारित करता है।[6]

जर्मन लेखक जैलिनेक ने कहा है कि शासन-विधान उन कानूनी नियमों का संग्रह है जो कि राज्य के प्रधान अंगों को निश्चित करते हैं, उनकी रचना की रीति, उनके आपसी सम्बन्ध, उनके कार्य-क्षेत्र तथा अन्त में राज्य में उन में से प्रत्येक के मौलिक स्थान (fundamental place) का निर्देश करते हैं।[7] मिस्टर वूल्जे के मतनुसार संविधान उन नियमों के समूह को कहते हैं जिनके अनुसार सरकार की शक्तियाँ, शासितों के अधिकार और उनके आपसी सम्बन्ध निश्चित किये जाते हैं।[8] ऊपर लिखी हुई परिभाषाओं में आखिरी दो परिभाषाएँ अधिक उत्तम हैं। इसलिए

1. "Constitution is the way in which citizens who are the component parts' of the State, are arranged in relation to one another."—*Aristotle.*

2. "All rules which directly or indirectly affect the distribution or the exercise of the sovereign power in the State make up the constitution of the State." —*Dicey.*

3. "The term constitution signifies the arrangement and distribution of the sovereign power in the community or form of Govt."—*Lewis.*

4. "Constitution is a set of established rules embodying and directing the practice of government."—*Bryce.*

5. "It is the form of Govt."—*Leacock.*

6. "Constitution fixes the structure of the supreme Govt."—*Austin.*

7. "Constitution is the body of judicial rules which determine the supreme organs of the state, which prescribe their mode of creation, their mutual relation, sphere of action and finally, the fundamental place of each of them in their relation to the state."—*Jellineck.*

8. Wolsey says that a constitution is "the collection of the principles according to which the powers of the government and the rights of the governed and the relation between the two are adjusted."

संविधान द्वारा निम्नलिखित बातें निश्चित होनी चाहिएँ—

(१) राज्य के शासन का स्वरूप और संगठन।

(२) शासन या सरकार के अलग-अलग अंगों के काम और उनकी शक्तियाँ तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध।

(३) नागरिकों के मूल अधिकारों का वर्णन।

(४) सरकार या शासन का जनता के साथ सम्बन्ध।

(५) संविधान के संशोधन का तरीका।

इसलिए संविधान प्रोफेसर स्ट्रांग के मतानुसार सरकार की निरंकुश शक्तियों को सीमित करता है।

क्या संविधान आवश्यक है ? इस बारे में भिन्न-भिन्न लेखकों के अलग-अलग विचार हैं। वास्तव में आजकल बहुत से राजनीतिज्ञ इस बात को मानने लग पड़े हैं कि हर एक देश में संविधान होना चाहिए। डी० टोकविल का मत था कि इंगलैंड में कोई संविधान नहीं है। कुछ अमरीकन विद्वान भी ऐसा ही समझते थे क्योंकि संविधान का तात्पर्य वे कुछ लिखित नियमों से लेते थे जो कि सरकार की रूप-रेखा निश्चित करते हैं। अमरीका में एक लिखित संविधान है। आजकल संविधान का बहुत व्यापक अर्थ लिया जाता है। संविधान से तात्पर्य उन समस्त नियमों, उपनियमों, लोकाचारों तथा अभिसमयों (conventions) के संग्रह से है जिनके द्वारा राज्य के नागरिकों के सम्बन्ध में शासन के अधिकारों एवं कर्त्तव्यों और नागरिकों के राज्य के प्रति कर्त्तव्यों एवं अधिकारों का निर्धारण होता है।[1] इस अर्थ में इंगलैंड में एक संविधान है। निरंकुश राज्यों में कुछ ऐसी परिपाटियाँ होती हैं जिनके अनुसार राजा के प्रजा के साथ सम्बन्ध निश्चित होते हैं। प्रजातन्त्र तो संविधान के बिना चल ही नहीं सकता। इसलिए शासन चलाने के लिए यह आवश्यक है कि हर एक देश में संविधान हो, चाहे यह लिखित हो अथवा अलिखित। इसके बिना अराजकता दृष्टिगोचर होगी।

संविधानों का वर्गीकरण (Classification of the Constitution)

संविधानों के प्रायः निम्नलिखित भेद किये जाते हैं—

(१) विकसित तथा निर्मित (Evolved and Enacted)

(२) नियमबद्ध तथा यथार्थ (Legal and Real)

(३) लिखित तथा अलिखित (Written and Unwritten)

(४) परिवर्तनशील (लचीले) तथा अपरिवर्तनशील (कठोर) (Rigid and Flexible)।

(१) **विकसित तथा निर्मित**—संविधान बहुत से लेखकों के मतानुसार दो प्रकार का होता है, विकसित तथा निर्मित। विकसित संविधान ऐतिहासिक विकास का फल है। विकसित संविधान किसी खास समय नहीं बनाया जाता। उदाहरण-स्वरूप, इंगलैंड का संविधान किसी विशेष संविधान सभा (constituent assembly) द्वारा किसी समय नहीं बनाया गया और न ही किसी राजा ने कभी यह संविधान

१. प्रोफेसर सद।

लोगों को प्रदान किया। सैद्धान्तिक दृष्टि से इंगलैंड अब भी निरंकुश राजतन्त्र है परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से ऐसा नहीं है। व्यवहार में सारी शक्तियाँ मन्त्रिमण्डल के हाथ में रहती हैं और सम्राट् के हाथों में नाम-मात्र सत्ता है। यह शताब्दियों के संघर्ष का परिणाम है। सत्रहवीं शताब्दी में पार्लियामेंट और सम्राटों में बड़ा भारी संघर्ष चला। फलतः इंगलैंड में बड़ा भारी गृह-युद्ध हुआ, जिसमें चार्ल्स प्रथम को मृत्यु-दण्ड दिया गया। सन् १६८८ में वहाँ पर फिर एक महान् अहिंसात्मक क्रान्ति (glorious revolution) हुई जिसके कारण जेम्स द्वितीय की निरंकुशता पर कुठाराघात हुआ और उसे तख्त छोड़ कर इंगलैंड से भागना पड़ा। विलियम और मेरी को तख्त दिया गया और उन्होंने पार्लियामेंट की सारी शर्तें स्वीकार कर लीं। जार्ज प्रथम और द्वितीय के समय लोकतन्त्रात्मक शासन की शनैः शनैः प्रगति हुई और वाल्पोल पहला प्रधान मन्त्री बना। जार्ज तृतीय के व्यक्तिगत शासन (personal rule) स्थापित करने के प्रयत्न भी निष्फल हुए और इंगलैंड पूर्ण लोकतन्त्रात्मक शासन की ओर अग्रसर हुआ। निर्मित संविधान किसी खास समय बनाये जाते हैं, जैसे अमरीका में स्वतन्त्रता की घोषणा के पश्चात् संविधान एक संविधान-सभा द्वारा बनाया गया। इसके पश्चात् फ्रांस में १८३०, १८४८, १८७१ और १९४६ में संविधान बनाये गए। जर्मनी, आयरलैंड और भारत में भी संविधान-सभा द्वारा संविधान बनाए गए। जर्मनी में प्रथम महायुद्ध के पश्चात् संविधान बनाया गया जिसको वेमर का संविधान कहते हैं और भारत में नया संविधान २६ नवम्बर, १९४९ को पूरा हुआ और २६ जनवरी, १९५० को लागू किया गया।

(२) **नियमबद्ध (कानूनी) और यथार्थ** (Legal and Real)—कभी-कभी इस प्रकार का भेद भी संविधानों में किया जाता है। संविधान के लिखित तत्त्वों या मौलिक लेख्यों को नियमबद्ध अथवा कानूनी संविधान कहते हैं और जब इन में प्रचलित प्रथाओं, अभिसमयों (conventions) और न्यायालयों के निर्णयों को सम्मिलित कर लिया जाता है, तो संविधान के ऐसे सामूहिक रूप को यथार्थ संविधान कहते हैं।[1] उदाहरणस्वरूप अमरीका का संविधान कुछ ही घण्टों में पढ़ा जा सकता है परन्तु इससे वहाँ के संविधान के बारे में असली ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता। असली ज्ञान तभी प्राप्त हो सकता है जब कि हम संविधान के अतिरिक्त न्यायाधीशों के निर्णय (judicial decisions), रीति-रिवाज और अभिसमय भी पढ़ें। अमरीका का संविधान बहुत कठोर था परन्तु अभिसमयों और न्यायाधीशों के समयानुसार संविधान-निर्वचन (interpretation) के कारण वह व्यवहार में ठीक बैठ गया है।

(३) **लिखित और अलिखित संविधान** (Written and Unwritten Constitution)—डाक्टर गार्नर लिखते हैं, "विकसित (evolved) एवं अधिनियमित (enacted) विधानों में जो अन्तर है वह बहुत कुछ वही है जो अलिखित एवं लिखित विधानों में है। अलिखित विधान वह है जिसकी अधिकांश बातें (सब नहीं) कभी किसी लेख-पत्र या लेख-पत्रों (documents) के संग्रह में लिखी हुई नहीं

---

१. प्रोफेसर परमात्माशरण।

होतीं। उसके अधिकांश (major part) में रीति-रिवाज तथा न्यायालयों के निर्णय सम्मिलित होते हैं और अल्प (minor part) में मौलिक ढंग के कानूनों का भी समावेश होता है जो भिन्न-भिन्न समय पर स्वीकार किये गए होते हैं। इस प्रकार के विधानों का निर्माण एक ही समय विधान-परिषद् अथवा अन्य किसी संस्था द्वारा नहीं किया जाता। अतः विधान की रचना नहीं, विकास होता है।"[1] लिखित संविधान उसे कहते हैं जिसके आधारभूत उपबन्ध (fundamental provisions) एक या अनेकों लेख-पत्रों (documents) में लिखे हुए होते हैं।

कभी-कभी कुछ लिखित विधान अधिकार-पत्रों (charters) के रूप में राजाओं द्वारा विद्रोह को समाप्त करने या प्रजा को शान्त करने के लिए भी जारी किये जाते हैं। उदाहरणस्वरूप, जर्मनी में १८१५ के बाद कई उदार शासकों ने अधिकार-पत्र जारी किए। अठारहवें लुई ने भी १८१४ में फ्रेंच जनता को वैधानिक अधिकार-पत्र दिया जिसे पालियामेंट ने संशोधन के पश्चात् सन् १८३० में लुई फिलिप के सामने रखा और उस सम्राट् ने उसे घोषित कर दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के पहले भाग में पुर्तगाल के राजा ने भी अपनी प्रजा को एक अधिकार-पत्र दिया था। इसी प्रकार सन् १८४८ में सार्डिनिया के राजा ने अपनी प्रजा को एक अधिकार-पत्र दिया। इसके अतिरिक्त लिखित संविधान साधारण व्यवस्थापिका या संविधान सभा द्वारा बनाए जाते हैं। अमरीका में संविधान १७८७ में संविधान परिषद् द्वारा बनाया गया। भारत में १९३५ का अधिनियम अंग्रेजी पार्लियामेंट द्वारा बनाया गया। ग्रेट ब्रिटेन एकमात्र ऐसा देश है जहाँ अलिखित संविधान है। वह विकसित संविधान का जीता-जागता उदाहरण है। दूसरा भेद जो कि लिखित तथा अलिखित संविधानों में पाया जाता है, वह प्रायः साधारण और संवैधानिक कानूनों के सम्बन्ध में है। इंगलैंड में पार्लियामेंट को साधारण और संवैधानिक दोनों कानूनों में तब्दीली करने का अधिकार है परन्तु अमरीका, फ्रांस और भारत में ऐसा नहीं है क्योंकि इन देशों में संवैधानिक कानूनों को तब्दील करने के लिए विशेष प्रक्रिया (special procedure) है। अलिखित संविधान प्रायः लचीला होता है और लिखित कठोर (rigid) होता है।

लिखित और अलिखित संविधान में भेद का कोई वैज्ञानिक मूल्य नहीं है। इसमें भेद श्रेणी का नहीं बल्कि मात्रा का है। अंग्रेजी संविधान यद्यपि अलिखित है तथापि उसमें बहुत सा भाग पार्लियमेंट के द्वारा बनाये हुए कानूनों का है। इसी प्रकार भारत और अमरीका के लिखित संविधानों में बहुत सा अंश परम्पराओं, लोकाचारों, रीति-रिवाजों, अभिसमयों (conventions) और न्यायालयों के निर्णयों को मिल गया है। उदाहरणस्वरूप, अमरीका के संविधान में दलीय पद्धति (party system) और राष्ट्रपति के मन्त्रिमण्डल का कोई वर्णन नहीं परन्तु अब ये दोनों संविधान के महत्त्वपूर्ण अंग बन गए हैं। इसी प्रकार इंगलैंड में मैगना कार्टा १२१५, बिल ऑफ राइट्स १६८८, एक्ट ऑफ सैटलमेंट १७०१, हेबियस कार्पस एक्ट १६७९,

---

1. "A written constitution is generally an instrument of special sanctity distinct in character from all other laws, proceeding from a different source, having a higher legal authority and alterable by a different procedure."—*Garner.*

और सुधार अधिनियम (Reform Acts of 1832, 1867, 1884) इत्यादि अनेक लिखित चीजें संविधान का महत्त्वपूर्ण भाग बन गई हैं।

अलिखित संविधान के गुण और दोष (Merits and Demerits of Written Constitution)—अलिखित संविधान में यह बड़ा भारी गुण है कि यह राष्ट्र की आवश्यकता के अनुसार ढाला जा सकता है क्योंकि यह लचीला (flexible) होता है। इसमें संयोजनीयता (adaptability) होने के कारण क्रान्ति का भय नहीं रहता। प्रत्येक राष्ट्र के सामने कई बार ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती हैं जबकि संविधान में परिवर्तन करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। यदि उस समय आवश्यकतानुसार परिवर्तन न किये जाएँ, तो देश में क्रान्ति हो जाती है और संविधान का उल्लंघन हो जाता है। इसलिए ऐसे समय संविधान में परिवर्तन करना हितकर ही सिद्ध होता है। कठोर संविधान ऐसे समय टूट जाता है। इसलिए ब्राइस ने कहा है कि "अलिखित संविधान बिना उनके ढाँचे का विनाश किये इच्छानुसार झुकाये या खेंचे जा सकते हैं और जब संकट टल जाता है, तब वे उसी प्रकार अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त कर लेते हैं, जिस प्रकार वह वृक्ष, जिसके नीचे से ट्रक को ले जाने की सुविधा के लिए उसकी लटकती हुई डालियों को खेंच कर अलग कर दिया गया हो।[1] दूसरे अलिखित संविधान का यह भी गुण है कि यह राष्ट्रीय जीवन के स्वाभाविक विकास का परिणाम है। यह राष्ट्र के प्रौढ़ होने के साथ स्वयं भी विकसित और विस्तृत होता है और लोक-मत का दर्पण बन जाता है।

अलिखित संविधान में यह बड़ा भारी दोष है कि वह दृढ़ और स्थायी नहीं होता। साधारण कानूनों की भाँति ही उसमें लोक-प्रवाह के कारण क्षण में परिवर्त्तन किये जा सकते हैं। संविधान का कोई विशेष मूल्य नहीं रह जाता। अलिखित संविधान न्यायाधीशों के खिलौने बन जाते हैं। इसमें मूल अधिकारों की घोषणा भी नहीं होती। इसके अतिरिक्त यह अनिश्चित और अस्पष्ट होता है।

लिखित संविधान के गुण और दोष (Merits and Demerits of Written Constitution)—लिखित संविधान में यह बड़ा भारी गुण होता है कि यह स्पष्ट और सुनिश्चित (completely definite) होता है। लिखित संविधान ऐसे नियमों पर अवलम्बित होता है जो बहुत सोच-विचार कर तय किये जाते हैं। इसलिए लिखित संविधान एक पवित्र लेख-पत्र (sacred document) माना जाता है। न्यायालय या व्यवस्थापिका इसको अपनी इच्छा के अनुसार तोड़-मोड़ नहीं सकती। लोक-उत्तेजना (popular passion) के खतरे के सम्मुख यह किले की दीवार का काम देता है। यह वाक्पटु नेताओं के हाथ में खिलौना नहीं बन पाता। प्रत्येक दल अपनी इच्छानुसार इसमें परिवर्त्तन नहीं कर सकता। अतः इसके द्वारा लोगों के मूल अधिकार (fundamental rights) अधिक संरक्षित होते हैं। इसमें लोगों को अपने अधिकारों का ज्ञान भी अधिक रहता है।

इसमें बड़ा भारी दोष यह है कि राष्ट्र के प्रौढ़ होने के साथ-साथ यह विकसित

1. "Essay on Flexible and Rigid Constitutions," P. 22.

और विस्तृत नहीं होता। इसमें समय के अनुसार परिवर्त्तन नहीं हो सकते, अतः राष्ट्र की प्रगति कुण्ठित हो जाती है और क्रान्ति का भय अधिक विद्यमान रहता है। इसलिए डाक्टर गार्नर के मतानुसार "लिखित विधान का एक दोष यह है कि वह राजनैतिक जीवन एवं राष्ट्र की अभिवृद्धि के सिद्धान्तों को अनिश्चित काल के लिए एक लेख-पत्र में दबा कर भरने का प्रयत्न करता है। यह ऐसा ही प्रयत्न है जैसे कि एक व्यक्ति के लिए उसकी भावी शारीरिक वृद्धि तथा आकार का विचार किये बिना एक कोट बनाना।"

कठोर और लचीले संविधान
(Rigid and Flexible Constitutions)

लार्ड ब्राइस ने संविधानों को कठोर तथा लचीले संविधानों में विभाजित किया है। यदि किसी देश में संवैधानिक और साधारण कानूनों में अन्तर नहीं है और वहाँ पर दोनों का संशोधन तथा निर्माण एक ही संसद् के हाथ में रहता है और एक ही प्रक्रिया (procedure) द्वारा होता है तो उसको लचीला संविधान कहते हैं। कठोर संविधान प्रायः ऐसे देशों में प्रचलित है जहाँ पर संवैधानिक और साधारण कानूनों में कोई अन्तर अवश्य रहता है। वहाँ पर साधारण कानून को बनाना और संशोधन करना साधारण व्यवस्थापिका के हाथ में रहता है परन्तु संविधान का निर्माण तथा संशोधन एक उच्च सत्ता या संविधान सभा के हाथ में रहता है। वहाँ पर संविधान साधारण कानूनों की अपेक्षा ऊँचा समझा जाता है और लोग उसे एक पवित्र लेख-पत्र (sacred document) कहते हैं। उसकी संशोधन की प्रक्रिया साधारण कानूनों की अपेक्षा बहुत भिन्न होती है। अंग्रेजी संविधान लचीले संविधान का सब से अच्छा उदाहरण है। इंगलैंड में साधारण कानूनों (ordinary laws) और संवैधानिक कानूनों (constitutional laws) में कोई अन्तर नहीं है। वहाँ पर पार्लियामेंट सम्प्रभु (sovereign) है। उसे साधारण और संवैधानिक कानूनों को बनाने, संशोधन और रद्द करने का अधिकार है और ऐसा करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रक्रियाएँ नहीं हैं (parliament is sovereign and it can make, amend, and repeal both the ordinary as well as constitutional laws by the same process)। इसका यह भी तात्पर्य है कि वहाँ का सर्वोच्च न्यायालय पार्लियामेंट के किसी कानून को अवैध (illegal) घोषित नहीं कर सकता। कठोर संविधान का सब से अच्छा उदाहरण संयुक्त राज्य अमरीका का है। वहाँ संविधान (constitution) सब से श्रेष्ठ लेख-पत्र (document) माना जाता है। कार्यपालिका, व्यवस्थापिका तथा उच्चतम न्यायालय (supreme court) की शक्तियाँ संविधान द्वारा सीमित हैं। व्यवस्थापिका कोई कानून संविधान के विरुद्ध नहीं बना सकती। सुप्रीम कोर्ट संविधान का संरक्षक (guardian) है और इसे यह अधिकार है कि संविधान के विरुद्ध व्यवस्थापिका द्वारा बनाए गए किसी कानून को रद्द कर सके या अवैध (illegal) घोषित कर सके। काँग्रेस वहाँ संविधान का संशोधन नहीं कर सकती, उसके लिए विशेष प्रक्रिया है।

इसलिए कठोर तथा लचीले संविधान में मुख्यतया यह भेद है कि दोनों के संशोधन के तरीके अलग-अलग होते हैं और उनका निर्माण भी भिन्न-भिन्न सभाओं के हाथ में रहता है। कठोर संविधान में व्यवस्थापिका की सत्ता ऊँचे कानून द्वारा मर्यादित होती है अर्थात् व्यवस्थापिका की शक्तियाँ संविधान में निश्चित होती हैं परन्तु लचीले संविधान में व्यवस्थापिका की शक्तियाँ असीमित रहती हैं। कठोर संविधान सदैव लिखित होता है।

कठोर संविधान के गुण व दोष
(Merits and Demerits of Rigid Constitution)

गुण—कठोर संविधान बहुत सोच-समझकर संविधान सभा द्वारा बनाया जाता है, अतः वह निश्चित और स्पष्ट होता है। चूंकि कठोर संविधान को बदलने की बड़ी कठिन रीति होती है, इसलिए यह लोगों के क्षणिक आवेश से प्रभावित नहीं होता। लचीले संविधान लोगों के जोश के कारण बहुत जल्दी बदल दिये जाते हैं। दूसरे, कठोर संविधान अधिक स्थायी होता है। सारी जनता इसे पवित्र और महान् लेख-पत्र मानती है और उसके अनुसार काम करने को तैयार रहती है। यह देश की महान् आत्माओं द्वारा बनाया जाता है, इसलिए राष्ट्र की निपुणता का द्योतक है।

दोष—कठोर संविधान में आसानी से परिवर्त्तन नहीं किये जा सकते, इसलिए सुधारों में विलम्ब होने के कारण राष्ट्र की प्रगति रुक जाती है। दूसरे, जब सुधार आसानी से नहीं हो सकते तो संविधान का उल्लंघन होना आवश्यक हो जाता है, अतः संविधान टूट जाते हैं और क्रान्ति हो जाती है। तीसरे, कठोर संविधान आने वाले युग के लिए अनुमान से ही राजनैतिक सिद्धान्त स्थिर कर देता है जो कि ठीक प्रतीत नहीं होता।

लचीले संविधान के गुण-दोष
(Merits and Demerits of Flexible Constitution)

गुण—लचीले संविधान का सब से बड़ा गुण यह है कि यह समय के अनुसार बहुत आसानी से सुधारा जा सकता है। ज्यों-ज्यों राष्ट्र प्रौढ़ होता है त्यों-त्यों यह भी बढ़ता जाता है। एक प्रगतिशील राष्ट्र के लिए लचीला संविधान बहुत लाभदायक प्रतीत होता है क्योंकि उसकी उन्नति की यह महान् झलक होता है। दूसरे, इसमें क्रान्ति का भय बहुत कम रहता है क्योंकि यह लोक-मत का दर्पण होता है। उदाहरण-स्वरूप इंगलैंड के संविधान में धीरे-धीरे निरंकुश राजतन्त्र को समाप्त करके मन्त्रि-मण्डलात्मक सरकार कायम की गई। इसी प्रकार दूसरे महायुद्ध में बहुमतदलीय शासन की बजाय राष्ट्रीय शासन कायम किया गया और पार्लियामेंट ने अपनी अवधि बढ़ा ली तथा चुनाव कुछ समय के लिए स्थगित कर दिये। यह सब कुछ वह संविधान को तोड़े बिना ही सम्भव हो गया क्योंकि इसको आवश्यकता के अनुसार झुकाया जा सकता है।

दोष—लचीले संविधान में बड़ा भारी दोष यह है कि यह कठोर संविधान की अपेक्षा कम स्थायी होता है क्योंकि इसमें परिवर्त्तन बड़ी आसानी से किए जा सकते हैं। कई बार वाक्पटु नेता अपनी स्वार्थ-सिद्धि या अपनी पार्टी और जनता के जोश को ठण्डा करने के लिए संविधान में परिवर्त्तन करवा लेते हैं, जैसा कि सिजविक ने कहा है : "सर्वसाधारण की अप्रियता के झोंके से बहुमूल्य नियमों एवं संस्थाओं का विनाश हो सकता है और इस प्रकार उसकी प्राचीनता तथा सनातन लोकाचार से प्राप्त स्थिरता नष्ट हो जाती है।" इसमें संविधान एक बहुत पवित्र और ऊँचा लेख-पत्र नहीं माना जाता, इसलिए राजनीतिज्ञों के हाथों में यह खिलौना बन जाता है। इसकी उनसे रक्षा का संविधान में कोई उपाय नहीं होता। यद्यपि इंगलैंड में ऐसा सम्भव नहीं है तथापि यह सत्य सिद्ध हो चुका है कि यह कम राजनैतिक शिक्षण वाले देशों में प्रायः सफल नहीं हो सकता।

दोनों के गुणों और दोषों पर दृष्टिपात करने के पश्चात् हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि चाहे लचीले संविधान में कितने ही गुण क्यों न हों परन्तु भविष्य कठोर संविधान के साथ है। अमरीका के संविधान के पश्चात् फ्रांस, रूस, कैनेडा, आस्ट्रेलिया, स्विट्ज़रलैंड और भारत जैसे अनेक देशों ने लिखित संविधान बना लिये हैं। इंगलैंड का संविधान केवल अलिखित है। इंगलैंड में अलिखित तथा लचीले संविधान की सफलता का कारण राजनैतिक शिक्षण है। लोकतन्त्रात्मक देशों में जनता के मूल अधिकारों की रक्षा और तानाशाही के आगमन को रोकने के लिए सरकार की शक्तियाँ प्रायः सीमित या मर्यादित की जाती हैं, अतः वहाँ लिखित और कठोर संविधान की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार संघात्मक देशों में भी शक्तियों के विभाजन को स्पष्ट करने तथा केन्द्र और उप-राज्यों के झगड़ों को कम करने के लिए लिखित तथा कठोर संविधान ही अपनाया जाता है।

कठोर संविधान में निम्नलिखित आवश्यक तत्त्व होते हैं—

(१) राजनैतिक और सामाजिक मूल अधिकार।

(२) सरकार के संगठन और स्वरूप की रूपरेखा अर्थात् संविधान में सरकार के संगठन, उसके अंगों तथा उसकी शक्तियों, ऊँचे राज्याधिकारियों की नियुक्ति की विधि तथा चुनावों के तरीकों के सम्बन्ध में विशेषतया स्पष्ट रूप से नियम होने चाहिएँ।

(३) संविधान संशोधन की विधि।

अतः एक अच्छे संविधान में यह गुण होना चाहिए कि यह स्पष्ट और निश्चित हो, इसमें लोगों के मूल अधिकारों तथा सरकार के संगठन और स्वरूप का विवरण हो। यह संक्षिप्त होना चाहिए, और वहाँ की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का द्योतक हो। इसके अतिरिक्त यह वहाँ की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों को पूरी तरह से ध्यान में रख कर बनाया जाय तथा आने वाले समयों में आसानी से बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल बनाया जा सके।

सारांश

संविधान उन नियमों के समूह को कहते हैं जिनके अनुसार सरकार की शक्तियाँ, शासितों के अधिकार और उनके आपसी सम्बन्ध निश्चित किये जाते हैं। इसलिए संविधान में राज्य के शासन का स्वरूप और संगठन, सरकार के अलग-अलग अंगों के काम और उनकी शक्तियाँ तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध, नागरिकों के मूल अधिकार, सरकार का जनता के साथ सम्बन्ध तथा संशोधन (amendment of the constitution) का तरीका निश्चित किया जाता है। संविधान के कई प्रकार हैं, जैसे विकसित तथा निर्मित (evolved and enacted) नियमबद्ध, तथा यथार्थ (legal and real), लिखित तथा अलिखित (written and unwritten), लचीला और कठोर (flexible and rigid)। विकसित संविधान ऐतिहासिक विकास का फल है, जैसे इंगलैंड का संविधान। भारत का संविधान स्वतन्त्रता के पश्चात् एक संविधान सभा द्वारा बनाया गया, अतः यह निर्मित संविधान कहा जाता है। संविधान के लिखित तत्त्वों या मौलिक लेख्यों को नियमबद्ध अथवा कानूनी संविधान कहते हैं, और जब इनमें प्रचलित प्रथाओं, अभिसमयों और न्यायालयों के निर्णयों को सम्मिलित कर लिया जाता है, तो संविधान के ऐसे सामूहिक रूप को यथार्थ संविधान कहते हैं। अलिखित संविधान वह है जिसकी अधिकांश बातें कभी किसी लेखपत्र या लेखपत्रों के संग्रह में लिखी हुई नहीं होतीं। इसमें अधिकतर रीति-रिवाज तथा न्यायालय के निर्णय और अभिसमय (conventions) सम्मिलित होते हैं और कुछ लिखे हुए अधिनियम (acts) भी शामिल होते हैं। लिखित संविधान वह है जिसके आधारभूत उपबन्ध एक या अनेकों लेखपत्रों में लिखे हुए होते हैं। लार्ड ब्राइस के अनुसार संविधान दो प्रकार के होते हैं—लचीले और कठोर। अंग्रेजी संविधान लचीला (flexible) है और अमरीका का संविधान कठोर है। लचीले संविधान में साधारण और संवैधानिक कानूनों में कोई अन्तर नहीं पाया जाता परन्तु कठोर संविधानों में ऐसा भेद अवश्य विद्यमान रहता है। इंगलैंड में संविधान में तब्दीली या संशोधन करने के लिए खास प्रक्रिया (special procedure) नहीं है, परन्तु अमरीका में ऐसा अवश्य है। कठोर संविधान में यह गुण होता है कि यह निश्चित तथा स्पष्ट होता है और स्थायी होता है। लोगों के अधिकारों की यह अधिक रक्षा कर सकता है। इसमें दोष यह है कि सुधार आसानी से नहीं हो सकते, अतः संविधान के टूटने का भय रहता है।

लचीले संविधान में यह बड़ा भारी गुण है कि यह राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुसार तोड़ा-मोड़ा जा सकता है परन्तु इसमें दोष यह है कि चतुर नेता इसको अपने स्वार्थ के लिए बदलने की कोशिश करते हैं।

Questions

1. Define the term constitution. What are the requisites of a good constitution ? (*U. P.* 1954)

2. Distinguish between flexible and rigid constitution. Which of these do you favour for India and why ? (*Raj. Uni.* 1955)

3. Describe the distinction between written and unwritten constitutions and point out the merits and demerits of each.
(*Delhi, H. S.* 1950)

4. The difference between written and unwritten, flexible and rigid constitutions is one of degree rather than kind. Discuss.
(*Delhi, H. S.* 1953)

5. Carefully examine the term constitution. What are the chief types of constitutions which we find in modern times.
(*Patna*, 1946)

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. आप राज्य के संविधान से क्या अर्थ समझते हैं ? परिवर्तनशील और अपरिवर्तनशील संविधान का अन्तर केवल मात्रा का है, प्रकार का नहीं। इस पर प्रकाश डालिये।

२. विभिन्न प्रकार के संविधानों के तरीकों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए और उनका वर्गीकरण किस आधार पर किया गया है, उसे समझाइये। (यू० पी० १९३२)

३. संविधान शब्द की व्याख्या कीजिए और यह बताइये कि अच्छे संविधान में किन-किन बातों की आवश्यकता है ? (यू० पी० १९५४)

सत्रहवाँ अध्याय

जनमत (Public Opinion)

"Voice of the people may be the voice of God."—*Sir Henry Maine*

जनमत क्या है ? (What is Public Opinion ?)—जनमत की व्याख्या कई प्रकार से की गई है। साधारण बोल-चाल में जनमत का आशय उस मत से समझा जाता है जो लोग सार्वजनिक प्रश्नों के सम्बन्ध में कायम कर लेते हैं। यह बात विचारणीय है कि लोगों की सार्वजनिक मामलों में प्रायः सर्वसम्मति (unanimity) नहीं हो सकती। ऐसी अवस्था में लोग बहुमत को ही जनमत का स्थान दे देते हैं परन्तु जनमत वास्तव में बहुमत नहीं है (Public opinion is not majority opinion)। इसी प्रकार से ऐसी राय जो सार्वजनिक हित के विरुद्ध हो, चाहे यह बहुमत की भी राय हो कदापि जनमत नहीं कहला सकती। अतः जनमत कायम करने के लिए न तो सर्वसम्मति और न ही बहुमत का होना अनिवार्य है। कई बार ऐसा होता है कि किसी देश में बहुसंख्यक वर्ग (majority) अल्पसंख्यक वर्ग (minorities) की बिल्कुल रक्षा नहीं करता और इनको वहाँ से निकालना चाहता है, जैसे जर्मनी में बहुमत यहूदियों को वहाँ से निकालना चाहता था, तो ऐसी परिस्थिति में हम बहुमत के विचार को जनमत कैसे कह सकते हैं ? इसी प्रकार दक्षिणी अफ्रीका में गोरे लोगों का बहुमत भारतीयों को नागरिकता के अधिकार नहीं देना चाहता, अमरीका में महायुद्ध से पूर्व दक्षिणी राज्यों का बहुमत हब्शियों को किसी प्रकार के कोई अधिकार नहीं देना चाहता था। विभाजन के समय भारत और पाकिस्तान में भी ऐसी परिस्थिति थी कि बहुमत अल्पमतों को निकालना चाहता था। ऐसी परिस्थिति में हम निस्सन्देह कह सकते हैं कि बहुमत को जनमत कहना अत्यन्त भूल होगी। जब जनमत के लिए बहुमत की आवश्यकता नहीं है तो सर्वसम्मति की आवश्यकता भी कैसे हो सकती है ? यह बात भी स्वयंसिद्ध है कि प्रत्येक सार्वजनिक मामले (public matter) पर सर्वसम्मति सम्भव नहीं हो सकती। ऐसा करने से देश की उन्नति रुक जाती है। पोलैंड में एक बार असेम्बली के प्रत्येक सदस्य को अभिषेध (veto) का अधिकार दिया गया, उसका परिणाम यह हुआ कि कानूनों का पास करना अत्यन्त कठिन हो गया और प्रत्येक मामले में गतिरोध (deadlock) दिखाई देने लगा। पहले राष्ट्रसंघ (League of Nations) में भी प्रस्तावों के पास करने के लिए सर्वसम्मति की आवश्यकता थी परन्तु इससे बहुत हानि हुई और आखिरकार यह दोष संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) के संविधान में दूर किया गया। अब संयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल असेम्बली में प्रस्ताव दो-तिहाई बहुमत से पास किये जा सकते हैं।

जनमत उसे कहते हैं जो विवेक और स्वार्थ-रहित बुद्धि के आधार पर अवलम्बित हो और जिसका लक्ष्य किसी जाति या वर्ग-विशेष का हित नहीं बल्कि सारे

समाज का हित ही हो (Public opinion may be defined as the views held by the people in general on questions relating to common welfare)। अतः हम पूर्ण रूप से विचार करने के बाद कह सकते हैं कि लोकमत या जनमत निर्माण करने के लिए न तो बहुमत का होना अनिवार्य है और न ही सर्वसम्मति का, बल्कि जनमत वह है जो किसी जाति या वर्ग के हित का लक्ष्य न रख कर सारे समाज के हित का ध्यान रखता है और जो न्याय तथा बुद्धि पर आधारित है। लार्ड ब्राइस ने लोकमत की व्याख्या बड़े सुन्दर ढंग से की है। "समाज के हित-सम्बन्धी विषयों पर लोगों के कुछ विचार होते हैं। आरम्भ में वे असंगठित और अस्पष्ट रहते हैं। विषय का भली-भाँति ज्ञान न होने के कारण जनता के विचारों में अस्थिरता भी रहती है। ज्यों-ज्यों विषय पर प्रकाश पड़ता है, विचारों में परिवर्तन होता रहता है। कुछ समय के पश्चात् कुछ समस्याएँ सब को आकृष्ट कर लेती हैं। उनके सम्बन्ध के पूर्वकालीन अस्थिर और अस्पष्ट विचार आगे चलकर निश्चित रूप धारण कर लेते हैं। जनता के विचारों के इस निश्चित रूप को यदि बहुमत द्वारा निर्धारित किया गया हो, लोकमत कहते हैं।"[1] सब से सुन्दर लोकमत की परिभाषा मिस्टर लावेल ने की है। मिस्टर लावेल ने अपनी पुस्तक 'Public Opinion and Popular Govt.' में लिखा है कि "जनमत बनने के लिए बहुमत काफी नहीं है और सर्वसम्मति भी आवश्यक नहीं है लेकिन राय ऐसी होनी चाहिए जिससे अल्पसंख्यक-वर्ग (minorities) चाहे सहमत न हों परन्तु फिर भी वे भय के कारण नहीं बल्कि इसको देश के लिए हितकर समझ कर दृढ़ विश्वास के कारण स्वीकार कर लें और यदि लोकतन्त्र पूर्ण है तो इस प्रकार की अल्पसंख्यकों की अनुमति अवश्य मिल जाती है।"[2] डाक्टर बेनी प्रसाद ने लिखा है, यदि बहुसंख्या अल्पसंख्या की भलाई ध्यान में न रख कर (अर्थात् सारे समाज की भलाई सामने न रखकर) कोई मत स्थिर करती है तो उसे जनमत नहीं कहते। हम उस मत को ही जनमत कह सकते हैं जो सारे समाज के उत्थान के लिए हो। अतः प्रो० अम्बादत्त पन्त के मतानुसार यह समाज में बहुसंख्यकों का मत है जिसको अल्पसंख्यक भी अपने हितों के विरुद्ध नहीं समझते।

जनमत का महत्व (Importance of Public Opinion)

लोकतन्त्र में जनमत सरकार के लिए ज्योति-स्तम्भ है—लोकतन्त्र में जनमत का विशेष महत्त्व है क्योंकि यह सरकार का प्राण समझा जाता है। लोकतन्त्रात्मक सरकार अपनी सत्ता जनमत से प्राप्त करती है और इसी पर अवलम्बित रहती है। प्रत्येक सरकार यह प्रयास करती है कि लोकतन्त्र इसके पक्ष में रहे और किसी तरह भी इसके विरुद्ध न होने पाये। मन्त्री एक समाचार पत्र में की गई कड़ी आलोचना से

---

१. प्रो० कन्हैया लाल वर्मा, डा० हीरालाल सिंह।

2. "In order that it may be public a majority is not enough and unanimity is not required, but the opinion must be such that while the minority may not share it, they feel bound by conviction, not by fear to accept it and if democracy is complete the submission of the minority must be given ungrudgingly."
—*Lowell.*

बहुत डरते हैं। मतदाता सरकार को चार या पाँच वर्ष के पश्चात् चुनते हैं। निर्वाचन के पश्चात् लोकमत के कारण ही सरकार अपनी मनमानी नहीं कर सकती। जो सरकार लोकमत का उल्लंघन करती है, वह बहुत समय तक नहीं टिक सकती। जनमत ही कार्यपालिका और व्यवस्थापिका को मार्ग-दर्शन करने का कार्य करता है। विरोधी दल सरकार की कड़ी आलोचना करके लोकमत को अपने पक्ष में लेने का प्रयत्न करते हैं। जनता की आवाज़ परमात्मा की आवाज़ होती है। इसलिए जो भी सरकार इसकी अवहेलना करती है वह शीघ्र ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है। जनमत जनता के मूल अधिकारों का सब से अच्छा संरक्षक माना गया है। जहाँ जनमत जागरूक नहीं होता, वहाँ सरकार स्वेच्छाचारी बन सकती है। इसलिए यह ठीक ही कहा गया है कि लोकतन्त्र के लिए एक सचेत और शिष्ट जनमत पहली आवश्यकता है (an alert and enlightened public opinion is the first essential of democracy)। तानाशाही में भी सरकार लोकमत को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करती है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह लोकमत का निर्माण करने वाले साधनों पर कड़ा नियंत्रण रखती है।

सही जनमत के निर्माण में रुकावटें

(Hindrances to the Creation of Sound Public Opinion)

किसी देश में लौकिक प्रभुत्व (popular sovereignty) को वास्तविक शक्ति बनाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वहाँ लोकमत के साधनों पर किसी प्रकार की रुकावट न लगाई जाय परन्तु व्यवहार में प्रत्येक सरकार ऐसा करने को तैयार नहीं। तानाशाही में सरकार सही जनमत निर्माण करने वाले साधनों पर अनेक प्रकार की रुकावटें लगाती है। इसके अतिरिक्त सही जनमत के निर्माण में निम्न-लिखित अन्य बाधाएँ भी हैं:—

(१) **निरक्षरता** (Illiteracy)—सही जनमत के निर्माण में निरक्षरता सब से बड़ी रुकावट है। अशिक्षित पुरुष में इतनी बुद्धि नहीं होती कि वह देश की समस्याओं को भली भाँति समझ सके। चतुर नेता अशिक्षित व्यक्तियों को भड़काकर अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए प्रयुक्त करते हैं। निरक्षर व्यक्ति समाचार पत्र नहीं पढ़ सकता और देश की समस्याओं के बारे में काफी जानकारी हासिल नहीं कर सकता। अतः राजनैतिक क्षेत्र में वह झूठे और सच्चे नेताओं में भेद नहीं कर पाता।

(२) **दल-पक्षी समाचार-पत्र** (Party Newspapers)—दलीय समाचार पत्र भी सही जनमत निर्माण के मार्ग में बड़ी भारी बाधाएँ उपस्थित करते हैं। वे झूठा प्रचार करते हैं और लोगों को ग़लत रास्ते पर ले जाते हैं। ऐसे समाचार पत्र केवल अपनी पार्टी का ही गुण गाते हैं और दूसरे दलों के विरुद्ध खूब जोश भड़काते हैं। वे अपनी खबरों को बढ़ा-चढ़ा कर बयान करते हैं और दूसरे दलों की ठीक खबरों को ग़लत बयान करते हैं। सन् १९४७ से पूर्व 'डॉन', 'नवाए वक्त' और 'जमींदार' इत्यादि मुस्लिम लीगी अखबारों ने क्या कुछ कम घृणा फैलाई ?

(३) **नागरिक जीवन के प्रति उदासीनता और राजनैतिक चेतना का अभाव**

(Indifference towards Civic Life and Lack of Political Consciousness)—बहुत से नागरिक राजनैतिक मामलों में बिल्कुल रुचि नहीं रखते। वे अपने घरेलू मामलों में ही हर समय व्यस्त रहते हैं। ऐसे नागरिकों में राजनैतिक चेतना का अभाव उत्पन्न हो जाता है। ऐसे व्यक्ति देश के लाभ के लिए कुछ भी नहीं सोचते। जो व्यक्ति राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं में रुचि नहीं रखते, वे उन समस्याओं को भला क्या सुलझायेंगे ? ऐसे मनुष्य अच्छे नागरिक भी नहीं बन सकते और सरकार को क्या मार्ग दिखा सकते हैं।

(४) **राजनैतिक दलों का निर्माण ग़लत सिद्धान्तों पर होना** (Wrong Basis of Political Parties)—कई बार बहुत से नेता राजनैतिक दलों का निर्माण आर्थिक और राजनैतिक सिद्धान्तों पर न करके जातीय अथवा धार्मिक आधारों पर करते हैं। ऐसे राजनैतिक दल राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने के लिए लोगों के धार्मिक जोश को भड़काते हैं और देश के वातावरण को दूषित कर देते हैं। वे घृणा का प्रसार करते हैं और अन्त में देश को तबाही व बरबादी के गड्ढे में डाल देते हैं। मुस्लिम लीग ने सन् १९४७ से पूर्व ऐसा ही किया। इसके अलावा ऐसे राजनैतिक दल झूठी अफवाहें फैलाते हैं। इसका परिणाम बड़ा बुरा होता है क्योंकि लोग सार्वजनिक और राष्ट्रीय महत्त्व के प्रश्नों पर साम्प्रदायिक तथा संकुचित दृष्टिकोण से विचार करने लग पड़ते हैं।

(५) **बुरी शिक्षा-प्रणाली** (Defective Educational System)—बुरे साहित्य व कुशिक्षा सम्बन्धी पुस्तकों द्वारा भी संकुचित विचारों का कई बार प्रसार किया जाता है। ऐसी शिक्षा जिससे छुआछूत, साम्प्रदायिकता और प्रान्तीय भावनाओं का प्रचार हो, सच्चे लोकमत के निर्माण में बड़ी बाधा उपस्थित करती है। शिक्षा से परोपकार, सहानुभूति, त्याग और सत्य की वृद्धि होनी चाहिए और विश्व-नागरिकता के उदय में सहायता मिलनी चाहिए।

(६) **निर्धनता** (Poverty)—सच्चे लोकमत के निर्माण में निर्धनता भी बड़ी भारी रुकावट है क्योंकि निर्धन व्यक्ति अपने बच्चों को नहीं पढ़ा सकता और न स्वयं ही अच्छी शिक्षा ग्रहण कर सकता है। उसके पास अवकाश भी बहुत कम होता है। उसे हर समय आर्थिक चिन्ता रहती है। ऐसा व्यक्ति देश के बारे में क्या सोच सकता है ?

सही जनमत के लिए आवश्यक शर्तें
(Conditions for the Expression and Formulation of Sound Public Opinion)

(१) **शिक्षित जनता** (Educated People)—जनता का शिक्षित होना भी बड़ा ज़रूरी है। तभी वे राजनैतिक समस्या को समझ सकते हैं और उनका हल सोच सकते हैं। अशिक्षित व्यक्ति अज्ञान के गढ़े में पड़े रहते हैं। शिक्षा के कारण मनुष्य में उदार भावनाएँ उत्पन्न होती हैं और दृष्टिकोण विशाल होता है। उसको सत्य और असत्य में भेद-भाव करना आ जाता है। उदार शिक्षा से ही मनुष्य में विश्व-

नागरिकता की भावना उत्पन्न होती है। ऐसा व्यक्ति ही सच्चे लोकमत निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकता है।

(२) **आदर्श शिक्षा-प्रणाली** (Ideal Educational System)—शिक्षा-प्रणाली आदर्श होनी चाहिए तभी नागरिकों का विशाल दृष्टिकोण हो सकता है। जब मनुष्यों का दृष्टिकोण विशाल हो जाता है, तभी वे अपना स्वार्थ छोड़कर परार्थ में लीन हो सकते हैं। आदर्श नागरिक एक आदर्श शिक्षा-प्रणाली के द्वारा ही उत्पन्न किये जा सकते हैं। शिक्षा-प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जिससे लोगों में विश्व-नागरिकता (world-citizenship) की भावना उत्पन्न हो। एक आदर्श नागरिक छोटे हितों को बड़े हितों के लिए त्याग देता है, जैसे गाँव और प्रान्त के हितों को राष्ट्र के लिए त्याग देता है और राष्ट्र के हितों को विश्व के लाभ के लिए त्याग देता है। ऐसे आदर्श नागरिकों द्वारा ही सच्चे लोकमत की स्थापना हो सकती है।

(३) **निष्पक्ष समाचार पत्र** (Non-party Newspapers)—समाचार पत्र किसी दल विशेष से सम्बन्धित नहीं होने चाहिएँ। समाचार पत्रों को निष्पक्ष होकर सरकार और लोगों का मार्ग दर्शन करना चाहिए। दलीय समाचार पत्र सही लोकमत-निर्माण में बड़ी भारी रुकावट पेश करते हैं। वे दूसरी पार्टी के दृष्टिकोण को सदैव ग़लत साबित करने का यत्न करते हैं। इससे लोगों के विचार ठीक नहीं बन पाते। निष्पक्ष समाचार पत्र सरकार की त्रुटियों की कड़ी आलोचना कर सकते हैं और अच्छे-अच्छे सुझाव उसके सामने रख सकते हैं।

(४) **निर्धनता और साम्प्रदायिकता का अन्त** (End of Poverty and Communalism)—सरकार को देश से निर्धनता दूर करनी चाहिए ताकि प्रत्येक मनुष्य को शिक्षा के लिए सुविधाएँ और देश के हित के लिए सोचने का समय मिल सके। सरकार को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे लोगों में साम्प्रदायिकता, छुआछूत भाषा तथा मज़हब सम्बन्धी विष न रहे।

(५) **राजनैतिक दलों का आर्थिक एवं राजनैतिक सिद्धान्तों पर निर्माण** (Parties should be formed on the basis of Economic and Political Principles)—राजनैतिक दलों का धार्मिक, जातीय और व्यक्तिगत आधार पर निर्माण नहीं होना चाहिए। धार्मिक पार्टी को राजनीति में भाग लेने की आज्ञा कदापि नहीं होनी चाहिए। ऐसी पार्टियाँ राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने के लिए धर्म के नाम पर समाज में घृणा फैलाती हैं। इसलिए राजनैतिक दलों का आधार आर्थिक और राजनैतिक सिद्धान्त ही होने चाहिएँ।

जनमत बनाने और व्यक्त करने के साधन (Agencies for the Formulation and Expression of Public Opinion)

जनमत को सही रूप में बनाने के लिए निम्नलिखित आठ प्रमुख साधन हैं—

(१) समाचार पत्र, (२) सार्वजनिक सभा, (३) राजनैतिक दल, (४) राजनैतिक साहित्य, (५) रेडियो और सिनेमा, (६) शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाएँ, (७) चुनाव, और (८) धार्मिक संगठन।

(१) **समाचार पत्र** (Press)—लोकमत-निर्माण का प्रमुख साधन समाचार पत्र हैं। अच्छे समाचार पत्र प्रजातन्त्र के लिए ज्योति-स्तम्भ (light-house) का कार्य करते हैं। वे प्रजातन्त्र के ग्रन्थ कहे जा सकते हैं। निष्पक्ष, स्वतन्त्र और न्यायपूर्ण पत्रकारिता (Press) किसी भी देश के लिए सबसे बड़ा वरदान है। ऐसे समाचार पत्र खराब सरकार की कड़ी आलोचना करते हैं और निर्भीकतापूर्वक लोकमत का संचालन करते हैं। वे केवल सरकार और लोगों के विचारों पर काफ़ी नियन्त्रण ही नहीं रखते बल्कि उनके लिए सही मार्ग-दर्शक भी बन सकते हैं। समाचार पत्र हमें दैनिक समस्याओं की जानकारी कराते हैं और उदासीनता को खत्म करके राजनैतिक चेतना उत्पन्न करते हैं। लोगों और सरकार के बीच में समाचार पत्र एक महत्त्वपूर्ण कड़ी का काम करते हैं। अच्छे समाचार पत्र देश के झगड़ों को खत्म करके उसको उन्नति के शिखर पर ले जाते हैं परन्तु यदि समाचार पत्र किसी स्वार्थी दल, सम्प्रदाय या पूंजीपति के द्वारा चलाए जाएँ, तो देश को बड़ी भारी हानि पहुँचती है। इसलिए सरकार को ऐसे समाचार पत्रों पर कड़ा नियन्त्रण रखना चाहिए।

(२) **सार्वजनिक सभाएँ** (Public Meetings)—सार्वजनिक सभाएँ भी लोकमत निर्माण का बड़ा भारी साधन हैं। मन्त्री जनता में सरकार की नीति का समर्थन करते हैं और विरोधी दल के नेता सरकार की त्रुटियाँ बतलाते हैं। इससे लोगों को राजनैतिक शिक्षा मिलती है। लोगों के वही विचार बन जाते हैं जो सार्वजनिक सभाओं में अनेक नेताओं द्वारा पेश किये जाते हैं। परन्तु यह याद रखना आवश्यक है कि यह सब कुछ वहाँ पर ही सम्भव है जहाँ पर लोगों को अपने विचार प्रकट करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता हो।

(३) **राजनैतिक दल** (Political Parties)—राजनैतिक दलों का जनमत-निर्माण में विशेष हाथ रहता है। जनता में प्रायः तीन प्रकार के लोग होते हैं। पहली श्रेणी में अनेक राजनैतिक दलों के नेता, दूसरी श्रेणी में समाज में कुछ शिक्षित जन और तीसरी श्रेणी में अधिकतर अशिक्षित भोले-भाले लोग सम्मिलित हैं। इन तीनों श्रेणियों में पहली श्रेणी के लोग यद्यपि बहुत थोड़े होते हैं परन्तु उनका प्रभाव समाज में सबसे अधिक रहता है। हमारे देश में काँग्रेस, मुस्लिम लीग, अकाली पार्टी, हिन्दू सभा, जनसंघ, कम्यूनिस्ट और प्रजा सोशलिस्ट इत्यादि अनेक राजनैतिक दल हैं। प्रत्येक दल का यह प्रयत्न रहता है कि किसी प्रकार जनता को एक आकर्षक और रचनात्मक कार्यक्रम दिखाकर अपने पक्ष में कर ले। इसके लिए वे कुछ रचनात्मक कार्य करते हैं और अपनी विचारधारा फैलाने के लिए ओजस्वी भाषण भी देते हैं। अन्त में हम कह सकते हैं कि जनमत को एक विशेष साँचे में ढालने, विकसित और दृढ़ करने में इनका विशेष हाथ रहता है। गेटेल कहता है कि राजनैतिक दल अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए लोकमत को बहुत प्रचार द्वारा अपने पक्ष में करने का यत्न करते हैं। समाचार पत्रों और पत्रिकाओं (magazines) के अतिरिक्त वे सार्वजनिक सभाएँ करते हैं और अनेक प्रकार की पुस्तकों, लेख-पत्रों, पत्रिकाओं और इश्तिहारों को तैयार करके वितरण करते हैं। कई बार मतदाता केवल अपनी पार्टी

का ही साहित्य पढ़ता है और इस तरह उसकी भक्ति दृढ़ हो जाती है।[1]

(४) **राजनैतिक साहित्य** (Political Literature)—अनेक प्रकार की राजनैतिक पुस्तकें राजनैतिक दलों के नेताओं, सम्पादकों, प्रोफेसरों तथा अन्य विद्वानों द्वारा प्रतिदिन लिखी जाती हैं और प्रकाशित की जाती हैं। इन पुस्तकों के पढ़ाने से भी लोगों के विचार एक विशेष प्रवाह में बहने लगते हैं। अधिकतर लोग विचार-शील न होने के कारण पुस्तकों में कुछ पढ़ने के पश्चात् अपने विचार वैसे ही बना लेते हैं।

(५) **रेडियो और सिनेमा** (Radio and Cinema)—रेडियो और सिनेमा का लोगों के विचारों और चरित्र पर विशेष प्रभाव पड़ता है। रेडियो और सिनेमा केवल मनोरञ्जन का ही कार्य नहीं करते हैं बल्कि अनेक घटनाओं के समाचार और नेताओं के विचार लाखों व्यक्तियों तक पहुँचाते हैं। रेडियो के द्वारा लोगों का नेताओं से सम्बन्ध स्थापित होता है। पहले एक नेता का भाषण केवल उपस्थित व्यक्ति ही सुन सकते थे परन्तु अब उसको लाखों करोड़ों लोग एक समय में ही रेडियो द्वारा सुन सकते हैं। अतः यह भी जनता की मनोवृत्ति को एक विशेष साँचे में ढालने के लिए अच्छा साधन समझा जाता है।

(६) **शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाएँ** (Educational Institutions)— शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओं में भी विद्यार्थियों के विचार बनते हैं। विद्यार्थी प्रायः वे ही विचार अपना लेते हैं जो उनको अपने शिक्षकों द्वारा मिलते हैं। स्कूलों और कालेजों में अर्थ-शास्त्र (Economics), नागरिक शास्त्र, राजनीति शास्त्र (Political Science), तथा इतिहास आदि अनेक विषय ऐसे पढ़ाए जाते हैं जिन से राजनैतिक विचारों के निर्माण होने में विशेष सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक कालेज में साहित्यिक गोष्ठियाँ (study circles) और अनेक विषयों की परिषदें (associations) होती हैं और अनेक विद्वानों के भाषण वहाँ पर कराए जाते हैं जिससे लोक-मत-निर्माण में विशेष सहायता मिलती है। हिटलर और रूसी नेताओं ने लोकमत (public opinion) को अपने पक्ष में करने के लिए विशेष ध्यान दिया। उन्होंने अपने प्रचार फैलाने वाले शिक्षक स्कूलों और कालेजों में नियुक्त किए तथा ऐसी ही पुस्तकें पाठ्यक्रम में रखीं।

(७) **चुनाव** (Election)—जनमत प्रकट करने का चुनाव भी बहुत अच्छा साधन है। प्रत्येक राजनैतिक दल चुनाव में अपनी विचारधारा तथा कार्यक्रम जनता के सामने रखने का प्रयत्न करता है। इससे लोगों के राजनैतिक विचार बनते हैं। जिस दल के कार्यक्रम और नीति को जनता पसन्द करती है, उसे वोट देती है और जिसको पसन्द नहीं करती उसे वोट नहीं देती।

---

1. "Political Parties carry on extensive campaigns of propaganda for the purpose of directing public opinion in favour of their interests. In addition to the use of newspapers and magazines favourable to their point of view, they prepare party platforms, campaign text-book, and a flood of documents, pamphlets, posters and other forms of prepared opinions. In many cases the voter reads only the material furnished by his own party and thus is strengthened in his traditional allegiance."—*Gettle.*

(८) **धार्मिक संगठन और संस्थाएँ** (Religious Associations)—भारत एक धर्म-प्रधान देश है। यहाँ पर धर्म का राजनीति पर विशेष प्रभाव रहा है। यदि धर्म का अर्थ नैतिकता से लिया जाए तो धर्म का राजनीति पर प्रभाव हितकर प्रतीत होगा परन्तु बहुत बार कई राजनैतिक दल मज़हबी स्थानों को अपने प्रचार का साधन भी बना लेते हैं। इससे राजनैतिक क्षेत्र में बहुत बुरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है क्योंकि धार्मिक स्थान पूजा-पाठ के केन्द्र न रह कर घृणा और चतुर नेताओं के विचार फैलाने के अड्डे बन जाते हैं। कट्टर पण्डितों और मौलवियों का राजनीति में विशेष प्रभाव रहा है। १९४७ ईस्वी में हमारे देश के विभाजन का कारण धार्मिक विष ही था।

पत्रकारिता का महत्त्व (Importance of the Press)

मिस्टर गेटेल का विचार है कि "समाचार-पत्र अपने सम्पादकीय अग्रलेखों (editorials) और समाचारों द्वारा अपने विचार और तथ्य (facts) प्रकट करते हैं तथा तथ्यों पर टिप्पणी करते हैं। यदि लोगों के सामने तथ्य ठीक और निष्पक्ष प्रकार से रखे जाएँ तो समाचर-पत्र लोगों को दैनिक समस्याओं से परिचित रखने में बड़ी भारी अमूल्य सेवा करते हैं।"[1] प्रेस में दैनिक, साप्ताहिक, मासिक समाचार-पत्र जर्नल (Journals), पत्रिकाएँ और पुस्तकें सम्मिलित हैं। समाचार-पत्रों में समाचार और विचार आते रहते हैं। समाचार-पत्रों में कार्टून, चित्र, पहेलियाँ, क्रास-वर्ड, पुस्तकों की समीक्षाएँ, बाज़ारों के भाव और मौसम की रिपोर्ट, और खेल-कूद के समाचार आते हैं। दैनिक राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक घटनाओं से भी समाचार-पत्र के पृष्ठ भरे रहते हैं। इसके अतिरिक्त समाचार-पत्रों में सम्पादकों और अन्य विद्वानों के लेख आते रहते हैं। इससे लोगों की जानकारी में बहुत वृद्धि होती है। अधिकांश पाठक इन लेखों को पढ़कर अपने विचार बना लेते हैं। यदि सम्पादक अपने विचार प्रकट करने को स्वतन्त्र हों और अपने मालिकों के संकेत पर न नाचते हों तो वे समाज की बहुत अधिक सेवा कर सकते हैं परन्तु बहुत से सम्पादक केवल पूंजीपतियों के नौकर होते हैं या किसी राजनैतिक दल की कठपुतली अतः उनको अपनी नौकरी सुरक्षित रखने के लिए अपने मालिकों या किसी दल की नीतियों का ही अनुसरण करना पड़ता है। सम्पादकों को वास्तव में अधिक स्वतन्त्रता होनी चाहिए तभी वे जनता की सच्ची सेवा कर सकते हैं।

लोकतन्त्र में प्रेस का बहुत अधिक महत्त्व है। समाचार-पत्र सरकार की खराब नीति की कटु आलोचना करके इसको सतर्क रखते हैं और अपने सम्पादकीय लेखों द्वारा सरकार और लोग दोनों का मार्ग-दर्शन करते हैं। समाचार-पत्र लोगों को शिक्षित करके जनमत निर्माण करने में विशेष सहायता देते हैं। ये लोगों को दैनिक घटनाओं से जानकारी कराते हैं और उनके विचारों को भी किसी नीति के पक्ष या विपक्ष में

1. "The newspaper, through its news and editorial columns, presents facts, interpretations of facts and statements of opinion. If facts are presented accurately and impartially, the newspaper performs invaluable service in keeping citizens informed on the problems of the day."—*Gettle.*

झुकाते हैं। सम्पादकों के सम्पादकीय लेखों (editorials) का सरकार तथा लोगों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। प्रेस लोगों की स्वतन्त्रता और हितों का संरक्षक भी है। समाचार-पत्रों के द्वारा नागरिक अपनी माँगें और कष्ट सरकार के सम्मुख रख सकते हैं। यदि सरकार लोगों पर अन्यायपूर्ण टैक्स लगाती है तो लोग प्रेस के द्वारा आन्दोलन करके अपनी बात मनवा सकते हैं। इसके अतिरिक्त यह लोगों और सरकार के मध्य में एक पुल का काम देता है (It acts as the bridge between the two) क्योंकि इसके द्वारा लोगों को यह पता चलता है कि सरकार उनके लिए क्या काम करना चाहती है और सरकार को पता चलता है कि लोग क्या चाहते हैं। प्रेस लोगों और सरकार के मध्य में मेल-जोल कायम करता है जो लोकतन्त्र की सफलता के लिए आवश्यक है। इसलिए प्रेस स्वतन्त्र होना चाहिए।

स्वतन्त्र प्रेस लोकतन्त्र का मुख्य आधार-स्तम्भ है। प्रेस की स्वतन्त्रता को खतरा सरकार और मालिकों के अत्यधिक नियन्त्रण से है। अखिल भारतीय समाचार-पत्र सम्पादक सम्मेलन के बारहवें वार्षिक अधिवेशन में ७ जनवरी, १९५६ को अध्यक्षीय भाषण देते हुए श्री सचिन सेन ने कहा कि "प्रेस का काम सार्वजनिक हितों की बातों पर टिप्पणी करना, अपने पाठकों को जानकारी देना, उन्हें शिक्षित करना, उनका मनोरञ्जन करना और ज्ञान बढ़ाना और विचार-विमर्श की अभिव्यक्ति के लिए एक मंच प्रदान करना है। प्रेस अगर सरकार के प्रभाव में हो, तो अपना कर्त्तव्य नहीं निभा सकता। उसे शासन के हस्तक्षेप के बिना जनसाधारण की सेवा करनी चाहिए। एक उदार प्रजातन्त्र में प्रेस शासक-दल के दबाव से मुक्त होना चाहिए। सरकार से मतभेद प्रकट करने और उसकी आलोचना करने का अधिकार प्रेस को देना होगा। यह हमारी सभ्यता और संस्कृति की कसौटी है। युक्तियुक्त आलोचना तो स्वतन्त्र प्रेस की जान है। सम्वाद-प्रेषण और टिप्पणी में प्रेस शासन के हस्तक्षेप से स्वतन्त्र होना चाहिए। तथापि प्रेस की स्वाधीनता अपरिमित (unlimited) स्वाधीनता नहीं हो सकती। उसे विवाद में कटुता नहीं दिखानी चाहिए, वर्ग-संघर्ष नहीं बढ़ाना चाहिए और उन बुनियादी बातों पर आक्षेप नहीं करना चाहिए जिन पर राज्य की सुरक्षा निर्भर है"। डाक्टर सेन ने आगे चलकर कहा कि "सरकार को सहयोग देना भी प्रेस का कर्त्तव्य है। पंचवर्षीय योजनाएँ दलीय योजनाएँ न होकर राष्ट्रीय योजनाएँ हैं इसलिए इन योजनाओं के परिचालन में उसे कोई कठिनाई पैदा नहीं करनी चाहिए। सरकार की भूलों और कमियों को प्रेस कभी क्षमा न करे किन्तु जब उसने कोई प्रशंसनीय काम किया हो तो उसकी तारीफ न करना अन्यायपूर्ण और अनुचित होगा। स्वतन्त्र सहयोग से प्रेस अपनी आज़ादी नहीं खो देगा परन्तु इसका सहयोग जबर्दस्ती नहीं प्राप्त किया जा सकता। अगर प्रेस के संचालक स्वतन्त्र समाज की आवश्यकताओं के प्रति अन्धे हैं तो प्रेस स्वतन्त्र नहीं। प्रेस तब तभी स्वतन्त्र नहीं होगा जब सामाजिक प्रगति के नाम पर सरकार उसका नियन्त्रण करे। प्रेस को लोगों के प्रति जवाबदेह होना चाहिए।"

अतः प्रेस को सार्वजनिक हित अपने ध्यान में रखना चाहिए। यदि प्रेस किसी स्वार्थी दल या पूंजीपति के हाथों में पड़ जाए तो इससे समाज को बहुत हानि पहुँचती

है। अतः प्रेस को झूठी खबरें और जोशीले लेख नहीं छापने चाहिएँ। समाचार-पत्रों को घृणा का वातावरण भी नहीं पैदा करना चाहिए। घृणा फैलाने वाले समाचार-पत्रों पर सरकार का कुछ नियन्त्रण अवश्य होना चाहिए।

तानाशाही (dictatorship) में प्रेस के ऊपर सरकार का कड़ा नियन्त्रण होता है। समाचार-पत्रों को सरकार की खराब नीति की कड़ी आलोचना करने का बिल्कुल अधिकार नहीं होता और उनको सरकार का प्रत्येक मामले में अनुमोदन करना पड़ता है। हिटलर और मुसोलिनी इसको अपनी नीतियों के प्रचार के लिए सब से उत्तम साधन मानते थे।

रेडियो का महत्त्व
(Importance of Radio or Broadcasting)

जनमत के निर्माण के साधनों में रेडियो का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। रेडियो द्वारा नाना प्रकार के समाचार, मीठे गीत, मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद नाटक और मौसमों की रिपोर्टें मिलती हैं। इसका प्रभाव लोगों पर प्रेस से भी अधिक है। इसका कारण यह है कि समाचार-पत्रों से केवल शिक्षित व्यक्ति ही लाभ उठा सकते हैं और रेडियो से शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों व्यक्ति फायदा उठा सकते हैं। रेडियो या आकाशवाणी प्रेस की अपेक्षा अधिक रुचिकर भी है क्योंकि इसमें शिक्षा को मनोरञ्जक ढंग से दिया जाता है। भारत जैसे देश में इसका अधिक महत्त्व है क्योंकि करोड़ों लोग अशिक्षित हैं और अखबार पढ़ नहीं सकते परन्तु रोचक भाषण, समाचार, संगीत, नाटक इत्यादि सुन कर लाभ उठा सकते हैं। रेडियो से दिये गए भाषणों का राष्ट्र पर विशेष प्रभाव पड़ता है। जिस समय देश में कोई भयानक परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है तो नेता रेडियो से तमाम देश को उस भयानक परिस्थिति का मुकाबला करने के लिए कह सकते हैं। भारत में छुआछूत और धार्मिक कट्टरता को दूर करने में यह विशेष लाभदायक सिद्ध हो सकता है। आकाशवाणी के द्वारा लोगों के सामाजिक और राजनैतिक जीवन में एक क्रान्ति लाई जा सकती है और लोगों का महत्त्वपूर्ण राजनैतिक प्रश्नों पर नेतृत्व किया जा सकता है। कई बार इसका दुरुपयोग भी किया जाता है, जैसे जर्मनी में हिटलर ने इसको यहूदियों के विरुद्ध घृणा फैलाने के लिए प्रयुक्त किया और इसके द्वारा झूठा प्रचार फैलाया। इसलिए केवल सरकार का नियन्त्रण रेडियो पर न हो तो बहुत अच्छा होगा अर्थात् जनता के प्रतिनिधियों और सरकार दोनों का मिलकर इस पर नियन्त्रण होना चाहिए।

प्रचार और अफवाह (Propaganda and Rumour)

आधुनिक युग में प्रचार का विशेष महत्त्व है। प्रत्येक दल और राज्य प्रचार के भरोसे पर ही जीवित है। हमारे देश में सरकार पंचवर्षीय जैसी राष्ट्रीय योजनाओं को पूर्ण रूप से सफल बनाने के लिए इनका लोगों में खूब प्रचार करती है। लोगों का पूर्ण सहयोग प्राप्त करने के लिए प्रचार बड़ा भारी साधन है। यदि प्रचार अच्छा है तो लोगों को बहुत लाभ हो सकता है। भारत में महात्मा गांधी ने स्वतन्त्रता के लिए प्रचार किया और लोगों में राजनैतिक जाग्रति उत्पन्न की। परन्तु प्रचार का

दुरुपयोग भी किया जा सकता है, जैसे हिटलर ने प्रचार के साधनों, जैसे समाचार-पत्र इत्यादि, पर कड़ा नियन्त्रण रखा और झूठा प्रचार लोगों में फैलाया।

सुनी-सुनाई बात को दन्तोक्ति या अफवाह कहते हैं। इसकी सचाई पर सन्देह होता है। कभी-कभी इसमें बहुत साधारण-सी सचाई भी होती है। कई बार किसी राष्ट्र के शत्रु वहाँ पर झूठी अफवाह फैलाते हैं ताकि उनके विपक्षी को हार हो जाय। दन्त-कथा का आधार सदैव स्वार्थ होता है। अतः चोर, बदमाश, लुटेरे और गुण्डे अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए व्यर्थ की अफवाहें फैला देते हैं। निर्वाचन के समय एक दल दूसरे को हराने के लिए भी अफवाह फैला देता है। अफवाह से कोई लाभ नहीं बल्कि हानि ही है। कई बार शासन उलट-पलट हो जाते हैं और भोली-भाली जनता को व्यर्थ में ही कष्ट सहना पड़ता है।

सारांश

जनमत क्या है ? जनमत उसे कहते हैं जो विवेक और स्वार्थ-रहित बुद्धि के आधार पर अवलम्बित हो और जो किसी जाति या वर्ग-विशेष के हित को नहीं बल्कि सारे समाज के हित को अपना लक्ष्य रखता हो। मिस्टर लावेल कहते हैं कि जनमत बनाने के लिए बहुमत काफी नहीं और सर्वसम्मति (unanimity) अनावश्यक है परन्तु राय ऐसी होनी चाहिए जिसको अल्पमत भय के कारण नहीं बल्कि देश के लिए लाभदायक समझकर दृढ़ विश्वास के कारण स्वीकार कर लें। जनमत लोकतन्त्र का प्राण है। जनमत-निर्माण के मुख्य साधन समाचार-पत्र, सार्वजनिक सभाएँ, राजनैतिक दल, राजनैतिक साहित्य, रेडियो और सिनेमा, शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाएँ, चुनाव और धार्मिक संगठन हैं। सही जनमत-निर्माण के मार्ग में निरक्षरता, दलीय समाचार-पत्र, राजनीति के प्रति नागरिकों की उदासीनता, राजनैतिक चेतना का अभाव, राजनैतिक दलों का धार्मिक और व्यक्तिगत कारणों पर निर्माण, बुरी शिक्षा-प्रणाली और निर्धनता इत्यादि अनेक रुकावटें हैं। सही जनमत के निर्माण के लिए इन रुकावटों को दूर करना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रेस और रेडियो का जनमत-निर्माण में विशेष हाथ है। समाचार-पत्र अपने सम्पादकीय लेखों द्वारा लोगों तथा सरकार का मार्ग-दर्शन कराते हैं। समाचार-पत्रों की आलोचना से लोकतन्त्रात्मक सरकार बहुत भयभीत रहती है। इसकी आलोचना के कारण सरकार स्वेच्छाचारी नहीं बन पाती। प्रेस लोगों और सरकार के मध्य में पुल का काम देता है। स्वतन्त्र प्रेस लोगों की स्वतन्त्रता का बड़ा भारी रक्षक है। प्रेस के द्वारा सरकार भी अपना दृष्टिकोण लोगों के सामने रखती है। रेडियो का प्रेस से भी अधिक महत्त्व है। प्रेस से केवल शिक्षित जनता ही लाभ उठा सकती है परन्तु रेडियो से शिक्षित और अशिक्षित दोनों प्रकार की जनता। रेडियो में शिक्षा और मनोविनोद दोनों का सम्मिश्रण (mixture) है। रेडियो के द्वारा एक नेता तमाम देश को एक ही बार में अपनी वाणी सुना सकता है। तानाशाही में प्रेस और रेडियो पर सरकार का कड़ा नियन्त्रण रहता है और उनको सरकार की नीति के प्रचार का मुख्य साधन बनाया जाता है।

Questions

1. What is meant by public opinion ? Describe the agencies which mould public opinion in modern times. (*C.U.* 1946, *U. P.* 1948)

2. Indicate the part played by the press and broadcasting in the formation of public opinion. (*P. U.* 1948, 1949)

3. An alert and enlightened public opinion is the first essential of democracy. Discuss. (*C. U.* 1933)

4. What methods would you suggest for the formation of sound public opinion in India ? (*U. P.* 1945)

5. Describe the channels through which public opinion expresses itself in a democratic state.

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. लोकमत किसे कहते हैं ? श्रेष्ठ लोकमत के निर्माण के लिए किन-किन बातों का होना आवश्यक है ? (उ० प्र० १९५५)

२. जनमत क्या है ? उन साधनों को बताइये जिनके द्वारा वर्तमान काल में जनमत बनता है। (उ० प्र० १९४८)

३. प्रजातान्त्रिक राज्यों में जनमत जिन मार्गों द्वारा प्रकट किया जाता है, उनका वर्णन कीजिए। (यू० पी० १९४०)

४. जनमत क्या है ? किसी भी देश में सुदृढ़ जनमत के निर्माण करने में कौनसी शर्तें जरूरी हैं ? ये शर्तें भारतवर्ष में कहाँ तक पाई जाती हैं ? (यू० पी० १९४५)

५. स्वतन्त्र प्रेस और रेडियो का लोकतन्त्र में क्या महत्त्व है ?

अठारहवाँ अध्याय

राजनैतिक दल (Political Parties)

That these two parties still divide the world—
Of those that want, and those that have : and still
The same old sore breaks out from age to age,
With much the same result—*Tennyson.*

राजनैतिक दलों का महत्त्व (Importance of Political Parties)

राजनैतिक दल निर्वाचक-गण (Electorate) **में उदासीनता को नष्ट करके उनमें चेतना उत्पन्न करते हैं तथा उनको शिक्षित और संगठित करते हैं। अतः लोकतन्त्र इसके बिना चलना असम्भव है**—लार्ड ब्राइस लिखते हैं कि "दल अनिवार्य हैं। कोई भी बड़ा स्वतन्त्र देश उनके बिना नहीं रह सका है। किसी व्यक्ति ने यह नहीं दिखाया कि प्रतिनिध्यात्मक शासन उनके बिना कैसे चल सकता है। वे मतदाताओं की अव्यवस्था में से शान्ति और व्यवस्था उत्पन्न करते हैं। यदि दल कुछ बुराइयाँ उत्पन्न करते हैं तो वे दूसरी बुराइयों को कुछ कम या दूर भी करते हैं।"[1] अतः राजनैतिक दलों का विशेष महत्त्व है क्योंकि इनके बिना लोकतन्त्र चल नहीं सकता। राजनैतिक दल जनता की सार्वजनिक कामों (public affairs) के प्रति उदासीनता (indifference) को दूर करते हैं और उनको राजनैतिक निद्रा से जगा कर उसमें चेतना उत्पन्न करते हैं। जिन मनुष्यों के राजनैतिक विचार एक होते हैं, उनको ये एक नेतृत्व में संगठित करते हैं ताकि वे इकट्ठे होकर सरकार से अपने सिद्धान्त और नीतियाँ मनवा सकें। लावेल के शब्दों में दल विचार फैलाने के लिए दलाल की तरह काम करते हैं।[2]

वे सार्वजनिक नीतियों में तारतम्य बाँध देते हैं। वे मतदाताओं को संगठित और शिक्षित करते हैं। वे राजनीति को साक्षात् नाटक बना देते हैं और राष्ट्र को राजनैतिक रूप से जीवित रखते हैं (They preserve a sense of continuity in public policy. They organise and educate the electorate and help to carry on elections. They dramatize politics and keep the nation politically alive)। राजनैतिक दलों का संगठन प्रजातन्त्र में सबसे अधिक सुदृढ़ होता है क्योंकि ऐसे शासन में विचारों की स्वतन्त्रता के साथ लेखन, भाषण तथा समुदाय बनाने की स्वतन्त्रता बहुत अधिक होती है। भारतीय संविधान में लोगों को

1. "Parties are inevitable. No free large country has been without them. No one has shown how representative Govt. could be worked without them. They bring order out of the chaos of a multitude of voters. If parties cause some evils, they avert and mitigate others.—*Lord Bryce.*

2. "They act as the brokers of ideas."—*Lowell.*

समुदाय बनाने और बिना शस्त्रों के शान्तिपूर्वक इकट्ठा होने की आज्ञा है। तानाशाही में ऐसी स्वतन्त्रता लोगों को प्रायः प्राप्त नहीं होती। हिटलर के समय जर्मनी में नाजी पार्टी के विरुद्ध कोई पार्टी निर्माण नहीं की जा सकती थी। आज भी रूस में साम्यवादी दल (Communist Party) के विरुद्ध कोई राजनैतिक दल खड़ा नहीं किया जा सकता। अमरीका का संविधान बहुत कठोर था। यद्यपि राजनैतिक दल वहाँ संविधान के (लिखित) अंग नहीं कहे जा सकते तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि दलबन्दी की प्रेरणा के कारण ही वह संविधान कुछ परिवर्तनशील (flexible) बन सका और बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार ठीक काम कर सका।

राजनैतिक दलों की परिभाषा (Definition of Political Parties)— हमारे लिए यह जानना अत्यन्त जरूरी है कि राजनैतिक दल किसे कहते हैं। गेटेल के मतानुसार "राजनैतिक दल नागरिकों का वह समुदाय है जो एक राजनैतिक इकाई के रूप में कार्य करता है और अपने मतदान की शक्ति का प्रयोग करके सरकार को नियन्त्रित करना तथा अपनी सामान्य नीति की पूर्ति करना चाहता है।[1] लीकॉक लिखता है कि "राजनैतिक दल संगठित नागरिकों के उस समुदाय को कहते हैं, जो इकट्ठे मिलकर एक राजनैतिक इकाई के रूप में कार्य करते हैं। उनके विचार सार्वजनिक प्रश्नों पर एक जैसे होते हैं और एक सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए मतदान की शक्ति का प्रयोग करके सरकार पर अपना आधिपत्य जमाना चाहते हैं।"[2] अंग्रेज लेखक गिल्क्राइस्ट के मतानुसार "एक राजनैतिक दल उन नागरिकों का एक संगठित समूह है जिनके राजनैतिक विचार एक-से होते हैं तथा जो एक राजनैतिक इकाई की तरह काम करके सरकार को नियन्त्रित करने की चेष्टा करते हैं।"[3] मैकाइवर की सम्मति में "राजनैतिक दल किसी विशेष नीति या सिद्धान्त के समर्थन करने के लिए संगठित उस सभा या समिति को कहते हैं जो वैधानिक उपायों का प्रयोग करके उसी सिद्धान्त या नीति द्वारा सरकार का निर्माण करने का प्रयत्न करे।"[4] बर्क के मतानुसार, "राजनैतिक दल किन्हीं विशेष सिद्धान्तों के अनुसार सम्मिलित प्रयत्नों द्वारा सार्वजनिक हितों को बढ़ाने के उद्देश्य से संगठित हुए नागरिकों का समुदाय है" (A political party is a body of men united for the purpose of promoting, by their joint endeavours, the public interest upon some principles on which they are all agreed.)।

---

1. "A political party consists of a group of citizens, more or less organised, who act as a political unit and who, by the use of their voting power, aim to control the Govt. and carry out their general policies."—*Getlle.*

2. "By a political party we mean more or less organised group of citizens who act together as a political unit. They share or profess to share the same opinions on public questions, and by exercising their voting power towards a common end, seek to obtain control of the Govt."—*Leacock.*

3. "A political party may thus be defined as an organised group of citizens who profess to share the same political views and who, by acting as a political unit, try to contol the Govt."—*Gilchrist.*

4. According to MacIver, "A Political party is an association organised n support of some principle or policy which by constitutional means it endeavours to make the determinant of Govt."

राजनैतिक दलों के लिए आवश्यक नियम—अतः इन परिभाषाओं के अध्ययन के पश्चात् हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि राजनैतिक दलों के निर्माण के लिए चार चीजों का होना आवश्यक है। पहली चीज यह है कि लोग संगठित होने चाहिएँ। दूसरे, उनके कुछ सामान्य (common) सिद्धान्त होने चाहिएँ। तीसरे, राजनैतिक दल का उद्देश्य राजनैतिक शक्ति प्राप्त करना होना चाहिए। चौथे, राजनैतिक दल को राष्ट्र (nation) की भलाई के लिए शक्ति को प्राप्त करना चाहिए। उन्हें शक्ति प्राप्त करने के लिए शान्तिमय तरीकों का प्रयोग करना चाहिए।

राजनैतिक दलों और गुटों में भेद (Difference between Political Parties and Factions)—राजनैतिक दलों और गुटों में बहुत भेद है। राजनैतिक दल राष्ट्र के हित के लिए शान्तिमय ढंगों से राजनैतिक शक्ति को प्राप्त करना चाहते हैं परन्तु गुट अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए शक्ति का प्रयोग करना चाहते हैं। गुटों का उद्देश्य भी समान होता है परन्तु वे बल-प्रयोग, लड़ाई-दंगा, गुण्डागर्दी के साधनों को काम में लाकर अपने लक्ष्य की पूर्ति करना चाहते हैं। एक लेखक ने इन दोनों का अन्तर एक ही वाक्य में इस तरह स्पष्ट कर दिया है कि राजनैतिक दलों की कार्य-प्रणाली सिरों का गिनना है और गुटबन्दियों की कार्य-प्रणाली सिरों को तोड़ना है अर्थात् राजनैतिक दल राजनैतिक प्रश्नों का हल मतों द्वारा करते हैं और गुट शक्ति द्वारा।

राजनैतिक दलों के निर्माण के आधार
(Bases for the Formation of Political Parties)

राजनैतिक दलों की उत्पत्ति क्यों हुई, इस विषय में भिन्न-भिन्न लेखकों के भिन्न-भिन्न मत हैं। तमाम लोगों के एक जैसे राजनैतिक विचार नहीं होते। इसलिए अपने-अपने विचारों को सुदृढ़ बनाने के लिए वे अलग-अलग दल की स्थापना कर लेते हैं। यह **राजनैतिक आधार** कहलाता है। अलग-अलग राजनैतिक दलों के अलग-अलग राजनैतिक विश्वास होते हैं, कुछ प्रजातन्त्र में विश्वास रखते हैं, तो कुछ तानाशाही में। दलों के निर्माण का दूसरा कारण **धार्मिक आधार** भी हो सकता है। एक धर्म के मानने वाले कई बार दूसरों से मतभेद रखना चाहते हैं। इसके लिए वे अपना अलग दल निर्माण करके राजनैतिक शक्ति को प्राप्त करना चाहते हैं—जैसे मुस्लिम लीग, हिन्दू सभा या यूरोपीय देशों में कैथोलिक पार्टियाँ। तीसरे, राजनैतिक दलों के निर्माण के कारण **आर्थिक** भी हो सकते हैं। समाज में बहुत से व्यक्ति पूंजीवाद और ज़मींदारी के विरोधी होते हैं, जैसे साम्यवादी और समाजवादी। समाजवादी और साम्यवादी पूंजीवाद तथा ज़मींदारों को खत्म करने के लिए अपने अलग-अलग राजनैतिक दल बना लेते हैं। ज़मींदार तथा पूंजीपति भी अपनी रक्षा के लिए संगठित हो जाते हैं और अपना दल बना लेते हैं, जैसे मिल ओनर्ज़ एसोसियेशन। पार्टीबन्दी का कारण **जातीय** भी हो सकता है, जैसे हिटलर ने यहूदियों के विरुद्ध **नात्सी** (Nazi) पार्टी बनाई। अफ्रीका में भी गोरे पुरुषों की अलग पार्टियाँ हैं और वे भारतीयों को काले समझ कर शासन में हिस्सा नहीं देना चाहते। इसके अतिरिक्त

दलों के निर्माण का कारण **मनोवैज्ञानिक या प्राकृतिक मतभेद** भी हो सकता है। बहुत से लोग समाज में पिछली बातों को आदर्श मानते हैं और उनको वापस लाना चाहते हैं। ऐसे लोगों को हम प्रतिक्रियावादी कहते हैं। दूसरे प्रकार के लोग समाज में ऐसे होते हैं जो वर्त्तमान परिस्थिति में कोई परिवर्त्तन नहीं चाहते, जैसे पूंजीपति। उनको हम अनुदार (Conservative) कहते हैं। तीसरे, समाज में ऐसे लोग होते हैं जो समाज की बुराइयों को दूर करके इसमें सुधार करना चाहते हैं परन्तु केवल वैधानिक तरीकों से ही वे ऐसा करना पसन्द करते हैं, उनको हम उदार (Liberals) कहते हैं। चौथे, समाज में कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो समाज की सारी व्यवस्था को घृणात्मक दृष्टि से देखते हैं और इसमें परिवर्त्तन बहुत शीघ्र क्रान्तिमय ढंगों से करना चाहते हैं, उनको हम उग्र (Radicals या Extremists) कहते हैं।

राजनैतिक दलों के कार्य (Functions of Political Parties)—राजनैतिक दलों के दो मुख्य कार्य हैं—(१) जनता में अपने सिद्धान्त और नीति का प्रचार करना तथा लोगों के सामने प्रोग्राम रखना; (२) चुनाव लड़ना। ब्राइस लिखता है कि प्रत्येक राजनैतिक दल अपनी कामयाबी के लिए चार बातें अपनाता है—पहले, हर एक पार्टी अपने में मज़बूत संगठन बनाये रखती है और एकता को किसी भाँति भी नष्ट नहीं होने देती। दूसरे, राजनैतिक पार्टियाँ अपने मेम्बरों की तादाद बढ़ाने का सदैव प्रयत्न करती रहती हैं। तीसरे, मतदाताओं तथा समर्थकों को भाषणों तथा अन्य तरीकों द्वारा उत्साहित किया जाता है। चौथे, मतदाताओं को राजनैतिक समस्याओं का ज्ञान कराया जाता है। इसके अतिरिक्त राजनैतिक दल चुनाव में योग्य से योग्य व्यक्तियों को खड़ा करते हैं और उनको समाचार पत्रों, व्याख्यानों, सभाओं और प्रदर्शनों द्वारा चुनाव में सफल बनाने का यत्न करते हैं। प्रत्येक दल विरोधी दल को हराना चाहता है और इसके लिए अपने उम्मीदवारों के पक्ष में बहुत प्रचार करता है और विरोधी दल के उम्मीदवारों की नीति का खण्डन करता है ताकि मतदाता किसी विरोधी पक्ष के उम्मीदवार को अपना वोट न दें। यदि कोई दल बहुमत प्राप्त कर लेता है तो वह सरकार का संचालन करता है वरना वह विरोधी दल के रूप में सरकार की नीतियों का खण्डन करता है और सरकार को मनमानी नहीं करने देता।

राजनैतिक दलों के लाभ (Advantages of Party System)

(१) **राजनैतिक दल लोगों को राजनैतिक निद्रा से जगाते हैं** (Awaken the Masses from Political Slumber)—लोकतन्त्र को ठीक रूप में चलाने के लिए राजनैतिक दलों की विशेष ज़िम्मेवारी है। राजनैतिक दल जनता की राजनैतिक निद्रा भंग करते हैं और उन्हें शासन-सम्बन्धी कार्यों में भाग लेने के लिए आह्वान (call) करते हैं। राजनैतिक दल चुनाव के समय लोगों के सामने अपना कार्यक्रम रखते हैं और जनता को अपने पक्ष में करने के लिए अनेक भाषण देते हैं, इससे जनता में राजनैतिक जाग्रति उत्पन्न होती है। जनता अपनी उदासीनता को छोड़कर देश की समस्याओं के बारे में विचार करने लग पड़ती है।

(२) **सरकार का संचालन लोकेच्छा के अनुसार सम्भव बनाते हैं** (Make the Govt. work according to Public Opinion)—राजनैतिक दलों के कारण ही सरकार का संचालन जनता की इच्छानुसार होता है। यदि शासक दल (Govt. Party) जनता की इच्छानुसार शासन न चलाये, तो विरोधी दल सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास करने का यत्न करता है। यदि सरकारी पार्टी के विरुद्ध बहुमत से अविश्वास प्रस्ताव पास हो जाय तो इसको त्याग-पत्र देना पड़ता है और विरोधी दल का नेता नया मन्त्रिमण्डल निर्माण करता है।

(३) **राजनैतिक दल अध्यक्षीय शासन में कार्यकारिणी और व्यवस्थापिका में महत्त्वपूर्ण कड़ी का काम देते हैं** (Serve as important Link between Executive and Legislature in Presidential Government)—अध्यक्षीय शासन का मुख्य आधार शक्तियों का पृथक्करण (Separation of Powers) है अतः इसमें कार्यकारिणी और व्यवस्थापिका में गत्यवरोध (deadlocks) होने की बहुत सम्भावना है परन्तु दलीय पद्धति के कारण ऐसा होने की कम आशंका रहती है, क्योंकि राजनैतिक दल व्यवस्थापिका और कार्यकारिणी में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी (link) का काम देते हैं।

(४) **राजनैतिक दल धारा सभा में अपने प्रतिनिधियों पर कड़ा नियन्त्रण रखते हैं और उनमें अनुशासन कायम करते हैं** (Create Discipline among Legislators)—राजनैतिक दल अपने सदस्यों को निर्वाचन के लिए खड़ा करते हैं। कोई दल अयोग्य व्यक्तियों को चुनाव में टिकट नहीं देता। अगर कोई अयोग्य व्यक्ति चला भी जाय तो भी उसको अपने नेता के अधीन रहना पड़ता है, इसलिए वह देश को कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। स्वतन्त्र उम्मीदवार अपनी प्रतिज्ञाओं को प्रायः नहीं निभाता क्योंकि उसके ऊपर किसी का नियन्त्रण नहीं रहता। वह किसी प्रोग्राम से बँधा हुआ नहीं होता। पार्टी के टिकट पर चुने गये उम्मीदवार पार्टी के अनुशासन से बँधे हुए होते हैं। प्रत्येक पार्टी चुनाव के समय दी गई प्रतिज्ञाओं को पूरा करने की कोशिश करती है क्योंकि इसे अगला चुनाव लड़ना होता है।

(५) **ये दल मतदाताओं के सामने विशाल दृष्टिकोण पेश करते हैं और उनका ध्यान बड़ी समस्याओं पर लगाते हैं** (Concentrate the Attention of the Public on Bigger Issues)—ये जनता को राजनीति में भाग लेने के लिए प्रेरित करते हैं। लाखों लोगों को मतदान केन्द्र (Polling Station) पर लाना राजनैतिक दलों का ही काम है। कई पार्टियाँ जो देश-हित के लिए काम करती हैं, नागरिकों के संकुचित दृष्टिकोण को खत्म करके विशाल दृष्टिकोण उत्पन्न करती हैं और उनका बड़ी समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करती हैं।

(६) **विशेष नीति के लिए व्यवस्थापिका के सदस्यों में संगठन उत्पन्न करते हैं** (Create Concerted Action for Legislation)—राजनैतिक दल व्यवस्थापिका में अपने सदस्यों पर खास नियन्त्रण रखते हैं। वे देखते हैं कि उनके सदस्य मत (votes) निश्चित ढंग से दें। जो ऐसा नहीं करते, उनके विरुद्ध पार्टी कार्रवाई (action) करती है। इससे व्यवस्थापिका के सदस्यों में एक प्रकार का अनुशासन

और संगठन उत्पन्न होता है। इस अनुशासन और संगठन के कारण ही प्रत्येक राजनैतिक दल एक निश्चित नीति का अनुकरण कर सकता है।

(७) **समस्याओं के हल के लिए विशेषज्ञों की कमेटियाँ निश्चित की जाती हैं** (Committees of Experts for the Solution of Important Problems)—बहुत से राजनैतिक दल देश की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समस्याओं को विचारने के लिए विशेषज्ञों की एक कमेटी बिठा देते हैं और कई बार अन्वेषण-संस्थाएँ भी खोलते हैं।

(८) **सुधार में भाग लेते हैं** (Pilot the Reforms)—कभी-कभी राजनैतिक दल सुधारों में भी भाग लेते हैं। हमारे देश में काँग्रेस ने हरिजनोद्धार, स्त्री-शिक्षा तथा जात-पाँत और ऊँच-नीच के भेद-भावों को मिटाने के लिए भरसक प्रयत्न किया है। आर्थिक क्षेत्र में काँग्रेस ने जमींदारी उन्मूलन (Abolition of Zamindari), भूदान, घरेलू उद्योग और खादी के प्रचार में विशेष कार्य किया है।

राजनैतिक दलों के दोष (Disadvantages of Party System)

राजनैतिक दलों का यदि उचित संगठन न हो तो उनके अनेक दोष भी निकल सकते हैं। कुछ दोष निम्नलिखित हैं:—

(१) **व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर कुठाराघात करते हैं** (Parties Curtail Individual Liberty)—यह प्रथा सच्चे लोकतन्त्र के विरुद्ध है क्योंकि इसमें अनुशासन के नाम पर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का गला घोंट दिया जाता है। पार्टी के नेताओं द्वारा लिये गए एक फैसले को सब सदस्यों को मानना पड़ता है, चाहे फैसला उनके अन्तःकरण के विरुद्ध भी क्यों न हो। यदि एक सदस्य उन फैसलों का जनता में घोर विरोध करता है तो उसको पार्टी से बहिष्कृत (expulsion) कर दिया जाता है।

(२) **नैतिक स्तर को गिराते हैं** (Parties Lower Moral Standard)—राजनैतिक दल समाज के नैतिक स्तर (moral standard) को गिरा देते हैं। चुनाव में वे दूसरे उम्मीदवारों के विरुद्ध झूठा प्रचार करते हैं। चुनाव के दिनों में शराबें उड़ती हैं और पैसे से वोट खरीदे जाते हैं तथा अनेक प्रकार के भ्रष्टाचार फैलाये जाते हैं।

(३) **देश को दो विरोधी गुटों में बाँटते हैं** (Divide Nation into Two Irreconciliable Groups)—देश को दो परस्पर विरोधी गुटों में बाँट देते हैं। इससे देश अवनति के गढ़े में गिर जाता है।

(४) **देश-भक्ति के स्थान पर दल-भक्ति** (Loyalty to the Party at the Cost of Loyalty to Nation Advocated)—प्रत्येक दल अपने सदस्यों में देश-भक्ति के स्थान पर दल-भक्ति की भावना उत्पन्न करता है। इससे दल के सदस्य पार्टी के हित के सम्मुख राष्ट्र के हित को तुच्छ समझने लगते हैं।

(५) **स्वार्थी नेताओं के गुट** (Clique of Selfish Leaders Usurp the Whole Party Power)—दलों के अन्दर ऐसे व्यक्तियों का गुट बन जाता है जो सारी शक्ति को हड़प कर लेते हैं। पार्टी नेताओं की दृष्टि में वे ही सदस्य ऊँचे चढ़ सकते हैं जो उनकी सदैव स्तुति करते रहें और चापलूसी करते रहें।

(६) **राजनैतिक दल धार्मिक घृणा फैलाते हैं** (Spread Religious

Hatred)—बहुत से राजनैतिक दल धर्म या मज़हब के आधार पर बनाये जाते हैं। ऐसे दल धार्मिक स्थानों को अपने प्रचार के लिए अड्डे बना लेते हैं। वे घृणा का प्रसार करते हैं और समाज पर तबाही व बरबादी लाते हैं। सन् १९४७ में भारत का विभाजन ऐसे दलों के प्रचार के कारण ही हुआ।

(७) **बहुदलीय शासन में अस्थायी सरकार** (Instable Govts. in Multiple Party System)—जहाँ बहुदलीय प्रथा (Multiple Party System) होती है, वहाँ स्थायी सरकार नहीं बन पाती। फ्रांस में १९४६ के पश्चात् सोलह से अधिक मन्त्रिमण्डल बन चुके हैं।

(८) **स्थानीय वातावरण दूषित करते हैं** (Embitter Local Atmosphere)—दलबन्दी के कारण डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, नगरपालिकाओं और ग्राम-पंचायतों में पार्टी पॉलिटिक्स आ जाता है और वहाँ पर प्रत्येक मामले पर निष्पक्ष रूप से विचार नहीं हो पाता।

(९) **पार्टियाँ लोगों की राय अधिक से अधिक प्राप्त करने के लिए कानून बनाती हैं** (Laws are made to Win Favour of Electorate)—सरकारी पार्टी ऐसे कानूनों को बनाने का प्रयत्न करती है जिससे लोग प्रसन्न हो जाएँ चाहे वे जनता के लिए हितकर हों या न हों। यह सब कुछ केवल वोट प्राप्त करने के उद्देश्य से ही किया जाता है।

(१०) **विरोधी दल की परवाह न करना और बहुमत दल द्वारा मनमानी करना** (Majority Party does not care a fig for the Minorities sometimes)—दलीय-प्रथा के कारण बहुमत-दल ही सरकार बना सकता है। अल्पमत दल को विरोधी समझ कर उससे राष्ट्र के लाभ के लिए कोई परामर्श नहीं लिया जाता। कई बार यदि सरकारी दल का व्यवस्थापिका में विशेष बहुमत हो तो उसकी तानाशाही स्थापित हो जाती है और अल्पसंख्यक वर्गों (minorities) की तनिक भी परवाह नहीं की जाती। विरोधी दल के योग्य से योग्य व्यक्तियों के अनुभव से कोई लाभ नहीं उठाया जाता। इसी प्रकार विरोधी दल के लोग भी सरकार के प्रत्येक कार्य की आलोचना करते हैं चाहे सरकार कितना ही अच्छा काम क्यों न करे।

द्विदलीय पद्धति के गुण
(Merits of Bi-Party or Two-Party System)

द्विदलीय पद्धति उसे कहते हैं जहाँ दो मुख्य राजनैतिक दल हों। उदाहरणार्थ, इंगलैंड और अमरीका में दो मुख्य राजनैतिक दल हैं। इंगलैंड में कन्ज़र्वेटिव और लेबर पार्टी मुख्य हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि इंगलैंड में कोई और पार्टी है ही नहीं। इन दो पार्टियों के अलावा इंगलैंड में लिबरल और कम्यूनिस्ट पार्टियाँ भी हैं परन्तु उनका महत्त्व राजनैतिक क्षेत्र में बहुत अधिक नहीं है। बहुदलीय पद्धति फ्रांस में प्रचलित है, वहाँ पर दो से अधिक पार्टियाँ या ग्रुप हैं और किसी की इतनी (संख्या की दृष्टि से) शक्ति नहीं होती कि अकेली मन्त्रिमण्डल का निर्माण कर सके अर्थात् बहुदलीय पद्धति में प्रायः संयुक्त सरकारें (Coalition Govts.) होती हैं।

द्विदलीय पद्धति में निम्नलिखित गुण हैं—

(१) **सरकार अधिक स्थिर रहती है** (Govt. is More Stable)—इसमें सरकार अधिक स्थिर रहती है क्योंकि जिस पार्टी का बहुमत होता है वही मन्त्रिमण्डल का निर्माण करती है और दूसरे विरोधी दल (Opposition Party) बन जाते हैं। इसमें एक ही पार्टी का मन्त्रिमण्डल होता है, संयुक्त सरकारें (Coalition Govts.) नहीं। अतः सरकार अधिक चिरस्थायी होती है। जब एक पार्टी का बहुमत नहीं रहता, तो विरोधी दल को मन्त्रिमण्डल के निर्माण के लिए बुलाया जाता है। संयुक्त सरकारों में बहुत सौदेबाजी (political bargaining) चलती है परन्तु इसमें एक दल का मन्त्रिमण्डल होने के कारण ऐसा सम्भव नहीं है। इसलिए साधारण मतभेद होने पर मन्त्रिमण्डल के टूटने की आशंका नहीं रहती। यह भय संयुक्त सरकारों में सदैव बना रहता है।

(२) **मन्त्रि-मण्डल का निर्माण सुविधाजनक** (Formation of Ministry Easy)—द्विदलीय प्रणाली में मन्त्रिमण्डल का निर्माण करना अधिक सुविधाजनक है क्योंकि एक पार्टी, जिसका बहुमत होगा, सरकार का निर्माण करेगी और दूसरी पार्टी विरोध में रहेगी। बहुदलीय पद्धति में मन्त्रिमण्डल के निर्माण में अत्यन्त कठिनता का सामना करना पड़ता है क्योंकि किसी पार्टी का इतना बहुमत नहीं होता कि अकेली मन्त्रिमण्डल बना सके, अतः कई पार्टियाँ मिलती हैं, तब सरकार बनती है। संयुक्त सरकारें बड़ी कठिनता से बनती हैं और बहुत शीघ्र टूट जाती हैं।

(३) **प्रधान मन्त्री की महत्त्वपूर्ण स्थिति** (Commanding Position of Prime Minister)—द्विदलीय पद्धति में प्रधान मन्त्री की स्थिति अत्यन्त मज़बूत रहती है क्योंकि उसकी नीति का समर्थन करने के लिए उसके पास व्यवस्थापिका में बहुमत होता है और मन्त्रिमण्डल का नेतृत्व करने में भी उसको इतनी कठिनता का सामना नहीं करना पड़ता जितना कि बहुदलीय शासन में जहाँ मन्त्री कई दलों के प्रतिनिधि होते हैं।

(४) **लोगों के सामने स्पष्ट प्रोग्राम होते हैं** (Clear-cut Policies are placed before the Electorates)—द्विदलीय पद्धति में जनता के सामने दो बिल्कुल भिन्न प्रोग्राम रखे जाते हैं। दो दलों के निर्माण के आधार तथा सिद्धान्त और प्रोग्राम बिल्कुल अलग-अलग होते हैं, अतः वे स्पष्ट होते हैं परन्तु बहुदलीय प्रणाली में एक दल का प्रोग्राम दूसरे से बहुत ज़रा-सा भिन्न होता है। इसलिए लोगों को दो पार्टियों के प्रोग्राम में से एक को चुनने में सुभीता रहता है।

(५) **नीति में दृढ़ता तथा सुचारुता** (Firmness and Consistency in Policies)—द्विदलीय पद्धति में नीति में दृढ़ता और सुचारुता आ जाती है क्योंकि मन्त्रिमण्डल अधिक स्थिर रहता है। इसके अतिरिक्त इसमें संयुक्त सरकारें न होने के कारण नीति में अनुकूलता तथा एकरूपता (consistency and uniformity) भी सदैव विद्यमान रहती है।

(६) **सरकार का साक्षात् चुनाव** (Direct Election of Govt. by the Voters)—इसमें लोग साक्षात् सरकार का चुनाव करते हैं। उनके सामने दो पार्टियों

के भिन्न-भिन्न प्रोग्राम होते हैं और उन्हें पता होता है कि यदि इस पार्टी को अधिक वोट मिल गए तो कैसी सरकार बनेगी और यदि दूसरी पार्टी को बहुमत प्राप्त हो गया, तो कैसी सरकार कायम होगी। बहुदलीय पद्धति में लोग चुनाव के समय बिल्कुल निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि किस पार्टी को वोट देने से किस प्रकार की सरकार बनेगी क्योंकि इसमें एक पार्टी की सरकार बनना सम्भव नहीं।

(७) **विरोधी दल अधिक संगठित होता है** (Powerful Opposition keeps the Govt. on Mettle)—द्विदलीय पद्धति में विरोधी दल अधिक संगठित और प्रभावशाली होता है। विरोधी दल सरकार की नीति की आलोचना करते समय यह ध्यान रखता है कि केवल रचनात्मक आलोचना (constructive criticism) ही की जाये क्योंकि इसके ऊपर सत्तारूढ़ दल (Party-in-power) के हारने के बाद मन्त्रिमण्डल के निर्माण की ज़िम्मेवारी होती है।

द्विदलीय पद्धति में दोष (Defects in Two-party System)

(१) **मन्त्रिमण्डल की तानाशाही** (Dictatorship of Cabinet)—इसमें मन्त्रिमण्डल की तानाशाही कायम हो जाती है क्योंकि जिस पार्टी का व्यवस्थापिका में विशेष बहुमत होता है वह अपनी मनमानी करती है और विरोधी दल की तनिक भी परवाह नहीं करती।

(२) **मन्त्रिमण्डल के हाथ में व्यवस्थापिका एक कठपुतली** (Legislature becomes a Puppet in the Hands of Cabinet)—व्यवस्थापिका मन्त्रिमण्डल के हाथ में कठपुतली बन जाती है क्योंकि प्रधानमन्त्री एक बहुमत दल का नेता होता है और व्यवस्थापिका में उसकी पार्टी को उसकी नीति का समर्थन अवश्यमेव करना पड़ता है।

(३) **निर्वाचकों के लिए कम स्वतन्त्रता** (Limited Choice for the Electorates)—इसमें विचार-भिन्नता ठीक प्रकार से प्रकट नहीं हो सकती। निर्वाचकों अथवा मतदाताओं को केवल दो पार्टियों में से एक को चुनना पड़ता है, चाहे वे उन दोनों को ही नापसन्द करते हों। ऐसा मानना कठिन है कि मानवीय प्रकृति को दो भागों में बाँटा जा सकता है और प्रत्येक मतदाता या तो अनुदार (conservative) होता है या समाजवादी। बहुदलीय प्रणाली में मतदाताओं को उम्मीदवार चुनने के लिए अधिक स्वतन्त्रता होती है क्योंकि दस-बारह पार्टियों में से जिसका प्रोग्राम उनको अधिक पसन्द होता है, वे उसे चुन लेते हैं।

बहुदलीय पद्धति के गुण (Merits of Multiple Party System)

बहुदलीय पद्धति फ्रांस में प्रचलित है। बहुदलीय पद्धति में एक देश में कई राजनैतिक ग्रुप (political groups) होते हैं। किसी की इतनी शक्ति नहीं होती है कि स्वयं बिना किसी की सहायता के मन्त्रिमण्डल का निर्माण कर सके। पहले इटली और जर्मनी में भी फ़ासिस्टवाद और नाज़ीवाद के अभ्युदय से पूर्व दो से अधिक राजनैतिक ग्रुप थे। जर्मनी में प्रथम महायुद्ध (१९१४-१८) के पश्चात् लोकतन्त्र की

स्थापना हुई और वाइमर संविधान लागू किया गया। इटली में भी सन् १९१४ से पूर्व बहुदलीय प्रथा प्रचलित थी। इस पद्धति के निम्नलिखित गुण हैं—

(१) **निर्वाचकों को अधिक स्वतन्त्रता** (Wider Choice for the Electorates)—इसमें मतदाताओं को अपने विचारों से मिलती-जुलती पार्टियों को चुनने की अधिक स्वतन्त्रता मिल जाती है। जब केवल दो पार्टियाँ हों तो मतदाताओं को उनमें से ही चुनना पड़ता है। रेमज़े म्योर लिखता है कि द्विदलीय प्रथा के कारण इंगलैंड में संसद् का मान कम रह गया है और मन्त्रिमण्डल की तानाशाही कायम हो गई है।

(२) **राष्ट्र दो विरोधी दलों में नहीं बँट पाता और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन नहीं होता** (Does not Divide the Nation into two Hostile Camps)—इससे राष्ट्र दो परस्पर विरोधी गुटों में नहीं बँटता। इसमें बहुत सख्त अनुशासन नहीं होता, इसलिए व्यवस्थापिका के सदस्यों को अपने विचार प्रकट करने का अधिक अवसर मिल जाता है। इसमें व्यवस्थापिका के सदस्यों तथा मतदाताओं के स्वतन्त्र विचारों का कम हनन होता है।

(३) **विधान-सभा मन्त्रिमण्डल का खिलौना नहीं बनती** (Council of Ministers cannot Control Parliament in a Dictatorial Manner)—इस प्रणाली में मन्त्रिमण्डल विधान-मण्डल (Legislature) को अपनी इच्छानुसार नहीं घुमा सकता। अतः इसमें मन्त्रिमण्डल की तानाशाही स्थापित नहीं हो सकती। मन्त्रि-परिषद् को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए व्यवस्थापिका की सद्भावना पर निर्भर रहना पड़ता है। इससे बहुमत-दल कानून ज़बरदस्ती पास नहीं करवा सकता बल्कि आपसी समझौते द्वारा ही ऐसा संभव है।

(४) **व्यवस्थापिका लोकमत का अधिक दर्पण** (Better Reflects Public Opinion)—देश के विभिन्न हितों और दृष्टिकोणों को विधान-सभा में नुमाइन्दगी मिल जाती है। इस प्रणाली में व्यवस्थापिका लोकमत की अधिक दर्पण बन सकती है।

बहुदलीय पद्धति में दोष (Defects in the Multiple Party System)

(१) **संयुक्त सरकारें कमज़ोर होती हैं** (Coalition Govts. result in this system which are weak)—बहुदलीय पद्धति में बड़ा भारी दोष यह है कि इसमें संयुक्त सरकारें (Coalition Govts.) बनती हैं। संयुक्त सरकारें प्रायः अस्थायी होती हैं। फ्रांस में सन् १८७० से सन् १९३४ तक ८८ मन्त्रिमण्डल बने। इसी प्रकार १९४६ ईस्वी से लेकर अब तक १२ से अधिक मन्त्रिमण्डल बन चुके हैं। इससे पता चलता है कि वहाँ एक मन्त्रिमण्डल की अवधि ८ या ९ मास कुल रहती है। मन्त्रिमण्डल में शामिल होने वाले दलों में किसी समय भी सहयोग न होने के कारण सरकार का पतन हो जाता है।

(२) **लम्बी योजनाएँ असम्भव** (No Long-term Planning)—चूँकि इस प्रणाली में सरकार प्रायः अस्थायी होती है, इसलिए लम्बी-लम्बी योजनाएँ प्रायः नहीं बन पातीं।

(३) **शासन-सम्बन्धी अनुरूपता और दृढ़ता का अभाव** (Lack of Consistency and Uniformity)—इस प्रणाली में शासन-सम्बन्धी अनुरूपता और दृढ़ता (uniformity and firmness) नहीं रहती क्योंकि विभिन्न दल जो संयुक्त सरकार में सम्मिलित होते हैं, विभिन्न कानून बनाना चाहते हैं। इसलिए मन्त्रिमण्डल की वैसी ही दशा हो जाती है जैसे एक रथ के घोड़े अलग-अलग दिशाओं में भागते हों।

(४) **प्रधान मन्त्री की कमज़ोर स्थिति** (No Commanding Position of Prime Minister)—इसमें प्रधान मन्त्री की स्थिति इतनी मज़बूत नहीं रहती जितनी कि द्विदलीय शासन-प्रणाली में। प्रधान मन्त्री एक सुनिश्चित और दृढ़ गृह अथवा विदेश-नीति का पालन नहीं कर सकता। उसका सारा समय विविध दलों के मन्त्रियों के झगड़े निपटाने में लग जाता है।

एकदलीय पद्धति (Single Party System)

रूस, चीन और स्पेन तथा अन्य साम्यवादी देशों (Communist countries) में एकदलीय पद्धति है। इसी प्रकार मुसोलिनी और हिटलर के समय इटली तथा जर्मनी में भी एक से अधिक पार्टियाँ नहीं थीं। एक-दल-पद्धति से पहली हानि यह है कि तानाशाही की नींव पड़ती है। शासकीय दल (Govt. Party) को ही जीवित रहने का अधिकार होता है और विरोधी दल शक्ति के द्वारा समाप्त कर दिये जाते हैं। इस पद्धति में लोकतन्त्र का नाश हो जाता है और स्वतन्त्रता लुप्तप्राय हो जाती है। दूसरे, राज्य और समाज में अन्तर खत्म हो जाता है और राज्य को समाज के प्रत्येक क्षेत्र में दखल देने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इसका लाभ यह है कि लोकतन्त्र की सब कमज़ोरियाँ दूर हो जाती हैं और शक्तिशाली शासन का निर्माण होता है।

दलीय पद्धति को सफल बनाने के लिए शर्तें
(Conditions to Make Party System a Success)

(१) दलों का निर्माण जाति, वर्ण और धर्म के आधार पर नहीं बल्कि आर्थिक और राजनैतिक सिद्धान्तों पर होना चाहिए; (२) नेताओं को पार्टी के हित की अपेक्षा राष्ट्र के हित को अधिक महत्त्व देना चाहिए; (३) जनता में शिक्षा का प्रचार किया जाय और निर्धनता को बिल्कुल नष्ट किया जाय; (४) बहुमत दल को विरोधी दल से सलाह करके ही कानून बनाने चाहिएँ; (५) सरकार का दलों की अनुचित कार्रवाइयों पर कड़ा नियन्त्रण होना चाहिए; और (६) एकदलीय प्रथा या बहुदलीय प्रथा सरकार के संचालन के लिए ठीक सिद्ध नहीं होती।

भारत में राजनैतिक दल (Political Parties in India)—भारत में अनेक राजनैतिक दल हैं। उनमें सब से अधिक महत्त्वपूर्ण *इण्डियन नेशनल कांग्रेस* है। इसकी स्थापना १८८५ में श्री ह्यूम ने की थी। १९४७ से पूर्व यह देश की स्वतन्त्रता के लिए लड़ती रही। इस हेतु इसने १९२९ में लाहौर अधिवेशन में पण्डित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव भी पास किया था। बड़े-बड़े महारथी और सेनानी कांग्रेस में आए और उन्होंने देश के अहिंसात्मक

स्वतन्त्रता संग्राम के लिए अनेक त्याग तथा बलिदान दिये। उन में प्रातःस्मरणीय नाम लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, पण्डित मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, सुभाषचन्द्र बोस, सरदार वल्लभभाई पटेल, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, श्री राजगोपालाचार्य तथा श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन इत्यादि के हैं। काँग्रेस ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में असहयोग और सविनय अवज्ञा आन्दोलन (Non co-operation and Civil Disobedience Movements) और 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' आन्दोलन (Quit India Movement) चलाए। इससे देश में बड़ी भारी राजनैतिक जाग्रति हुई [इसके अतिरिक्त हजारों अन्य देशवासियों ने काँग्रेस के बाहर रहकर भी स्वतन्त्रता के लिए क्रान्तिकारी तरीकों से स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए बलिदान और त्याग किए। उनमें अग्रगण्य १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम के वीर तांत्या टोपे, लक्ष्मी बाई और १८५७ के पश्चात् रामसिंह कूका (जो कि नामधारी सिक्खों के गुरु थे), वासुदेव बलवन्त फड़के, सरदार अजीतसिंह, भाई परमानन्द तथा वीर सावरकर (जो कि अण्डमान की जेलों में चिरकाल रहे), रास बिहारी घोष, चन्द्रशेखर आजाद, सरदार भगतसिंह, राजगुरु तथा दत्त और नेता सुभाष बोस हैं] इन पुण्यात्माओं तथा सहस्रों अन्य अप्रसिद्ध व्यक्तियों के बलिदानों का यह फल हुआ कि १५ अगस्त, १९४७ को भारत माता परतन्त्रता की शृंखलाओं को छिन्न-विच्छिन्न करके स्वतन्त्रता रूपी सिंहासन पर विराजमान हुई।

स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर काँग्रेस का मुख्य ध्येय पूरा हुआ परन्तु अभी बहुत रचनात्मक कार्य करना बाकी था। अतः काँग्रेस ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् अपना मुख्य ध्येय समाजवाद के द्वारा लोगों की आर्थिक स्थिति को सुधारना और छुआछूत को दूर करके सामाजिक समता स्थापित करना बनाया। काँग्रेस ने सत्तारूढ़ होने के पश्चात् जमींदारी का उन्मूलन किया और कुछ उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण किया। राजाओं और महाराजाओं से भी उनकी रियासतें लेकर उनका एकीकरण किया गया और उनमें लोकतन्त्रात्मक सरकार की स्थापना की गयी। काँग्रेस ने लोक-कल्याण के लिए दो पंचवर्षीय योजनाएँ बनाईं, विस्थापितों और खाद्य की समस्या को हल किया, और छुआछूत को अवैध घोषित किया। साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का विरोध करके और किसी गुट में सम्मिलित न होकर विदेशों में भारत का सम्मान बढ़ाया। काँग्रेस ने उदजन बमों (Hydrogen Bombs) और सैनिक सन्धियों का विरोध करके भी संसार के नैतिकता के स्तर को ऊँचा किया।

काँग्रेस ने पहला आम चुनाव जीता और दूसरे में भी काफी सफलता प्राप्त की है। दूसरे चुनाव ने एक बात स्पष्ट कर दी है कि काँग्रेस में १९४७ के पश्चात् पद-लोलुप और स्वार्थी व्यक्ति अधिक मात्रा में प्रवेश कर रहे हैं और वे सच्चे और त्यागी व्यक्तियों को पीछे फेंक रहे हैं। उदाहरणार्थ, पंजाब में जमींदार पार्टी और अकाली पार्टी का काँग्रेस में प्रवेश करना इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करता है। काँग्रेस के साधारण कार्यकर्त्ता का जनता से सम्पर्क भी कम होता जा रहा है। प्रशासन में भी अभी तक काफी भ्रष्टाचार (Corruption) बाक़ी है। इसलिए कुछ काँग्रेसी नेताओं के अतिरिक्त शेष का जनता पर प्रभाव भी कम होता जा रहा है। यह

भारत के लिए अत्यन्त चिन्ता की बात है क्योंकि दूसरे किसी दल का जनता पर इतना प्रभाव नहीं है। इसका परिणाम कुछ वर्षों के पश्चात् यह हो सकता है कि भारत के प्रान्तों में अधिकतर संयुक्त सरकारें (Coalition Govt.) बनें (जो कि अत्यन्त कमज़ोर सरकारें होती हैं) और अन्त में लोकतन्त्र असफल हो जाय।

भारत में दूसरी महत्त्वपूर्ण पार्टी **साम्यवादी दल** (Communist Party) है। इसके प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री अजय घोष, डाँगे, नम्बूदरी पाद इत्यादि हैं। इनके लगभग वही सिद्धान्त हैं जो मार्क्स और लेनिन ने प्रतिपादित किए थे। ये उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण करने, जमींदारी को बिना प्रतिकर (without compensation) के खत्म करने के पक्ष में हैं और मज़दूरों तथा किसानों की हालत को विशेषतया अच्छा करना चाहते हैं। साम्यवादी धर्म को कोई महत्त्व नहीं देते हैं और इसको एक व्यक्तिगत वस्तु गिनते हैं। वे पूँजीवाद का भी नाश करना चाहते हैं। दूसरे चुनाव ने यह स्पष्ट कर दिया है कि लोकसभा में यह सबसे शक्तिशाली विरोधी दल है। केरल में साम्यवादी दल ने अपनी सरकार भी स्थापित कर ली है।

तीसरी महत्त्वपूर्ण पार्टी **प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी** है। इसके मुख्य कार्यकर्त्ता आचार्य कृपलानी और अशोक मेहता इत्यादि हैं। ये संवैधानिक उपायों से भारत में समाजवाद की स्थापना करना चाहते हैं। ये पूँजीवाद और ज़मीदारी को भी समाप्त करना चाहते हैं। काँग्रेस और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में ज़मींदारी-उन्मूलन के बारे में काफी फ़र्क है; काँग्रेस ज़मींदारों को प्रतिकर (Compensation) देना चाहती है और प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी ज़मींदारों को कोई प्रतिकर नहीं देना चाहती। इस पार्टी के समर्थक उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण करना चाहते हैं।

चौथी महत्त्वपूर्ण पार्टी **जनसंघ** है। इसकी स्थापना १९५१ में स्वर्गीय श्यामा-प्रसाद मुकर्जी ने की थी। इसमें अधिकतर कार्यकर्त्ता राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के हैं। जनसंघ हिन्दू राष्ट्र का उत्थान करना चाहता है। यह गो-हत्या को बन्द करने, निवारक निरोध अधिनियम (Preventive Detention Act) को खत्म करने और प्रशासन के भ्रष्टाचार को दूर करने के पक्ष में है। यह बुनियादी और प्रतिरक्षा-सम्बन्धी उद्योगों (Basic and Defence Industries) के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में है। जनसंघी ज़मींदारी को खत्म करने और भूमिहीनों में भूमि बाँटने के पक्ष में हैं। उनका विचार है कि अधिक से अधिक एक व्यक्ति के पास ५ एकड़ और ज़्यादा से ज़्यादा ३० एकड़ भूमि होनी चाहिए। वे हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं की उन्नति के लिए एक पंचवर्षीय योजना भी बनाना चाहते हैं।

वे भारत में संघात्मक की अपेक्षा एकात्मक सरकार (Unitary Govt. instead of Federal Govt.) कायम करना चाहते हैं। उनके विचार में मन्त्रियों का वेतन ५०० रुपये से अधिक नहीं होना चाहिए और अधिक से अधिक किसी व्यक्ति की मासिक आय २,००० रुपये और कम से कम १०० रुपये होनी चाहिए। इसका अर्थ है कि व्यक्तियों की आय में १ : २० से अधिक अन्तर नहीं होना चाहिए। वे नैतिक और धार्मिक शिक्षा स्कूलों में देने के पक्ष में हैं। वे प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा मुफ्त देना चाहते हैं। वे प्रत्येक व्यक्ति द्वारा सरकार से काम माँगने के अधि-

कार को मानते हैं। यद्यपि वे गुटों में सम्मिलित होने के पक्ष में नहीं हैं तथापि वे पाकिस्तान से न दबने की नीति और गोवा तथा पाकिस्तान-अधिकृत कश्मीर को मुक्त कराने के पक्ष में हैं। वे श्रमिकों की हालत को सुधारने और आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-प्रणाली बनाना चाहते हैं।

इसके अतिरिक्त कम महत्त्व के दल हिन्दू महासभा, गणतन्त्र परिषद्, राम राज्य परिषद् और मुस्लिम लीग हैं। दूसरे आम चुनावों में दलीय स्थिति इस प्रकार है—

दूसरे आम चुनावों में विभिन्न दलों की स्थिति

लोकसभा

राज्य	कुल स्थान	काँग्रेस	स्वतन्त्र	साम्यवादी	जनसंघ	प्र०स०दल	अन्य दल ×	जोड़
आंध्र ...	४३	३७	—	४	—	—	२	४३
असम ...	१२	९	—	—	—	२	१	१२
बिहार ...	५३	४१	१	—	—	२	९	५३
बम्बई ...	६६	३८	८	४	२	५	९	६६
केरल ...	१८	६	१	९	—	१	१	१८
मध्य प्रदेश ...	३६	३५	—	—	—	—	१	३६
मद्रास ...	४१	३१	३	२	—	—	५	४१
मैसूर ...	२६	२३	१	—	—	१	१	२६
उड़ीसा ...	२०	७	२	१	—	२	८	२०
पंजाब ...	२२	१९	—	१	—	—	—	२०
राजस्थान ...	२२	१९	३	—	—	—	—	२२
उत्तर प्रदेश ...	८६	७०	९	१	२	४	—	८६
प० बंगाल ...	३६	२३	१	६	—	२	४	३६
जम्मू-कश्मीर ...	६	—	—	—	—	—	—	—
	५००	३६५	२९	२९	४	१९	४२	४८८
केन्द्र-शासित क्षेत्र								
दिल्ली ...	५	५	—	—	—	—	—	५
हिमाचल प्रदेश ...	४	—	—	—	—	—	—	—
मणिपुर ...	२	१	—	—	—	—	१	२
त्रिपुरा ...	२	१	—	१	—	—	—	२

× लोकसभा में अन्य दल : आँध्र (२ समाजवादी) ; असम (१ पूर्वी भारत कबाइली संघ) ; बिहार (६ झाड़खंड, ३ जनता दल) ; बम्बई (४ किसान मजदूर दल, ५ परिगणित जाति संघ); केरल (१ मुस्लिम लीग); मध्य प्रदेश (१ हिन्दू महासभा), मद्रास (२ काँग्रेस सुधार समिति

विधान सभाएँ

राज्य	कुल स्थान	काँग्रेस	स्वतन्त्र	साम्यवादी	जनसंघ	प्र०स०दल	अन्य दल ×	कु०
आंध्र ...	३०१	२१५	१०	३५	—	१	४०	३०१
असम ...	१०८	७१	१२	४	—	८	१२	१०७
बिहार ...	३१८	२१०	१३	७	—	३१	५७	३१८
बम्बई ...	३९६	२३२	५५	१८	४	३६	४७	३९२
केरल ...	१२६	४३	६	६०	—	९	८	१२६
मध्य प्रदेश ...	२८८	२३२	१४	२	१०	१२	१८	२८८
मद्रास ...	२०५	१५१	१५	४	—	२	३३	२०५
मैसूर ...	२०८	१५०	३५	१	—	१८	४	२०८
उड़ीसा ...	१४०	५६	७	९	—	११	५७	१४०
पंजाब ...	१५४	११८	१३	६	९	१	५	१५२
राजस्थान ...	१७६	११९	३१	१	६	१	१८	१७६
उत्तर प्रदेश ...	४३०	२८६	७४	९	१७	४४	—	४३०
पं० बंगाल ...	२५२	१५२	११	४६	—	२१	२२	२५२
जम्मू-कश्मीर ...	७५	—	—	—	—	—	५१	५१
		२,०३०	२९७	१९८	४६	१९५	३६९	३,१३५
प्रादेशिक परिषद्								
हिमाचल प्रदेश ...	४१	—	—	—	—	—	—	—
मणिपुर ...	३०	१२	७	४	—	—	७	३०
त्रिपुरा ...	३०	१५	२	१२	—	—	१	३०

२ द्रविड़ मुन्नेत्राकड़गम, १ फार्वर्ड ब्लाक); मैसूर (१ परिगणित जाति संघ); उड़ीसा (७ गणतन्त्र परिषद्, १ झाड़खंड); पश्चिमी बंगाल (२ फार्वर्ड ब्लाक, १ लोक सेवक संघ, १ क्रांतिकारी सभा); मणिपुर (१ समाजवादी)।

× विधान सभाओं में अन्य दल : आन्ध्र (१७ समाजवादी, २१ नेशनलिस्ट पार्टी, १ प्रजापार्टी, १ परिगणित जाति संघ); असम (४गारो राष्ट्रीय परिषद्, १ क्रान्तिकारी साम्यवादी, १ संयुक्त समाजवादी, २ मिजो स्वतन्त्रता संगठन, ३ कबाइली संघ, १ मिजोसंघ); बिहार (३० झाड़खण्ड, २३ जनता दल, १ लोक सेवक संघ, १ गणतन्त्र परिषद्, २ समाजवादी); बम्बई (३१ किसान मजदूर दल, १५ परिगणित जाति संघ, १ हिन्दू महासभा); केरल (८ मुस्लिम लीग); मध्य प्रदेश (५ रामराज्य परिषद्, ७ हिन्दू महासभा, ६ समाजवादी); मद्रास (१५ द्रविड़ मुन्नेत्रा-कड़गम, १६ काँग्रेस सुधार-समिति, २ समाजवादी), मैसूर (२ किसान मजदूर-दल, २ परिगणित जाति संघ); उड़ीसा (५१ गणतन्त्र परिषद्, झाड़खण्ड, १ समाजवादी); पंजाब (५ परिगणित जाति संघ); राजस्थान (१७ रामराज्य परिषद्, १ किसान सभा); पश्चिमी बंगाल (८ फार्वर्ड ब्लाक, ३ क्रान्तिकारी समाजवादी, ७ लोक सेवक संघ, २ मार्क्सवादी फार्वर्ड ब्लाक, २ समाजवादी एकता-केन्द्र); जम्मू कश्मीर (४९ नेशनल काँफ्रेंस, २ प्रजा परिषद); मणिपुर (७ समाजवादी); त्रिपुरा (१ गणतन्त्र संघ)।

सारांश

राजनैतिक दलों का विशेष महत्त्व है। लोकतन्त्र राजनैतिक पार्टियों के बिना नहीं चल सकता। राजनैतिक दल निर्वाचकगण (electorate) की उदासीनता को नष्ट करके उनमें राजनैतिक चेतना उत्पन्न करते हैं। वे मतदाताओं को मार्ग प्रदर्शित करते हैं व मतदाताओं के असंगठित समूह में एक व्यवस्था उत्पन्न करते हैं। राजनैतिक दल राष्ट्रीय प्रश्नों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करते हैं और उनके सुझाव लोगों के सामने रखते हैं। चुनाव में महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर वे लोगों का अन्तिम निर्णय (final verdict) लेने की कोशिश करते हैं। लोकमत-निर्माण में उनका महत्त्वपूर्ण भाग है।

राजनैतिक दलों के कई लाभ हैं। राजनैतिक दल लोगों की राजनैतिक निद्रा भंग करते हैं और सरकार का संचालन लोकेच्छा के अनुसार सम्भव बनाते हैं। ये अध्यक्षीय शासन में कार्यकारिणी और व्यवस्थापिका में महत्त्वपूर्ण कड़ी का काम देते हैं क्योंकि उन दोनों में ये संयोग करा देते हैं। राजनैतिक दल व्यवस्थापिका में अपने प्रतिनिधियों पर कड़ा नियन्त्रण रखते हैं। ये मतदाताओं के सामने दृष्टिकोण पेश करते हैं और कानून के लिए व्यवस्थापिका के सदस्यों में संगठन उत्पन्न करते हैं। कई दल राजनैतिक समस्याओं को सुलझाने के लिए विशेषज्ञों की कमेटियाँ नियुक्त करते हैं और सुधार में भी भाग लेते हैं।

राजनैतिक दलों के दोष भी बहुत से हैं, जैसे ये व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर कुठाराघात करते हैं; नैतिक स्तर को गिराते हैं, देश को दो विरोधी गुटों में बाँटते हैं और देश-भक्ति के स्थान पर दल-भक्ति उत्पन्न करते हैं। ये कभी-कभी धार्मिक विष भी फैलाते हैं।

द्विदलीय और बहुदलीय प्रणाली में अनेक गुण और दोष हैं। द्विदलीय प्रणाली के गुण ये हैं कि इसमें सरकार अधिक स्थिर रहती है और मन्त्रिमण्डल का निर्माण आसान होता है। इसमें दोष यह है कि मन्त्रिमण्डल की तानाशाही स्थापित हो जाती है। बहुदलीय पद्धति में यह बड़ा भारी गुण है कि इसमें मन्त्रिमण्डल की तानाशाही कायम नहीं होने पाती और निर्वाचकों को अधिक स्वतन्त्रता मिल जाती है परन्तु इसमें दोष यह है कि सरकार अस्थायी रहती है।

Questions

1. What is a political party ? Indicate the part it plays (*a*) in the education of the citizens and (*b*) in the formation of Govt.
(*U. P.* 1944, 1949 ; *P. U.* 1952)

2. What is the part played by political parties in a democratic state ? Discuss the merits and demerits of the Party-system.
(*Patna Uni.* 1947)

3. Distinguish between multiple and bi-party system. What are the respective merits and demerits of each ? Which of them would you favour for your country ?

प्रश्न

१. आप राजनैतिक दल से क्या समझते हैं ? जनतन्त्र राज्य के चलाने में क्या कार्य करता है ? (उ० प्र० १९५५)

२. दलीय सरकार के लाभ और हानियों की विवेचना कीजिए। (उ० प्र० १९५०)

३. पाश्चात्य देशों में राजनैतिक दलों की व्यवस्था कौन से सिद्धान्तों पर की गई है ? क्या भारतीय दल इसी प्रकार के सिद्धान्त पर विभाजित किए गए हैं ? दल प्रथा से क्या-क्या लाभ हैं ? (यू० पी० १९३५)

४. राजनैतिक दल का क्या अर्थ है ? ये दल जनता को शिक्षित बनाने तथा शासन को चलाने में किस प्रकार सहायता देते हैं ? (यू० पी० १९४४, १९४९)

५. राज्य के संचालन में और नागरिक को राजनैतिक शिक्षा देने में राजनैतिक दल कहाँ तक सहायक होते हैं ? (यू० पी० १९५४)

उन्नीसवाँ अध्याय

निर्वाचक-मण्डल (The Electorate)

मताधिकार और निर्वाचन-प्रणाली (Franchise and Election)

"Democracy postulates the equality of man and political equality can be assured only when all citizens are granted the right to vote. Laws and policies of Govt. concern all people and "what toucheth all should be decided by all."—*J. S. Mill.*

मताधिकार क्या है ? आधुनिक युग में लोकतन्त्र प्रणाली का बहुत अधिक प्रभाव है। लोकतन्त्र जनता का, जनता के लिए और जनता द्वारा शासन है। प्राचीन यूनान में प्रत्यक्ष लोकतन्त्र (direct democracy) प्रचलित था, अतः वहाँ नागरिक स्वयं व्यवस्थापिका में जाकर कानून बनाते थे, उन्हें अपना प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं था। आधुनिक युग में बड़े-बड़े राज्यों का निर्माण हो गया है, अतः वहाँ पर प्रत्यक्ष लोकतन्त्र सम्भव नहीं है, बल्कि प्रतिनिध्यात्मक लोकतन्त्र (representative democracy) ही केवल सम्भव है। प्रतिनिध्यात्मक लोकतन्त्र में नागरिक अपने प्रतिनिधि चुनकर भेजते हैं। इसके लिए बहुत से व्यक्तियों को समाज में मत देने का अधिकार होता है, इसको ही हम मताधिकार कहते हैं। जिन व्यक्तियों को मताधिकार प्राप्त होता है हम उनको निर्वाचक या मतदाता कहते हैं। सामूहिक रूप में मतदाताओं को निर्वाचकमण्डल कहते हैं। जो लोग चुनाव के लिए खड़े होते हैं, उनको उम्मीदवार कहा जाता है।

सर्वमताधिकार (Universal Franchise)

प्रजातन्त्र में यह बड़ी भारी समस्या है कि किन लोगों को नगरपालिकाओं, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, राज्यों की विधान-सभाओं और लोक-सभा (House of People) के लिए मताधिकार मिलना चाहिए ? इस विषय में दो भिन्न मत प्रचलित हैं। पहले मत के समर्थक कहते हैं कि सर्वोच्च सत्ता का मुख्य स्रोत जनता है, इसलिए सबको राय देने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। दूसरे मत के समर्थक कहते हैं कि यह अधिकार उनको मिलना चाहिए जिनमें कुछ योग्यता हो या जिनके पास कुछ सम्पत्ति हो। ब्लंश्ली, मिल और लेकी इत्यादि ऐसा ही मानते हैं।

सर्वमताधिकार के समर्थकों का अभिप्राय यह नहीं है कि सबको वोट देने का अधिकार होना चाहिए बल्कि यहाँ उनका अभिप्राय वयस्क मताधिकार (Adult Franchise) से ही है। प्रत्येक देश में नाबालिगों, पागलों और अपराधियों (criminals) को वोट देने का अधिकार नहीं दिया जाता। जिस देश में केवल पुरुषों को वोट देने का अधिकार होता है और औरतों को नहीं, उस प्रणाली को हम पुरुष मताधिकार

(manhood suffrage) कहते हैं। स्विटजरलैंड में ऐसा ही है। वहाँ पर नारियों को वोट का अधिकार नहीं है। बालिग की आयु हमारे देश में इक्कीस वर्ष है। यह आयु इंगलैंड तथा अमरीका में २१, रूस में १८ और जापान में २५ वर्ष है। इसलिए वयस्क मताधिकार में केवल आयु का ही विचार किया जाता है और लिंग (sex), जाति, धर्म, भाषा, शिक्षा, जायदाद आदि का बिलकुल विचार नहीं किया जाता। गार्नर लिखता है—"यह एक कर्त्तव्य है जो राज्य द्वारा उन व्यक्तियों को प्रदान किया जाता है जिनके विषय में यह समझा जाता है कि वे इसका प्रयोग राष्ट्रीय हित में करने की आवश्यक योग्यता रखते हैं। यह एक नैसर्गिक अधिकार नहीं है जो प्रत्येक नागरिक को बिना किसी भेद-भाव के प्राप्त होता है।"

वयस्क मताधिकार के पक्ष में तर्क
(Arguments in Favour of Adult Franchise)

(क) सब व्यक्ति समान हैं और मनुष्यों के विकास के लिए उन्हें मताधिकार देना भी आवश्यक है। इस सिद्धान्त के समर्थक मानते हैं कि जिन लोगों को राजनीति में भाग लेने का अधिकार नहीं होता, उनके अधिकारों और हितों की सरकार तनिक भी परवा नहीं करती। वे जनता को ही सर्वोच्च सत्ता या प्रभुता (Sovereignty) का मुख्य स्रोत मानते हैं। इसलिए प्रत्येक वयस्क को मत देने का अधिकार होना चाहिए।

(२) राज्य के कानूनों और नीतियों का प्रभाव सब व्यक्तियों पर पड़ता है। जिसका प्रभाव सब पर पड़ता है, उसको निश्चित करने के लिए भी उसमें सबका भाग होना चाहिए।

(३) नागरिक अधिकारों (civil rights) को सुरक्षित रखने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि लोगों को राजनैतिक अधिकार प्राप्त हों, तभी सरकार लोगों की स्वतन्त्रता को पादाक्रान्त (tread) करने से डरेगी। सरकार को यह भय रहेगा कि कहीं लोग उसे स्वेच्छाचारी नीति के कारण वोट न दें।

(४) चुनाव समाज में बड़ी भारी राजनैतिक जाग्रति (political awakening) उत्पन्न करते हैं और लोगों की राजनैतिक निद्रा को भंग करके अत्यन्त उत्तम शिक्षा देते हैं। इससे मतदाताओं की सार्वजनिक कार्यों में रुचि बढ़ जाती है।

(५) राजनैतिक अधिकारों से मतदाताओं में बड़ा भारी स्वाभिमान जाग्रत होता है। जब उनके पास बड़े-बड़े नेता वोट माँगने के लिए आते हैं तो उनको अपनी वास्तविक शक्ति का ज्ञान होता है और उनकी सोई हुई आत्मा जागती है।

(६) इस से राष्ट्र की शक्ति और एकता का उदय होता है क्योंकि जनता अपने द्वारा चुने हुए शासनाधिकारियों को मान की दृष्टि से देखती है और प्रत्येक कार्य में अपने मन्त्रियों को पूर्ण सहयोग देती है।

(७) इस से अल्पसंख्यक वर्गों (minorities) को भी कुछ प्रतिनिधित्व मिल जाता है। अल्पसंख्यकों को अलग-अलग अधिकार देने की समस्या भी खत्म हो जाती है।

वयस्क मताधिकार की हानियाँ
(Disadvantages of Adult Franchise)

सर्वमताधिकार की प्रणाली से कुछ हानियाँ भी हैं जो नीचे लिखी जाती हैं :—

(१) मताधिकार देने से पहले शिक्षा को अनिवार्य बनाना आवश्यक है। मिस्टर मिल का विचार था कि साधारण ज्ञान हुए बिना मताधिकार देना ठीक नहीं। एक वर्ग का मताधिकार से वंचित रखा जाना उचित है यदि वह उसका दुरुपयोग करे। लेकी, मेन और जेम्स स्टीफन के भी ऐसे ही विचार थे। सर हेनरी मेन का विश्वास था कि यह वैज्ञानिक उन्नति के विरुद्ध काम करेगा।[1]

(२) अधिकतर मतदाता अशिक्षित और अज्ञानी होते हैं। वे केवल गुणों को न देख कर जाति, धर्म लिंग और मित्रता के आधार पर लोगों को वोट देते हैं। वे वाक्पटु नेताओं के जोशीले भाषणों से प्रभावित हो जाते हैं।

(३) पूँजीपति गरीबों और मज़दूरों की राय खरीद लेते हैं।

(४) शासन-सम्बन्धी प्रश्न अब अधिक से अधिक जटिल होते जा रहे हैं। मतदाता प्रायः अयोग्य व्यक्तियों को चुन लेते हैं। प्रत्येक प्रश्न को राजनैतिक बहुमत से सुलझाना ठीक नहीं। साधारण मतदाता जटिल प्रश्नों के समझने की क्षमता नहीं रखते।

(५) मताधिकार एक पवित्र राष्ट्रीय कर्त्तव्य भी है। इसका दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। इसका प्रयोग बड़ी सावधानी और सोच-विचार से होना चाहिए।

सम्पत्ति की योग्यता पर निर्धारित मताधिकार
(Franchise Based on Property Qualifications)

मत के पक्ष में तर्क—(१) इस सिद्धान्त को मानने वालों का विचार है कि जिसके पास सम्पत्ति है केवल वोट देने का अधिकार उसे ही होना चाहिए क्योंकि वह अपनी सम्पत्ति की रक्षा के लिए शान्ति और सुव्यवस्था को अधिक पसन्द करेगा। जिसके पास सम्पत्ति नहीं होती है, वह नित्य नये-नये कानून पास करवाने की चिन्ता में रहता है क्योंकि उसे किसी प्रकार का कोई भय नहीं रहता है। अतः सम्पत्तिशाली व्यक्ति ही सोच-समझकर अपनी राय दूसरे को देता है।

(२) "मिस्टर जॉन स्टुअर्ट मिल का यह विचार था कि वह असेम्बली जो स्थानीय अथवा सामान्य टैक्सों के बारे में राय देती है (या उनको पास करती है) केवल उन लोगों द्वारा चुनी जानी चाहिए जो टैक्सों का कुछ भाग (अंश) देते हों, क्योंकि जो कुछ भी टैक्स नहीं देते, वे अवश्य ही फिजूल-खर्च हो जाते हैं और

1. John Stuart Mill says, "I regard it as wholly inadmissible that any person should participate in the suffrage without being able to read, write and I will add, perform the common operations of Arithmetic. Universal teaching must precede universal enfranchisement. The exclusion of a class is justified when that class is likely to make a dangerously bad use of the vote." Lecky, Maine and Sir James Stephen come under this category. It might, thought Sir Henry Maine, work against scientific progress.

यदि वे किसी शक्ति का प्रयोग करें, तो वह स्वतन्त्र सरकार के मौलिक सिद्धान्तों का उल्लंघन होगा।"[1]

मत के विरुद्ध दलीलें—(१) सम्पत्ति कोई बुद्धि और योग्यता परखने का उत्तम साधन नहीं है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि सम्पत्तिशाली व्यक्तियों में इतनी बुद्धि नहीं होती कि वे प्रगतिशील कानूनों (progressive legislations) की आवश्यकता को समझ सकें। अतः वे ऐसे व्यक्तियों को अपनी राय देते हैं जो देश की उन्नति के मार्ग में अनेक बाधाएँ उपस्थित करते हैं।

(२) कानूनों का प्रभाव सारे लोगों पर पड़ता है, अतः केवल सम्पत्ति रखने वालों या कर देने वालों को यह अधिकार देना अत्यन्त अन्यायपूर्ण होगा।

(३) अधिकतर पूंजी या सम्पत्ति झूठ, छल-कपट और अन्य अन्यायपूर्ण तरीकों से प्राप्त की जाती है, इसलिए गरीब और ईमानदार लोगों को मताधिकार से वंचित रखना न्यायसंगत नहीं होगा। इसलिए सम्पत्ति या कर देना मताधिकार की सही कसौटी नहीं।

शिक्षा पर निर्धारित मताधिकार
(Franchise Based on Educational Qualifications)

पक्ष में तर्क (Arguments in Favour)—(१) आजकल राज्यों की समस्याएँ इतनी अधिक जटिल बन गयी हैं कि साधारण अशिक्षित व्यक्ति उनको समझ नहीं सकते, इसलिए वे अयोग्य व्यक्तियों को अपने वोट दे देते हैं। लोकतन्त्र ऐसी अवस्था में मूर्खों का शासन बन जाता है। इसलिए केवल बुद्धिमानों को ही यह अधिकार मिलना चाहिए।

(२) मिस्टर मिल का विचार था कि जिस पुरुष को बिल्कुल लिखना, पढ़ना और हिसाब करना नहीं आता हो, उसे मताधिकार देना बिल्कुल अनुचित है। **सर्वमताधिकार देने से पहले सर्वशिक्षा फैलानी अत्यन्त आवश्यक है।** (Universal education must precede universal enfranchisement)।

विपक्ष में तर्क (Arguments against)—(१) साधारण व्यवहार में शिक्षित अशिक्षित व्यक्तियों में भेद करना बहुत कठिन होता है। जरूरी नहीं कि आधुनिक विद्यालयों में पढ़े हुए युवक तथा युक्तियाँ अपना वोट बहुत निष्पक्ष तरीके से प्रयुक्त करेंगे। प्रायः देखा जाता है कि एक विशेष स्तर (particular standard) तक प्राप्त की हुई शिक्षा बुद्धिमत्ता की कोई सच्ची कसौटी नहीं। महाराजा रणजीत सिंह, शिवाजी और हैदरअली तथा अकबर अशिक्षित होते हुए भी आजकल के शिक्षितों से अधिक योग्यता रखते थे।

(२) जिन लोगों को मताधिकार से वञ्चित कर दिया जाता है उनमें राज-

1. "It is important that the assembly which votes the taxes, either general or local, should be elected exclusively by those who pay something towards the taxes imposed, because those who do not pay are bound to be lavish and any power exercised by them will be a violation of the fundamental principle of free Govt."—*John Stuart Mill.*

नैतिक जाग्रति उत्पन्न नहीं होती और न ही उनको पर्याप्त राजनैतिक शिक्षा मिलती है, फलतः उनकी बुद्धि का पूर्ण विकास नहीं हो सकता।

महिला मताधिकार (Woman Suffrage)

मत के विरुद्ध युक्तियाँ—(१) जो पुरुष नारियों को मताधिकार देने के विरुद्ध हैं, उनका विचार है कि नारियों के राजनैतिक जीवन में भाग लेने से उनका नारीत्व नष्ट हो जाएगा। मताधिकार के कारण स्त्रियों के विशेष गुण जैसे लज्जा और कोमलता का अन्त हो जाएगा। स्त्री-मताधिकार के आलोचक कहते हैं कि स्त्री का कार्य-क्षेत्र घर है न कि राजनैतिक क्षेत्र। ब्लण्ट्श्ली ने कहा कि स्त्री-मताधिकार गृह की पूर्णता को नष्ट करके पारिवारिक जीवन के स्तर को गिरा देता है; क्योंकि पति की अपेक्षा पत्नी पर परिवार का कल्याण अधिक निर्भर है। अरस्तू का भी मत था कि केवल पुरुष ही राजनैतिक जीवन के लिए नियुक्त हैं।

(२) यह भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि स्त्रियाँ अपना मताधिकार अपने पतियों की आज्ञा के अनुसार प्रयुक्त नहीं करेंगी। यदि स्त्रियाँ अपना मत अपने पतियों के आदेश के अनुसार दें तो उन्हें मताधिकार देने का कोई लाभ नहीं। यदि वे अपने पतियों की आज्ञा के विरुद्ध अपना वोट दें तो घर में संघर्ष और लड़ाई-झगड़े पैदा होंगे।

(३) ब्लण्ट्श्ली तथा लावेलेये दोनों को भय था कि स्त्रियों को मताधिकार देने से कैथोलिकों को फायदा पहुँचेगा क्योंकि कैथोलिक चर्च स्त्रियों के मतों को बहुत सुगमता से प्राप्त कर लेता है।

(४) स्त्री-मताधिकार के विरोधियों का विचार है कि औरतें पुरुषों की तरह नागरिकता की सारी ज़िम्मेवारियों और कर्त्तव्यों का पालन करने में असमर्थ हैं क्योंकि उनका शरीर पुरुषों की अपेक्षा अधिक दुर्बल होता है। उदाहरणार्थ, औरतें पुलिस और फौज में अपने आदर्शों का उल्लंघन किए बिना सेवा नहीं कर सकतीं। इसलिए उन्हें पुरुषों के समान अधिकार माँगने का कोई हक नहीं।

मत के पक्ष में युक्तियाँ—(१) स्त्री-मताधिकार के समर्थक कहते हैं कि किसी नागरिक को जो अन्य दृष्टियों से मताधिकार के योग्य हो, केवल लिंग-भेद के कारण मताधिकार से वञ्चित करना न तो बुद्धि-संगत (reasonable) है और न युक्ति-संगत ही। सिजविक ने लिखा है कि किसी स्वावलम्बी (self-dependent) प्रौढ़ (adult) नागरिक को, जो अन्यथा मताधिकार के योग्य हो केवल लिंग-भेद के आधार पर मताधिकार से वञ्चित करने के लिए मुझे कोई पर्याप्त कारण नहीं दिखाई देता। जॉन स्टुअर्ट मिल ने जो महिला मताधिकार का सब से प्रबल तथा सर्व-प्रथम समर्थक था, कहा है कि "मैं राजनैतिक अधिकारों के सम्बन्ध में लिंग-भेद को उसी प्रकार सर्वथा अनुचित मानता हूँ जिस प्रकार बालों के रंग को···यदि दोनों में कोई भेद-भाव हो तो महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा अधिक अधिकारों की आवश्यकता है; क्योंकि वे शारीरिक दृष्टि से अबला हैं और अपनी रक्षा के लिए कानून तथा समाज पर आश्रित हैं।"

(२) स्त्रियों को अपने नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए राजनैतिक अधिकारों की अत्यन्त आवश्यकता है। स्त्रियों को वर्गीय कानूनों (class laws) से भी अपना रक्षा करने के लिए राजनैतिक अधिकारों की अत्यन्त आवश्यकता है। लावेलेये ने कहा है कि स्त्रियों के अधिकारों के सम्बन्ध में कानून केवल पुरुषों द्वारा ही नहीं बनाए जाने चाहिएँ।

(३) डाक्टर गार्नर लिखते हैं कि "यदि महिलाएँ इस योग्य हैं कि वे चतुरता के साथ अपने व्यवसायों का संचालन कर सकें, अनुबन्ध (agreements or contracts) कर सकें, व्यवसायों तथा उद्योगों में पुरुषों का मुकाबला कर सकें और उन्हें स्कूलों एवं कालेजों में शिक्षा दे सकें, तो वे राजनैतिक अधिकारों तथा विशेषाधिकारों के प्रयोग में भी पुरुषों के साथ भाग लेने के योग्य हैं।" जब एक अशिक्षित तथा कर न देने वाले पुरुष को मताधिकार दिया जाता है तो एक शिक्षित तथा कर देने वाली नारी को क्यों नहीं ?

(४) महिलाओं को मताधिकार देने से सामान्य-हित (common good) की बढ़ोतरी होगी। राजनैतिक जीवन में मधुरता आ जाएगी और सामाजिक जीवन ऊँचा उठेगा।

निर्वाचन-प्रणाली (Methods of Election)

निर्वाचन-क्षेत्रों (Electoral Constituencies) से प्रतिनिधि चुनने के लिए कई तरीके हैं। इनमें से पहले तरीके को "एक-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्र-प्रथा" (Single Member Constituency System) और दूसरे को बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र प्रथा (Multiple Member Constituency) कहते हैं।

(१) **एक-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्र प्रथा** (Single Member Constituency Method)—इस प्रणाली के अनुसार सारे देश को उतने निर्वाचन-क्षेत्रों (electoral constituencies) में बाँट दिया जाता है जितने प्रतिनिधि चुनने की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ, यदि पंजाब विधान-सभा में १२६ सदस्य हैं तो सारे पंजाब को १२६ निर्वाचन-क्षेत्रों में बाँट दिया जाएगा।

प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में से एक प्रतिनिधि चुना जाता है। जो उम्मीदवार सब से अधिक वोट हासिल कर लेता है, उसको निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। प्रत्येक नागरिक केवल एक राय दे सकता है अर्थात् उसे एक ही सभा के लिए एक ही चुनाव-क्षेत्र से एक से अधिक राय देने का अधिकार नहीं होता।

(२) **बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र प्रथा** (Multiple Member Constituency Method)—इस प्रणाली में सारे देश को कुछ बड़े-बड़े निर्वाचन-क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में से एक से अधिक प्रतिनिधि चुने जाते हैं। प्रत्येक मतदाता को प्रायः एक से अधिक वोट प्राप्त होते हैं। साधारणतया मतदाता अपने सारे वोट एक ही व्यक्ति को नहीं दे सकता।

एक-सदस्य वाले निर्वाचन-क्षेत्रों से लाभ तथा हानियाँ (Advantages and Disadvantages of Single Member Constituencies)—इस से कई लाभ हैं।

पहला लाभ यह है कि यह प्रणाली इतनी आसान है कि इसको समझने में कोई दिक्कत नहीं आ सकती। भारत जैसे देश में जहाँ निरक्षरता का राज्य है, वहाँ पर भी लोग इसे आसानी से समझकर अपना वोट किसी उम्मीदवार को दे सकते हैं। इसका दूसरा लाभ यह है कि इसमें प्रतिनिधि का लोगों से सम्बन्ध रहता है क्योंकि चुनाव-क्षेत्र (electoral constituency) साधारणतया छोटा होता है। तीसरे, प्रतिनिधि लोगों के प्रति उत्तरदायी रहता है। चौथे, इसमें निर्वाचन-क्षेत्र छोटा होने के कारण थोड़े पैसे वाले और योग्य व्यक्ति भी चुनाव आसानी से लड़ सकते हैं और देश को अपनी योग्यता से लाभ पहुँचा सकते हैं। पाँचवें, इसमें छोटे-छोटे ग्रुपों को प्रतिनिधित्व मिलने के लिए कोई सम्भावना नहीं रहती, इसलिए मज़बूत और स्थायी मन्त्रिमण्डल का निर्माण होता है।

हानियाँ (Disadvantages)—इसकी हानियाँ ये हैं कि सरकार को अपने लाभ के लिए निर्वाचन-क्षेत्र बनाने का अवसर मिल जाता है और वह विरोधी दलों के समर्थकों को कम से कम क्षेत्रों में सीमित करने का यत्न करती है। इस प्रथा को अंग्रेजी में Gerrymandering कहते हैं। दूसरे, इसमें प्रतिनिधि राष्ट्रीय हितों का प्रतिनिधित्व न करके स्थानीय हितों का ही अधिक प्रतिनिधित्व करते हैं (Representatives of local and not national interests are often elected. As Gambetta once said, it made the Chamber of Deputies a broken mirror in which France could not recognise her own image)। तीसरे, इसमें अल्पमतों को संतोषजनक प्रतिनिधित्व नहीं मिलता। चौथे, इसमें कई बार थोड़े वोटों वाले उम्मीदवार कामयाब हो जाते हैं, जैसे उदाहरणार्थ एक स्थान पर कुल १,००० वोट पड़े और उनमें से A को ३००, B को, २५०, C को १७५, D को १२५, E को १०० और F को ५० राय मिलीं, तो A निर्वाचित घोषित कर दिया जाएगा, यद्यपि उसने १,००० में से कुल ३०० राय प्राप्त की हैं।

बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र के लाभ और हानियाँ—बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र प्रथा से कई लाभ हैं। पहला लाभ यह है कि इसमें राष्ट्रीय हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले लोग चुने जाते हैं। दूसरे, इसमें अल्पमतों को प्रतिनिधित्व मिल जाता है। तीसरे, इसमें शासक-दल केवल अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए निर्वाचन-क्षेत्र को तोड़-मरोड़ नहीं सकता। परन्तु इसकी कई हानियाँ भी हैं। पहली हानि इससे यह है कि इससे व्यवस्थापिका में बहुत छोटे-छोटे दल बन जाते हैं और स्थानीय मन्त्रिमण्डल का निर्माण नहीं हो सकता। दूसरे, एक प्रतिनिधि अपने आपको किसी विशेष तहसील या जिले के लिए ज़िम्मेवार नहीं समझता क्योंकि उस तहसील या जिले में से बहुत से प्रतिनिधि व्यवस्थापिका में बैठते हैं। तीसरे, निर्वाचन-क्षेत्र बहुत विस्तृत होने के कारण प्रतिनिधि का मतदाताओं से कोई सम्बन्ध नहीं रह पाता।

(३) **प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष निर्वाचन** (Direct and Indirect Methods of Elections)—प्रत्यक्ष चुनाव उसे कहते हैं जहाँ मतदाता स्वयं अपने प्रतिनिधि चुनते हैं

(२) स्त्रियों को अपने नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए राजनैतिक अधिकारों की अत्यन्त आवश्यकता है। स्त्रियों को वर्गीय कानूनों (class laws) से भी अपना रक्षा करने के लिए राजनैतिक अधिकारों की अत्यन्त आवश्यकता है। लावेलेये ने कहा है कि स्त्रियों के अधिकारों के सम्बन्ध में कानून केवल पुरुषों द्वारा ही नहीं बनाए जाने चाहिएँ।

(३) डाक्टर गार्नर लिखते हैं कि "यदि महिलाएँ इस योग्य हैं कि वे चतुरता के साथ अपने व्यवसायों का संचालन कर सकें, अनुबन्ध (agreements or contracts) कर सकें, व्यवसायों तथा उद्योगों में पुरुषों का मुकाबला कर सकें और उन्हें स्कूलों एवं कालेजों में शिक्षा दे सकें, तो वे राजनैतिक अधिकारों तथा विशेषाधिकारों के प्रयोग में भी पुरुषों के साथ भाग लेने के योग्य हैं।" जब एक अशिक्षित तथा कर न देने वाले पुरुष को मताधिकार दिया जाता है तो एक शिक्षित तथा कर देने वाली नारी को क्यों नहीं ?

(४) महिलाओं को मताधिकार देने से सामान्य-हित (common good) की बढ़ोतरी होगी। राजनैतिक जीवन में मधुरता आ जाएगी और सामाजिक जीवन ऊँचा उठेगा।

निर्वाचन-प्रणाली (Methods of Election)

निर्वाचन-क्षेत्रों (Electoral Constituencies) से प्रतिनिधि चुनने के लिए कई तरीके हैं। इनमें से पहले तरीके को "एक-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्र-प्रथा" (Single Member Constituency System) और दूसरे को बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र प्रथा (Multiple Member Constituency) कहते हैं।

(१) **एक-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्र प्रथा** (Single Member Constituency Method)—इस प्रणाली के अनुसार सारे देश को उतने निर्वाचन-क्षेत्रों (electoral constituencies) में बाँट दिया जाता है जितने प्रतिनिधि चुनने की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ, यदि पंजाब विधान-सभा में १२६ सदस्य हैं तो सारे पंजाब को १२६ निर्वाचन-क्षेत्रों में बाँट दिया जाएगा।

प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में से एक प्रतिनिधि चुना जाता है। जो उम्मीदवार सब से अधिक वोट हासिल कर लेता है, उसको निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। प्रत्येक नागरिक केवल एक राय दे सकता है अर्थात् उसे एक ही सभा के लिए एक ही चुनाव-क्षेत्र से एक से अधिक राय देने का अधिकार नहीं होता।

(२) **बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र प्रथा** (Multiple Member Constituency Method)—इस प्रणाली में सारे देश को कुछ बड़े-बड़े निर्वाचन-क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में से एक से अधिक प्रतिनिधि चुने जाते हैं। प्रत्येक मतदाता को प्रायः एक से अधिक वोट प्राप्त होते हैं। साधारणतया मतदाता अपने सारे वोट एक ही व्यक्ति को नहीं दे सकता।

एक-सदस्य वाले निर्वाचन-क्षेत्रों से लाभ तथा हानियाँ (Advantages and Disadvantages of Single Member Constituencies)—इस से कई लाभ हैं।

पहला लाभ यह है कि यह प्रणाली इतनी आसान है कि इसको समझने में कोई दिक्कत नहीं आ सकती। भारत जैसे देश में जहाँ निरक्षरता का राज्य है, वहाँ पर भी लोग इसे आसानी से समझकर अपना वोट किसी उम्मीदवार को दे सकते हैं। इसका दूसरा लाभ यह है कि इसमें प्रतिनिधि का लोगों से सम्बन्ध रहता है क्योंकि चुनाव-क्षेत्र (electoral constituency) साधारणतया छोटा होता है। तीसरे, प्रतिनिधि लोगों के प्रति उत्तरदायी रहता है। चौथे, इसमें निर्वाचन-क्षेत्र छोटा होने के कारण थोड़े पैसे वाले और योग्य व्यक्ति भी चुनाव आसानी से लड़ सकते हैं और देश को अपनी योग्यता से लाभ पहुँचा सकते हैं। पाँचवें, इसमें छोटे-छोटे ग्रुपों को प्रतिनिधित्व मिलने के लिए कोई सम्भावना नहीं रहती, इसलिए मज़बूत और स्थायी मन्त्रिमण्डल का निर्माण होता है।

हानियाँ (Disadvantages)—इसकी हानियाँ ये हैं कि सरकार को अपने लाभ के लिए निर्वाचन-क्षेत्र बनाने का अवसर मिल जाता है और वह विरोधी दलों के समर्थकों को कम से कम क्षेत्रों में सीमित करने का यत्न करती है। इस प्रथा को अंग्रेजी में Gerrymandering कहते हैं। दूसरे, इसमें प्रतिनिधि राष्ट्रीय हितों का प्रतिनिधित्व न करके स्थानीय हितों का ही अधिक प्रतिनिधित्व करते हैं (Representatives of local and not national interests are often elected. As Gambetta once said, it made the Chamber of Deputies a broken mirror in which France could not recognise her own image)। तीसरे, इसमें अल्पमतों को संतोषजनक प्रतिनिधित्व नहीं मिलता। चौथे, इसमें कई बार थोड़े वोटों वाले उम्मीदवार कामयाब हो जाते हैं, जैसे उदाहरणार्थ एक स्थान पर कुल १,००० वोट पड़े और उनमें से A को ३००, B को, २५०, C को १७५, D को १२५, E को १०० और F को ५० राय मिलीं, तो A निर्वाचित घोषित कर दिया जाएगा, यद्यपि उसने १,००० में से कुल ३०० राय प्राप्त की हैं।

बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र के लाभ और हानियाँ—बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र प्रथा से कई लाभ हैं। पहला लाभ यह है कि इसमें राष्ट्रीय हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले लोग चुने जाते हैं। दूसरे, इसमें अल्पमतों को प्रतिनिधित्व मिल जाता है। तीसरे, इसमें शासक-दल केवल अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए निर्वाचन-क्षेत्र को तोड़-मरोड़ नहीं सकता। परन्तु इसकी कई हानियाँ भी हैं। पहली हानि इससे यह है कि इससे व्यवस्थापिका में बहुत छोटे-छोटे दल बन जाते हैं और स्थानीय मन्त्रिमण्डल का निर्माण नहीं हो सकता। दूसरे, एक प्रतिनिधि अपने आपको किसी विशेष तहसील या जिले के लिए ज़िम्मेवार नहीं समझता क्योंकि उस तहसील या जिले में से बहुत से प्रतिनिधि व्यवस्थापिका में बैठते हैं। तीसरे, निर्वाचन-क्षेत्र बहुत विस्तृत होने के कारण प्रतिनिधि का मतदाताओं से कोई सम्बन्ध नहीं रह पाता।

(३) **प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष निर्वाचन** (Direct and Indirect Methods of Elections)—प्रत्यक्ष चुनाव उसे कहते हैं जहाँ मतदाता स्वयं अपने प्रतिनिधि चुनते हैं

(If the voters directly take part in the elections and elect their representatives, it is known as the direct method of election)। प्रत्येक मतदाता चुनाव-स्थान पर जाता है और किसी भी उम्मीदवार को जिसे वह पसन्द करता है, अपनी राय दे देता है । इसके लिए उसे एक मत-पत्र (ballot paper) दिया जाता है और वह उम्मीदवार के नाम के सामने आवश्यक निशान लगाकर इसको चुनाव-पेटी में डाल देता है। जिस उम्मीदवार को सब से अधिक वोट मिल जाते हैं वह निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। इंगलैण्ड में निचले सदन (House of Commons) और भारत में लोकसभा तथा विधान-सभाओं और नगरपालिकाओं (House of People, Legislative Assemblies of the States and Municipal Committees) का चुनाव इसी प्रकार होता है।

जब मतदाता अपने प्रतिनिधि सीधे (dierctly) नहीं चुनते हैं बल्कि पहले एक निर्वाचकमण्डल (electoral college) चुनते हैं और वह निर्वाचकमण्डल बाद में प्रतिनिधियों को चुनता है तो हम उस प्रथा को अप्रत्यक्ष निर्वाचन (indirect election) कहते हैं। अत: इस प्रणाली में प्रतिनिधि चुनने का अन्तिम अधिकार मतदाताओं के हाथ में नहीं रहता बल्कि निर्वाचकों के हाथ में आ जाता है। फ्रांस, सोवियत संघ और भारत में दूसरा सदन इसी प्रकार चुना जाता है।[1]

प्रत्यक्ष चुनाव का सब से बड़ा लाभ यह है कि इससे लोग अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों के बारे में सचेत हो जाते हैं। यह प्रथा अधिक लोकतन्त्रात्मक भी है। इसमें मतदाताओं की राजनीति में रुचि बनी रहती है। उम्मीदवार अपनी नीति और प्रोग्राम मतदाताओं के सामने रखते हैं और उनके हृदय में उस कार्यक्रम के सम्बन्ध में दृढ़ विश्वास उत्पन्न करते हैं। इससे मतदाताओं को बड़ी भारी राजनैतिक शिक्षा मिलती है। मतदाताओं और प्रतिनिधियों में बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। मतदाताओं में राजनैतिक जागरूकता (political vigilance) की भावना का भी उदय होता है। इस पद्धति में सब से बड़ी बुराई यह है कि मतदाता अधिक योग्य और शिक्षित न होने के कारण नेताओं के जोशीले भाषणों के प्रवाह में बह जाते हैं और निकम्मे, स्वार्थी तथा चालाक उम्मीदवारों को चुन लेते हैं।

अप्रत्यक्ष चुनाव का सब से बड़ा लाभ यह है कि इसमें प्रतिनिधियों को चुनने का अन्तिम अधिकार निर्वाचकों के हाथ में रहता है जो मतदाताओं की अपेक्षा अधिक सुशिक्षित और विचारशील होते हैं। इसलिए भीड़तन्त्र (mobocracy) की बुराइयाँ दूर हो जाती हैं। चुनाव में बहुत अधिक झूठा प्रचार और जोश नहीं फैलता। दलबन्दी की भावना भी कुछ कम हो जाती है। इस प्रणाली में अनेक दोष भी हैं। यह अधिक लोकतन्त्रात्मक नहीं है क्योंकि प्रतिनिधियों का मतदाताओं के

1. "When voters do not directly participate in the election of their representatives, but choose only an intermediary body which elects the representatives the method of election is called indirect. The final choice of electing the representatives is therefore, not that of the general mass of voters but of the intermediary body of electors whom the general mass of voters had elected in the first instance." —*Dr. A. C. Kapoor.*

साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। इससे मतदाताओं की राजनीति में कोई रुचि नहीं रहती और न ही उन्हें कोई राजनैतिक शिक्षा मिलती है। जब मतदाता निर्वाचकमण्डल को चुनने की योग्यता रखते हैं तो प्रतिनिधि चुनने की क्यों नहीं? इसमें दलबन्दी की बुराइयाँ बिल्कुल खत्म नहीं होतीं। अप्रत्यक्ष चुनाव भी वास्तव में दलबन्दी के कारण प्रत्यक्ष चुनाव ही हो गया है, जैसे अमरीका में राष्ट्रपति का चुनाव। इसमें घूस और राजनैतिक चालों के लिए भी अधिक स्थान रहता है क्योंकि निर्वाचकों की संख्या प्रायः कम रहती है।

अल्पसंख्यक जातियों के प्रतिनिधित्व का प्रश्न
(Methods of Minority Representation)

अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व देने के लिए कई तरीके प्रचलित हैं। इन उपायों में निम्नलिखित अधिक प्रसिद्ध हैं :—

(१) अनुपाती प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) जिसमें एकल संक्रमणीय मत-प्रणाली (Single Transferable Vote System) तथा सूची-प्रणाली (List System) मुख्य हैं।

(२) सीमित मत-प्रणाली (Limited Vote System);

(३) सञ्चित मत-प्रणाली (Cumulative Vote System);

(४) पृथक् निर्वाचन-प्रणाली (Separate Electorate System); और

(५) सुरक्षित स्थान-युक्त संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली (Joint Electorate with Reservation of Seats)।

एकल संक्रमणीय मत-प्रणाली
(Single Transferable Vote System)

इस प्रणाली का सब से पहले प्रयोग सन् १७९३ ईस्वी में फ्रेंच राष्ट्रीय कन्वेन्शन में किया गया था; परन्तु इसका प्रचार तब तक काफी नहीं हुआ था जब तक १८५५ ईस्वी में डेनिश राजस्व मन्त्री कार्ल एन्ड्रे और सन् १८५८ में अंग्रेज़ विद्वान् टामस हेअर (Thomas Hair) ने इसका प्रचार नहीं किया। मिस्टर एन्ड्रे (Andrae) ने इसको डैन्मार्क में १८५५ में प्रचलित किया।

इस पद्धति के लिए ये आवश्यक बातें हैं—(१) बहुसदस्य वाले निर्वाचन-क्षेत्र (multiple member constituency or plural constituency); (२) मतदाता को केवल एक ही मत का अधिकार (possession by the voter of only one vote); (३) मतदाता द्वारा अपनी पसन्द का बताना (the making of preferences); (४) मतों का संक्रमण (the transfer of votes) तथा भाग-फल चुनाव अंक (electoral quota)। भागफल चुनाव अंक निकालने के लिए दो तरीके आमतौर पर प्रचलित हैं—

(अ) $\frac{\text{कुल मतों की संख्या (total number of votes)}}{\text{चुने जाने वाले सदस्यों की संख्या (number of votes)}}$

(ब) $\frac{\text{कुल मतों की संख्या (total number of votes)}}{\text{चुने जाने वाले सदस्यों की संख्या} + १} + १$

इसमें सन्देह नहीं कि पहला तरीका अधिक सरल है परन्तु दूसरा तरीका प्रायः अधिक प्रचलित है। यह आवश्यक है कि इस प्रणाली में बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र (plural constituency) हों। लार्ड कर्टने का विचार था कि एक निर्वाचन-क्षेत्र से पन्द्रह से अधिक पुरुष न चुने जाएँ परन्तु हमारे विचार में दस या बारह से अधिक सदस्यों वाले निर्वाचन-क्षेत्र अच्छे नहीं रहते। इस प्रणाली में यह विशेषता है कि प्रत्येक मतदाता को यह अधिकार प्राप्त है कि वह उम्मीदवारों के नाम के सामने १, २, ३, ४, ५ इत्यादि लिख सकता है और इस तरह से अपनी पसन्दें (preferences) दिखा सकता है। यह बात याद रखने योग्य है कि जितने स्थान (seats) रिक्त (vacant) होते हैं अर्थात् जितने उम्मीदवार उस निर्वाचन-क्षेत्र से निर्वाचित होकर जाते हैं उतनी ही पसन्दें मतदाता उम्मीदवारों के नाम के सामने दिखा सकता है। उदाहरणार्थ, यदि एक निर्वाचन-क्षेत्र से असेम्बली के लिए बारह प्रतिनिधि चुने जाएं और २० उम्मीदवार चुनाव लड़ने के लिए खड़े हों तो मतदाता केवल १२ उम्मीदवारों के नाम के सामने अपनी पहली से बारहवीं तक पसन्द (1st, 2nd, 3rd and so on upto 12th preferences) लिख सकता है। इस प्रणाली में निर्वाचित होने के लिए भागफल चुनाव अंक या न्यूनतम संख्या (electoral quota) पूरी करनी पड़ती है। इसलिए जिस उम्मीदवार की न्यूनतम संख्या पूरी हो जाती है, उसे निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। यदि उसे कोटा से अधिक राय मिल जाएँ, तो उसकी अनावश्यक या अधिक राय (surplus votes) दूसरी पसन्द (2nd preference) के अनुसार दूसरे उम्मीदवारों को दे दी जाती हैं। इसी प्रकार ऐसे उम्मीदवार (candidate) की राय जो सब से न्यूनतम (minimum) होती हैं, दूसरे उम्मीदवारों को दूसरी पसन्द (2nd preference) के अनुसार दे दी जाती हैं। कई बार तीसरी, चौथी, पाँचवीं या अधिक पसन्दों का प्रयोग करना पड़ता है तब एक उम्मीदवार निर्वाचित होने के लिए अपनी न्यूनतम संख्या (quota) पूरी करता है। जिस मनुष्य की पहली पसन्द में न्यूनतम राय (minimum votes) होती हैं, उसकी राय दूसरे उम्मीदवारों को अन्य पसन्दों के अनुसार इसलिए संक्रमण (transfer) की जाती हैं क्योंकि उस उम्मीदवार के निर्वाचित होने की सम्भावना बिल्कुल नहीं होती। इस प्रकार इस प्रणाली में कई बार गणना (counting) होती है और जब उम्मीदवार अपनी-अपनी न्यूनतम संख्या पूरा कर लेते हैं तब गणना (counting) समाप्त हो जाती है। जो उम्मीदवार वोटों की न्यूनतम संख्या प्राप्त कर लेते हैं, वे निर्वाचित घोषित कर दिये जाते हैं।

इस प्रथा से लाभ तथा हानियाँ (Advantages and Disadvantages of Single Transferable Vote System)

(१) इस प्रथा से पहला लाभ यह है कि सब अल्पमतों (minorities) को अनुपात में प्रतिनिधित्व मिल जाता है; (२) कोई भी मत खराब नहीं जाता; (३) यह

अधिक प्रजातन्त्रीय प्रणाली है। इससे विधान-सभा में राजनैतिक दलों का प्रभाव घट जाता है। किसी एक पार्टी का दबदबा नहीं होने पाता, (४) इसमें मतदाता को अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है क्योंकि वह भिन्न-भिन्न उम्मीदवारों को पहली, दूसरी, चौथी इत्यादि पसन्दें (preferences) देता है। (५) इस पद्धति से लोगों को बड़ी भारी राजनैतिक शिक्षा भी मिलती है।

इस प्रणाली में ये दोष हैं। (१) यह बहुत जटिल (complicated) है। इसमें गणना (counting) में बड़ी दिक्कत पेश आती है, (२) इसमें छोटे-छोटे दलों को आनुपातिक प्रतिनिधित्व मिल जाता है, अतः स्थायी मन्त्रिमण्डल का बनना सम्भव नहीं होता, (३) निर्वाचन-क्षेत्र बड़े होने के कारण प्रतिनिधि और मतदाता में कोई नज़दीकी सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। प्रतिनिधि अपने आपको किसी खास क्षेत्र के लोगों के प्रति जिम्मेवार नहीं समझता।

सूची-प्रणाली (List System)

आनुपाती प्रतिनिधित्व देने का दूसरा तरीका सूची-प्रणाली (List System) है। इसमें सारे देश को बड़े-बड़े चुनाव-क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है या कई बार सारे देश को एक ही निर्वाचन-क्षेत्र मान लिया जाता है। इसमें जो उम्मीदवार चुनाव में खड़े होते हैं, उन्हें उनके दलों के अनुसार एक सूची में रख दिया जाता है **और जो रायें व्यक्तिगत उम्मीदवारों को दी जाती हैं, वे सूची के लिए दी गई रायें मान ली जाती हैं**। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्रत्येक दल उतने नामों की सूची तैयार करता है जितने प्रतिनिधि उस निर्वाचन-क्षेत्र से चुने जाने निश्चित हैं। चुनाव दल-पद्धति के आधार पर लड़ा जाता है। मतदाता उतने मत दे सकता है जितने स्थानों (seats) के लिए चुनाव निश्चित हों (परन्तु वह एक उम्मीदवार को एक से अधिक राय नहीं दे सकता)। उदाहरणार्थ, यदि किसी निर्वाचन-क्षेत्र से पाँच प्रतिनिधि चुनने हैं तो मतदाता अपने पाँच वोट किसी भी सूची के लिए दे सकता है। वह यह नहीं कर सकता कि दो वोट एक सूची के लिए दे दे और तीन वोट दूसरी पार्टी की सूची के लिए। उसे तमाम वोट एक ही सूची के लिए देने पड़ेंगे। तमाम दलों की अलग-अलग रायें गिन ली जाती हैं। इसमें भागफल चुनाव अंक (electoral quota) उसी प्रकार निकाला जाता है जैसे कि हेअर प्रणाली या एकल-संक्रमणीय मत-प्रणाली (Single Transferable or Hare System) में। उदाहरणार्थ, यदि किसी देश की सभा के लिए १०० प्रतिनिधि चुने जाने निश्चित हैं और कुल वोट चुनाव में १०,००,००० पड़ें तो भागफल चुनाव अंक (electoral quota) $\frac{१०,००,०००}{१००}$ = १०,००० निश्चित हुआ। अब फर्ज कीजिए ५ पार्टियाँ क, ख, ग, घ, ङ हैं। यदि क को १,००,००० वोट मिले हों, तो उसको $\frac{१,००,०००}{१०,०००}$ = १० सीट मिल जायेंगी। इसी प्रकार यदि ख को ३ लाख वोटें प्राप्त हुई हैं तो इसको ३० सीट मिल जायेंगी। इस तरह पार्टियाँ आपस में सीटें बाँट लेती हैं। यह प्रणाली बेल्जियम, स्वीडन, डेन्मार्क तथा स्विट्ज़रलैंड में प्रचलित है।

इस प्रथा से लाभ तथा हानियाँ
(Advantages and Disadvantages of this System)

इस प्रथा का मुख्य लाभ यह है कि यह अत्यन्त सरल है। इसमें बिल्कुल जटिलता नहीं है। दूसरे इस में प्रत्येक दल को इसकी शक्ति के अनुसार प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता है। इसमें दोष भी हैं। पहला दोष यह है कि प्रतिनिधि तथा मतदाता में कोई निकट सम्पर्क नहीं रह पाता। दूसरे, प्रतिनिधि किसी क्षेत्र के प्रति उत्तरदायित्व महसूस नहीं करता। तीसरे, एक सुसंगठित और मज़बूत दल बहुत अधिक सीटों को हासिल कर लेता है। चौथे, एक बड़े देश में यह अव्यवहारिक प्रतीत होती है।

सीमित मत-प्रथा (Limited Vote System)

इस प्रणाली के अनुसार सारा देश कुछ बड़े-बड़े निर्वाचन-क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र से कम से कम तीन प्रतिनिधि भेजे जाते हैं। मतदाताओं को तीन से कम वोट अर्थात् दो वोट देने का अधिकार होता है। यदि पाँच प्रतिनिधि जाएँ तो मतदाताओं को तीन वोट और ७ प्रतिनिधि किसी निर्वाचन-क्षेत्र से चुने जाएँ तो मतदाताओं को ५ वोट देने का अधिकार होता है। और इसमें एक मतदाता अपना एक से अधिक वोट एक उम्मीदवार को नहीं दे सकता। इसका परिणाम यह होगा कि अल्पसंख्यकों को कुछ प्रतिनिधित्व मिल जायेगा, जैसे ३ सदस्यों वाले निर्वाचन-क्षेत्रों (3-membered constituencies) से बहुसंख्यक-वर्ग २ प्रतिनिधि भेज पायेगा और अल्पसंख्यक वर्ग एक प्रतिनिधि भेज देगा।

इस प्रणाणी में कई दोष हैं। पहला दोष यह है कि अल्पसंख्यकों को अनुपाती प्रतिनिधित्व (proportional representation) नहीं मिलता। इससे उनको केवल थोड़ा-सा प्रतिनिधित्व मिलता है। दूसरे, जहाँ पर बहुत अधिक दल हों वहाँ पर यह तरीका ठीक काम नहीं कर सकता। कई बार ऐसा भी हो जाता है कि अल्पसंख्यकों को बिल्कुल प्रतिनिधित्व नहीं मिलता। तीसरे, यह तरीका एक सदस्य वाले निर्वाचन-क्षेत्रों (single-membered constituencies) में लागू नहीं किया जा सकता।

संचित मत-प्रणाली (Cumulative Vote System)

इसमें भी निर्वाचन-क्षेत्र बहु-सदस्य (plural or multiple) होते हैं। जितने उम्मीदवार एक निर्वाचन-क्षेत्र से चुने जाते हैं, मतदाता को उतने ही वोट देने का अधिकार होता है। इस पद्धति में यह विशेषता है कि मतदाता अपने सारे वोट एक उम्मीदवार को दे सकता है और यदि वह चाहे तो कुछ वोट एक उम्मीदवार को और शेष वोट दूसरे को भी दे सकता है। इस प्रणाली में अल्पसंख्यक-वर्ग (minorities) अपने सारे वोट एक ही उम्मीदवार को दे देते हैं और इस प्रकार एक उम्मीदवार को निर्वाचित करा लेते हैं।

इस प्रणाली में गुण यह है कि अल्पसंख्यकों को कुछ प्रतिनिधित्व अवश्य मिल जाता है परन्तु दोष यह है कि कई बार प्रसिद्ध उम्मीदवार बहुत अधिक वोट प्राप्त कर लेते हैं क्योंकि अल्पसंख्यक-वर्ग अपने सारे वोट एक ही उम्मीदवार को देते हैं

इससे बहुत से वोट व्यर्थ चले जाते हैं। दूसरे, इस प्रणाली में यह भी दोष है कि प्रत्येक दल को आनुपातिक प्रतिनिधित्व (proportional representation) नहीं मिल पाता। तीसरे, इसमें राजनैतिक दलों का नियन्त्रण और उनकी बुराइयाँ बहुत बढ़ जाती हैं। अल्पमतों को अपने उम्मीदवार चुनवाने के लिए अत्यन्त संगठित होना पड़ता है। राजनैतिक नेता अपनी पार्टी में सख्त अनुशासन कायम रखते हैं और मतदाताओं को अपने वोट बहुत सावधानी से विभाजित या इकट्ठे करने की जोरदार अपील करते हैं।

पृथक् निर्वाचन-प्रणाली (Separate Electorate System)

इस प्रणाली में निर्वाचन-क्षेत्र धर्म या मज़हब के आधार पर बनाए जाते हैं। यह प्रणाली अंग्रेजों ने भारत में सब से पहले १९०९ के अधिनियम में प्रचलित की। मुसलमानों को १९०९ में अपने अलग प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया गया। इसी प्रकार १९१९ में सिक्खों और १९३५ में हरिजनों को यह अधिकार दिया गया। इस प्रणाली के अनुसार प्रत्येक सम्प्रदाय की सीटें रक्षित (reserve) होती थीं और उस हिसाब से उस सम्प्रदाय के लिए उतने ही निर्वाचन-क्षेत्र बना दिये जाते थे। मुसलमानों के निर्वाचन-क्षेत्रों से केवल मुसलमान उम्मीदवार ही खड़े हो सकते थे और उनको केवल मुसलमान ही वोट दे सकते थे। इस प्रणाली से अल्पमतों को अवश्य ही काफी प्रतिनिधित्व मिल जाता है परन्तु इसमें कई दोष हैं। पहला, बड़ा भारी दोष यह है कि इससे राष्ट्रीय भावनाओं पर कुठाराघात होता है। लोगों में संकुचित भावनाओं का निर्माण होता है। धार्मिक विष लोगों में खूब फलता है। पारस्परिक सहयोग और सहानुभूति की भावना को बड़ा भारी धक्का पहुँचता है। इसी प्रणाली का यह भयंकर परिणाम था कि १९४७ ईस्वी में भारत दो भागों में बँट गया और दोनों भागों में अल्पमतों का खूब रक्तपात हुआ।

सुरक्षित स्थानयुक्त निर्वाचन-प्रणाली (Joint Electorate with Reservation of Seats)

इस प्रणाली के अनुसार व्यवस्थापिका सभा में अल्पसंख्यक-वर्गों (minorities) के लिए संविधान द्वारा सीटें निश्चित कर दी जाती हैं। इसमें सम्प्रदाय के आधार पर निर्वाचन-क्षेत्र नहीं बनाये जाते। हिन्दुओं को मुसलमान उम्मीदवारों और मुसलमानों को हिन्दू उम्मीदवारों के लिए राय देने का हक़ हासिल होता है। इसमें केवल वही उम्मीदवार निर्वाचित होकर जाते हैं जिन्हें सब जातियों के हित प्रिय हों। इससे एकता की भावना का उदय होता है तथा राष्ट्रीयता दृढ़ होती है और प्रतिनिधि तमाम देश के हितों का चिन्तन करते हैं न कि अपनी-अपनी जाति के स्वार्थों का। भारतीय संविधान में हरिजनों, मज़हबी सिक्खों और कबीलों के लिए संविधान के आरम्भ होने से १० वर्ष तक सीटें रिज़र्व की गई हैं।

उप-निर्वाचन (By-election)—चुनाव के समय सभी स्थान भर दिये जाते हैं परन्तु कई बार ऐसा होता है कि कोई व्यवस्थापिका का सदस्य त्याग-पत्र दे देता है या मर जाता है तो उसके स्थान की पूर्ति के लिए उसके निर्वाचन-क्षेत्र में दोबारा

चुनाव होता है। इसका लाभ यह है कि सार्वदेशिक चुनाव के बाद जनता के झुकाव का पता चल जाता है। अतः इसमें आने वाले चुनावों के बारे में भी कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

आदर्श प्रतिनिधित्व प्रणाली के लिए आवश्यक बातें (Essentials of a Good Electoral System)—आदर्श प्रतिनिधित्व के लिए निम्नलिखित बातें होनी चाहिएँ—

(१) वयस्क मताधिकार (adult franchise), (२) प्रत्यक्ष निर्वाचन (direct election), (३) गुप्त मतदान प्रथा (secret ballot), (४) निर्वाचन के समय अनैतिक और अवैध कार्यों के लिए कड़े कानून, (५) स्वतन्त्र और निष्पक्ष निर्वाचन, (६) पृथक् निर्वाचन प्रणाली (separate electorate), और बहुमतदान (plural voting) की समाप्ति और निर्वाचन संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली (joint electorate) के अनुसार करना, (७) अल्पसंख्यक-वर्गों की रक्षा, (८) राजनैतिक दलों के निर्माण का आधार साम्प्रदायिक न होकर राजनैतिक अथवा आर्थिक होना चाहिए, (९) मतदाताओं तथा प्रतिनिधियों में निकट सम्पर्क, (१०) निर्वाचन बहुत शीघ्र या बहुत देर में न होने चाहिएँ। ५ वर्ष की अवधि बहुत ठीक अवधि है, (११) सदस्यों को जातीय तथा स्थानीय हितों की अपेक्षा राष्ट्रीय हितों का सदैव ध्यान रहे, और (१२) उप-चुनाव व्यवस्था।

सारांश

लोकतन्त्र में मताधिकार का विशेष महत्त्व है। आजकल के युग में प्रत्येक बालिग को मताधिकार देना आवश्यक समझा जाता है। मिल का विश्वास था कि मत का आधार शिक्षा तथा सम्पत्ति होना चाहिए परन्तु अब युग बहुत आगे बढ़ चुका है और सब राजनीतिज्ञों की एक राय है कि प्रत्येक वयस्क को मताधिकार होना चाहिए। केवल पुरुषों को मताधिकार देना और नारियों को मताधिकार से वंचित करना सर्वथा अनुचित है। स्विट्ज़रलैंड में नारियों को मताधिकार नहीं है, यह लोकतन्त्र की भावनाओं पर वज्रपात हैं। वयस्क मताधिकार के कारण ही लोग सरकार पर वास्तविक अधिकार रख सकते हैं। तभी कुछ अंश में राजसत्ता का प्रयोग उनके द्वारा किया जा सकता है।

एक-सदस्य और बहुसदस्य निर्वाचन-प्रणाली में एक-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्र प्रणाली अधिक उत्तम और सरल है। इसमें प्रतिनिधि का मतदाता से सीधा सम्पर्क होता है। इसलिए यह अधिक लोकतन्त्रात्मक भी है। अल्पमतों को भी किसी राष्ट्र में प्रतिनिधित्व देना बहुत आवश्यक है। इसके बिना किसी राष्ट्र की वास्तविक उन्नति सम्भव नहीं। अल्पमतों को प्रतिनिधित्व देने के लिए हेअर प्रणाली, सूची प्रणाली, सीमित मतप्रथा, संचित मतप्रथा, पृथक् निर्वाचन प्रथा (separate electorates) तथा सुरक्षित स्थान-युक्त निर्वाचन-प्रणाली प्रचलित है। इसमें हेअर प्रणाली अधिक उत्तम है क्योंकि इसमें अल्पमतों को आनुपातिक प्रतिनिधित्व (proportional representation) मिल जाता है।

Questions

1. Define the term 'Franchise'. Discuss the question of universal suffrage, with special reference to India. (*U. P.* 1946)

2. Point out the essentials of a good Electoral System. How does the electorate exercise control over the Govt. in India ?

3. Discuss the argument for and against :

(*i*) Proportional Representation (*Ajmer Board* 1950; *P.U.* 1955)

(*ii*) Communal Representation (,, ,, 1949)

4. Write short notes on : —

(*a*) Female Suffrage. (*Delhi H. S.* 1952; *Saugar Uni.* 1950)

(*b*) Direct and Indirect Election.

(*c*) Adult Franchise (*Delhi H. S.* 1954; *Ajmer Board* 1949)

(*d*) Control of the Electorate over Govt. (*U. P.* 1944)

(*e*) Essentials of a Good Electoral System. (*U. P.* 1944)

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. सर्व-साधारण मताधिकार का ठीक-ठीक अर्थ समझाइये, और इसके पक्ष और विपक्ष में दिये गए तर्कों का उल्लेख कीजिए। (उ० प्र० १९५५)

२. अल्पसंख्यकों को उचित प्रतिनिधित्व दिलाने की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए। (सागर विश्वविद्यालय १९५१)

३. महिला मताधिकार के पक्ष और विपक्ष में युक्तियाँ दीजिए। (यू० पी १९३०, १९४२)

४. एक आदर्श निर्वाचन-पद्धति क्या हो सकती है ? मतदाता शासकों पर किस प्रकार नियन्त्रण रखते हैं ? (यू० पी० १९४४)

५. साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व पर संक्षिप्त नोट लिखो। (यू० पी० १९५३)

६. अल्पसंख्यक जातियों के प्रतिनिधित्व का आप क्या आशय समझते हैं ? क्या भारत के लिए आप संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली उचित समझते हैं ? (यू० पी० १९४८)

बीसवाँ अध्याय

स्थानीय स्वशासन (Local Self-Government)

"Local institutions constitute the strength of free nations. A nation may establish a system of free Governments, but without municipal institutions it can not have the spirit of liberty."—*De Tocqueville.*

स्थानीय और केन्द्रीय सरकारों में अन्तर
(Distinction between Local Self-Govt. and Central Govt.)

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक राज्य के कार्य बहुत सीमित थे। व्यक्तिवादियों की विचारधारा के अनुसार राज्य एक पुलिस-राज्य था। समाजवाद के कारण अब राज्य के कार्य बहुत बढ़ गए हैं। अब राज्य एक कल्याणकारी राज्य (welfare state) बन गया है। केन्द्रीय सरकार (Central Government) इतना काम स्वयं नहीं कर सकती इसलिए केन्द्रीय सरकार बहुत से कार्य स्थानीय सरकारों को दे देती है। यह याद रखने योग्य बात है कि स्थानीय सरकारों को केवल ऐसे विषय दिये जाते हैं जो स्थानीय हितों से सम्बन्धित हों और जो विषय सारे देश के हितों से सम्बन्धित हैं, वे प्रायः केन्द्रीय सरकार को दिये जाते हैं। स्थानीय शासन जब लोगों के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाय, तो उसको हम स्थानीय स्वराज्य बोलते हैं। स्थानीय स्वशासन से तात्पर्य उन निगमों, नगरपालिकाओं, जिला बोर्डों व ग्राम पंचायतों से है जिनका कर्त्तव्य है कि स्थानीय क्षेत्रों के निवासियों से सम्बन्धित कार्यों का परिपालन करें। ये कार्य तमाम लोगों और सारे देश से सम्बन्धित न होकर केवल राज्य के कुछ सीमित क्षेत्र और उसके निवासियों से ही सम्बन्धित होते हैं।[1] लॉस्की कहता है कि "हम लोकतन्त्रात्मक सरकार का पूरा फायदा नहीं उठा सकते जब तक कि हम यह बात मान कर नहीं चलते कि तमाम समस्याएँ केन्द्रीय समस्याएँ नहीं हैं और ऐसी समस्याएँ जो केन्द्रीय नहीं हैं, उनका हल उस स्थान पर और उन लोगों द्वारा होना आवश्यक है जिनके द्वारा वे अधिक अनुभव की जाती हैं।"[1]

लीकॉक का विश्वास है कि "केन्द्रीय और स्थानीय सरकार का भेद दो बातों पर निर्भर है—प्रथम, दोनों की संवैधानिक स्थिति एक दूसरे से सर्वथा भिन्न होती है[2] और दूसरे, क्षेत्रीय संस्थाओं द्वारा किये जाने वाले कृत्यों का स्वरूप भिन्न होता

1. "We cannot realise the full benefit of democratic government, unless we begin by the admission that all problems are not central problems and the results of problems not central in their incidence require decision at the place and by the persons, where and by whom the incidence is most deeply felt."
—*Laski.*

2. "The distinction between local and central government lies partly in their relative constitutional positions and partly in the nature of public services performed."—*Leacock.*

है।" अन्त में हम कह सकते हैं कि इन दोनों सरकारों का क्षेत्र भिन्न करना बहुत कठिन है, जैसे गिलक्राइस्ट कहता है, "स्थानीय शासन का वर्णन किया जा सकता है, उसकी परिभाषा नहीं की जा सकती क्योंकि परिभाषा के लिए कुछ सीमाओं की आवश्यकता है और केन्द्रीय व स्थानीय शासन में स्पष्ट क्षेत्र-विभाजन नहीं किया जा सकता।"[1] प्राय: ऐसा किया जाता है कि सारे देश से सम्बन्धित कार्य जैसे प्रतिरक्षा (defence), वैदेशिक सम्बन्ध (foreign relations), यातायात (communications), मुद्रा तथा नोट (currency and coinage), बैंक तथा शान्ति और व्यवस्था (law and order) आदि केन्द्रीय सरकार को दे दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ प्रान्तीय मामले जैसे शिक्षा, जेल, पुलिस, स्थानीय सरकारों की देख-भाल और राजस्व (revenue) इत्यादि प्रान्तीय सरकारों को दे दिये जाते हैं। कुछ मामले केवल स्थानीय होते हैं, जैसे सफाई, नालियाँ, जन्म तथा मृत्यु सम्बन्धी आँकड़े रखना, गलियों में रोशनी का प्रबन्ध और अच्छा पानी लोगों को पहुँचाना ऐसे विषय स्थानीय सरकारों को दे दिये जाते हैं।

स्थानीय सरकारों के मुख्य कार्य
(Functions of Local Self-Govt.)

स्थानीय संस्थाओं के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं—

(१) **स्वास्थ्य रक्षा** (Protection of Health)—स्थानीय सरकारें जैसे नगरपालिकाएँ (municipalities), जिला-बोर्ड और ग्राम पंचायतें कुछ स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्य भी करती हैं। रोग प्राय: गन्दे पानी और खराब चीज़ों के प्रयोग से फैलते हैं। इसलिए स्थानीय सरकारें नागरिकों के लिए स्वच्छ जल का प्रबन्ध करती हैं और खराब, तथा गली-सड़ी चीज़ों के बेचने की मनाही करती हैं। बीमारी के फैलने पर वे कुओं में दवाई डालती हैं, मच्छरों के मारने के लिए यत्न करती हैं और चेचक, हैजे, प्लेग और बी० सी० जी० इत्यादि के टीके लगाती हैं तथा गोबर को गड्ढों में डलवाती हैं। वे अपने क्षेत्रों में पूर्णरूप से सफाई रखने की कोशिश करती हैं। वे खराब मकानों को तुड़वा कर उनके स्थान पर हवादार मकान बनवाती हैं। इसके अतिरिक्त वे चिकित्सा के लिए अस्पताल खोलती हैं। दिल्ली नगरपालिका ने रोगियों के इलाज के लिए अनेकों अस्पताल खोले हुए हैं।

(२) **प्रारम्भिक शिक्षा** (Primary Education)—नगरपालिकाएँ, ज़िला बोर्ड तथा ग्राम पंचायतें बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध भी करती हैं। पंजाब में जिला-बोर्डों ने अनेक स्कूल खोले हुए हैं। शिमला नगरपालिका ने भार्गव म्युनिसिपल कालेज खोला हुआ है।

(३) **जनता के लिए मनोरंजन का प्रबन्ध** (Recreation)—जनता के मनोविनोद के लिए स्थानीय सरकारें सिनेमा, थियेटर, दंगल, तैरने के लिए तालाबों

1. It can he described but not defined, for a definition requires limits, and local government and central government cannot always be clearly demarcated."—*Gilchrist.*

इत्यादि का प्रबन्ध करती हैं। वे पुलों इत्यादि की भी मरम्मत करवाती हैं।

(४) **यातायात के साधनों का प्रबन्ध**—स्थानीय सरकारें बस (buses), ट्रेम्वे, सड़कों और स्थानीय रेलों का भी संचालन करती हैं।

(५) **विविध कार्य** (Miscellaneous Functions)—स्थानीय सरकारें श्मशान भूमि, वाचनालय (reading rooms), पुस्तकालय, पार्क, होटल और रेस्टोरेन्ट खोलती हैं। वे भयानक और अहितकर व्यापार को नियमित कर सकती हैं। वे रोशनी का प्रबन्ध करती हैं और खतरनाक तथा बिना आज्ञा के म्युनिसिपल सीमाओं में बनाये हुए मकानों को गिरा सकती हैं। मकानों के लिए नक्शों की मंजूरी भी इन्हीं से लेनी पड़ती है। वे वेश्यालयों, व्यभिचार तथा भीख माँगने वालों को रोक सकती हैं। वे लोगों को डेयरी और वध-स्थानों (butcheries) के खोलने के लिए लाइसेन्स दे सकती हैं।

स्थानीय संस्थाओं की आमदनी के साधन (Sources of Income of Local Bodies)—स्थानीय संस्थाओं की आमदनी के मुख्य साधन निम्नलिखित हैं—(१) प्रापर्टी टैक्स या हाऊस टैक्स; (२) हैसियत टैक्स (जिनकी आमदनी ४०० रुपये से अधिक होती है और जो भू-राजस्व (land revenue) नहीं देते हैं, उनको यह टैक्स गाँवों में देना पड़ता है); (३) ३ रुपये वार्षिक व्यावसायिक टैक्स जुलाहों, मोचियों और रंगरेज़ों से लिया जाता है; (४) स्कूलों और कालेजों की फीस से भी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को आमदनी होती है; (५) म्युनिसिपैटिलियों को पानी (नल), बिजली, ट्राम, मोटर, बस इत्यादि से आमदनी; (६) म्युनिसिपल सम्पत्ति (जैसे मकानों और दुकानों से जो नगरपालिकाओं की हद में बने हुए होते हैं) से आमदनी; (७) प्रान्तीय सरकार से अनुदान (aid) और ऋण, (८) मण्डियों और मेलों में बिके हुए पशुओं से आमदनी; और (९) मण्डियों के कमीशन एजेन्टों, दलालों और तोलने वालों को लाइसेन्स (licence) देने से आमदनी।

स्थानीय संस्थाओं का केन्द्रीय नियन्त्रण
(How far the Centre should Control Local Bodies)

स्थानीय सरकारों को स्थानीय विषयों में काफी स्वायत्तता (autonomy) मिलनी चाहिए, तभी लोकतन्त्र की प्रारम्भिक शिक्षा लोगों को मिल सकती है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार का उन पर कोई नियन्त्रण ही न रहे। केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार का उन पर कुछ नियन्त्रण होना देश के लिए हितकारी ही है। उदाहरणार्थ, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा स्वच्छता ऐसे विषय हैं जो बिल्कुल स्थानीय सरकारों के हाथों में नहीं छोड़े जा सकते। इन विषयों के सम्बन्ध में बहुत सी ऐसी बातें हैं जो सारे देश के हितों से सम्बन्धित हैं, उनका केन्द्रीय सरकार द्वारा एकीकरण (co-ordination) तथा नियमन (regulation) करना अत्यन्त आवश्यक है। उदाहरणार्थ, यदि किसी नगर में प्लेग फैल जाय, तो दूसरों में भी फैलने का भय रहता है। ऐसी अवस्था में प्रायः देखा गया है कि एक नगरपालिका जिसकी सीमा में प्लेग फैल रहा है, उसको रोकने के लिए पूरा यत्न करती है परन्तु

समीप के किसी दूसरे नगर में जहाँ प्लेग फैलने का डर होता है, कोई सावधानी दूसरी नगरपालिका द्वारा नहीं बरती जाती। अतः केन्द्रीय सरकार के लिए ऐसे मामलों में तमाम नगरपालिकाओं द्वारा एक जैसी स्वास्थ्य-नीति को मनवाना आवश्यक हो जाता है। इसी प्रकार यदि शिक्षा सम्बन्धी सारी बातें स्थानीय सरकारों के हाथों में छोड़ दी जाएँ तो एकरूपता (uniformity) बिल्कुल नहीं रह सकती। कई बार नगरपालिकाओं में स्वच्छता-सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने की योग्यता भी नहीं होती है, जैसे दिल्ली नगरपालिका ने पुरानी दिल्ली की सफाई और लोगों को अच्छा पानी देने में काफी अयोग्यता का प्रमाण दिया है। अस्वच्छ जल लोगों को देने के कारण ही दिल्ली में पीलिया फैला और बहुत लोग मौत का ग्रास बने। इसकी सारी ज़िम्मेवारी वहाँ की नगरपालिका पर है। इसी कारण से अब केन्द्रीय सरकार ने यह कार्य अपने हाथ में ले लिया है। केन्द्रीय सरकार रुपये-पैसे की सहायता स्थानीय सरकारों को देती है। अतः यह देखती है कि इस आर्थिक सहायता का अपव्यय न हो। इस बात को जाँचने के लिए यह जाँच आयोग (investigating commissions) नियत करती है और स्थानीय सरकारों के हिसाबों की देख-भाल के लिए वह लेखा-परीक्षक या अंकेक्षक (auditor) भी नियत करती है। केन्द्रीय शासन के नियन्त्रण (control) तथा निरीक्षण (inspection) के अभाव में स्थानीय सरकारों का कार्य अदक्ष (inefficient) और अव्यवस्थित हो जायेगा। कुप्रबन्ध (mismanagement) हर जगह दिखाई देगा।

स्थानीय शासन पर केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण प्रत्येक देश में भिन्न-भिन्न मात्रा में होता है। फ्रांस में केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण स्थानीय सरकारों पर बहुत अधिक है। इंगलैंड में स्थानीय सरकारों को स्थानीय मामलों में बहुत स्वतन्त्रता होती है और अमरीका में तो स्थानीय सरकारों की शक्तियाँ संविधान या कानून द्वारा निश्चित होती हैं और उनके मामलों में केन्द्रीय सरकार किसी प्रकार का दखल नहीं दे सकती। ब्रिटेन में कानून मुख्यतया पार्लियामेंट द्वारा बनाये जाते हैं और कुछ उप-नियम (bye-laws) बनाने की शक्ति स्थानीय सरकारों के पास होती है परन्तु (केन्द्रीय निरीक्षण में) अपने मामलों का प्रबन्ध करने की उन्हें स्वतन्त्रता है।[1] लन्दन में स्थानीय सरकार को उप-नियम बनाने, स्थानीय टैक्स निश्चित करने, बजट तैयार और पास करने, अफ़सरों को नियुक्त करने और पुलिस, स्वास्थ्य, सफाई तथा स्कूलों जैसे स्थानीय विभागों की निगरानी करने का अधिकार है (According to Munro London Borough Council adopts bye-laws, determines the local tax rate, prepares and votes the budget, appoints all officials and super-

1. "Legislative centralisation with administrative decentralisation, in which for the sake of uniformity, the Central government passes laws, leaving the local bodies to administer them. In such a case the local bodies have certain powers of making bye-laws, which are really administrative rules. This system prevails generally in England. The Central Government preserves the legal powers to forbid any proposed legislation of the London County Council, save where final powers are legally granted to that body."—*Gilchrist.*

vises the work of the municipal departments such as streets, police and fire protections, health, sanitation and schools)। इंगलैंड में चूंकि केन्द्रीय सरकार स्थानीय सरकारों को सहायक-अनुदान (grant in-aid) देती है, इसलिए केन्द्रीय सरकार अपने कई विभागों, जैसे, स्वास्थ्य मन्त्रालय (Health Ministry), शिक्षा-मन्त्रालय (Education Ministry) तथा गृह-मन्त्रालय (Home Ministry) द्वारा निरीक्षण-कार्य (inspection) करती है। यदि स्थानीय सरकारें केन्द्रीय सरकार की दृष्टि में सन्तोषजनक कार्य नहीं करतीं, तो केन्द्रीय सरकार को तमाम सहायक-अनुदान या इसका कुछ भाग रोकने का अधिकार होता है।[1] मिस्टर हर्मन फाइनर कहते हैं कि निरीक्षक केवल केन्द्रीय सरकार की तरफ से देखते और सुनते ही नहीं हैं बल्कि इसके लिए वे बोलते और कार्य भी करते हैं (The inspectors do not merely see and hear on behalf of the central authority; they often speak and even act for it)। "इसका यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि इंगलैंड में केन्द्रीय अफसर स्थानीय प्रशासन (local administration) का कार्य स्वयं चलाते हैं। वे केवल परामर्श, निरीक्षण, नियमन, स्वीकृति और अस्वीकृति देते हैं।"[2] फ्रांस में केन्द्रीय सरकार कानून बनाने के अधिकार स्थानीय संस्थाओं को दे देती है परन्तु स्थानीय प्रशासन (local administration) का संचालन केन्द्र के द्वारा नियुक्त आफिसर या अधिकारी ही करते हैं।[3] फ्रांस में मेयर जो स्थानीय सरकार का अध्यक्ष होता है, केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त होता है और उसका तबादला, अवनति (demotion) और उन्नति केन्द्रीय सरकार के हाथ में होती है। वह केन्द्रीय सरकार के प्रति ही जिम्मेवार होता है। अतः हम कह सकते हैं कि इंगलैंड की प्रणाली फ्रांस से अच्छी है क्योंकि वहाँ स्थानीय सरकारों को अपने कर्मचारी नियुक्त करने, कुछ आमदनी प्राप्त करने और नीति निर्धारण करने का अधिकार होता है। इंगलैंड में स्थानीय सरकारें लोगों के प्रति उत्तरदायी हैं परन्तु फ्रांस में प्रशासनीय दक्षता (administrative efficiency) के नाम पर उत्तरदायित्व और सार्वजनिक इच्छा (public will) का बलिदान कर दिया गया है।[4] अमरीका में

---

1. "New arrangement makes it possible for Central Governments to withhold the entire grant-in-aid, or a portion of it, if there is dissatisfaction with certain branches of local administration. Today there are at least half a dozen national agencies which exercise supervisory jurisdiction over the affairs of English cities, namely the ministry of health, the home office, the board of education, the ministry of transport, the board of trade and the ministary of agriculture."—*Munro.*

2. "In no case, it should be pointed out, is the work of local administration directly undertaken by the national authorities in England. They merely advise, inspect, regulate, give approval or withhold approval."—*Munro.*

3. "Legislative decentralisation and administrative centralisation in which large powers of legislation are given to local bodies, but the Central Government administers these laws through its own officials. This system prevails in France."—*Gilchrist.*

4. "It may be said that while Great Britain starts from the points on circumference, but enlists the Centre to inspect and partly control the points, France starts from the Centre but enlists the points of circumference to aid the activity of the Centre."—*Barker.*

स्थानीय सरकारों की शक्तियाँ प्रायः राज्यों के संविधान द्वारा निश्चित कर दी जाती हैं और फिर उनके मामलों में राज्य की सरकारें बिल्कुल दखल नहीं दे सकतीं। उदाहरणार्थ, अमरीका में कुछ सीमा तक स्थानीय सरकारों को (बिना राज्य की सरकारों की मंजूरी के) कर्जा लेने की आज्ञा है परन्तु इंगलैंड में कर्जा लेने के लिए स्थानीय सरकारों को केन्द्रीय सरकार की मंजूरी लेनी पड़ती है। भारत में भी ब्रिटिश प्रणाली काफी हद तक अपनाई गई है। डिविज़नल कमिश्नर तथा जिला अध्यक्ष (Deputy Commissioner) को स्थानीय सरकारों के ऊपर निगरानी की शक्ति प्राप्त है। बहुत से मामलों में स्थानीय सरकारों को उनकी स्वीकृति लेनी पड़ती है। प्रान्तीय सरकार की तरफ से आडीटर आकर स्थानीय सरकारों के हिसाब की जाँच-पड़ताल करते हैं। अन्त में हम कह सकते हैं कि केन्द्रीय सरकार को अनुभव के कारण अधिक ज्ञान होता है और इसके पास अधिक योग्य आदमी होते हैं, इसलिए इसका नियन्त्रण स्थानीय सरकार पर अवश्य कुछ न कुछ होना चाहिए।[1] यदि केन्द्रीय सरकार का स्थानीय मामलों में आवश्यकता से अधिक दखल होगा तो इससे प्रशासनीय दक्षता को बड़ी हानि पहुँचेगी और राष्ट्रीय उन्नति में बहुत बाधा उपस्थित होगी।

स्थानीय संस्थाओं के लाभ
(Advantages of Local Institutions or Governments)

(१) **प्रशासनीय दक्षता उत्पन्न हो जाती है** (Makes Administration Efficient)—इससे सब से पहला लाभ यह है कि प्रशासनीय दक्षता (administrative efficiency) उत्पन्न होती है। केन्द्रीय सरकार स्थानीय मामलों को ठीक तरह नहीं सुलझा सकती। केन्द्रीय अधिकारियों को स्थानीय मामलों का इतना ज्ञान नहीं होता जितना स्थानीय लोगों को या उनके प्रतिनिधियों को। केन्द्रीय सरकार की स्थानीय मामलों में कोई दिलचस्पी नहीं होती। इसलिए स्थानीय समस्याएँ स्थानीय प्रतिनिधियों द्वारा अच्छी तरह सुलझाई जा सकती हैं।[2]

(२) **केन्द्रीय सरकार का बोझ हलका हो जाता है** (Division of Governmental Functions Lightens the Burden of Central Government)—दूसरे, केन्द्रीय सरकार के पास सारे देश के हित-सम्बन्धी अनेक विषय होते हैं, जैसे प्रतिरक्षा (defence), वैदेशिक नीति, यातायात (communications) और नोट तथा मुद्रा इत्यादि। यदि केन्द्रीय सरकार गाँवों और नगरों की सफाई, रोशनी और नालियाँ भी देखने लगे तो इसका भार बहुत बढ़ जायगा और यह उन कार्यों को ठीक प्रकार

1. There must be some control exercised by the Central Government over the local bodies, as "the Central Government has greater enlightenment derived from greater general knowledge, wider experience and more highly trained intellects."—*Sidgewick.*

2. "An administration which is not local is unresponsive to local opinion. It is thus "bound, in the nature of things, to miss shades and expression of thought and sentiment the perception of which is in real degree urgent to the success of administration."—*Laski.*

से कर भी नहीं सकेगी। अतः स्थानीय सरकारों को ऐसे मामले सौंपने से केन्द्रीय सरकार का बोझ हलका हो जाता है और इसको अपना ध्यान छोटी-छोटी बातों में नहीं लगाना पड़ता।

(३) **इसकी स्थापना से बचत रहती है** (It Leads to Economy)—स्थानीय सरकार की स्थापना से खर्चे में काफी बचत रहती है क्योंकि जनता के प्रतिनिधि प्रायः बिना वेतन के (स्थानीय) प्रशासन-सम्बन्धी कार्य करते हैं। यदि केन्द्रीय सरकार इन कार्यों को करे, तो उसे अनेक विभाग खोलने पड़ेंगे और बहुत से कर्मचारी रखने पड़ेंगे इसलिए अब यह काम काफी बचत से हो जाता है। जनता के प्रतिनिधि हर एक काम को बचत से करने की कोशिश करते हैं क्योंकि सब रुपया-पैसा स्थानीय जनता की जेबों में से आता है। स्थानीय प्रतिनिधि जानते हैं कि यदि उन्होंने लोगों पर अधिक टैक्स लगाये या रुपये का अपव्यय किया तो वे सर्वप्रियता खो बैठेंगे। इसलिए वे द्रव्य का बहुत उचित प्रयोग करते हैं।

(४) **इससे स्थानीय कार्यों में लोगों की रुचि उत्पन्न हो जाती है** (It Creates Interest in Local Affairs)—स्थानीय संस्थाओं के कार्यों के कारण एक स्थान के लोगों में वहाँ की समस्याओं के प्रति रुचि उत्पन्न हो जाती है। इसके साथ-साथ नागरिकों में उत्तरदायित्व की भावना भी उत्पन्न होती है। स्थानीय कार्यों से जनता का रोज सम्बन्ध पड़ता है। अतः वे उनको अपने प्रतिनिधियों से मिलकर हल करने का प्रयत्न करते हैं।

(५) **इससे दैनिक आवश्यकताएँ अधिक अच्छी तरह पूरी हो जाती हैं** (It Better Satisfies the Daily Needs and Necessities)—इसका यह भी बड़ा भारी लाभ है कि लोगों को शुद्ध दूध, घी, खाद्यान्न, पीने का पानी, सस्ती बिजली, साफ सड़कें और गलियाँ, अच्छी नालियाँ, अच्छे विद्यालय, पुस्तकालय और वाचनालय (reading rooms), अजायबघर तथा सुन्दर उद्यान आसानी से मिल जाते हैं।

(६) **ये लोकतन्त्र के प्रशिक्षण** (Training) **के लिए प्राथमिक पाठशालाएँ हैं** (It is the Best School for Democracy)—भावी राज्य-शास्त्रियों (statesmen), राजनीतिज्ञों (politicians) और लोक-नेताओं को नागरिक शिक्षा देने के लिए ये बहुत महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ हैं। इनके बिना लोकतन्त्र सफल नहीं हो सकता। ये लोगों में सेवा और उत्तरदायित्व तथा राजनैतिक जाग्रति उत्पन्न करती हैं। स्थानीय संस्थाओं के कार्यों के कारण साधारण मनुष्यों में स्थानीय मामलों में अभिरुचि बनी रहती है। चुनाव में उम्मीदवारों तथा मतदाताओं को बड़ी भारी ट्रेनिंग मिलती है। निर्वाचन में मतदाताओं को राजनैतिक तथा सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के बारे में बड़ी भारी जानकारी प्राप्त होती है और उनकी राजनैतिक निद्रा भंग होती है। उनमें एक प्रकार का नया उत्साह और उमंगें पैदा होती हैं। वे अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों के बारे में सचेत हो जाते हैं। इसी प्रकार जनता के प्रतिनिधियों को जो स्थानीय सरकारों में जाकर काम करते हैं, एक प्रकार का बड़ा भारी राजनैतिक प्रशिक्षण प्राप्त होता है। स्थानीय प्रतिनिधियों को जो अनुभव वहाँ प्राप्त होता है वह राज्य की व्यवस्थापिका और संसद् (parliament) के लिए भी लाभदायक

सिद्ध होता है क्योंकि शिक्षा तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ (स्थानीय सरकारों के अतिरिक्त) राज्य की सरकारों तथा केन्द्रीय सरकार को भी सुलझानी पड़ती हैं। पण्डित नेहरू, स्वर्गीय श्री मावलंकर और सरदार वल्लभभाई पटेल इत्यादि महान् नेताओं ने पहले-पहल इन स्थानीय संस्थाओं में ही राजनैतिक शिक्षा प्राप्त की थी। ब्राइस ने कहा है, "जिसने ग्रामों के मामलों में अपनी सार्वजनिक भावना को विकसित किया है तथा जो उन मामलों में सक्रिय एवं सच्चा है, उसने एक महान् देश के नागरिक के कर्त्तव्य का प्राथमिक पाठ सीख लिया है।" इससे नागरिकों में स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम भी उत्पन्न होता है। नागरिकों को इन संस्थाओं के द्वारा शासन-कला का ज्ञान भी हो जाता है। डी टाकविल का कहना है कि "नागरिकों की स्थानीय संस्थाओं में स्वतन्त्र राष्ट्रों की शक्ति निहित है। जिस प्रकार विज्ञान के लिए प्राथमिक शिक्षा आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार स्वाधीनता के लिए नागरिकों की सभाएँ आवश्यक हैं। एक राष्ट्र स्वतन्त्र सरकार का संगठन तो कर सकता है परन्तु स्थानीय स्वशासन की भावना के बिना उनमें नागरिक स्वतन्त्रता की भावना उत्पन्न नहीं हो सकती।"[1]

भारत में स्थानीय स्वशासन[2]

भारत में प्राचीन काल से ही पंचायतें थीं और उनका ग्राम्य जीवन में बहुत महत्त्व था। वैदिक, बौद्ध, मौर्य और गुप्त काल में इनका वर्णन इतिहास में मिलता है। मुस्लिम काल में भी ये संस्थाएँ काफी हद तक ज्यों की त्यों बनी रहीं परन्तु ब्रिटिश काल में इन संस्थाओं को बड़ा भारी धक्का पहुँचा। लार्ड मेयो और लार्ड रिपन ने इन संस्थाओं को पुनर्जीवित किया। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पश्चात् भारतीय सरकार ने इस बारे में बहुत अधिक कार्य किया। पंजाब और उत्तर प्रदेश में गाँव हुकूमत में बहुत प्रयोग (experiments) किए गए। पंजाब में १९५३ ईस्वी में नया ग्राम पंचायत अधिनियम पास किया गया। आजकल पंजाब में ग्राम पंचायतें, जिला बोर्ड और नगरपालिकाएँ महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। पंजाब में एक ग्राम पंचायत में पाँच से लेकर नौ तक सदस्य हैं। चुनाव तीन वर्ष के लिए होता है और प्रत्येक २१ वर्ष के नर-नारी को राय देने का अधिकार होता है। पंचों को सरपंच चुनने का अधिकार रहता है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में ३० से लेकर ५३ तक सदस्य रहते हैं। नगर-पालिका और जिला बोर्डों का चुनाव भी पंचायतों की भाँति ही होता है। भारत में यद्यपि इन संस्थाओं ने महत्त्वपूर्ण प्रगति दिखाई है तथापि उनकी उन्नति बहुत सन्तोष-जनक नहीं कही जा सकती। उनके मार्ग में अनेक बाधाएँ हैं। उनके पास रुपया कम है। पर्याप्त मात्रा में धन न होने के कारण वे अपने कर्त्तव्य पूर्णरूप से पालन नहीं

1. "These local assemblies of citizens constitute the strength of free nations. Town meetings are to liberty what primary schools are to science; they bring it within the people's reach ; they teach men how to use and how to enjoy it. A nation may establish a system of free government but without the spirit of municipal institutions it cannot have the spirit of liberty."—*De-Tocqueville.*

2. *N. B.* Detailed account of Indian local institutions will appear in the 2nd Book.

कर सकतीं। दूसरे, उनके मामलों में डिप्टी कमिश्नर या अन्य सरकारी अधिकारियों का बहुत हस्तक्षेप रहता है। तीसरे, ये देशी मस्तिष्क की उपज न थीं, उनका मूल विदेशी था। प्रान्तीय सरकार ने उन्हें लोगों पर थोप रखा है, वे स्वयं विकसित नहीं हुईं। साम्प्रदायिक घृणा, देहात के झगड़े और जात-पाँत की प्रथा तथा निरक्षरता ने भी इनकी सफलता में रुकावट पैदा की है। आशा है, ये बाधाएँ शनैः शनैः दूर हो जायेंगी और इन संस्थाओं के द्वारा लोकतन्त्र का भविष्य उज्ज्वल होगा (इन संस्थाओं के कार्य पहले लिखे जा चुके हैं)।

सदस्यों और इन संस्थाओं के प्रधानों में क्या गुण होने चाहिएँ ?

इनमें निम्नलिखित गुण होने चाहिएँ—

(१) योग्यता और अनुभव, (२) निष्पक्षता, (३) निर्लोभ और अच्छी आर्थिक स्थिति (४) अवकाश, त्याग तथा सेवा भाव, और (५) साम्प्रदायिकता, प्रान्तीयता और स्वार्थ की भावनाओं का न होना।

Questions

1. What do you understand by local self-government ? What are the chief functions of local self-governing bodies ?
(*Raj. Uni.* 1955)

2. Explain the value of local self-governing bodies in the administration of democratic India. What are the functions which in your opinion, should be assigned to them ? (*Delhi H. S.* 1952)

3. Explain the necessity and value of local bodies in India. Should their existing powers be increased or curtailed ? Give reasons for your answer. (*Delhi H. S.* 1954)

4. Local institutions are the foundations of democracy. Discuss this statement and bring about clearly the importance of local institutions in building up a healthy civic life in India.
(*Ajmer Board* 1950)

प्रश्न

१. किन धाराओं पर और किस सीमा तक आप स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं पर राज्य-सरकार का नियन्त्रण ठीक समझते हैं ? (यू० पी० १९४५)

२. स्वराज्य के लिए स्थानीय स्वशासन संस्थाओं का होना पहली आवश्यक शर्त है ? इस कथन की विवेचना कीजिए। (सागर विश्व० १९५१)

३. आधुनिक राज्य में स्वायत्त शासन के महत्त्व को भारतवर्ष का खास हवाला देते हुए समझाइये। (यू० पी० १९३७, १९४६, १९४९)

४. स्थानीय संस्थाएँ लोकतन्त्र की नींव हैं, इस कथन का विवेचन करो और भारत में स्वस्थ नागरिक जीवन की पुष्टि के लिए स्थानीय संस्थाओं की महत्ता स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करो।
(यू० पी० १९५३)

५. यदि तुम्हें म्युनिसिपल कमेटी के प्रधान का चुनाव करना हो तो तुम कौनसे गुण इन व्यक्तियों में तलाश करोगे ?

इक्कीसवाँ अध्याय

राष्ट्रीयता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता
(Nationality and Internationalism)

"यह मेरा है, वह तेरा है, ऐसा छोटे विचार के लोग गिनते हैं, जो उदार-चरित पुरुष हैं, वे तो सारी वसुधा को एक कुटुम्ब समझते हैं।"[1]—पंचतन्त्र

राष्ट्रीयता की परिभाषा (Definition of Nationality)—बहुत से व्यक्ति 'राज्य' तथा 'राष्ट्र' और 'राष्ट्र' तथा 'राष्ट्रीयता' शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में कर देते हैं परन्तु वास्तव में यह अशुद्ध प्रयोग है। राजनीति शास्त्र में इन शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ लिये जाते हैं। 'राज्य' शब्द का अर्थ पहले समझाया जा चुका है। राज्य के केवल चार मुख्य तत्त्व हैं—जनसंख्या, क्षेत्रफल (area) या प्रदेश (territory), सरकार (government) और संप्रभुता (sovereignty)। अंग्रेजी शब्द 'नेशन' (nation) लैटिन भाषा के शब्द 'नेशियो' से निकला है। 'नेशियो' (nation) शब्द से जन्म या जाति का भाव लिया जाता है। राष्ट्रीयता की परिभाषा ठीक तरह नहीं की जा सकती। यह तो एक आत्मिक शक्ति है जो लोगों में एक संगठन तथा एकात्मीयता (feeling of oneness) की भावना उत्पन्न करती है। गार्नर के शब्दों में राष्ट्र की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है—"राष्ट्र सांस्कृतिक रूप से संगठित एक जन-समुदाय है जिसे अपने आध्यात्मिक जीवन की एकता और अभिव्यक्ति का ज्ञान है और जो उसे बनाये रखना चाहता है। जो बन्धन एक जन को राष्ट्र बना देते हैं, वे न जातीय हैं और न प्रजातीय वरन् वे मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक ही है"।[2] गिलक्राइस्ट लिखता है कि 'राष्ट्रीयता एक आध्यात्मिक भावना है। यह उन लोगों में उत्पन्न होती है जो एक ही प्रजाति (race) से सम्बन्धित हैं तथा एक ही प्रदेश में रहते हैं, और जिनकी भाषा, धर्म, इतिहास, परम्पराएँ, हित, राजनैतिक समुदाय तथा राजनैतिक आदर्श समान हैं।'[3] बर्गेस के मतानुसार, "राष्ट्र एक निश्चित भूभाग में बसे हुए उस मनुष्य-समूह को कहते हैं जिसकी एकता का आधार सांस्कृतिक

---

१. अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम् —पंचतन्त्र॥

2. "A Nation", according to Dr. Garner, "is a culturally homogeneous social group which is at once conscious and tenacious of its unity of psychic life and expression."

3. "Nationality is a spiritual sentiment or principle arising among a number of people usually of the same race, resident on the same territory, sharing a common language, the same religion, similiar history and traditions, common interests, with common political associations, and common ideals of political unity."—*Gilchrist.*

समानता है।"[1] लार्ड ब्राइस का विचार है कि "राष्ट्रीयता ऐसे लोगों को कहते हैं जो भाषा, साहित्य, विचार, रीति-रिवाज और परम्पराओं जैसे विशेष बन्धनों से इस प्रकार बँधे हुए हैं कि वे उसी प्रकार के बन्धनों से बँधे हुए अन्य लोगों से भिन्न अपना एक सम्बद्ध संगठन (coherent unity) अनुभव करते हैं।[2] लास्की कहता है कि जिन लोगों में राष्ट्रीयता की भावनाएँ जाग्रत होती हैं, वे अपनी समानता पहचानते हैं और दूसरों से अपने आपको पृथक् बतलाते हैं। उनकी सामाजिक विरासत (heritage) विशेष रूप से उनकी अपनी बन जाती है जिस तरह एक मनुष्य अपने मकान को अपने रूप में रंग देता है। उनका दूसरों से काफी अलग साहित्य तथा कला का प्रादुर्भाव होता है। इसलिए इंगलैंड शेक्सपियर और डिकन्स को जन्म दे सकता था; इसी प्रकार हम मानते हैं कि वॉल्टायर और काण्ट में ऐसे गुण हैं जिसके कारण फ्रांस और जर्मनी के लोग उन्हें अपने-अपने राष्ट्रवाद के प्रतीक मानते हैं।[3] इसी प्रकार मिस्टर रेम्ज़ म्योर कहते हैं कि राष्ट्र मनुष्यों का एक ऐसा समूह है जो कि अनेक सांस्कृतिक बन्धनों से इस प्रकार संगठित है कि उनके सदस्यों को इसके पृथक् होने पर दुःख की अनुभूति होती है।

राज्य, राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता में भेद (Difference between State, Nation and Nationality)—राज्य, राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता में बहुत भेद है। राष्ट्र तब बनता है जब एक राष्ट्रीयता अपने आपको संगठित कर लेती है और पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेती है।[4] इसी प्रकार मिस्टर ब्राइस कहते हैं कि एक राष्ट्रीयता (nationality) जो राजनैतिक रूप से संगठित हो चुकी है और जो कि स्वतन्त्र है या स्वतन्त्र होने की इच्छुक है राष्ट्र कहलाती है। इसलिए गिलक्राइस्ट कहता है कि राज्य और राष्ट्रीयता के योग से राष्ट्र बनता है (nation = state + nationality)। स्काटलैंड (Scotland) के लोग एक राष्ट्रीयता (nationality) हैं परन्तु वे राष्ट्र नहीं हैं क्यों कि उनके पास अपना कोई अलग स्वाधीन देश नहीं है। सन् १९४८ से पूर्व यहूदियों के पास अपना अलग स्वाधीन देश कोई नहीं था, अतः वे राष्ट्रीयता थे परन्तु अब उन्होंने अपनी इज़राइल नामक स्टेट क़ायम कर ली है, इसलिए अब वे राष्ट्र कहलाते हैं। सन् १९१८ से पूर्व आस्ट्रिया-हंगरी एक स्वाधीन राज्य था परन्तु इसमें राष्ट्रीयता की

---

1. "Nation is a population of an ethnic unity inhabiting a territory of a geographic unity."—*Burgess.*

2. "A nationality is a population held together by certain ties, as for example, language and literature, ideas, customs and traditions, in such a ways as to feel itself a coherent unity distinct from other populations held together by like ties of their own."—*Bryce.*

3. "They recognise their likeness and emphasise their difference from other men. Their social heritage becomes distinctively their own, as a man lends his own peculiar character to his house. They come to have an art, a literature, recognizably distinct from that of other nations. So England could have produced Shakespeare and Dickens; so we admit that there are qualities in Voltaire and Kant from which they typify the nationalism of France and Germeny."—*Laski.*

4. Hayes says, "A nationality by acquiring unity and sovereign independence becomes a nation."

भावनाओं का अस्तित्व (existence) नहीं था, इसलिए यह राष्ट्र न होकर स्टेट कहलाती थी। मिस्टर गिलक्राइस्ट का विचार है कि राष्ट्रीयता के लिए पहले बताये हुए तमाम तत्त्वों की आवश्यकता नहीं है। किसी भी राष्ट्र में कुछ तत्त्व मिलकर राष्ट्रीयता का निर्माण करते हैं।

राष्ट्रीयता के मुख्य तत्त्व

(१) **भौगोलिक एकता** (Geographical Unity)—राष्ट्रीय भावनाओं की उत्पत्ति के लिए यह आवश्यक है कि लोग एक ही स्थान पर बसें। इसके बिना राष्ट्रीय भावनाओं का उदय सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ, खानाबदोश जातियाँ (nomadic tribes) अपना कोई घर नहीं बनाती हैं, अतः उनमें राष्ट्रीयता की भावनाओं का उदय बिल्कुल सम्भव नहीं है। भूमि से प्रेम के कारण देश-प्रेम उत्पन्न होता है और जब देश-प्रेम उत्पन्न न होगा तो राष्ट्रीयता का उद्भव कैसे सम्भव हो सकता है? हाँ, यह सम्भव है कि एक जाति जिसमें दृढ़ राष्ट्रीय भावनाओं का उदय हो चुका है, किसी कारणवश अपना देश पराधीन होने या छिन जाने के पश्चात् भी राष्ट्रीय भावनाओं को जाग्रत रख सके; उदाहरणार्थ, यहूदियों पर जब अरब के मुसलमानों ने विजय प्राप्त कर ली, तो उनको फिलस्तीन से निकाल दिया लेकिन उस समय यहूदियों में काफी राष्ट्रीय भावनाएँ जाग्रत हो चुकी थीं, अतः वे राष्ट्रीय भावनाएँ उनमें लुप्त नहीं हुईं और आज उन्होंने अपना पृथक् इज़राइल नामक राज्य क़ायम कर लिया है। पोलैंड के १७७२ और १७९५ में रूस, जर्मनी और आस्ट्रिया ने मिलकर टुकड़े कर लिये। अनेक पोलैंडवासी अपना देश छोड़कर भाग गए परन्तु उन्होंने अपनी राष्ट्रीय भावनाओं को खतम नहीं होने दिया। आज पोलैण्ड फिर एक स्वतन्त्र राष्ट्र क़ायम हो गया है।

(२) **प्रजाति की एकता** (Racial Unity)—बहुत से राष्ट्र प्रजातीय एकता को बहुत अधिक महत्त्व देते हैं। हिटलर जर्मनों को आर्यों का वंशज मानता था। इसलिए उसने जर्मन जाति को यहूदियों के विरुद्ध संगठित करने का महान् प्रयत्न किया। आधुनिक युग में प्रजातीय शुद्धता (racial purity) कहीं भी विद्यमान नहीं रह गई है। अंग्रेजों में केल्टस् (Celts), ट्यूटन और डेन प्रजातियों का खून मिश्रित है। स्विट्ज़रलैंड, अमरीका और कैनेडा में भी अनेकों प्रजातियाँ एक दूसरे से मिश्रित हो गयी हैं। प्रजातीय एकता ही राष्ट्र-निर्माण में निर्णायक तत्त्व (decisive factor) नहीं माना जा सकता। उदाहरणार्थ आस्ट्रेलिया और इंगलैंड में प्रजातीय एकता है परन्तु वे अब दो भिन्न-भिन्न राष्ट्र हैं। इस प्रकार जर्मन, अंग्रेज, डच, डैन्मार्क, नार्वे तथा स्वीडन के लोग प्रजातीय दृष्टि से एक हैं परन्तु वास्तविकता में भिन्न-भिन्न राष्ट्र हैं।

(३) **धर्म की एकता** (Community of Religion)—आजकल के युग में मज़हब का प्रभाव काफी कम हो गया है परन्तु प्राचीन काल में इसका प्रभाव बहुत अधिक रहा है। गिलक्राइस्ट का मत है कि जहाँ मज़हबों का बुनियादी भेदभाव प्रचलित होता है, वहाँ पर राष्ट्रीय संगठन मज़बूत और चिरस्थायी नहीं रह सकता जैसे ईसाई धर्म और इस्लाम, परन्तु जहाँ पर केवल मत-मतान्तरों का भेद है, वहाँ पर

राष्ट्रीयता का निर्माण (कुछ कठिनता से) हो जाता है, जैसे यूगोस्लाविया में सर्ब (Serbs) और क्रोट (Croats) जातियों का राष्ट्रीय संगठन किया गया।[1] परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि जहाँ धार्मिक मतभेद है, वहाँ कोई राजनैतिक या राष्ट्रीय संगठन उत्पन्न ही नहीं हो सकता। जर्मनी, इंगलैण्ड तथा अमरीका सबल राष्ट्र बन गए यद्यपि वहाँ पर रोमन कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेन्ट, दोनों मतों के अनुयायी हैं। रूस तथा चीन में भी अनेक मज़हब हैं परन्तु वहाँ पर एक सबल राष्ट्र का निर्माण हो गया है। दूसरी ओर भारत, आयरलैण्ड, टर्की तथा फिलस्तीन के ज्वलन्त उदाहरण हैं, जहाँ मज़हबी भेदभावों के कारण राष्ट्रीय संगठन में बड़ी भारी रुकावट पड़ी।

(४) **भाषा, संस्कृति तथा परम्परा की एकता** (Community of Language, Traditions and Culture)—प्रजाति तथा धर्म से अत्यन्त सम्बन्धित भाषा, संस्कृति तथा परम्पराओं की एकता है। भाषा का धार्मिक और प्रजातीय एकता से कम महत्त्व नहीं है। 'आर्य' शब्द भाषा का द्योतक है परन्तु यह प्रजाति (race) के लिए भी प्रयुक्त होता है। भाषा के लेखकों ने भाषा की एकता पर बहुत ज़ोर दिया है। उदाहरणार्थ, फिक्टे (Fichte) का मत है कि सामान्य भाषा राष्ट्र के सदस्यों में एकता का मुख्य बन्धन है (Fichte, for example, declared that nationality was the spiritual thing, a manifestation of the mind of God, its chief bond of union being language)। सामान्य भाषा (common language) के द्वारा ही किसी भी देश के भिन्न-भिन्न भागों के लोग एक दूसरे को समझ सकते हैं। सामान्य भाषा के कारण ही लोगों में महान् एकता का जन्म होता है। आधुनिक युग में बहुत से आन्दोलन भाषा के आधार पर चलते हैं। हमारे देश में पहले हिन्दी-उर्दू का प्रश्न विकट रहा है। राज्य पुनर्गठन आयोग (Reorganisation Commission) की रिपोर्ट के पश्चात् जो हमारे देश में भिन्न-भिन्न स्थानों पर दंगे और आन्दोलन हुए, वे इस बात के साक्षी हैं। अंग्रेजों ने भाषा के महत्त्व को भलीभाँति समझते हुए ही हमारे देश में अंग्रेज़ी को लोगों पर ज़बरदस्ती लागू किया। पोलैण्ड और बोहेमिया में भी पहले भाषा सम्बन्धी आन्दोलन चले।

भाषा को ही राष्ट्रीयता का एकमात्र आधार नहीं समझना चाहिए। यह इस बात से स्पष्ट है कि स्विटज़रलैण्ड में यद्यपि तीन भाषाएँ, इटैलियन, जर्मन और फ्रेंच हैं तथापि वहाँ राष्ट्रीयता के पुल का निर्माण किया गया है। संयुक्त राज्य अमरीका में यद्यपि सरकारी भाषा अंग्रेजी है तथापि उसकी अपनी अलग राष्ट्रीयता है।

(५) **सामान्य राजनैतिक आकांक्षाएँ** (Common Political Aspirations)—सामान्य राजनैतिक आकांक्षाएँ भी राष्ट्रीय भावनाओं को जाग्रत करने में बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य करती हैं; उदाहरणार्थ, जब भारत अंग्रेजों के अधीन था, तब भारत के निवासियों में अनेक प्रकार की विविधताएँ होते हुए भी राष्ट्रीय भावनाओं

1. "National union, other things being equal is not likely to be strong and lasting where there are fundamental differences in faith, as between Christianity and Mohammedanism. Nationality may develop in spite of the difference of sect."—*Gilchrist.*

का बहुत तेज़ी से जागरण हुआ क्योंकि सब की यह इच्छा थी कि विदेशी चंगुल से मातृभूमि को शीघ्र से शीघ्र स्वतन्त्र कराया जाए। अमरीका, मिस्र, आयरलैण्ड और इटली में भी पराधीनता के कारण राष्ट्रीय भावनाओं का बहुत ज़ोर से प्रसार हुआ क्योंकि इस समय प्रत्येक व्यक्ति की यह महत्त्वाकांक्षा होती है कि देश की पराधीनता की शृंखलाओं को तोड़कर माता को स्वाधीनता के सिंहासन पर आरूढ़ किया जावे।

(६) **सामान्य आर्थिक हित** (Common Economic Interests)—सामान्य आर्थिक हित भी राष्ट्रीय संगठन में बहुत सहायक सिद्ध होते हैं, जैसे ऐंग्लो-स्काटिश यूनियन (१७०७) परन्तु संसार का इतिहास ऐसे अधिक उदाहरण उपस्थित करता है जिससे यह सिद्ध होता है कि सामान्य आर्थिक हितों के होते हुए भी धार्मिक विषमता के कारण राष्ट्र टुकड़ों-टुकड़ों में बँट गए; उदाहरणार्थ, भारत में हिन्दू और मुसलमानों के समान हित थे तथापि १९४७ ईस्वी में भारत को दो भागों में बाँटना पड़ा। इसी प्रकार से बेल्जियम और हालैण्ड, दक्षिणी और उत्तरी आयरलैण्ड, तथा फिलस्तीन में यहूदी और अरब इकट्ठे न रह सके।

परिणाम—अतः हम कह सकते हैं कि किसी भी देश में सारे तत्त्व राष्ट्रीय निर्माण के लिए आवश्यक नहीं हैं और न ही सारे तत्त्व किसी देश में उपलब्ध हैं। थोड़े से तत्त्व मिल कर राष्ट्रीयता का निर्माण कर लेते हैं। किसी देश में किसी तत्त्व का अधिक महत्त्व है और किसी का कम। अतः सब तत्त्वों का अपना-अपना महत्त्व है। किसी तत्त्व का महत्त्व किसी देश की परिस्थिति पर निर्भर है।

क्या भारत एक राष्ट्र है ? (Is India a Nation ?)

पाश्चात्य लेखकों के मतानुसार भारत एक राष्ट्र न होकर उप-महाद्वीप है—मिस्टर चर्चिल, ब्रिकनहेड तथा स्ट्रेची आदि विदेशी लेखक इस बात के समर्थक हैं कि भारत कोई राष्ट्र नहीं है। उनके विचार में यह उप-महाद्वीप (sub-continent) है जहाँ यूरोप की भाँति अनेक प्रजातियाँ (races), भाषाएँ, धर्म और संस्कृतियाँ हैं। विदेशी लेखकों ने भिन्नताओं को बहुत अधिक महत्त्व दिया है और उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक एकता को बिल्कुल महत्त्व नहीं दिया है। अब यह देखना है कि क्या भारतीयों को सारे देश की एकता का ज्ञान था ? क्या उनमें राष्ट्रीय भाव जाग्रत थे, क्या उनमें देश-प्रेम था जो कि राष्ट्रीयता का मूल आधार है।

भारत में भौगोलिक एकता—यह पहले बताया जा चुका है कि राष्ट्रीयता एक आध्यात्मिक भावना है जो समान भाषा, भौगोलिक एकता, समान धर्म और सांस्कृतिक तथा प्रजातीय एकता से उत्पन्न होती है। भारतीयों को सदा ही अपनी मातृभूमि से प्रेम रहा है और इसकी भौगोलिक एकता का विचार उनके सामने सदैव उपस्थित रहा है। विष्णु पुराण में भारत की सीमाओं का वर्णन इस प्रकार मिलता है कि "जो समुद्र के उत्तर में है और हिमालय के दक्षिण में है, उसको भारत कहते हैं क्योंकि वहाँ राजा भरत की सन्तान रहती है। जो दक्षिण से उत्तर तक सहस्रों मीलों में फैला हुआ है और जिसकी पूर्वीय सीमाओं के अन्त में किरात रहते हैं तथा

पश्चिमी सीमाओं के अन्त में यवन रहते हैं।"[1] एक सनातनी विद्वान् को आपने स्नान करते हुए देखा होगा, वह कहता है कि मैं गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी के जल में (प्रतिदिन) स्नान करूँ।[2] इस से भारतीय एकता का स्पष्ट दिग्दर्शन होता है। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि हमारे देश में तीर्थ-स्थान भारत के सब कोनों में हैं। उत्तर में बद्रीनाथ तथा हरिद्वार, दक्षिण में रामेश्वरम्, पूर्व में जगन्नाथपुरी, पश्चिम में द्वारिका, तथा कश्मीर में अमरनाथ भारत की सांस्कृतिक एकता के द्योतक हैं। गंगा के तीर पर सहस्रों ऋषियों ने तप किए हैं, अतः इसके किनारे पर प्रयाग और काशी जैसे पुण्य-स्थान विद्यमान हैं जिन में भारत की चारों दिशाओं से यात्री अपनी प्रान्तीयता को भूलकर पवित्र भावनाओं से स्नान करने के लिए सदैव आते हैं।

भारत में भाषा की एकता—भौगोलिक एकता के अतिरिक्त प्राचीन भारत में भाषा की एकता भी रही है। स्वामी शंकराचार्य ने अपने भाषण अधिकतर संस्कृत में ही दिए और यदि लोग उनके भाषण समझने में असमर्थ रहते तो वे उनके मतानुयायी कैसे बन सकते थे। स्वामी शंकराचार्य ने भारत की सांस्कृतिक एकता का ज्ञान लोगों को भली भाँति कराने के लिए भारत के चार कोनों में चार मठ स्थापित किए। हिन्दूकाल में संस्कृत पढ़े-लिखे लोगों की सदैव भाषा रही है। अश्वघोष, भवभूति, कालिदास और बाण जैसे महाकवियों की कृतियाँ संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध हैं। यद्यपि अशोक महान् के समय कुछ संस्कृत का अध्ययन कम हो गया था तथापि यह लुप्त नहीं हुई और शुंग तथा गुप्त काल में यह राजसिंहासन पर विराजमान हुई। महाराजा हर्ष के समय भी संस्कृत ही अधिक प्रचलित थी। उसके दरबारी कवि बाण भट्ट ने अपनी रचनाएँ 'हर्ष-चरितम्' तथा 'कादम्बरी' संस्कृत में ही लिखीं। अंग्रेजी काल में लोगों का आपसी सम्बन्ध अंग्रेजी भाषा के द्वारा रखा गया। आजकल हिन्दी भारत की राष्ट्रीय भाषा घोषित कर दी गई है। श्री मेहरचन्द महाजन, भारत के भूतपूर्व न्यायाधिपति अपने लेख 'भारत को बलशाली एकात्मक सरकार की आवश्यकता' द्वारा प्रमाणित करते हैं कि भारत सांस्कृतिक और भाषा की दृष्टि से एक रहा है।[3]

---

१. उत्तरं यत् समुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयम् दक्षिणोत्तरात्।
पूर्वे किरता यस्यान्ते, पश्चिमे यवना स्थिताः॥ [विष्णु पुराण, II, ३]

२. गंगे यमुने चैव सरस्वती गोदावरि।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

3. "Culturally India has always been a united country, one common culture being traceable from the Himalayas to Kanya Kumari and from Kashmir to Bengal and Assam. Sanskrit has been the common heritage of all who live in Bharat..... It was the medium through which the learned exchanged their ideas and thounghts. The masses of people were brought into contact wish one another in places of pilgrimage on special religious occasions. There

भारत में धार्मिक सहिष्णुता—मुसलमानों के आक्रमण से पहले भारत में धार्मिक एकता पर्याप्त मात्र में थी। यद्यपि प्राचीन भारत में अनेक मतमतान्तर थे, तथापि वे मूल सिद्धान्तों में एक दूसरे से काफी मिलते-जुलते थे। बौद्ध मत और जैन मत भी वैदिक धर्म से अहिंसा, मोक्ष और पुनर्जन्म इत्यादि सिद्धान्तों के बारे में काफी मिलते थे। सब से प्रमुख बात थी धार्मिक सहिष्णुता (religious toleration)। यद्यपि अशोक और हर्ष बौद्ध धर्म के राजा थे परन्तु उन्होंने किसी अन्य मत के अनुयायियों को बौद्ध मत अपनाने के लिए बाध्य नहीं किया। इसी प्रकार शुंग और गुप्त वंश के राजाओं ने अपनी बौद्ध प्रजा को वैदिक धर्म अपनाने के लिए बाध्य नहीं किया। इतना ही नहीं बल्कि इन राजाओं ने दूसरे मत के अनुयायियों को उपाधियाँ, नौकरियाँ, जागीरें इत्यादि पुरस्कार के रूप में भी दीं। मुसलमानों के आक्रमण के कारण पहले-पहल धार्मिक विषमता उत्पन्न हुई क्योंकि कुछ शासकों ने अपना धर्म बलपूर्वक फैलाना चाहा परन्तु शनैः शनैः कबीर, रहीम, नानक, सम्राट् अकबर और सूफी तत्त्ववेत्ताओं के कारण धार्मिक सहिष्णुता का जन्म हुआ।

भारत में ज्वलन्त राष्ट्रीय भावनाएँ—अन्त में हम कह सकते हैं कि इन विविधताओं के होते हुए भी भारत एक राष्ट्र है। प्रश्न यह है कि धर्म और भाषा की भिन्नताएँ कहाँ नहीं पाई जातीं ? क्या इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी, रूस और चीन में ऐसी भिन्नताएँ नहीं हैं ? भारत में भी इन भिन्नताओं के होने से कोई नई बात उत्पन्न नहीं होती। सब से बड़ी बात राष्ट्रीयता के लिए राष्ट्रीय भावनाओं की उत्पत्ति और विकास है। यूरोपियन लेखक कहते हैं कि राष्ट्रवाद का जन्म यूरोप में नेपोलियन बोनापार्ट के समय से हुआ है। क्या हमारे देश के सम्बन्ध में भी यह धारणा ठीक है ? हम कह सकते हैं कि हमारे देश के सम्बन्ध में ऐसी धारणा बिल्कुल मिथ्या होगी। वैदिक काल से ही हमारे देश में राष्ट्रीयता का ज्ञान लोगों को चला आ रहा है जैसा कि यजुर्वेद के मंत्र के इस पद्यानुवाद से प्रकट होता है—

ब्रह्मन् ! सुराष्ट्र में हों, द्विज ब्रह्म तेजधारी।
क्षत्री महारथी हों, अरिदल विनाशकारी॥
होवें दुधारी गौवें, पशु अश्व आशुवाही।
आधार राष्ट्र की हो, नारी सुभग सदा ही॥
बलवान् सभ्य योधा, यजमान पुत्र होवें।
इच्छानुसार वर्षें, पर्जन्य ताप धोवें॥

---

is no spot of natural beauty in India which is not sacred or a place of pilgrimage irrespective of the region in which its people live. The great universities established in different parts of the country were another unifying factor on the cultural side. To all intents and purposes the habits and customs of people as well as their food and clothing were of a common pattern and common style. Therefore it can safely be assumed that culturally and linguistically India was really a united contry."

—*Justice Mahajan H. T. Feb. 11, 1956.*

फल फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी ।
हो योगक्षेम कारी, स्वाधीनता हमारी ।।[1] (यजु०, अ० २, मन्त्र २२)

इसी प्रकार ऋग्वेद में भी अनेक ऐसे मन्त्र आते हैं जिनसे लोगों की राष्ट्रीय भावनाओं का ज्ञान होता है, जैसे—

प्रेम से मिलकर चलो, बोलो सभी ज्ञानी बनो ।
पूर्वजों की भाँति तुम कर्तव्य के मानी बनो ।।२।।
हों विचार समान सब के, चित्त मन सब एक हों ।
ज्ञान देता हूँ बराबर भोग्य पा सब नेक हों ।।३।।
हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा ।
मन भरे हों प्रेम से जिस से बढ़े सुख सम्पदा ।।[2] (ऋग्वेद, अन्तिम सूक्त, ४)

रामायण काल में यह राष्ट्रीय भावना प्रौढ़ हो गई थी । जब रामचन्द्र जी लंका को विजय कर चुके और अयोध्या की ओर प्रस्थान करने लगे तो लक्ष्मण ने श्री राम से कहा कि आप लंका में क्यों नहीं राज करते जो धन-धान्य से परिपूर्ण है; अयोध्या में भरत राज करता है और सम्भव है वह आपको अपना राज न लौटाये । तब श्री रामचन्द्र जी ने कहा कि "हे लक्ष्मण ! यद्यपि लंका बिल्कुल सोने (स्वर्ण) की है तथापि यह मुझको अच्छी नहीं लगती क्योंकि जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़ कर हैं ।[3]

इन राष्ट्रीय भावनाओं के कारण ही भारतीयों ने यूनानी, हूण, शक, पठान, मुगल और अंग्रेज आक्रान्ताओं से लोहा लिया । यद्यपि कभी-कभी हम फूट के कारण विजित हुए तथापि अन्त में राष्ट्रीय भावनाओं की पुनः जाग्रति के कारण हम आक्रान्ताओं पर विजयी हुए । हमारा इतिहास इस बात का साक्षी है कि यह राष्ट्रीय ज्योति हमारे में सदा जगमगाती रही है ।

भारत में सांस्कृतिक एकता—मिस्टर स्मिथ भी भारतीय एकता का दिग्दर्शन

---

१. ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्म वर्चसी जायताम् आराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् ।
दोग्ध्रीधेनुर्वोढा ऽनड्वानाशु सप्ति पुरन्धी योषा जिष्णुरथेष्ठा । सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् ।
निकामे निकामे पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो न कल्पताम् ।।
(यजु०, अ० २, मन्त्र २२)

२. ओं संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।। ऋग्वेद, २ ।।
समानो मन्त्रः समिति समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ।।६।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति । ऋ० अ० ८ । प्र० ८ । व० ४६ । म० ४ ।।

३. सर्वस्वर्णमयी लंका न लक्ष्मण मे रोचते ।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।। रामायण ।।

कराते हैं। "उनके विचार में भारत सांस्कृतिक दृष्टि से एक है क्योंकि मुख्यतया इस देश में आर्यों की संख्या है। तमाम हिन्दू गौ और ब्राह्मण का मान करते हैं तथा वेदों को धार्मिक विषयों में प्रमाण मानते हैं। संस्कृत एक पुण्य भाषा गिनी जाति है। विष्णु और शिव की भारत के तमाम भागों में पूजा होती है। तमाम रामायण और महाभारत से प्रेम करते हैं। ये सांस्कृतिक बन्धन भिन्न जातियों, भाषाओं और रीति-रिवाजों वाले हिन्दुओं को एक संगठन के सूत्र में बाँधते हैं परन्तु इन सांस्कृतिक बन्धनों के अतिरिक्त ऐसे आर्थिक बन्धन भी हैं जो हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों और पारसियों को एक संगठन में पिरोते हैं और जो धार्मिक भेदभावों से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।"[1] सांस्कृतिक एकता के अतिरिक्त अब भारत ने राजनैतिक एकता भी प्राप्त कर ली है। हमारा देश स्वतन्त्र भी है। अतः हम अब राष्ट्र हैं।

साम्राज्यवाद (Imperialism)

जब एक राष्ट्र अपने हित और गौरव के लिए दूसरे देशों की स्वाधीनता का अपहरण करता है और उन देशों में अपना साम्राज्य अथवा उपनिवेश (colonies) स्थापित कर लेता है तो हम उस प्रणाली को साम्राज्यवाद कहते हैं। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य देशों ने विज्ञान में बहुत उन्नति की और उन्होंने अफ्रीका तथा एशिया के कई भाग अपने अधिकार में कर लिये। इंगलैंड ने भारत, माल्टा, साइप्रेस, मिश्र, सूडान, फिलस्तीन, अदन, हांगकांग, सिंगापुर, लंका और बर्मा इत्यादि देशों पर अपना अधिकार शनैः शनैः कर लिया। इसके अतिरिक्त इंगलैंड ने कैनेडा, दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड इत्यादि देशों पर भी अपना अधिकार जमा लिया। फ्राँस ने अल्जीरिया, ट्यूनिस, हिन्दचीनी, और भारत में पांडीचेरी इत्यादि पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इटली ने अबिसीनिया पर अपना अधिकार जमा लिया और जर्मनी ने पश्चिमी अफ्रीका तथा चीन के कुछ

1. Mr. Smith says, "In spite of the diversities due to many reasons, there are bonds of fundamental unity in India. The essential fundamental unity rests upon the fact that the diverse peoples of India have developed a peculiar type of culture and civilisation, utterly different from any other type in the world; that civilization may be summed up in the term of Hinduism. India is primarily a Hindu country, the land of Brahamans who have succeeded by means of peaceful penetration and not by sword, in carrying their ideas into every corner of India. Caste, the characteristic Brahaman institution, utterly unknown in Burma, Tibet and other border lands, dominates the whole of Hindu India. Nearly all Hindus revere Brahamans, venerate the cow and recognise the authority of the Vedas. Sanskrit is everywhere recognised as a sacred language. The great gods—Vishnu and Siva are more or less worshipped in all parts of India. All alike share in the affection of Ramayana and Mahabharata."

"Besides these bonds of cultural unity which bind the Hindus of diverse races, languages, manners and customs by distinguishing them from the rest of mankind there are other bonds which knit different religious communities—Hindus, Muslims, Christians, and Parsies. These bonds are common political and economic interests, which are of vital importance for their very existence, and therefore rise higher than religious or racial differences."

भागों पर अधिकार कर लिया। रूस ने सारे मध्य एशिया पर अपना अधिकार कर लिया और जापान ने चीन तथा मंचूरिया पर अपना अधिकार जमाना शुरू किया। इस साम्राज्यवाद की प्यास का परिणाम यह हुआ कि इन देशों में दो बहुत भयानक विश्व-युद्ध हुए जिनके कारण साम्राज्यवाद का अन्त तो नहीं हुआ परन्तु इसको बहुत असह्य धक्का लगा। अंग्रेज़ों के पंजे से भारत, पाकिस्तान, फिलस्तीन, बर्मा, लंका, मिश्र, सूडान, अरब और ईराक निकल गए और ये देश पूर्णतया स्वाधीन हो गए। अमरीका ने भी फिलिपाइन को स्वतन्त्रता दे दी है परन्तु उसका आर्थिक साम्राज्यवाद अभी संसार में चल रहा है। जापान, इटली और जर्मनी को भी दूसरे महायुद्ध में परास्त होना पड़ा। फलतः उनके हाथ से सारे उपनिवेश निकल गए। डच साम्राज्यवाद का इन्डोनेशिया में अन्त हो चुका है। मलाया स्वतन्त्रता की ओर बढ़ चुका है और साइप्रस में स्वतन्त्रता के आन्दोलन चल रहे हैं। आशा है, शीघ्र ही साम्राज्यवाद का अन्त हो जायगा। यह याद रखना चाहिए कि सच्चा राष्ट्रवाद साम्राज्यवाद का जन्मदाता नहीं है बल्कि उग्र राष्ट्रवाद (aggressive nationalism) ही साम्राज्यवाद का वास्तविक जन्मदाता है।

अन्तर्राष्ट्रीयता (Internationalism)

अन्तर्राष्ट्रीयता का तात्पर्य यह है कि सब राज्य स्वाधीन हों और उनमें आपस में प्रेम और मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहें। इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और समानता का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। अन्तर्राष्ट्रीयता की उन्नति के अनेक कारण हैं, जैसे वैज्ञानिक उन्नति, आर्थिक अन्तर्राष्ट्रीय निर्भरता, और विश्व-नागरिकता तथा विश्व सरकार के विचार। संसार ने अभी दो महायुद्ध देखे हैं, अतः लोग अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर बढ़ना चाहते हैं और इसके मार्ग में जो बाधाएँ हैं उनको दूर करना चाहते हैं। अन्तर्राष्ट्रीयता के मार्ग में बड़ी भारी रुकावटें बलवान् देशों के स्वार्थ, राज्य-सत्ता (state-sovereignty), उग्र राष्ट्रवाद (aggressive nationalism), उपनिवेशवाद (colonialism), साम्राज्यवाद (imperialism), पूंजीवाद (capitalism) तथा प्रजातीय भेद-भाव (racial differences) हैं। सच्ची अन्तर्राष्ट्रीयता का तभी उदय हो सकता है जब कि इन रुकावटों को दूर किया जाय।

राष्ट्र संघ (League of Nations)

राष्ट्र संघ (League of Nations) का जन्म सन् १९२० में हुआ। राष्ट्र संघ का मुख्य उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा शान्ति को फैलाना और युद्धों को रोकना था। राष्ट्र संघ की स्थापना से पूर्व भी डान्टे और काण्ट जैसे महान् लेखकों का ऐसा ही स्वप्न था। ज़ार अलेग्जेन्डर प्रथम ने अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापित करने के लिए 'हॉली अलायन्स' (Holy Alliance) या 'पवित्र संमैत्री' यूरोप में बनाने की कोशिश की परन्तु इसको अधिक सफलता न मिली। इसके पश्चात् मेटरनिच ने यूरोपियन कन्सर्ट संगठित की। १८६० में 'लीग आफ पीस' या अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति संस्था (League of Peace) यूरोप में कायम की गई। इसके पश्चात् यूरोप में हेग कान्फ्रेंसें हुईं। इन सब अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का उद्देश्य सदा के लिए युद्धों को रोकना

और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापित करना था परन्तु इनको कई कारणों से विशेष सफलता न मिली। १६१४ ईस्वी में प्रथम महायुद्ध आरम्भ हो गया और इसके समाप्त होने के पश्चात् सन् १६२० में लीग ऑफ नेशन्स या राष्ट्र संघ की स्थापना की गई। इसकी स्थापना का विचार अमरीका के महान् राष्ट्रपति विल्सन के दिमाग़ की उपज था।

राष्ट्र संघ के उद्देश्य (Objects of the League of Nations)

राष्ट्र संघ के निम्नलिखित उद्देश्य थे—

(१) युद्धों को रोकना और अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का शान्तिपूर्वक फैसला करना, (२) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ाना।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राष्ट्र संघ ने हथियारों को अधिक से अधिक कम करने के लिए कई सम्मेलन किये परन्तु वहाँ इसको अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई। राष्ट्र संघ ने ब्रायन्ड-कैलग पेक्ट और लोकार्नो सन्धि जैसे महान् प्रयत्नों से भी राष्ट्रों में मेल-मिलाप पैदा करना चाहा और युद्धों को अवैध (illegal) घोषित करने का भरसक प्रयत्न किया। लीग ने अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का शान्तिपूर्वक फैसला कराने के लिए हेग में स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (Permanent Court of International Justice) स्थापित किया। लीग ने सामूहिक सुरक्षा (collective security) का सिद्धान्त भी स्वीकार कर लिया। इसका अर्थ यह था कि यदि कोई राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण करे, तो लीग को यह अधिकार था कि पहले राष्ट्र को आक्रान्ता (aggressor) घोषित कर सके और उसके विरुद्ध आर्थिक अथवा सैनिक कार्रवाई कर सके। यह याद रखना आवश्यक है कि राष्ट्र संघ एक अप्रभु (non-sovereign) संस्था थी और राजसत्ता (sovereignty) केवल राज्यों के ही पास थी। इसका यह अर्थ है कि लीग राष्ट्रों को किसी अपने फैसले पर अमल करने के लिए बाधित नहीं कर सकती थी।

राष्ट्र संघ के अंग (Organs of the League of Nations)

राष्ट्र संघ (League of Nations) के मुख्य अंग जनरल असेम्बली, कौंसिल (council), सचिवालय, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-कार्यालय थे।

राष्ट्र संघ की सदस्यता (Membership of the League of Nations)—जब असेम्बली पहली बार मिली, तो इसके सदस्यों की संख्या ४२ थी। सन् १६३२ तक इसकी संख्या ५५ हो गई थी। अमरीका इसमें शामिल नहीं हुआ क्योंकि सीनेट (Senate) ने वारसाई की सन्धि (Versailles Treaty, 1919) को अस्वीकार कर दिया था। सोवियत संघ (U.S.S.R) इसका १६३४ तक सदस्य नहीं बन सका। कोई नया देश राष्ट्र संघ का सदस्य उस समय बन सकता था जब उसके आवेदन-पत्र को राष्ट्र संघ के दो-तिहाई सदस्य स्वीकार कर लें। किसी राज्य को सदस्यता छोड़ने के लिए दो साल का नोटिस देना पड़ता था।

जनरल असेम्बली (General Assembly)—असेम्बली सब अंगों में से अधिक शक्तिशाली थी। इसमें सदस्य-राज्यों (member-states), अधिराज्यों (Dominions)

और भारत के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। प्रत्येक राज्य जो इसका सदस्य होता था, तीन व्यक्तियों का एक शिष्ट-मण्डल (delegation) बना कर भेज सकता था परन्तु इसको केवल एक वोट का अधिकार था। किसी भी प्रस्ताव को पास करने के लिए सर्वसम्मति (unanimity) की आवश्यकता थी। इसका अधिवेशन एक वर्ष में एक बार होता था और आवश्यकता पड़ने पर विशेष अधिवेशन (extra-ordinary sessions) भी बुलाए जा सकते थे। असेम्बली बजट पास करती थी और दूसरे अंगों (organs) तथा समितियों (committees) के ऊपर निगरानी रखती थी। यह ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े (international disputes) सुन सकती थी जो इसके क्षेत्राधिकार (jurisdiction) में थे और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के बारे में अपनी सिफारिशें दे सकती थी। असेम्बली अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों और कौन्सिल के अस्थायी सदस्यों का भी चुनाव करती थी। कौन्सिल के पहले चार स्थायी (permanent) सदस्य थे, इंगलैंड, फ्रांस, जापान और इटली और १० अस्थायी (non-permanent) सदस्य थे—बाद में स्थायी सदस्यों की संख्या पाँच कर दी गई और जर्मनी को स्थायी सदस्य मान लिया गया और अस्थायी सदस्यों की संख्या ९ कर दी गई। अस्थायी सदस्य लीग की जनरल असेम्बली द्वारा चुने जाते थे। कौन्सिल की बैठकें साल में प्रायः तीन या चार बार होती थीं परन्तु विशेष बैठकें किसी समय भी बुलाई जा सकती थीं।

कौन्सिल (Council)—कौन्सिल लीग की कार्यकारिणी थी और इसलिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण अंग थी। यह सदस्य-राज्यों (member-states) के आपसी झगड़ों की जाँच-पड़ताल करती थी। जब किसी राज्य पर दूसरे का आक्रमण हो जाता था तो यह विशेष रूप से उसे सुलझाने का प्रयत्न करती थी, और जो राष्ट्र लीग के संश्राव (covenant) या नियमों का उल्लंघन करता था, उसे यह आक्रान्ता घोषित कर सकती थी और उसके विरुद्ध आर्थिक तथा सैनिक कार्रवाई कर सकती थी। यह अन्तर्राष्ट्रीय आयोगों और कार्यपीठों (international commissions and bureaus) को नियुक्त करती थी तथा उन पर निगरानी रखती थी। यह वार्षिक बजट को तैयार करती थी और आदेशात्मक शक्तियों (mandatory powers) की रिपोर्ट सुनती थी। इसमें भी प्रस्ताव पास होने के लिए सर्वसम्मति की आवश्यकता थी।

सचिवालय (Secretariat)—लीग का एक सचिवालय (secretariat) भी था। लीग के दफ्तर जनेवा में थे। तमाम देशों से क्लार्क इसमें भरती किये जाते थे और वे महासचिव (secretary-general) के अधीन रहते थे। सेक्रेटरी-जनरल या महासचिव कौन्सिल द्वारा नियुक्त किया जाता था परन्तु उसके लिए असेम्बली का समर्थन लेना पड़ता था। प्रत्येक राष्ट्र को सचिवालय के काम को चलाने के लिए कुछ खर्चा देना पड़ता था। यह असेम्बली और कौन्सिल की कार्रवाइयों के रिकार्ड रखता था।

स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय
(Permanent Court of International Justice)

स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना सन् १९२१ में हुई। यह पहले लीग का अंग था परन्तु अब यह संयुक्त राष्ट्र संघ का अंग है। इसके दफ्तर हेग में हैं, अतः वहाँ ही इसकी बैठकें होती हैं। इसमें १५ न्यायाधीश हैं जो आजकल संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) की असेम्बली तथा सुरक्षा परिषद् (Security Council) द्वारा नौ साल के लिए चुने जाते हैं। कोर्ट को अपना सभापति भी ३ वर्ष के लिए चुनने का अधिकार है। यह न्यायालय ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों के सुझाव देता है, जो इसके पास लाए जायँ। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों, सन्धियों तथा अन्तर्राष्ट्रीय कर्त्तव्यों के उल्लंघन होने पर यदि किसी राष्ट्र द्वारा कोई मामला इसके सामने पेश किया जाय, तो यह अपनी राय दे सकता है। तमाम फैसले बहुमत से होते हैं। बैठक के लिए ९ न्यायाधीशों की उपस्थिति आवश्यक है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ
(International Labour Organisation)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ की स्थापना भी राष्ट्र संघ के साथ-साथ हुई। पहले यह राष्ट्र संघ का बहुत महत्त्वपूर्ण अंग था, आजकल यह संयुक्त राष्ट्र संघ का उतना ही महत्त्वपूर्ण अंग है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ का उद्देश्य बेरोज़गारी से बचाना, काम के घंटे नियमित करना, काफी वेतन मज़दूरों को दिलवाना, मज़दूरों की बीमारी और चोट से रक्षा करना; बच्चों, नवयुवकों और औरतों की औद्योगिक जीवन (industrial life) में रक्षा करना, बुढ़ापे के लिए पेन्शन का प्रबन्ध करना, व्यावसायिक और यान्त्रिक शिक्षा को संगठित करना (organisation of technical and vocational education) और मज़दूरों को संघ (associations) बनाने की स्वतन्त्रता प्रदान करना है। इस श्रम संघ (I.L.O.) की एक व्यवस्थापिका है जिसे कान्फ्रेंस कहते हैं। प्रत्येक राज्य चार प्रतिनिधि भेज सकता है। इन चार प्रतिनिधियों में दो सरकार के प्रतिनिधि, एक मज़दूरों का प्रतिनिधि और एक पूंजीपतियों का प्रतिनिधि होता है। सारे निर्णय दो-तिहाई बहुमत से किये जाते हैं। इसके फैसलों से सदस्य-राज्य (member-states) बँधे हुए नहीं होते। इसके अतिरिक्त इसकी एक कार्यकारिणी होती है जिसको गवर्निंग बॉडी (Governing Body) कहते हैं। इसमें कुल ३२ व्यक्ति होते हैं, उनमें १६ व्यक्ति सरकारों के, आठ मज़दूरों के और आठ पूंजीपतियों के प्रतिनिधि होते हैं। यह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सचिवालय (International Labour Office) पर भी निगरानी रखती है। इसकी मेहनत का फल यह हुआ है कि मज़दूरों की हालत प्रत्येक क्षेत्र में सुधर गई है।

राष्ट्र संघ के कारनामे
(Achievements of the League of Nations)

संसार के झगड़ों को सुलझाने के लिए लीग ने बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया। १९२५ में इसने ईराक और टर्की के बीच में पैदा हुए झगड़े का निपटारा करा दिया।

१९२५ में इसने बल्गेरिया और ग्रीस के मध्य में सीमान्त विषयक (concerning boundary) झगड़े का फैसला किया। बल्गेरिया को ग्रीस की सीमा से फौजें बुलाने के लिए आदेश दिया गया और उसको कुछ हर्जाना भी देना पड़ा। राष्ट्र संघ ने पन्द्रह वर्ष तक सार घाटी (Saar Valley) का बड़ा सन्तोषजनक प्रबन्ध किया। इसने मानवता की भलाई के लिए भी बहुत कार्य किया। स्त्री-व्यापार की रोक-थाम तथा शरणार्थियों के बच्चों की रक्षा के लिए भी प्रबन्ध किये गए। राष्ट्र संघ ने लोकार्नो की सन्धियों द्वारा युद्ध को अवैध घोषित करने का प्रयत्न किया। इसके अलावा इसने बहुत से निःशस्त्रीकरण सम्मेलन (Disarmament Conferences) भी किये परन्तु इसको बहुत अधिक सफलता न मिली। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सचिवालय ने भी मज़दूरों के लाभ के लिए स्तुत्य कार्य किये।

राष्ट्र संघ की असफलता के कारण (Causes of its Failure)—इसकी असफलता के निम्नलिखित कारण हैं:—

(१) लीग को निःशस्त्रीकरण में कोई सफलता न मिली। (२) लीग की अशक्तता (weakness) साफ ज़ाहिर हो गई जब १९३१ में जापान ने मंचूरिया पर कब्ज़ा कर लिया। १९३५ ईस्वी में इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण करके इसको विजित कर लिया। १९३६ में स्पेन में गृह-युद्ध (Civil War) हुआ और यह कुछ न कर सकी। १९३७ ईस्वी में चीन पर जापान का हमला हो गया। इसके पश्चात् हिटलर ने १९३७ में आस्ट्रिया पर विजय प्राप्त कर ली और १९३८ में चैकोस्लोवेकिया तथा १९३९ में पोलैंड पर कब्ज़ा कर लिया। अतः जापान, जर्मनी तथा इटली ने इसको बहुत धक्का पहुँचाया। (३) लीग के फैसले राष्ट्रों को अनिवार्य रूप में मानने नहीं पड़ते थे। (४) प्रभुता सदस्य-राज्यों के पास था और यह एक अप्रभु समुदाय था। (५) इसके पास कोई अन्तर्राष्ट्रीय सेना नहीं थी। (६) इसके अतिरिक्त इसके विधान में यह भी दोष था कि जनरल असेम्बली तथा कौन्सिल के प्रस्तावों के लिए सर्व-सम्मति की आवश्यकता थी। (७) सदस्य-राज्य चाहे जब लीग की सदस्यता छोड़ सकते थे। दूसरे महायुद्ध के पश्चात् इसे समाप्त कर दिया गया।

संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations Organisation)

दूसरे महायुद्ध की ज्वालाओं ने कई देशों को अपना ग्रास बना लिया। इसमें जो तबाही व बर्बादी हुई उससे तमाम संसार के सभ्य पुरुषों को यह विदित हो गया कि तीसरे महायुद्ध से मानव-सभ्यता का बिल्कुल अन्त हो जाएगा। इसलिए वे संसार को इस तबाही से बचाने के लिए युक्तियाँ सोचने लगे। सन् १९४१ में अमरीका के प्रधान रूज़वेल्ट ने ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की आवश्यकता का अनुभव किया जो चार स्वतन्त्रताएँ अर्थात् भाषण और विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता, पूजा की स्वतन्त्रता, आर्थिक स्वतन्त्रता और भय से स्वतन्त्रता (freedom from fear) लोगों को दिला सके। इसके पश्चात् इन्हीं सिद्धान्तों को पुनः एटलान्टिक चार्टर (१९४१), संयुक्त राष्ट्रों की घोषणा (जनवरी, १९४२), मॉस्को घोषणा (अक्तूबर १९४३), डम्बार्टन ओक्स कान्फ्रेन्स (१९४४) तथा सान्फ्रान्सिस्को इत्यादि में

दोहराया गया। पचास राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने सान्फ्रान्सिस्को में संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकार-पत्र (Charter) पर हस्ताक्षर किए (सान्फ्रान्सिस्को में यह कान्फ्रेन्स २६ अप्रैल से लेकर जून २५, १९४५ तक हुई)। २४ अक्तूबर १९४५ तक तमाम राष्ट्रों की संसदों ने इन हस्ताक्षरों का समर्थन कर दिया।

संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य (Objects of the U.N.O.)—संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों का वर्णन इसके अधिकार-पत्र में मिलता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(१) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा स्थापित करना।

(२) राष्ट्रों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करन।

(३) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना।

(४) उपर्युक्त उद्देश्यों को पूरा करने के लिए विभिन्न राष्ट्रों के प्रयत्नों तथा कार्यों में समन्वय (harmony) स्थापित करने के लिए एक केन्द्रालय के रूप में कार्य करना (to afford a centre for harmonising the actions of the nations in the achievement of these common ends).

संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता (Membership of U. N. O.)—कोई भी शान्तिप्रिय देश इसका सदस्य हो सकता है। आजकल ६० से अधिक राष्ट्र इसके सदस्य हैं। अभी लाल चीन (Communist China), जापान, जर्मनी, आऊटर मंगोलिया (Outer Mongolia) इत्यादि देश इसके सदस्य नहीं हैं। आशा है कि इन र'ष्ट्रों को भी शीघ्र ही सदस्यता मिल जाएगी। किसी राष्ट्र का लीग में प्रवेश, निलम्बन और निष्कासन जनरल असेम्बली सुरक्षा परिषद् की सिफारिशों पर दो-तिहाई बहुमत से करती है। (The admission, suspension or expulsion of members is decided by the general assembly on the recommendation of the Security Council by a two-third majority of votes).

संयुक्त राष्ट्र संघ के अंग (Organs of the U. N. O.)

(१) **जनरल असेम्बली** (General Assembly)—यह संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रमुख मननात्मक सभा (great deliberative body) है। इसमें सभी सदस्य-राष्ट्रों (member-states) के प्रतिनिधि भाग ले सकते हैं। प्रत्येक राष्ट्र इसमें ५ सदस्यों का प्रतिनिधिमण्डल बनाकर भेज सकता है परन्तु प्रत्येक राष्ट्र का एक वोट होता है। महत्त्वपूर्ण प्रश्न, जैसे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा (international peace and security), दूसरे अंगों के सदस्यों का चुनाव (the election of members to other organs), राष्ट्रों का प्रवेश, निलम्बन और निष्कासन (the admission, suspension or expulsion of member-states), ट्रस्टीशिप (trusteeship) सम्बन्धी मामले और बजट दो-तिहाई बहुमत से पास किए जाते हैं; शेष प्रश्न केवल बहुमत (simple majority) से पास किए जाते हैं। साधारणतया असेम्बली का अधिवेशन साल में एक बार होता है परन्तु विशेष अधिवेशन (special sessions) सुरक्षा परिषद् (Security Council) के बहुमत की प्रार्थना पर बुलाए

जा सकते हैं। यह बात याद रखने योग्य है कि जनरल असेम्बली के फैसले मानना राष्ट्रों के लिए अनिवार्य नहीं है (The general assembly cannot make obligatory decisions)।

जनरल असेम्बली दो-तिहाई बहुमत से सुरक्षा परिषद् के ६ अस्थायी सदस्य दो वर्ष के लिए चुनती है (The assembly elects by a two-thirds majority of those present and voting, six non-permanent members of the security council for two years)। यह आर्थिक और सामाजिक परिषद् (Social and Economic Council) और प्रन्यास सम्बन्धी परिषद् (Trusteeship Council) के सदस्य भी चुनती है। जनरल असेम्बली और सुरक्षा परिषद् दोनों मिल कर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों को चुनती हैं। यह मुख्य सचिव (Secretary General) की भी नियुक्ति करती है। जनरल असेम्बली प्रत्येक अधिवेशन के लिए अपना सभापति या प्रधान चुनती है। इसके अतिरिक्त इसके अन्य कार्य भी हैं, जैसे,

(क) किसी झगड़े से यदि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति भंग होने का भय हो तो यह उसके लिए कुछ सुझाव सुरक्षा परिषद् के सासने रख सकती है।

(ख) शैक्षणिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक और स्वास्थ्य सम्बन्धी क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का बढ़ाना।

(ग) प्रत्येक राष्ट्र के लोगों को किसी जाति, धर्म, लिंग और भाषा के भेद-भाव के बिना मानवीय अधिकारों और मौलिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति करने में सहायता देना।

(घ) तमाम लोगों की आर्थिक चिन्तन से मुक्ति कराना और उनका आर्थिक स्तर ऊँचा करना।

(ङ) ऐसे उपनिवेश (colonies) जो निक्षेपाधिकारी शक्तियों (trustee powers) के पास हैं उनके मामले सुनना।

(च) अन्तर्राष्ट्रीय कानून का संहिताबन्धन (codification) करना।

(२) **सुरक्षा परिषद्** (Security Council)—सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्र संघ की मुख्य कार्यकारिणी है और इसका स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें दो प्रकार के सदस्य हैं। पाँच बड़ी शक्तियाँ [अमरीका, ब्रिटेन, सोवियत संघ, फ्रांस और राष्ट्रवादी चीन (Nationalist China)] इसके स्थायी (permanent) सदस्य हैं। अभी साम्यवादी चीन (Communist China) को प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त इसके ६ अस्थायी (non-permanent) सदस्य हैं। जैसा पहले बताया जा चुका है, वे दो वर्ष के लिए जनरल असेम्बली द्वारा दो-तिहाई बहुमत से चुने जाते हैं। एक सदस्य जो एक बार दो वर्ष तक सदस्य रह चुका हो, एकदम पुनः सदस्यता नहीं प्राप्त कर सकता। भारत भी दो वर्ष तक इसका सदस्य रह चुका है। प्रत्येक सदस्य की एक राय होती है। महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के फैसलों के लिए ग्यारह में से सात रायों का पक्ष में होना अत्यन्त आवश्यक है परन्तु इन ७ वोटों में पाँच बड़ी शक्तियों (फ्रांस, इंगलैंड, चीन (राष्ट्रवादी), अमरीका और रूस के वोटों का होना आवश्यक है। इसका अर्थ है कि उन्हें किसी भी महत्त्वपूर्ण फैसले के बारे में

अभिषेध (veto) की शक्ति प्राप्त है अर्थात् उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई भी फैसला नहीं किया जा सकता। इसकी बैठकें प्रायः महीने में दो बार होती हैं और आवश्यकता पड़ने पर अधिक बैठकें भी बुलाई जा सकती हैं, क्योंकि इसके सदस्य-राज्यों के स्थायी प्रतिनिधि (permanent representatives of the members of Security Council) प्रायः सं० रा० संघ के मुख्य स्थान (Headquarter) पर ही रहते हैं। इसका सभापति प्रति मास सदस्य-राष्ट्रों के प्रथम अक्षर के क्रमानुसार (according to alphabetical order) बदलता रहता है। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापित करने के लिए मुख्य उत्तरदायित्व सुरक्षा परिषद् का है। इसका मुख्य कर्त्तव्य है कि ऐसे झगड़ों और परिस्थितियों की छानबीन करे जिनसे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति भंग होने का खतरा हो। अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का फैसला करने के लिए यह चार तरीके अपनाती है। पहले, यह ऐसे राष्ट्रों को जिनमें कोई झगड़ा हो, आपस में बातचीत और पत्र-व्यवहार करके फैसला करने के लिए प्रेरित करती है। यदि यह तरीका असफल रहे तो यह पंचों, मध्यस्थों और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयों द्वारा फैसले (arbitration, mediation and judicial settlement) करदाने के लिए राष्ट्रों के सम्मुख सुझाव रख सकती है। तीसरे, यह आक्रान्ताओं के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध (economic sanctions) भी लगा सकती है। चौथे, यह अक्रान्ताओं के विरुद्ध सैनिक कार्रवाई (military action) भी कर सकती है। इसके लिए यह राष्ट्रों से कुछ सेना देने के लिए प्रार्थना कर सकती है।

(३) यूनेस्को (U.N.E.S.C.O)—यूनेस्को को ४ नवम्बर, १९४६ में स्थापित किया गया ताकि संसार के राष्ट्रों में शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति (culture) के क्षेत्रों में सहयोग रहे। इसका मुख्य कार्यालय पैरिस में है। इसके तीन अंग हैं; साधारण समिति, कार्यकारिणी, सचिवालय। साधारण समिति में संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य-राज्यों के प्रतिनिधि होते हैं। ये वर्ष में एक बजट पास करने तथा वार्षिक कार्य के निरीक्षण के लिए इकट्ठे हो जाते हैं। कार्य समिति में अठारह सदस्य होते हैं जो साधारण समिति द्वारा तीन वर्ष के लिए निर्वाचित होते हैं। इनमें से एक-तिहाई प्रतिवर्ष रिटायर हो जाते हैं और उनके स्थान पर नये आ जाते हैं। साधारण समिति की नीति को कार्यकारिणी सचिवालय की सहायता से कार्य-रूप में परिणत करती है। सचिवालय का प्रमुख डाइरेक्टर-जनरल होता है। साधारण समिति उसको कार्यकारिणी के परामर्श से नियुक्त करती है। यूनेस्को के उद्देश्य निम्न शब्दों में हैं—"इस संगठन का उद्देश्य राष्ट्रों के मध्य शिक्षा, विज्ञान और सांस्कृतिक प्रयत्नों द्वारा सहयोग बढ़ाकर शान्ति तथा सुरक्षा को बल देना है। इसका मुख्य सांस्कृतिक उद्देश्य न्याय के लिए सार्वभौमिक आदर, कानून का पालन करवाने तथा मानव-अधिकारों और मनुष्य की उन मूलभूत स्वतन्त्रताओं का, जिनका आश्वासन संसार के सभी लोगों को बिना जाति, लिंग, भाषा और धर्म के भेद-भाव के संघ के अधिकार-पत्र में दिया गया है, प्रसार करना है।" यूनेस्को संसार के भिन्न राज्यों के सहयोग द्वारा शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति की उन्नति के लिए योजनाएँ और कार्यक्रम तैयार करती है। यह साधारण ज्ञान की वृद्धि के लिए तथा वैज्ञानिक परीक्षाओं के लिए पुस्तकालय

तथा विज्ञानशालाएँ खुलवाती है।[1]

(४) **आर्थिक और सामाजिक परिषद्** (The Economic and Social Council)—आर्थिक और सामाजिक परिषद् युद्धों के आर्थिक और सामाजिक कारणों को हटाना चाहती है। आर्थिक और सामाजिक परिषद् में १८ सदस्य होते हैं जो जनरल असेम्बली द्वारा ९ वर्ष के लिए चुने जाते हैं, उनमें से ⅓ प्रत्येक तीन वर्ष के पश्चात् रिटायर हो जाते हैं। इसके लक्ष्य हैं; (क) मनुष्य मात्र के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना, जीवन-निर्वाह तथा सामाजिक व आर्थिक उन्नति के साधनों को जुटाना; (ख) अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी तथा अन्य समस्याओं को सुलझाना और अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक सहयोग बढ़ाना; (ग) सभी व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों और स्वतन्त्रताओं के लिए बिना किसी प्रजाति, लिंग, भाषा और धर्म-सम्बन्धी भेद-भाव के विश्व भर में सम्मान प्राप्त करना।

(५) **ट्रस्टीशिप कौन्सिल** (Trusteeship Council)—राष्ट्र संघ के मेन्डेट कमीशन (Mandate Commission) के स्थान पर अब ट्रस्टीशिप कौन्सिल कायम की गई है। इसकी ज़िम्मेवारी इन इलाकों के सम्बन्ध में है; (क) जिनका प्रशासन पहले राष्ट्र संघ चलाता था; (ख) ऐसे प्रदेश जो केन्द्रीय शक्तियों (Axis Powers) अर्थात् जापान, इटली, और जर्मनी से लिये गए हैं; (ग) यदि कोई राज्य स्वेच्छा से (voluntarily) इसको शासन करने के लिए कोई इलाका दे दे। इसका उद्देश्य इन पिछड़े हुए देशों में शैक्षणिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक उन्नति कराना और उनको स्वशासन सिखाना है ताकि वे पूर्ण रूप से प्रभुत्व-सम्पन्न राज्य बन सकें। इसके सदस्य सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य (permanent members of the security council) और कुछ जनरल असेम्बली द्वारा चुने हुए सदस्य होते हैं। इसके साल में दो बार अधिवेशन होते हैं। प्रत्येक अधिवेशन के लिए प्रधान चुना जाता है। हर एक सदस्य-राज्य का एक वोट होता है। तमाम फैसले बहुमत से किए जाते हैं।

(६) **विश्व स्वास्थ्य संघ** (World Health Organisation)—इसकी बुनियाद ७ अप्रैल, १९४८ को पड़ी और ६७ राष्ट्र इसके सदस्य हैं। इसके मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं—

(क) अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों को एक क्रम में लाना (to co-ordinate the international health work); (ख) संक्रामक रोगों का नाश करना; (ग) आहार तथा पालन-पोषण में उन्नति करना; (घ) मकान, सफाई, आमोद-प्रमोद और आर्थिक परिस्थितियों को ठीक रूप से सुधारना; (ङ) भोजन, और औषधियाँ बनाने और जीवविद्या सम्बन्धी वस्तुओं (biological products) के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर को उन्नत करना।

(७) **सचिवालय** (Secretariat)—संयुक्त राष्ट्र संघ का एक सचिवालय भी है। यह संयुक्त राष्ट्र सम्बन्धी सभी प्रशासनीय कार्यों को चलाता है। इसका

---

१. यूनेस्को 'नागरिक शास्त्र के सिद्धान्त' प्रो० वी० डी० महाजन से उद्धृत।

सर्वोच्च अधिकारी सेक्रेटरी-जनरल होता है जो कि सुरक्षा परिषद् की सिफारिशों पर जनरल असेम्बली द्वारा नियुक्त किया जाता है। सेक्रेटरी जनरल इसके लिए, स्टाफ या कर्मचारी केवल योग्यता और ईमानदारी के आधार पर तमाम देशों से भरती करता है। यह सचिवालय आठ भागों में विभक्त किया गया है। महासचिव (secretary-general) संयुक्त राष्ट्र-संघ के कार्यों के सम्बन्ध में वार्षिक रिपोर्ट जनरल असेम्बली को देता है। वह सुरक्षा परिषद् या सदस्य-राज्यों के बहुमत की प्रार्थना पर जनरल असेम्बली के विशेष अधिवेशन बुलाता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की राष्ट्र संघ से तुलना
(U.N.O. Compared With the League of Nations)

बहुत से मनुष्य यह प्रश्न पूछते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ का क्या वही भाग्य नहीं होगा जो लीग आफ नेशन्स का था ? क्या इसका राष्ट्र संघ की अपेक्षा कुछ उज्ज्वल भविष्य है ? अमरीका के भूतपूर्व प्रधान मिस्टर हूवर ने एक बार कहा कि संयुक्त राष्ट्र संघ को खत्म कर दिया जाय परन्तु बहुत से व्यक्ति अभी इसमें पूरा विश्वास करते हैं और इसके सम्बन्ध में काफी आशावादी हैं। उनका विचार है कि लीग के काफी दोष इसमें दूर कर दिये गए हैं; उदाहरणार्थ, पहले अमरीका लीग का सदस्य नहीं था और रूस १९३४ तक इसका सदस्य नहीं बन सका था परन्तु अब दोनों ही शुरू से इसके सदस्य हैं। दोनों अमरीका तथा सोवियत संघ आजकल राष्ट्र संघ में बहुत महत्त्वपूर्ण भाग ले रहे हैं। दूसरे, लीग आफ नेशन्स को असेम्बली में तमाम फैसलों के लिए सर्वसम्मति की आवश्यकता थी परन्तु संयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल असेम्बली में तमाम फैसले दो बहुमत से किए जा सकते हैं। तीसरे, सुरक्षा परिषद् को लीग को कौन्सिल की अपेक्षा अधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं। सुरक्षा परिषद् के फैसले सदस्य-राज्यों को मानने पड़ते हैं। सुरक्षा परिषद् आक्रान्ता के विरुद्ध आर्थिक, कूटनीतिक और सैनिक कार्रवाई कर सकती है। यदि इसको सेना की आवश्यकता हो तो यह सदस्य-राज्यों से सेना और अन्य सुविधाएँ, जैसे रास्ता इत्यादि देने के लिए प्रार्थना कर सकती है और प्रत्येक सदस्य-राष्ट्र का परम कर्त्तव्य है कि वह इसके आदेशों का पालन करे।[1] चौथे, सुरक्षा परिषद् का सदैव अधिवेशन चलता रहता है। प्रत्येक सदस्य-राज्य के प्रतिनिधि संयुक्त राष्ट्र के मुख्य कार्यालय में रहते हैं। इसलिए सुरक्षा परिषद् किसी अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े (जिसमें शान्ति भंग होने का भय हो) पर तुरन्त विचार कर सकती है। पाँचवें, लीग की कौन्सिल में सब महत्त्वपूर्ण निर्णयों के लिए सर्वसम्मति की आवश्यकता थी परन्तु सुरक्षा परिषद् में ग्यारह में से सात वोट

1. See also : "The decisions of the Security Council are not made to remain a mere threat. It may call upon the member-states to break off diplomatic relations with an offending state or declare a blockade or use economic sanctions against it. Should the Council consider that these measures are inadequate, it may take all military action required by the situation. Every member of the United Nations is pledged by Article 43 to supply on its call with the armed forces, the assistance and the facilities it requires, including rights of passage."—*Dr. A. C. Kapoor.* "Principles of Pol. Science." p. 212.

फैसले के लिए काफी हैं परन्तु इन सातों वोटों में पाँच स्थायी सदस्यों के वोट अवश्य सम्मिलित होने चाहिएँ (क्योंकि प्रत्येक स्थायी सदस्य को वीटो [veto] का अधिकार प्राप्त है)। छठे, लीग का सदस्य-राज्य इसके फैसले के विरुद्ध तीन महीने के पश्चात् युद्ध-घोषणा कर सकता था परन्तु संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों को यह अधिकार नहीं दिया गया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ में दोष (Defects in the U.N.O.)

इसमें निम्नलिखित दोष हैं :—

(१) यह कहा जाता है कि केवल विजेताओं ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए इस भारी संगठन को बनाया है। विजेताओं का विजितों (conquered) के प्रति वही रवैया है जो प्रथम महायुद्ध के पश्चात् था। छोटे-छोटे राज्य यह सन्देह करते हैं कि वे बड़े-बड़े राज्यों के हाथ में केवल कठपुतली हैं। जर्मनी और जापान को इसमें प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त हुआ है। आशा है, उन्हें शीघ्र ही इसमें प्रतिनिधित्व मिल जायगा।

(२) यह एक अन्तर्राष्ट्रीय राज्य नहीं है। प्रभुता (sovereignty) अभी सदस्य-राज्यों के पास ही है। यह अपने फैसले सदस्य-राज्यों के ऊपर ज़बर्दस्ती लागू नहीं कर सकती।

(३) सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्यों को अभिषेध (veto) की शक्ति प्राप्त है। इसका अर्थ यह है कि कोई भी सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य अपने वीटो (veto) के प्रयोग द्वारा इसके फैसलों को निरर्थक बना सकता है। इसलिए कोई भी फैसला बड़े राष्ट्रों के विरुद्ध नहीं किया जा सकता।

(४) संयुक्त राष्ट्र संघ में दो गुट (blocs) बने हुए हैं, एक ऐंग्लो-अमरीकन है और दूसरा रूसी। अतः वहाँ किसी समस्या पर भी निष्पक्ष विचार नहीं होता। संयुक्त राष्ट्र संघ मे अमरीका का आधिपत्य है, इसलिए अभी तक साम्यवादी चीन (Communist China) को इसमें प्रतिनिधित्व नहीं मिल सका है।

(५) इसमें आबादी को प्रतिनिधित्व का आधार नहीं माना जाता। भारत या रूस को भी जनरल असेम्बली में एक वोट प्राप्त है और दक्षिणी अमरीका के छोटे राज्य को भी एक। इससे सिद्ध होता है कि भारत के ३६ करोड़ लोगों की भी उतनी ही आवाज है जितनी दक्षिणी अमरीका के किसी थोड़ी आबादी वाले राज्य की।

निष्कर्ष—संयुक्त राष्ट्र संघ के गुणों और दोषों पर दृष्टिपात करके हम कह सकते हैं कि यद्यपि यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि संयुक्त राष्ट्र संघ संसार में से युद्धों को हमेशा के लिए समाप्त कर देगा परन्तु इसके प्रयत्नों से शान्ति चिरस्थायी अवश्य हो जाएगी। इसने फिलस्तीन और काश्मीर में युद्ध बन्द करवाया। इसके अतिरिक्त इसने बर्लिन समस्या (Berlin blockade) को भली भाँति सुलझा लिया जिससे रूस और ऐंग्लो-अमरीकन ब्लाक में तनाव कम हो गया। इसने इण्डोनेशिया, हिन्द-चीन और कोरिया की समस्या को भी बहुत अच्छी तरह सुलझाया है। यह विजयी राष्ट्रों में हथियार बनाने की दौड़ (armament race) को भी कम

करने की कोशिश कर रही है। इसकी अन्य एजेन्सियाँ जैसे विश्व स्वास्थ्य संघ (W.H.O.), यूनेस्को (U.N.E.S.C.O.), ट्रस्टीशिप कौन्सिल (Trusteeship Council) और आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् (Economic and Social Council) भी बहुत अच्छा कार्य कर रही हैं। आशा है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ संसार के लोगों को युद्धों की ज्वालाओं से बचाकर उनका जीवन सुखी तथा शान्तिमय बना सकेगा।

Questions

1. What were the objects of the League of Nations? How far was it successful in achieving these objects for which it was established.

2. Distinguish between nation and nationality. Is India a nation?

3. Compare the U.N.O. with the League of Nations. Do you think it has better chances of success?

4. Write short notes on the following :—

(*a*) League of Nations; (*b*) International Labour Organisation; (*c*) U.N.E.S.C.O.; (*d*) Security Council; and (*e*) W.H.O.

प्रश्न

१. संयुक्त राष्ट्रसंघ और लीग ऑफ नेशन्स की तुलना कीजिए। क्या संयुक्त राष्ट्रसंघ की सफलता की अधिक आशा है?

२. राष्ट्र और राष्ट्रीयता में क्या भेद है? क्या भारत राष्ट्र है?

३. निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखो :—

(क) सुरक्षा परिषद्; (ख) विश्व स्वास्थ्य संघ (W.H.O.); (ग) यूनेस्को (U.N.E.S.C.O.); और (घ) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ (I.L.O.)

शब्द-कोष

EQUIVALENTS FOR TERMS USED IN THE CONSTITUTION OF INDIA

Account—लेखा
Accused—अभियुक्त
Act (n)—अधिनियम
Ad hoc—तदर्थ
Adjourn—(१) स्थगन
(२) स्थगित करना
Administration—प्रशासन
Administrative-General—महाप्रशासक
Admiralty—नौकाधिकरण
Admissible—ग्राह्य
Adoption—दत्तक, ग्रहण
Adulteration—अपमिश्रण
Adult Suffrage—वयस्क मताधिकार
Advance—अग्रिम धन
Advice—मन्त्रणा
Advisory Council—मन्त्रणा परिषद
Advocate—अधिवक्ता
Advocate-General—महाधिवक्ता
Agency—अभिकरण
Agent—अभिकर्त्ता
Air force—विमान बल
Airways—वायु पथ
Alien—अन्यदेशीय
Allegiance—निष्ठा
Allowances—भत्ता
Amendment—संशोधन
Annual Financial Statement—
वार्षिक-वित्त विवरण
Application—आवेदन-पत्र, प्रयुक्ति
Appointment—नियुक्ति
Appropriation Bill—विनियोग विधेयक
Approve—अनुमोदन करना
Approval—अनुमोदन
Arbitration—मध्यस्थ-निर्णय
Arbitrator—मध्यस्थ
Assembly—सभा
Assent—अनुमति
Attorney-General—महान्यायवादी
Audit—लेखा-परीक्षा
Auditor-General—महालेखा-परीक्षक
Authorise—प्राधिकृत
Authority—प्राधिकारी
Autonomous—स्वायत्त
Autonomy—स्वायत्तता
Award—पंचाट
Bicameral—दोघरा, द्विगृही
Bill—विधेयक
Boundary—सीमा
Broadcasting—प्रसारण
Bye-election—उपनिर्वाचन
Bye law—उपविधि
Candidates—अभ्यर्थी
Capacity—सामर्थ्य
Capital—मूलधन
Casting Vote—निर्णायक मत
Census—जनगणना
Certificate—प्रमाण-पत्र
Chairman—सभापति
Chief Commissioner—मुख्य आयुक्त
Chief Election Commissioner—
मुख्य निर्वाचन आयुक्त
Chief Justice—मुख्य न्यायाधिपति

Chief Minister—मुख्य मन्त्री
Code—संहिता
Colonization—उपनिवेशन
Commerce—वाणिज्य
Commission—आयोग
Committee—समिति
Communication, means of—संचार साधन
Community—(१) लोक समाज, —(२) समुदाय
Commute—लघुकरण
Compensation—प्रतिकर
Concurrent List—समवर्ती सूची
Consolidated Fund—संचित निधि
Constituency—निर्वाचन-क्षेत्र
Constitution—संविधान
Council of States—राज्य-परिषद्
Council of Ministers—मन्त्रि-परिषद
Court, High—उच्च न्यायलय
Court, Supreme—उच्चतम न्यायालय
Debate—वाद-विवाद
Defence—प्रतिरक्षा
Deputy Chairman—उप-सभापति
Deputy Commissioner—उपायुक्त
Dissolution—विघटन
Domicile—अधिवास
During good behaviour—सदाचार-पर्यन्त
During the pleasure of the President—राष्ट्रपति-प्रसाद-पर्यन्त
Duty, Custom—सीमा-शुल्क
Duty, Excise—उत्पादन-शुल्क
Efficiency of Administration—प्रशासन-कार्यक्षमता
Election—निर्वाचन
Election Commissioner—निर्वाचन आयुक्त
Election, direct—प्रत्यक्ष निर्वाचन
Election, general—साधारण निर्वाचन
Election, indirect—परोक्ष निर्वाचन
Emergency—आपात
Emoluments—उपलब्धियाँ
Ex-officio—पदेन
Finance Bill—वित्त-विधेयक
Finance Commission—वित्तायोग
Fine—अर्थ दण्ड
Fund—निधि
Governor—राज्यपाल
Grant—अनुदान
Guardian—संरक्षक
Habeas Corpus—बन्दी प्रत्यक्षीकरण
House of People—लोकसभा
Illegal—अवैध
Incapacity—असमर्थता
Invalid—अमान्य
Jurisdiction—क्षेत्राधिकार
Labour—श्रम
Law—विधि
Legislative Assembly—विधान सभा
Legislative Council—विधान परिषद
Licences—अनुज्ञप्ति
Lieutenant-Governor—उपराज्यपाल
List, State—राज्य-सूची
Local Self-Govt.—स्थानीय स्वशासन
List, Union—संघ सूची
Majority—बहुमत
Memorandum—ज्ञापन
Migration—प्रव्रजन
Minority—अल्पसंख्यक वर्ग
Misbehaviour—कदाचार
Money Bill—धन विधेयक
Motion of no-confidence—अविश्वास प्रस्ताव
Municipal Corporation—नगर-निगम
Municipality—नगरपालिका
Nation—राष्ट्र
Naturalisation—देशीयकरण
Naval—नौसेना सम्बन्ध
Obligation—आभार
Occupation—उपजीविका
Ordinance—अध्यादेश

Parliament—संसद्
Pay—वेतन
Pension—निवृत्ति वेतन
President—राष्ट्रपति
Preventive Detention—निवारक निरोध
Prime Minister—प्रधान मन्त्री
Privileges—विशेषाधिकार
Procedure—प्रक्रिया
Proclamation of Emergency—आपात की उद्घोषणा
Proportional representation—अनुपाती प्रतिनिधित्व
Prorogue—सत्रावसान
Provident Fund—भविष्य निधि
Qualification—अर्हता
Quorum—गणपूर्ति
Ratification—अनुसमर्थन
Reading, first—प्रथम पठन
Record—अभिलेख
Reformatory—सुधारालय
Regional Council—प्रादेशिक परिषद
Remuneration—पारिश्रमिक
Repeal—निरसन
Report—प्रतिवेदन
Representative—प्रतिनिधि
Reprieve—प्रविलम्बन
Research—गवेषणा
Revenue—राजस्व
Review—पुनर्विलोकन
Revision—पुनरीक्षण
Revoke—प्रतिसंहरण
Scheduled Tribes—अनुसूचित जनजाति
Security—प्रतिभूति
Sentence—दण्डादेश
Single Transferable Vote—एकल संक्रमणीय मत
Sovereign Democratic Republic—सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य
Speaker—अध्यक्ष
Suspension—निलम्बन
Treaty—सन्धि
Tribe—जन-जाति
Union—संघ
Vice-President—उपराष्ट्रपति

उत्तर प्रदेश बोर्ड

इन्टरमीडियेट परीक्षा

प्रथम प्रश्न पत्र १९५४

१—नागरिक शास्त्र से आप क्या समझते हैं ? यह बताइये कि नागरिक शास्त्र के अध्ययन से अच्छे नागरिक बनने में क्या सहायता मिलती है ?

२—समुदायों की आवश्यकता बतलाइये । राज्य और दूसरे समुदायों में क्या अन्तर है ?

३—राज्य की उत्पत्ति के विषय में Social Contract Theory का वर्णन कीजिये और संक्षेप में उसकी आलोचना कीजिये ।

४—जनतन्त्र सरकार के सफलतापूर्वक संचालन के लिए किन बातों की आवश्यकता है ? भारत में ये बातें कहाँ तक पाई जाती हैं ?

५—कानून से आप क्या समझते हैं ? कानून और स्वतन्त्रता में क्या सम्बन्ध है ?

६—अच्छी सरकार के क्या लक्षण हैं ? उदाहरणसहित विस्तारपूर्वक लिखिए ।

७—राज्य के संचालन में और नागरिक को राजनैतिक शिक्षा देने में राजनैतिक दल कहाँ तक सहायक होते हैं ?

८—आधुनिक राज्य में एक स्वतन्त्र न्यायपालिका का क्या महत्त्व है ? समझाइये ।

९—संविधान शब्द की व्याख्या कीजिये और यह बताइये कि एक अच्छे संविधान में किन-किन बातों की आवश्यकता है ?

१०—विद्यार्थी जीवन में आप अपने देश में स्वस्थ नागरिक जीवन की उन्नति में किस प्रकार सहायक हो सकते हैं ।

प्रथम प्रश्नपत्र १९५५

१—नागरिक शास्त्र के विषय और विस्तार का वर्णन कीजिए, और यह लिखिए कि इसके अध्ययन का आधुनिक जीवन में क्या महत्त्व है ?

२—समुदायों का निर्माण क्यों होता है ? क्या आपकी राय में उन्हें स्वाभाविक और मनुष्य-कृत समुदायों में विभाजित करना उचित होगा ?

३—"नागरिकता हमारे कर्त्तव्यों का उचित रूप से क्रम-निर्धारण है।" इस वाक्य पर प्रकाश डालिए।

४—राज्य की उत्पत्ति के विषय में "सामाजिक समझौता सिद्धान्त" (Social Contract Theory) का वर्णन कीजिए तथा संक्षेप रूप से उसकी आलोचना कीजिए।

५—समानता की परिभाषा देते हुए समझाइये कि स्वतन्त्रता और समानता में क्या सम्बन्ध है ?

६—संविधान की परिभाषा लिखिये और यह बतलाइये कि अच्छे संविधान की क्या-क्या आवश्यक बातें (essential features) हैं।

७—राज्य-सत्ता (sovereignty) का अर्थ समझाकर लिखिये और उसके विशेष तत्त्व (characteristics) बताइये।

८—आप राजनैतिक दल (political party) से क्या समझते हैं ? जनतन्त्र-राज्य के चलाने में यह क्या कार्य करता है ?

९—लोकमत किसे कहते हैं ? श्रेष्ठ लोकमत के निर्माण के लिए किन-किन बातों का होना आवश्यक है ?

१०—सर्व-साधारण मताधिकार (universal suffrage) का ठीक-ठीक अर्थ समझाइये, और उसके पक्ष और विपक्ष में दिये गये तर्कों का उल्लेख कीजिए।

प्रथम प्रश्न पत्र १९५६

१—"नागरिक शास्त्र उन समस्त समुदायों, संस्थाओं तथा वर्गों का अध्ययन करता है जिन पर सामाजिक जीवन निर्भर है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

२—'मानव जाति के संगठन तथा विस्तार के लिए समाज अति आवश्यक है। यदि मनुष्य मिल कर नहीं रहेंगे तो उनका अस्तित्व ही मिट जावेगा।' इस कथन की सत्यता सिद्ध कीजिए।

३—नागरिकता से आप क्या समझते हैं ? आदर्श नागरिक सरकार के लिए क्यों महत्त्वपूर्ण हैं ?

४—राज्य किसे कहते हैं ? राज्य कीं उत्पत्ति का कौन सा सिद्धांत आप सबसे उपयुक्त समझते हैं और क्यों।

५—प्रजातन्त्र की परिभाषा कीजिए। इसके गुणों तथा दोषों का वर्णन कीजिए।

६—कानून की व्याख्या कीजिए। कानून और नैतिकता (Morality) में क्या सम्बन्ध है ?

७—"जहां विधान मंडल में दो भवन होते हैं वहां विरोध, कलह, फूट और विभेद अनिवार्य है।" इस कथन के आधार पर द्विसदनात्मक (Bicameral) विधान मंडल के गुणों और दोषों का विवेचन कीजिए।

८—परिवर्तनशील तथा अपरिवर्तनशील संविधानों में अन्तर बताइये तथा इन दोनों के गुणों और दोषों पर प्रकाश डालिए।

९—"एक निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र न्यायालय जनता के अधिकारों और उसकी स्वतन्त्रता का दुर्ग है।" इस कथन के आधार पर यह सिद्ध कीजिए कि एक स्वतन्त्र राष्ट्र में स्वतन्त्र न्यायालय का बहुत महत्त्व है।

१०—"कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय (International) संघ उस समय तक शान्ति की स्थापना नहीं कर सकता जब तक विश्व में साम्राज्यवाद का प्रभुत्व स्थित है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

Punjab University Questions

CIVICS PAPER A—1955 (April)

Q. 1. Write short notes on *any three* of the following :—

(*a*) Plural Executive. (*b*) The Rule of Law.
(*c*) Aristotle's Cycle. (*d*) The Right to Property.
(*e*) The Security Council. (*f*) Basic education.

Q. 2. Explain the term liberty. Is there any conflict between the liberty of the individual and the authority of the State ?

Q. 3. What are the main features of a federal government ? Discuss its merits and demerits.

Q. 4. Critically examine the Social Contract Theory of the Origin of the State.

Q 5. Is party-system essential for the successful working of a democracy ? Give reasons for your answer.

Q. 6. Define a citizen. How can citizenship be acquired and lost ?

Q. 7. Why should people form associations ? Clarify the various types of associations with which you are familiar.

Q. 8. Explain the term Direct Democracy. Explain some institutions of direct democracy, quoting examples, if possible.

Q. 9. By some the state is considered as an evil. Do you agree ?

Q. 10. How does religion affect civic life ? Discuss with special reference to Indian conditions.

CIVICS PAPER A—1955 (Sept.)

Q. 1. Write short notes on *any three* :—

(*a*) Multiple Party-System, (b) Administrative Law, (*c*) International Court of Justice, (*d*) Proportional Representation, (*e*) Rigid Constitution. (*f*) World Government.

Q. 2. What do you gain by the study of Civics ?

Q. 3. Distinguish fully between unitary and federal forms of government.

Q. 4. Critically examine the Theory of Separation of Powers.

Q. 5. What is meant by Public Opinion ?
Examine the various agencies that mould public opinion.

Q. 6. Explain the term Judiciary. Give the characteristics and requisites of a good Judiciary.

Q. 7. Discuss the statement that Rights and Duties are two aspects of the same thing.

Q. 8. Explain fully the term "Leisure". How best can leisure be used in India ?

Q. 9. Explain the dependence of the individual on society.

Q. 10. Give briefly the constitution and functions of the U.N. E S.C.O.

CIVICS PAPER A—1956 (April)

Q. 1. "Man is by nature and necessity a social animal"—Discuss. Describe the benefits that an individual derives from the society.

Q. 2. Is Civics a science or an art ? Explain Describe its relationship with Political Science and Economics.

Q. 3. What are the main problems of an Indian village ? Describe the measures that are being taken to make life better and happier in them.

Q. 4. Estimate the importance of leisure in human life. Explain how should leisure be best utilized.

Q. 5. What are the bases on which provinces or States are formed ? Do you think that the redistribution of States on linguistic basis in India is desirable ?

Q. 6. "Rights imply duties"—Explain. Discuss the duties of a citizen in the modern State.

Q. 7. What are the functions of a modern Government ? Explain whether the State should control industry and promote fine arts, science and literature.

Q. 8. Describe the merits and demerits of the Parliamentary form of Government.

Q. 9. Explain the term 'Public Opinion' ? Describe the various channels and organs through which it is expressed in a democratic State.

Q. 10. Write short notes on *any three* of the following :—

(*i*) Social Education. (*ii*) The Theory of Force. (*iii*) Democracy. (*iv*) UNESCO. (*v*) Secular State. (*vi*) Association.

Q. 11. Distinguish between a citizen, an alien, a national and a subject.

Q. 12. What are the merits ans demerits of a bicameral legislature ? State arguments for your preference of a unicameral or a bicameral legislature.

CIVICS Paper A—1956 (Sept.)

N. B. *Attempt* **any five** *questions.*

Q. 1. What is the importance of Civics in modern State ? How far will its study help us in solving our problems ?

Q 2. What is the most accepted theory of Origin of the State ? Discuss briefly the main factors that have given rise to the State.

Q 3. What are essentials of a good family life ? How does the home influence an individual's life ?

Q 4. Discuss the importance of education in a democratic State. Should education be entirely controlled by the Government ? State reasons.

Q. 5. What are the hindrances to good citizenship ? State remedies for their removal.

Q. 6. Discuss the merits and demerits of a democratic form of government.

Q. 7. Describe briefly the aims and organization of U.N.O. Discuss its utility and future.

Q 8. Describe the main theories of punishment in a modern State. What measures would you suggest to lessen crime among young boys and girls.

Q. 9. Explain the term citizenship. How is it acquired and lost ?

Q. 10. Write short notes on *any three* of the following :—

(*i*) Social Security.
(*ii*) International Law.
(*iii*) Civil Liberty.
(*iv*) Economic Rights.
(*v*) Proportional Representation.
(*vi*) Broadcasting.

Q. 11. Describe the functions of the judiciary. What measures would you suggest for the achievement of its independence in a modern State ?

Q. 12. What is meant by the theory 'Separation of Powers' ? Do you think that it is essential for liberty ?

CIVICS Paper A—1957 (April)

N.B.—*Attempt* **any five** *questions.*

Q. 1. Describe the relationship and difference between Civics, History and Ethics.

Q. 2. Define society ? Comment on the statement that "not society but individual is the end of social life."

Q. 3. How does an association differ from society ? Describe the place of associations in social life."

Q 4. Describe the evolutionary theory of state.

Q. 5. What are the main organs of the Government ? Describe the functions of a legislature in the modern State.

Q. 6. What is crime ? What reforms would you suggest to reform a criminal.

Q. 7. Describe the character and functions of political parties and discuss their advantages and disadvantages.

Q. 8. What is nationalism ? Describe the merits and dangers of nationalism.

Q. 9. Explain the term rights. Mention some of the important rights of a citizen in a modern State.

Q. 10. Write short notes on *any three* of the following :—

(*i*) Technical Education. (*ii*) Education for citizenship.
(*iii*) Fundamental rights. (*iv*) Plural executive.
(*v*) Second chamber. (*vi*) Panchayats.

Q. 11. Define citizenship ? Distinguish between natural born and naturalised citizens.

Q. 12. How far do you justify the saying that 'family is the cradle of social virtues or the eternal school of social life.'

Rajasthan University Inter. Examination

CIVICS—First Paper, 1954.

(Theory)

1. 'Civics is intimately related to all those sciences which deal with man in organised society'. Explain the statement.

2. Explain the qualities of a good citizenship and suggest suitable methods for cultivating good citizenship in India.

3. 'The State is the first essential condition of civilised life.' Explain.

4. What are the essential elements of the State ? Examine the claims of Kashmir to be a State.

5. Examine the functions of government. Carefully distinguish between those which are essential and those which are optional.

6. Do you think that the dictatorship is a satisfactory alternative to democracy ?

7. Explain and criticise the theory of Force with regard to the origin of the State.

8. 'Rights and duties are two different aspects of the one and the same thing.' Comment.

9. Bring out the meaning of any *two* of the following statements :—

(*a*) 'Individual and not society is the end of the social life.'

(*b*) 'Family is the eternal school of the social life.'

(*c*) 'Law is the condition of liberty.'

(*d*) 'Law is a command of the sovereign.'

10. Write short notes on any *three* of the following :—

(*a*) Legal sovereignty. (*b*) Nationalism. (*c*) Imperialism. (*d*) Society. (*e*) Political sovereignty.

CIVICS—First Paper, 1955.

(Theory.)

1. 'Today the success of democracy depends not on the excellence of the constitution, but upon the intellectual and moral standard of the citizens.' Discuss the value of the study of Civics in the light of this statement.

2. Discuss the contribution made by Kinship, Religion, Force and Industrial Organisation in building up the State as it is.

3. 'Man is, by nature and necessity, a social animal.' Explain clearly giving illustrations.

4. What do you understand by the term 'State'? How does the state differ from other types of social organisation?

5. 'Man's higher progress is a series of subordination of a smaller self to a higher and wider self.' Explain this statement by taking up the relation of one's duties to his kinsman, his constituency, and his nation.

6. Aristotle classified states as Monarchies, Aristocracies, and Democracies. What were the distinguishing marks of those forms of state according to him? Point out the defects in his classification.

7. Distinguish between 'a citizen' and an 'alien.' Mention some of the ways in which citizenship is acquired and lost.

8. What is meant by Parliamentary Government? Discuss the main functions of Parliament in this connection.

9. What is a Welfare State? Distinguish it from the negative conception of a state. Which one do you prefer? Give reasons.

10 What are the aims and objects of United Nations Organisation? How far has it proved successful?

11. Write short notes on *any three* of the following :—

(*a*) Proportional Representation. (*b*) *De jure* and *De facto* sovereignty. (*c*) Marxism. (*d*) Organic theory of State. (*e*) Initiative and Referendum.

INTER CIVICS—Second Paper 1955.

(Indian Civic Life and Administration)

Group A

1. What is a 'Fundamental right'? Briefly state 'Fundamental rights granted by the Indian Constitution.

2. Give the important features of the Act of 1935. How did it function in the Provinces?

3. Describe the Composition, powers and functions of the Indian Parliament (संसद्).

4. Briefly state the relation between the Central Government and the States.

5. Describe the composition of the Indian Cabinet (मन्त्रि-परिषद्) and its relation with the President.

Group B

1. What do you understand by the term 'Indian Renaissance'? What were its main causes? State Raja Ram Mohan Roy's contribution to it.

2. Write an essay on the Harijan Movement in India.

3. Trace the origin and growth of the Indian National Movement till the outbreak of the First World War.

4. Account for the backwardness of Indian agriculture. Suggest impovements.

5. Write notes on any two of the following :—

(*a*) Secondary education in India. (*b*) Communal representation. (*c*) Dyarchy in India. (*d*) Gopala Krishna Gokhale. (*e*) The main political parties in the Indian Parliament today.

INTER. EXAM. IN ARTS, 1956

CIVICS—First Paper

(Theory)

1. In What sense Civics can be regarded as a Science ? What is its practical value to the Individual and the State ?

2. 'Man entered into a social contract in order to realise advantages of union.' Who were the main supporters of this theory ? Explain the nature of authority of the sovereign according to them. What purpose does the theory serve ?

3. What are Rights ? Discuss some of the rights which a progressive state must guarantee to its citizens.

4. How do you distinguish among the laws of nature, laws of Mathematics and laws of State ? What are the sources of laws of State ?

5. How do a man's relations with the members of his family or with those of a football team differ from his relations with his State ? Discuss.

6. What important principles did Fascism adopt ? Explain why you would not like to eive in a Fascist state ?

7. How does a political party arise ? Does the party-system help or harm the nation ? Give your views.

8 What factors contribute towards the growth of imperialism ? Briefly discuss its economic, political and moral implications.

9. What would be the harm if your local boards were abolished and centrally administerad ? Explain the main functions and utility of Local Self-Government in India.

10. Write notes on *any three* of the following :—

(*a*) Liberalism. (*b*) Titular sovereignty. (c) Adult Franchise. (*d*) General Assembly of U. N. O. (*e*) Bicameral system. (*f*) Indirect election.

INTER. EXAM. IN ARTS, 1956

CIVICS—Second Paper

(Indian Civic Life and Administration)

Section A

1. Describe the Emergency powers (आपत्कालीन शक्तियाँ) of the Indian President.

2. What is the place of the Indian Cabinet (मंत्रि-परिषद्) in the constitutional structure of India ?

3. Describe the Administration of Part 'B' States (भाग 'ख' राज्य).

4. Describe the powers and functions of the Supreme Court (सर्वोच्च न्यायालय) of India ?

5. Describe the powers of a Collector in Rajasthan.

Section B

6 Trace the history of Arya Samaj and the Theosophical Society in brief and estimate their influence on modern India.

7. What are the main causes of the backwardness of Indian women ? What efforts have been made to improve their condition ?

8. What are the main problems of Mass Education (जन शिक्षा) in India ? What measuress would you recommend for the removal of illiteracy ?

9. Write brief notes on :—

(*a*) Jagirdari Abolition (जागीरदारी उन्मूलन), (*b*) Community Projects (सामुदायिक योजनाएँ), (*c*) Bhoodan Yajna (भूदान यज्ञ).

10. What are the advantages to India of being a member of the United Nations Organisation (संयुक्त राष्ट्र संघ)?

———